

॥ श्रम एव जयते ॥

दे.भ. बा. भा. खंजिरे शिक्षण संस्था संचलित

नाईट कॉलेज ऑफ आर्ट्स अँड कॉमर्स, इचलकरंजी
तहसील हातकणंगले, जिला कोल्हापूर

एक दिवसीय

राष्ट्रीय संगोष्ठी

विषय

इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित विविध
विमर्श (सन् 2010 से अब तक)

07 Dec. 2019

संपादक

डॉ. माधव राजप्पा मुंडकर

No part of this Special Issue shall be copied, reproduced or transmitted in any form or any means, such as Printed material, CD – DVD / Audio / Video Cassettes or Electronic / Mechanical, inducing photo, copying, recording or by any information storage and retrieval system, at any portal, website etc; Without prior permission.

SPECIAL ISSUE PUBLISHED BY

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal

ISSN 2349-638x Peer Review and Indexed

Impact Factor 5.707

Special Issue No. 59

Disclaimer

Research papers published in this Special Issue are the intellectual contribution done by the authors. Authors are solely responsible for their published work in this special Issue and the Editor of this special Issue are not responsible in any form.

र.नं. MAH २६५१ कोल्हापूर २१-५-८३

ट्रस्ट र.नं. F / २५३६ कोल्हापूर २-७-८३



दे.भ. बाबासाहेब भाऊसाहेब खंजिरे शिक्षण संस्था, इचलकरंजी.

१८/३२४ अ, इंडस्ट्रियल इस्टेट, इचलकरंजी. जि. कोल्हापूर, फोन नं. ०२३० - २४३७६६६

PAN NO. AAABD0664K / Exemption u/s 80-G of Income Tax Act 1961 No. 518 w.e.f. 10/3/2014

जा. नं. - डी बी के एस / /२० -२०

तारीख: / /२०

शुभकामनाएँ

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि नाईट कॉलेज ऑफ आर्ट्स एण्ड कॉमर्स, इचलकरंजी एवं शिवाजी विद्यापीठ हिंदी प्राध्यापक परिषद के संयुक्त तत्त्वाधान में 07 दिसंबर, 2019 को 'इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित विविध विमर्श' (सन् 2010 से अब तक) विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है।

मुझे आशा है कि इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में आए नानाविध विमर्शों पर सारगर्भित चर्चा एवं विचार-विमर्श होगा तथा आयोजन सफलता पूर्वक पूर्ण होगा।

मैं राष्ट्रीय संगोष्ठी समन्वयकों शिवाजी विद्यापीठ हिंदी प्राध्यापक परिषद के सभी पदाधिकारियों के उज्जल भविष्य की कामना करता हूँ तथा आयोज्यमान एक-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी की सफलता हेतु अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ संप्रेषित करता हूँ।

धन्यवाद।

CHAIRMAN
Deshbhakt Babasaheb Bhausaheb
Khanjire Shikshan Sanstha,
JCHALKARANJI.



Deshbhakta Babasaheb Bhausaheb Khanjire Shikshan Sanstha's,
NIGHT COLLEGE OF ARTS & COMMERCE
ICHALKARANJI



Estd. 1983

Re-accredited by NAAC "B" Grade

Affiliated to Shivaji University, Kolhapur

18/324, The Ichalkaranji Industrial Estate, Ichalkaranji - 416 115. Tal. Hatkanangle Dist. Kolhapur (M.S.) INDIA.

Ph. 0230-2437666

Email- nightich@gmail.com

Website-www.nightich.ac.in

Dr. Purandhar D. Nare - Principal

Ref No. :

Date :

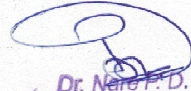
संदेश

यह हर्ष का विषय है कि 'नाईट कॉलेज ऑफ आर्ट्स एण्ड कॉमर्स इचलकरंजी एवं शिवाजी विद्यापीठ हिंदी परिषद' द्वारा 7 दिसंबर, 2019 को नाईट कॉलेज ऑफ आर्ट्स एण्ड कॉमर्स इचलकरंजी में 'इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित विविध विमर्श (सन् 2010 से अब तक)' विषय पर 'एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी' का आयोजन किया जा रहा है।

सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ-साथ किसी भी विषय अथवा विधा का बदलना भी तय होता है। यह एक अपरिहार्य प्रक्रिया है। हिंदी साहित्य के अंतर्गत हम कथा साहित्य के विधाओं पर नज़र फेरेंगे तो पाएंगे कि विविध विमर्शों का प्रभाव पड़ा है। आज (विभिन्न विमर्शों के नाम यहाँ लिख देना) आदि की चर्चा हमें साहित्य में देखने को मिल रही है। कथा साहित्य पर इसका प्रभाव सबसे अधिक है। अतएव इस राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन, एक महत्वपूर्ण सद्प्रयास है।

यह आशा की जा सकती है कि न केवल इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में आये विद्वतजन, चिंतकगण, आलोचक एक दुसरे से लाभान्वित होंगे अपितु विद्यार्थियों को इस संगोष्ठी से सबसे अधिक लाभ होगा। मेरा विश्वास है कि साहित्य के माध्यम से विभिन्न विमर्शों की जानकारी उन्हें अधिक उदार और बेहतर मनुष्य बनाने में सहायक होगी।

राष्ट्रीय संगोष्ठी के सभी आयोजकों को इसके सफल आयोजन के लिए मेरी शुभकामनाएं।


Dr. Nare P. D.
Principal,
Night College of Arts & Commerce
Ichalkaranji.

संपादकीय...

नाईट कॉलेज ऑफ आर्ट्स एण्ड कॉमर्स, इचलकरंजी एवं शिवाजी विद्यापीठ हिंदी प्राध्यापक परिषद के संयुक्त तत्त्वाधान में 07 दिसंबर, 2019 को 'इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित विविध विमर्श' (सन् 2010 से अब तक) संगोष्ठी को सफल बनाने के लिए मैं आपका हृदय से आभारी हूँ।

पत्रिका का यह विशेषांक - 'इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित विविध विमर्श' (सन् 2010 से अब तक) पर केंद्रीत है। जिममें विविध विमर्शों के माध्यम से 2010 के हिंदी कथा साहित्य का शोधपरक अध्ययन किया गया है। संगोष्ठी में लगभग 80 प्रपत्रों का वाचन किया गया। सभी शोधालेखों के समिति द्वारा संपादित करने के बाद प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है।

संगोष्ठी में 2010 के बाद के हिंदी कथा साहित्य के विविध विधाओं एवं विमर्शों पर शोधालेख प्राप्त हुए जिनमें अदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, दिव्यांग विमर्श, प्रवासी भारतीय साहित्य विमर्श, बाल विमर्श, भूमंडलीकरण, मजदूर विमर्श, और मुस्लिम स्त्री विमर्श आदि। सभी विद्वानों ने अपने प्रपत्र में अपने विषय के प्रति न्याय दिया है, ऐसा मैंने महसूस किया।

संगोष्ठी को सफल बनाने के लिए मैं हमारे संस्था के अध्यक्ष श्री. अरूणराव खंजिरे और महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. पी.डी. नारे जी ने बहुमूल्य सुझाव देकर संगोष्ठी में सुचारू बना दिया जिसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। इसके साथ-साथ महाविद्यालय के प्राध्यापक, हिंदी विभाग के सहयोगी अध्यापक डॉ. साईनाथ विठ्ठल चपले, संतोष सालुंखे का हृदय से आभारी हूँ। अंततः मैं सभी प्रशासकीय कर्मचारियों का आभारी हूँ जिन्होंने परिश्रम एवं लगाव से सहयोग किया।

संगोष्ठी के आयोजन एवं भव्य सफलता का प्रमुख श्रेय शिवाजी विद्यापीठ हिंदी प्राध्यापक परिषद को जाता है जिन्होंने हमारे महाविद्यालय में यह संगोष्ठी आयोजित करने के लिए अनुमति दी। विशेष रूप से संगोष्ठी के रूपरेखा से उसके इतिश्री देने तक के सहयोग एवं मार्दर्शन के लिए मैं डॉ. सूनिल बनसोडे जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ और भविष्य में आपके सहयोग की कामना करता हूँ।

संगोष्ठी में सारगर्भित विचार-विमर्श एवं चर्चासत्र के द्वारा जो निष्कर्ष सामने आये हैं निश्चित रूप से आनेवाले अनुसंधान एवं अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण सूत्र मिलेंगे। मुझे बहुत खुशी हो रही है कि सभी शोधालेख Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (Peer Review) में प्रकाशित हो रहे हैं, जिसके लिए मैं 'आयुषी' पत्रिका के प्रधान संपादक श्री. प्रमोद तांदले का आभारी हूँ जिन्होंने सभी आलेखों को अपनी पत्रिका के मानदंडों के आधार पर प्रकाशित किया गया।

सभी के प्रति आभार ! भविष्य में शोधरत रहने के लिए शुभकामनाएँ।

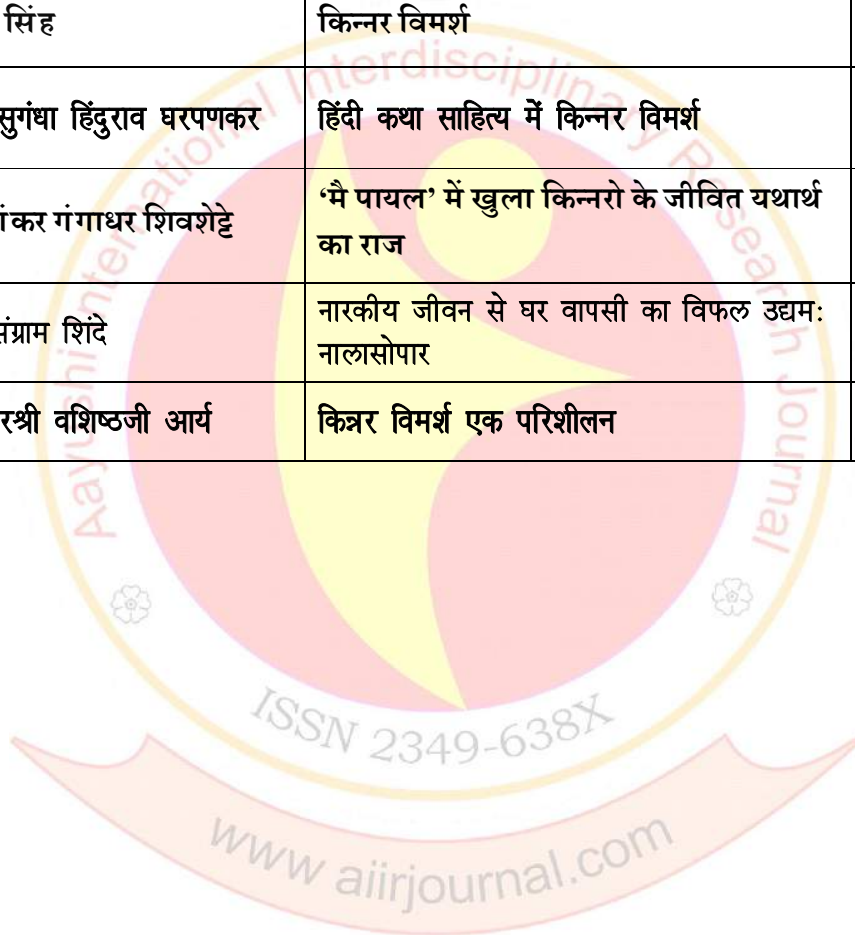
डॉ. माधव राजप्पा मुंडकर

नोट – राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रकाशित सभी आलेखों का मौलिक योगदान लेखक का होगा। आलेख के मौलिकता एवं अप्रकाशित होने की जिम्मेवारी लेखकों की होगी। शोधालेख पूर्वप्रकाशन एवं उसकी स्तरीयता की जिम्मेदारी संगोष्ठी के संयोजक एवं 'आयुषी' पत्रिका की नहीं रहेगी।

Sr. No.	Name of the Author	Title of the Paper	Page No.
आदिवासी विमर्श			
1	श्रीमती अंजना दुबे	इक्कीसवीं सदी हिन्दी कथा साहित्य में चित्रित आदिवासी विमर्श (२०१० से अब तक)	1
2	डॉ. भारत श्रीमंत खिलारे	इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित आदिवासी विमर्श (रमणिका गुप्ता के 'सीता' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)	4
3	प्रा. डॉ. हेमलता काटे	'पगहा पगहा जोरी जोरी रे' घाटो कहानी संग्रह में चित्रित आदिवासी नारी का जीवन	7
4	डॉ प्रकाश कृष्णा कोपर्डे	सहअस्तित्व चिंतन : आदिवासी कविता	10
5	डॉ. प्रिया ए.	आदिवासी विमर्श के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी कहानी	14
6	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला	इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित विविध विमर्श (आदिवासी विमर्श)	16
7	डॉ. विश्वनाथ देशमुख	'आंध' आदिवासी जमाती की लोककथाओं में चित्रित 'रामकथा'	19
8	विक्रम बालकृष्ण वारंग	समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी नारी का जीवन—संघर्ष	23
9	व्यंकट धारासुरे	विमुक्त एवं धुमंतू जनजातीय आत्मकथा लेखन की परंपरा	25
भूमंडलीकरण विमर्श			
10	प्रा. अर्चना वसंत तराल	भूमंडलीकरण और युवा मानसिकता	27
11	डॉ.भगवान रामकिशन कदम	भूमंडलीकरण और हिंदी भाषा	29
12	डॉ: दत्ता शिवराम साकोले	भूमंडलीकरण और इक्कीसवीं सदी की कहानी	31
13	डॉ. दीपक रामा तुपे	भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में जानकीदास तेजपाल मैशन	34
14	डॉ.गोविंद गुंडप्पा शिवशेट्टे	हिंदी कविता में बाजारवाद (भूमंडलीकरण के विशेष संदर्भ में)	36
15	प्रा. सौ. मानसी संभाजी शिरगांवकर	भूमंडलीकरण और साहित्य	40
16	डॉ. नाजिम शेख	सन २०१० के बाद की हिंदी कविता में भूमंडलीकरण	44

Sr. No.	Name of the Author	Title of the Paper	Page No.
17	डॉ.जी.शांति	इक्कीसवीं सदी में भूमण्डलीकरण और मीडिया	46
18	प्रा.डॉ. शिवाजी उत्तम चवरे	भूमंडलीकरण और इक्कीसवीं सदी का उपन्यास साहित्य	50
19	डॉ. सविता धुडकेवार	इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी में भूमंडलीकरण	53
20	सचिन मदन जाधव	इक्कीसवीं सदी के कथा साहित्य में चित्रित शिक्षा विमर्श ('द्रोण की आत्मकथा' उपन्यास के संदर्भ में)	56
किन्नर विमर्श			
21	प्रा. डॉ. अनिलकुमार आर. राठोड	अधूरी देह में एक पूरी रूह को जीने के लिए अभिशप्त : किन्नर समुदाय ('दरमियाना' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)	59
22	प्रा.डॉ. अर्जुन शंकरराव कसबे	'इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर विमर्श' (विशेष संदर्भ 'किन्नर कथा' तथा 'पोस्ट बॉक्स नं. २०३, नालासोपारा)	62
23	प्रा.दत्तात्रय महादेव साळवे	हिंदी कथा साहित्य में - किन्नर विमर्श	65
24	डॉ. दिलीपकुमार कसबे	किन्नरों के तहखाने में झाँकता 'तीसरी ताली'	68
25	प्रा. जी.बी. उषमवार	किन्नरों के जीवन की संवेदनाओं का लेखा जोखा (विशेष संदर्भ:-पोस्ट बॉक्स नं. २०३ नाला सोपारा- चित्रा मुद्गल)	71
26	गंगाधर पिराजी रामडगे	'तीसरी ताली' में अभिव्यक्त मंगलमुखियों का जीवन संघर्ष	73
27	डॉ. जयलक्ष्मी एफ. पाटील	इक्कीसवीं सदी का हिंदी उपन्यास 'मैं पायल' में किन्नर विमर्श	76
28	मिलन बिश्रोई	'किन्नर कथा' में संघर्ष और सफलता	78
29	प्रा. डॉ.एम. ए. येल्लूरे	समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श	81
30	डॉ मनी वेल	किन्नर विमर्श	83
31	प्रा. पी. आर. रगडे	२१ वीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित 'थर्ड जेंडर' विमर्श (सन २०१० से २०१९ तक)	86
32	प्रोफेसर डॉ. प्रकाश शंकरराव चिकुर्डेकर	इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर विमर्श	90

Sr. No.	Name of the Author	Title of the Paper	Page No.
33	प्रदीप कुमार ठाकुर	मैं लक्ष्मी मैं हिजड़ा : एक उध्वगामी किन्नर की आत्मकथा	95
34	डॉ. संतोषकुमार यशवंतकर	किन्नर जीवन की विडंबना का दस्तावेज : संज्ञा	99
35	डॉ. सुरेश तायड	जीवित मनुष्य के अंधेरी दुनिया का काला सच : तीसरी ताली	103
36	शक्तिवीर सिंह	किन्नर विमर्श	107
37	प्रा. डॉ. सुगंधा हिंदुराव घरणकर	हिंदी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श	109
38	प्रा. डॉ. शंकर गंगाधर शिवशेट्टे	‘मै पायल’ में खुला किन्नरो के जीवित यथार्थ का राज	112
39	प्रा. डॉ. संग्राम शिंदे	नारकीय जीवन से घर वापसी का विफल उद्यम: नालसोपार	115
40	प्रा.डॉ. वीरश्री वशिष्ठजी आर्य	किन्नर विमर्श एक परिशीलन	118



Sr. No.	Name of the Author	Title of the Paper	Page No.
बाल विमर्श			
41	श्री. अजित विठ्ठल लिपारे	प्रतिनिधि बाल कविताएँ में बाल विमर्श	122
42	डॉ. भगवान जाधव डॉ. वर्षारानी निवृत्तीराव सहदेव	डॉ. परशुराम शुक्ल के बालकाव्य का बच्चों के व्यक्तित्व विकास में योगदान	125
43	डॉ. कृष्णात आनंदराव पाटील	प्रवासी हिंदी साहित्य में बाल विमर्श	127
44	डॉ. एम. आर. मुंडकर	डॉ. परशुराम शुक्ल सूचनात्मक बाल साहित्य – स्वरूप और उपयोगिता	129
45	डॉ. पंडित बन्ने	हिंदी उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में बाल विचलन	133
46	डॉ. साईनाथ विठ्ठल चपले	डॉ. परशुराम शुक्ल के बाल साहित्य का मूल्यांकन	136
47	डॉ. सिद्राम कृष्णा खोत	इक्कीसवीं सदी की कविता में बाल विमर्श	140
48	प्रा. सुधाकर कल्लाप्पा इंडी	डॉ. जाकिर अली ' रजनीश ' की बाल कहानियों में आधुनिकता बोध	142
मजदूर विमर्श			
49	डॉ. एकनाथ श्रीपती पाटील	'फाँस' में आत्महत्याग्रस्त किसान की बेटी कलावती	146
50	इन्द्रदेव शर्मा	किसान से मजदूर बना भारतका अन्नदाता	149
51	प्रा.संगीता विष्णु भोसले	'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में मजदूर विमर्श	153
52	संजीवनी संदीप पाटील	'कांच के इधर-उधर' : मजदूरों की शहादत - सुधा अरोडा	156
53	डॉ. सुनील बापू बनसोडे	'नीला आकाश' में चित्रित मजदूर विमर्श	158
मुस्लिम नारी विमर्श			
54	प्रा. अंजली महेश उबाळे	कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यास में चित्रित मुसलिम नारी विमर्श ('आना इस देश' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)	161
55	डॉ. ज़ियाउर रहमान जाफरी	समकालीन हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श	165

Sr. No.	Name of the Author	Title of the Paper	Page No.
56	डॉ. कविश्री जायसवाल	स्त्री एहसासों को जीने की चाहत : मैं भी औरत हूँ	167
57	प्रा. सौ. कविता संदीप तळेकर	नारी की व्यथा- कथा का जीवंत दस्तावेज 'हलाला उपन्यास'	171
58	प्रा. एम्. डी. नायकू	हिंदी आत्मकथाओं में नारी विमर्श	174
59	डॉ.एस.जे.पवार प्रो. विद्या. एस. हिरेमठ एवं डॉ. के. ए. पाटील	मुस्लिम स्त्री विमर्श	177
60	प्रा. संपतराव सदाशिव जाधव	'हलाला' उपन्यास और मुस्लिम नारी विमर्श	179
61	डॉ.सरोज पाटील	'आना इस देश' उपन्यास में मुस्लिम स्त्री विमर्श	182
62	डॉ. सब हा सम र सय्यद	डॉ. सादखा नवाब सहर की नावल निगार	185
63	डॉ. श्रीकांत पाटील	'हलाला' में मुस्लिम स्त्री विमर्श	188
64	डॉ. शाहीन एजाज जमादार	आना इस देश-उपन्यास में चित्रित मुस्लिम नारी सुरैय्या की त्रासदी	190
65	प्रा.डॉ. उत्तम लक्ष्मण थोरात	हिंदी के विकास में हिंदी सिनेमा का योगदान	192
66	उस्मान सत्तारमियाँ शेख	हिन्दू-मुस्लिम समन्वय के लिए मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान	194
67	सौ.विद्या शामराव चौगले	मीरा कांत के नाटक 'गली दुल्हनवाली' में मुस्लिम स्त्री विमर्श	197
दलित विमर्श			
68	प्रा. डॉ. संजय गणपती भालेराव	सूरजपाल चौहान की कहानियों में दलित विमर्श	200
69	डॉ.साताप्पा शामराव सावंत	रुपनारायण सोनकर के साहित्य में चित्रीत विविध आयाम	203
70	डॉ. शहनाज महेमुदशा सय्यद	हिंदी कविता में दलित चेतना	206

Sr. No.	Name of the Author	Title of the Paper	Page No.
71	प्रा.डॉ. शेख मुख्त्यार शेख वहाब	दलित चेतना के परिदृश्य में 'सूअरदान'	209
प्रवासी भारतीय साहित्य विमर्श			
72	डॉ. बी. संतोषी कुमारी	सूर्यबाला कृत कौन देस को वासी : वेणु की डायरी में चित्रित सामाजिक जीवन और संघर्ष	212
73	डॉ. गोरखनाथ किर्दत	प्रवासी साहित्य में भारतीय संस्कृति	219
74	प्रा.एस.के.आतार	प्रवासी स्त्री समस्याओं की यथार्थ कहानी : स्विमिंग पूल	221
75	श्याम कुमार दास	२१ वीं सदी के काव्य में प्रवासी भारतीय साहित्य विमर्श	223
76	डॉ.युवराज माने	मनोव्यस्था खंडकाव्य में व्यक्त विचार	226
आदिवासी, किन्नर विमर्श, भूमंडलिकरण			
77	डॉ.विठ्ठल शंकर नाईक	आदिवासी नारी समाज की व्यथागाथा 'अल्मा कबुतरी'	229
78	रोहिता केतन राऊत	२१ वी सदी की हिंदी उपन्यासों में वर्णित किन्नर विमर्श	233
79	प्रा.डॉ.सौ. शकंतुला प्रताप वाघ	किन्नर विमर्श	236
80	प्रा.डॉ. बी.एस बलवंत	मधु कांकरिया की कहानी में भूमंडलिकरण (लोड शेंडिंग के संदर्भ में)	237
81	गणेश दुंदा गभाले	संजीव जी के फांस उपन्यास में किसान और आदिवासी चेतना	239
82	श्री. सूर्यकांत विश्वनाथ आमलपुरे	हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श	242
83	प्रा. अजयकुमार कृष्णा कांबळे	भूमंडलीकरण के आयाम एवं हिंदी कविता	247
84	प्रा. राजेंद्र ज्ञानदेव ननावरे	मजदूर वर्ग की व्यथा, 'गैंगमैन' आत्मकथा	252
85	रेणू गुलशन खत्री	थर्ड जेंडर - मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	256
86	डॉ. सौ. शोभा माणिक पवार	२१ वी सदी की कहानियों और वैश्वकरण से उपजी समस्याएँ	259
87	आशीष	भाषा, संस्कृति और समाज : मंगलमुखी समुदाय के विशेष संदर्भ में	263

इक्कीसवीं सदी हिन्दी कथा साहित्य में चित्रित आदिवासी विमर्श (२०१० से अब तक)

श्रीमती अंजना दुबे
शोधार्थी
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय
जबलपुर (म.प्र.)

प्रस्तावना :

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी कथा साहित्य में अनेक विधाओं में साहित्य सृजन को नई दिशा मिली है। यह समाज, साहित्य, राजनीति की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहेगी। आज का दौर साहित्य में आधुनिक विमर्श और मीडिया का चमत्कारिक प्रगति का युग का युग है और इस डिजिटल युग में साहित्य और उसकी जड़ चेतन में निहित संवेदनायें के विलुप्त होने की चुनौतियाँ हैं और समाज और साहित्य के बीच की कड़ी प्रभावित हो रही है। इस अवस्था में साहित्य विमर्श आवश्यक हो जाता है। बीसवीं सदी के अंतिम दौर से विमर्श विश्लेषण उभरने लगा था। इसी समय से साहित्य में प्रचलित विधि विमर्श, दलित विमर्श, दिव्यांगी विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि धाराएँ विकसित होने लगी थी। विमर्शों के वर्तमान दौर में आदिवासी विमर्श अपेक्षाकृत नया पड़ाव है।

आदिवासी अर्थात् प्राचीन मूल निवासी चार अक्षरों का एक छोटा सा नाम, लेकिन इसकी विशालता में अनेक समुदाय जातियों और किस्मों में बँटा एक विविध संसार अपना राजवेश, स्व-संस्कृति प्रेम रीति-रिवाज, लोक नृत्य, लोक परम्परा, लोक संस्कृति, जल, जंगल, जमीन है।

आदिवासी ५००० वर्ष पुरानी वे जातियाँ हैं, जो भारतीय पुरातन संस्कृति, मानव सभ्यता को संजोये हुए, एक ऐसा मानव समूह है, जो प्रकृति पर निर्भर है, जिसका जीवन के प्रति नजरिया ऐसा है-

“बामणों में पैदा होंगे / लिख लिख मरोगे
मारवाड़ी होंगे / तोल तोल मरोगे
चमार होंगे / जूता घिस घिस मरोगे
पर होंगे वारली / तो जंगल के राजो बनोगे”

- जंगलचे राजे

यह आदिवासियों की जीवन के प्रति दृष्टि है, इस दृष्टि का प्रतिबिम्ब उनके लोक साहित्य में दिखता है। प्रकृति ही उनकी प्रेरणा है। उनकी संस्कृति के बारे में हमें हमारी कल्पनाएँ हैं, हम उन्हें असभ्य, गैर-आधुनिक, पिछड़ा और क्या-क्या कहते हैं। अंग्रेजीराज से भारतीय आदिवासियों का दूसरे दर्जे का नागरिक समझा गया है।

आदिवासी जीवनशैली, संस्कृति और अकृतिम स्वतंत्रता को बाकी जीवन से अलग रखकर उसे अध्ययन और कोतुहल का विषय बना दिया। आदिवासियों पर कोई परिवर्तन बाहर से थोपा जायेगा तो विद्रोह होगा, क्योंकि वे सामान्य प्रकृति शांत और सरल है, लेकिन विद्रोह का नगाड़ा बजते ही पूरा आदिवासी समूह सम्पूर्ण शहरियों के लिये एक चुनौती देता है कि जिसे झेलना असंभव है। एक चिंगारी जो आग बनकर सबको लपेटने की क्षमता रखती है।

आदिवासी विमर्श इस श्रृंखला की एक कड़ी है। भारत की आबादी का ८.०८ प्रतिशत अनुसूचित जनजातियों के रूप में बँटा गया है। अनुसूचित जनजातियों (एस.टी.) को आदिवासी कहा गया है।

“जनजातियों को महात्मा गाँधी ने आदिवासी नाम दिया था। भारतीय समाज को बड़े वर्गों में जाति एवं आदिवासी में विभक्त करके रखा है यह विमर्श प्रकृति के बीच गिरि, कंदराओं में नदी के किनारे, जंगल में रहते चले आ रहे आदिवासी समुदायों के विस्थापन के त्रास को केन्द्र में लाता है। भूमण्डलीकरण और विकास के प्रतिमानों के रहते ना जाने कितने आदिवासी समूहों को उनके जल जंगल जमीन से अलग कर समाज की मुख्यधारा से अलग किया।”

आदिवासी विमर्श साहित्य में उनके दर्द को संवेदनशीलता के साथ उकेर कर उनके हिस्से की दुनिया लौटाने का आह्वान करता है।

आदिवासी समकालीन लेखन और विमर्श की शुरुआत हमें १९६९ के बाद माननी चाहिए। हाशिए से केन्द्र की ओर प्रस्थान की साहित्य यात्रा आदिवासी विमर्श की अपनी कहानी है। साहित्य में आदिवासी समूह की गूंज भी दलित एवं स्त्री विमर्श के समान सुनाई देने लगी है।

आदिवासी विमर्श अभी निर्माण प्रक्रिया में है। साहित्य जगत में आदिवासी मुद्दे की ‘आदिवासी, इतिहास, लोक संस्कृति भाषा से जुड़े सृजनात्मक साहित्य को प्रोत्साहन देने में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान रहा है।

आदिवासी सत्ता झारखंडी भाषा साहित्य, संस्कृति अखाड़ा, अरावली घोष, तरंग भारती आदि आदिवासी विमर्श को बढ़ाने में लगे हैं। तीसवीं सदी के इन उपन्यासों की इस परम्परा को आगे बढ़ाने वाले और आदिवासी शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद करने वाले उपन्यास २१वीं सदी में लिखे गये हैं और लिखे जा रहे हैं।

आदिवासी जीवन के साहित्य की हर विधा में लेखन कार्य हो रहा है। यह विमर्श समूची सांस्कृतिक परम्परा के पुर्नपाठ की आवश्यकता भी जता रहा है। इक्कीसवीं सदी का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है।

इक्कीसवीं सदी के यह उपन्यास ग्लोबल गाँव के देवताओं, दिक्कू और कज्जाओं के शोषण, व्यापारी, पुलिस प्रशासक, राजनेता, पूंजीवादी को शोषण को बड़ी संवेदनशीलता के साथ उजागर करते हैं, जो इस प्रकार है :-

२१वीं सदी का साहित्य

आदिभूमि	प्रतिमा राय	२००२
काला पादरी	तेजिन्दर	२००२
पठार का कोहरा	राकेश कुमार सिंह भगवानदास मोरवाल	२००३ २००८
घूणी तपे तीर	हरिराम मीणा	२००८
ग्लोबल गाँव के देवता	राणेन्द्र	२००९
अरण्य में सूर्य	श्रीमती अजित गुप्ता	२००९
मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ	महुआ माजजी	२०१२
वासवी (उल गुलान की औरतें) दिल्ली साहित्य उपक्रम	मीणा केदार प्रसाद	२०१२
वासवी (उल गुलान की औरतें) क्रांतिकारी आदिवासी, जयपुर साहित्य उपक्रम	मीणा केदार प्रसाद	२०१२
गायब होता देश	रणेन्द्र	२०१४
आदिवासी साहित्य की अवधारणा	गंगा सहाय मीणा	२०१९

वासवी (उल गुलान की औरतें) क्रांतिकारी आदिवासी, जयपुर साहित्य : वासवी ने सिद्धू कान की बहनों के बारे में लिखा है - “संथाल हुल के नाम से सिद्धू, कान, चौद, भैरव के साथ इनकी दो बहनों पूलो और झानों ने यौद्धा की भांति अंग्रेज शत्रुओं से मुकाबला किया। रात से निकली फूलों और सानों ने अंग्रेजों के शिविर में जाकर २१ सिपाहियों की हत्या की। इस उपन्यास में आदिवासी महिलाओं का अपने भाईयों के साथ संघर्ष में योगदान दिखाया।

गायब होता देश का प्रकाशन वर्ष २०१४, यह कथा साहित्य ग्लोबल गाँव के देवता से ५ साल बाद का है। इन पाँच लाल में कथाकार ना तो अपनी कथाभूमि बढ़ा पाया।

गायब होता देश एक उपन्यास है, जिसके स्वर्ग से तुलना है। ऐसा राष्ट्र राज्य जिसने वैश्विक पूंजी से हाथ मिला लिया है। कथा में स्वर्ग इस रूप में स्वर्ण किरण, हीरो की कौंध से चौंधियाती शंखनदी, सफेद हाथी, श्याम चंद और उससे बढ़कर हरे, सोने, शाल सरकुआ के वन, यही था मुंडाओं का सोना लेकिन दिसुम। यह स्वर्ण नष्ट हुआ, क्योंकि इंसान को फर्नीचर बनाने, मकान, रेल की पटरियों को बिछाने, बंदरगाह बनाने के लिये अंधाधुंध वनों की कटाई शुरू हो गई। मरंग बुरुबोगा की छाती की हरर अमूल्य निधि धातु अयस्क को जरूरत ने समझदार इंसान की अंधाधुंध उड़ान के गुबार में सोना लकन दिसुम गायत होता रहा था, इसके गायत होने का एक साक्षी पत्रकार किरान विद्रोही है।

‘मरंगगोड़ा नीलकंठ’ हुआ, यह झारखण्ड की जनजाति ‘हो’ को केन्द्रित कर लिखा गया है, ‘जादूगोड़ा’ (मरंगगोड़ा) मुम्बई लाईन पर जमशेदपुर स्टेशन से २० कि.मी. है। यूरेनियम कार्पोरेशन ऑफ इंडिया यहाँ यूरेनियम का खनन करता है। शोधन प्रक्रिया भी जादूगोड़ा में ही होती है। भूमंडलीकरण की अंधी दौड़ से प्रदूषण फैला रही है एवं आदिवासी जीवन से खिलवाड़ हो रहा है।

रेडियोधर्मी कचरा एवं अणु परमाणु, कचरे की डम्पिंग हो रही है, जो आदिवासी पीढ़ियों को विनाश की ओर ले जा रही है। महुआ मांजी ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से इस समस्या के विरुद्ध आवाज उठाई है।

वंदना टेंटे की सम्पादित पुस्तक ‘आदिवासी दर्शन और साहित्य’ (२०१५) की आदिवासी आलोचना को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण है। इसमें १२ से अधिक आदिवासी लेखकों के साहित्य संबंधित विभिन्न बिन्दुओं पर लेख शामिल है। वंदना टेंटे अपने लेख में ‘बाहरी समाज’ को देखने की पुख्ता दृष्टि का विश्लेषण करती है, जो कई दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

वंदना टेंटे की तीसरी किताब वाचिकता - आदिवासी दर्शन साहित्य और सौन्दर्य बोध (२०१६)। यह पुस्तक सैद्धांतिक आलोचना की पुस्तक है, जिसमें आदिवासी साहित्य सम्बन्धी विभिन्न अवधारणात्मक विषयों पर बातचीत की गई है। आदिवासी दर्शन आदिवासी विमर्श, वाचिकता, भाषा संस्कृति का साहित्य से सम्बन्ध आदि है। गंगा सहाय मीणा के आदिवासी, साहित्य विमर्श आदिवासी चिंतन और अस्तित्व का संघेस को प्रस्तुत करता है।

इक्कीसवीं सदी के कथा साहित्य में आदिवासी विमर्श, उरॉव, भील, कंजर, बोंडा, हो, मुंडा आदिवासी को केन्द्रित कर लिखे गये हैं, जो झारखण्ड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा राज्यों में हैं।

यह कथा साहित्य हमारे औद्योगिक उन्नति, भौगोलिक सभ्यता, वैश्विक परिदृश्य पर हमारी स्थिति को दिखाते हैं, वही दूसरा पक्ष आदिवासी जीवन के संघर्ष, जल, जमीन, जंगल से विस्थापन, शोषण, अन्याय अत्याचार, धर्मान्तरण को व्यक्त कर आदिवासी जीवन की स्थिति को दिखाकर हमें उनक समूची सांस्कृतिक परम्परा के पुर्नपाठ की आवश्यकता भी जता रहे हैं।

निष्कर्ष :-

२१वीं सदी के कथा साहित्य में आधुनिक विमर्शों के बाद आदिवासी विमर्श प्रारंभ निश्चय ही सुखद संदेश है। अभी इसकी स्पष्ट वैचारिकी नहीं बन पाई है। परम्परा के दोयम दर्जे का माना जाता था, पर अवधारणा बदल रही है। अब रमणिका गुप्ता, वीर भारत तलवार, वंदना टेंटे जैसे लेखकों के साथ नये नाम जुड़कर इस विमर्श को नया आयाम प्रदान करेंगे।

आज के विमर्श बौद्धिक विमर्श है आदिवासी विमर्श की चर्चा की जाये तो यह साहित्य शैशवास्था का साहित्य है, लोक साहित्य या प्रतिशोध साहित्य नहीं है, इसकी अपनी मौखिक वाचिक परंपरा रही हैं समकालीन आदिवासी लेखन में ऐतिहासिक घटनाएं विद्रोह, आदिवासी आंदोलनों के साथ आदिवासी समाज की चुनौतियाँ प्रमुख है। आज भी आदिवासी अपने गौरव और आत्मबोध को प्राप्त करने के लिये संघर्षरत है।

संदर्भ :

१. डॉ. रमणिका गुप्ता (स), आदिवासी स्वर और नई शताब्दी
२. गंगा सहाय मीणा : आदिवासी साहित्य विमर्श : चुनौतियाँ और संभावनाएँ।
३. प्रो. चमनलाल - दलित साहित्य : एक मूल्यांकन
४. रणेन्द्र : ग्लोबल गाँव के देवता
५. राकेश कुमार सिंह : पठार पर कोहरा
६. इंटरनेट, समाचार-पत्र
७. पत्रिकाएँ



**इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित आदिवासी विमर्श
(रमणिका गुप्ता के 'सीता' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)**

डॉ. भारत श्रीमंत खिलारे

असो.प्रोफेसर, हिंदी विभाग
स्नातकोत्तर अध्यापक एवं शोध निर्देशक,
कला वाणिज्य महाविद्यालय, पुसेगांव,
ता. खटाव, जि. सातारा.

प्रस्तावना :-

रमणिका गुप्ता समकालीन लेखिकाओं में अपनी सृजन प्रक्रिया से बहुत चर्चित लेखिका हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य में भी उनका स्थान अग्रणी है। रमणिका विशेषतः दलित साहित्य की एक प्रमुख सशक्त हस्ताक्षर हैं। वह स्वयं सिक्ख जाति की होकर भी दलित एवं दलित साहित्य को समझने की दृष्टि रखती हैं। वह एक बहुआयामी व्यक्तित्व वाली स्त्री हैं। रमणिका समकालीन लेखिका, बहुभाषिज्ञ, कुशल नृत्यांगना, संगीतप्रेमी, नाटकप्रेमी हैं।

रमणिका एक अच्छी लेखिका एवं कवयित्री ही नहीं, बल्कि पत्रकार भी हैं। वह स्वातंत्र्यपूर्व काल से लेकर आधुनिक काल तक अपने सृजन कार्य में लगी हैं। डॉ. सरोज पगारे कहती हैं कि, "साहित्य को यदि साहित्यकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति भी कह दे 'तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।'"¹ कोई भी व्यक्ति क्यों न हो उसका व्यक्तित्व रूढ़ी, परंपराओं एवं सामाजिक वातावरण, शिक्षा-दीक्षा, संबंध, संस्कारों, तथा परिस्थितियों से निर्मित एवं विकसित होता है। इसी कारण व्यक्तित्व को समझने के लिए उस व्यक्ति के जीवनवृत्त को समझना आवश्यक है।

रमणिका गुप्ता की जीवन विषयक पर्याप्त जानकारी प्रकाशित नहीं है। फिर भी तथ्यों एवं आधारों पर उनका जीवनवृत्त प्रस्तुत किया है जो निम्नांकित है -

रमणिका गुप्ता का व्यक्तित्व : जीवनवृत्त में व्यक्ति के जीवनसंबंधी जानकारी दी जाती है। जैसे-जन्म, माता-पिता, बाल्यकाल, शिक्षा-दीक्षा, विवाह, पारिवारिक जीवन, संस्कार, पुरस्कार आदि।

जन्म : रमणिका का जन्म पंजाब के सुनाम शहर में प्रतिष्ठित सिक्ख परिवार में 22 अप्रैल 1930 में हुआ। इनकी कार्यभूमि झारखंड का छोटा नागपुर रही है।

माता-पिता : रमणिका के माता-पिता सुशील, सच्चे संस्कारी थे। उनकी माता का नाम लीलावती बेदी और पिता का नाम डॉ. प्यारेलाल बेदी था। उनकी माता एक विदुषी, कलाप्रिय एवं धर्मपरायण महिला थी। पिता पटियाला रियासत के फौज में लेफ्टनंट कर्नल और डॉक्टर भी थे।

बाल्यकाल : माता-पिता के सहयोग के कारण रमणिका का बचपन हँसी-खुशी से बीता। बचपन में माता-पिता उन्हें प्रेम से 'रमना' कहकर पुकारते थे। एक भरे-पूरे शिक्षित परिवार में जन्म लेनेवाली रमणिका को बाल्यावस्था से ही समाजकार्य में रुचि पैदा हो गई थी। बाल्यावस्था में ही रमणिका का तेज तर्रार स्वभाव उनके माता-पिता ने परखा था। छोटी-छोटी बातों में भी बचकाना हरकतें न करते हुए वह बड़ी बड़ी बातें करती थी।

शिक्षा : रमणिका ने अपने अध्ययन का प्रारंभ पंजाब के छोटे से शहर 'सुनाम' से ही किया। उनकी शिक्षा पटियाला और लाहौर में हुई। हालांकि जिस समय स्त्री शिक्षा को समाज में मान्यता नहीं थी उसी समय कुछ लोग स्त्री को पढ़ाने के लिए राजी हुए थे, तो ज्यादातर लोग उसके विरोध में थे। रमणिका के दादा-दादी पुराने विचारों के होने के कारण वे लड़कियों की शिक्षा के विरोधी थे।

'रमणिका' ने फरीदकोट से बी. ए. अर्थशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र में किया। उसके बाद वह सोलन विश्वविद्यालय से एम. ए. उत्तीर्ण हुई। उसके बाद बी.एड. का अध्ययन दिल्ली में हुआ। बी.एड. करते समय रमणिका नाट्यकला की आराधना भी कर रही थी। कथा, कविता, नाटक के साथ ही मुंबई में गोपीकृष्ण से कथ्य और गौरी अम्मा की एक शिष्या से मद्रास में भरतनाट्यम भी सीखा। रमना को बहुभाषा का ज्ञान भी है।

उपन्यास : - सीता, मौसी

कहानी संग्रह : बहू-जुठाई,

काव्य संग्रह : रमणिका मूलतः कवयित्री हैं। उनका मन कविता में ज्यादा रमा, इसलिए उन्होंने 15 कविता संग्रहों को सृजन किया है। कविता में मानवीय संवेदना को गति प्रदान की जाती है।

सीता : रमणिका गुप्ता लिखित 'सीता' आदिवासी नारी पर आधारित उपन्यास है। जिसका प्रकाशन 2010 में हुआ। इस उपन्यास में मजदूरी करनेवाली आदिवासी नारी सीता के संघर्ष का चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास तीन भागों में विभाजित है। पहले भाग में सीता के घर की परिस्थिति, माँ-बाप, बहनें और पति का चित्रण किया

है। दूसरे भाग में सीता और यासीन के प्रेमसंबंध का सुंदर वर्णन है तो तीसरे भाग में 'सीता' यूनियन का नेतृत्व करती हुई दिखाई देती है।

'सीता' खूँटी गाँव की आदिवासी औरत है। जो पिता शुकरा और माता सुमित्रा के साथ उसकी बहनें और पति भी कोयला खदानों में काम करती है। कोयला खदान में काम करनेवाले मजदूरों पर हमेशा जान का खतरा मँडराता रहता था। सुरक्षा का कोई नियम नहीं था क्योंकि खदानें गैरसरकारी थीं। सीता और उसके पिताजी रामगढ़ के राजा की कोयला खदानों में काम करने के लिए आए थे। सीता का पति परिश्रमी न होने के कारण उसका भी काम उसे ही करना पड़ता था। जिसके लिए शुकरा ने उसे डाँटा भी था।

सीता का पति उसे छोड़कर एक दिन दूसरी औरत को लेकर असम चला गया। जिसके कारण अकेली सीता के कंधेपर दो बेटियों की जिम्मेदारी आ पड़ती है। सीता अब दिन-रात कोयला खदानों में काम करने लगी। मुंशी ठेकेदार खदानों में काम करनेवाले लोगों का नापी लेता था। राजा की खदानें होने के कारण वहाँ पर सिर्फ राजा का अधिकार था। मुंशी ठेकेदार पर काम देखने की जिम्मेदारी थी। सीता का काम देखने की जिम्मेदारी यासीन मियाँ की थी जो सीता को चाहता था।

परित्यक्ता सीता के खाते में यासीन कुछ-न-कुछ बढ़कर देता था। एक दिन सभी लोगों के घर जाने के बाद भी सीता खदान में काम कर रही थी। उसी समय यासीन वहाँ आकर अपना प्रस्ताव सीता के सामने रखता है। यासीन ने उसके नाम पर ज्यादा काम लगाने की वजह से पहले से वह उसके एहसान में दबी हुई थी जिसके कारण वह ना नहीं कह पाई। उसके लिए सीता ने कुछ शर्त रखी जिसे यासीनमियाँ ने हाँ, कर दिया। शर्त यह थी कि सीता अपनी जाति से शादी करेंगी, धर्म नहीं बदलेगी।

सीता और यासीनमियाँ शाम को घर आए तो उन्हें सब देखने लगे। यासीनमियाँ के कंधेपर छोटी लड़की बैठी थी और दूसरी हाथ पकड़कर चल रही थी। लोग उन्हें देखते हैं तब सीता कहती है, "हमार मन! तुम लोग कौन हो दखल देये वाले?"² इसके बाद यासीन सीता से शादी करके अपना नाम सीता के बेटियों को दे देता है। जिसके कारण सीता उसके प्रेम में डूब जाती है। दोनों के प्रेम-संबंध का वर्णन करते हुए लेखिका कहती है, "लगता था सचमुच सीता को नशा हो गया हो, नशा-यासीन का नशा। जैसे एकाएक बाँध टूट गया हो। बाढ़ की तरह बाँध तोड़ बहने लगा सीता का प्रेम। सीता नदी-सी बही जा रही थी। यासीन भँवर-सा उसे पकड़ने-समेटने के लिए चक्कर काट रहा था। भँवर-सा उसका प्यार उसे भीतर-ही-भीतर अपने में खींचे लिए जाने लगा था।"³

सीता और यासीन की गृहस्थी अच्छी चल रही थी। गृहस्थी का सभी खर्चा सीता की कमाई से हो रहा था और यासीन का पैसा बचता था। जिसके कारण वह ट्रक एवं जमीन खरीदने के सपने देख रहा था। दोनों सब्जी के बहाने या फिल्म देखने के बहाने बाहर चले जाते। यह जोड़ी चर्चा का विषय बन गई। सीता काम पर भी उसे कभी कभार देखता रहता। यासीन उसे पूरा प्यार दे रहा था जिससे वह पुराने दुःख भूल रही थी। दोनों एक दूसरे को इतने चाहते हैं कि जैसे यह जोड़ी अटूट है। इसी बीच उनके दांपत्य जीवन में दरार पड़ती है। यासीन उसके जीवन में बवंडर खड़ा कर देता है। यासीन अपनी बेटी को नाम नहीं देना चाहता है। वह सीता के पिताजी का नाम सीता की बेटी को देने के लिए कहता है जो यासीन की बेटी है। लेखिका ने सीता की मन:स्थिति का चित्रण इस प्रकार किया है, "सीता मानो आकाश से गिर गई। प्यार का भूत सिर पर से उतरने लगा। बड़ा धोखा हो गया। बिना सोचे-समझे वह सारी कमाई यासीन को ही देती रही थी। कभी पूछा तक न था सीता ने कि पैसों का क्या किया? जिस पर उसने सब कुछ न्योछावर कर दिया वह अपनी औलाद को 'गछने' (अपनाने) तक को तैयार नहीं। उस दिन प्यार की बाड़ी में शंका का बीज डाला गया था। उसी दिन अविश्वास की लतरें भी पनप कर मन-मगज की दीवारों-मुँडेरों पर चढ़ने लगी थी। अब उनसे केवल विष-बीज ही झर सकते थे।"⁴

सीता पहले बवंडर से बाहर निकल पाती नहीं तब तक दूसरा बवंडर उसके सामने हो जाता है। यासीन अपनी जात वाली लड़की को ब्याह करके घर लाता है। जिसके आधारपर 'सीता' को रखनी का दर्जा मिलता है। फिर भी सीता उसे 'सौतन' के रूप में अपनाकर ले आती है। सीता के जीवन में तब हलचल मचती है जब उसे बेटा होने पर यासीन और उसकी पत्नी उसे जहर देकर मारना चाहते हैं। परंतु वह खुद खाना न खाते हुए कुत्ते को पहला निवाला डालती है। जिससे उसे जहर का पता चलता है। जिसकी वजह से वह खाना नहीं खाती है, बल्कि दोनों की पिटाई करके घर से बाहर निकाल देती है।

केदला कोलियरी में अब यूनियन बन गई थी। कई बुरे लोग उसका नेतृत्व कर रहे थे। सीता भी अब नेतृत्व करने लगी है। वह झंडा हाथ में लेकर संघर्ष कर रही है। वह संघर्ष करके गुप्ता मैया को सहयोग करता है तो कभी जेल जाती है किंतु किसी से डरती नहीं है।

सीता के बेटे के सामने यासीन जब अपना नाम नहीं लगाता तो वह मैटरनिटी बेंनेफिट का फार्म भरने के लिए जाती है तब मैनेजर कहता है कि, "जाँच करके फार्म भर दूँगा।"⁵ तब धैर्यवान होकर वह कहती है, "किस बात की जाँच साहब? तोरु जोरु के बच्चा जना, तो जी.एम. ने जाँच करवाई थी। स्कूलवा में तोर बेटा के बप्पा

के नामपर तो नाम लिखाया तो क्या मास्टर ने जाँच करवाई थी तोर जोरु की?"⁶ ऐसे बेबाक सवाल वह मँनेजर से करती है।

सीता अब यासीन के धोखे से सचेत होकर रहती है। जिसके लिए यह दूसरे खदान में काम के लिए चली गई। वहाँ पर ही यूनियन नेता संत की पहचान से अपनी बड़ी बेटी का विवाह करवा देती है। जिसकी वजह से संत सीता पर पाबंदियाँ लगाना चाहता है लेकिन वह जल्द माननेवाली नहीं है। संत और यासीन उसका शोषण करने लगे हैं। संत सीता के दामाद को भडकाता है कि यह आदिवासी बेटी नहीं मियाँ की बेटी है। जिससे दामाद बेटी को मारता है, सीता उससे कमजोर पड़ जाती है। मुखिया और संत उसे 5000/- का दंड भरने पर मजबूर कर देते हैं। सीता का शोषण चक्र यहीं समाप्त नहीं होता तो गुंडे आकर उसे मारते हैं, उसके धौंडे को तोड़ते हैं, संत गालियाँ देता है।

सीता अब गुप्तामैया के नेतृत्व में चल रहे आंदोलन में समाविष्ट हो जाती है। उसके विभिन्न कार्यक्रमों का वह नेतृत्व करती है। कोयला खदान के सरकारीकरण के लिए महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। नेताओं को सलाह देती है। सीता की ताकत बढ़ने से विरोधी लोग उसे फँसाते हैं पर वह तुरंत उनके चंगुल से बाहर आती है। उसकी ताकत इतनी बढ़ी है कि वह लोगों को सी.एम.डी. को घेराव देने का सुझाव देती है। इंदिरा गांधी के पास जाने का रास्ता दिखाती है। सीता को लगता है कि स्त्री ही स्त्री का दुःख समझ सकती है।

विरोधकों ने भी सीता के खिलाफ मजदूरों के मन में द्वेष की भावना भडकाने का प्रयास किया लेकिन उसमें वे असफल रहें। सीता में आत्मविश्वास और मेहनत करने की ताकत इतनी थी कि वह नई उँचाई पर पहुँच गई थी। वह अब अपने विचारों की बहस करने लगी थी। जिसके कारण लेखिका कहती है कि, "सीता लड़ रही है हर मोर्चे पर, सीता जूझी है हर रिश्ते से। सीता को लड़ना पड़ा है उमर के हर मोड़ पर। सीता अडी है निर्णय की हर घड़ी पर।"⁷

सीता विद्रोही नारी है। विद्रोह उसके रग-रग में समाया है। जब सीता पर अन्याय, अत्याचार होता है तो वह उसका विरोध करती है। यासीन और उसकी बीवी को वह मारती है तो आस पास के लोग कहते हैं, "आरे सीता जी तो पति की खातिर वनवास चली गई थी।"⁸ तब सीता विद्रोह करती हुई कहती है कि, "साले हमरा रामायण पढाए है। —सारे के राम कहे है जो दूसरी औरत बनाया लेले। रामजी ने दूसर ब्याह नाय कर लो। पर जायदे। हम ऊ सीता जी नाय है, जो वन में चल जायब। हम तो एही साले के वन में भेज देव। कैसन इसर शादी करके नौकरी में रहे जयतै। ई—हमनी देखब?"⁹ तो सभी चुप हो जाते हैं। वैसे ही जब वह मैटरनिटी फार्म भरने के लिए जाती है वहाँ के लोगों ने उसका मजाक उड़ाया। तब भगीरथ बाबू उसे यासिनमियाँ की जगह और किसी का नाम लिखने के लिए कहता है तब सीता भगीरथ बाबू का गट्टा पकड़कर कहती है — "ठहरे साले रखनीवाले दोगले। घर पर जोरु रखते हो, कोलयरी में रखनी दोनों हाथ में लड्डू। सब रखनियों की औलाद को गछावा कर जैदाद में हिस्सा न दिलवाय दिया तो हमार नाम सीता नाय। एक-एक की मुंडी काट दूंगी। तब मजा आएगा। 'रखनी' रखने का।"¹⁰ इस प्रकार सीता अपना विद्रोह पकट करती है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत उपन्यास में रमणिका गुप्ता ने कोयला खदान के प्रश्नों को उठाया गया है। मजदूरों पर, स्त्री पर हो रहे अन्याय अत्याचार के खिलाफ लड़ने के लिए ताकत जुटाने का प्रयास किया है। अन्याय-अत्याचार का भंडाफोड़ करना एवं कोयला खदानों का सरकारीकरण करके मजदूरों को नौकरी देने के लिए — लेखिका ने संघर्ष किया है। जिसका चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया है।

संदर्भ संकेत :-

1. डॉ. पगारे सरोज : हिंदी दलित साहित्य आंदोलन, पृ. 13
2. डॉ. गुप्ता रमणिका : सीता ज्योतिलोक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.2010, पृ. 32
3. वहीं — पृ. 32
4. वहीं — पृ. 38
5. वहीं — पृ. 62
6. वहीं — पृ. 62
7. वहीं — पृ. 91
8. वहीं — पृ. 59
9. वहीं — पृ. 59-60
10. वहीं — पृ. 61

‘पगहा पगहा जोरी जोरी रे’ घाटो कहानी संग्रह में चित्रित आदिवासी नारी का जीवन

प्रा. डॉ. हेमलता काटे
हिंदी विभाग,
बाळासाहेब देसाई कॉलेज पाटण

इस समाज में नारी चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित हो, ग्राम की हो या नगर की लगभग सभी नारियों की समस्याएँ एक समान होती हैं। यहाँ तो नारी के साथ आदिवासी शब्द जुड़ गया है। इसीलिए सबसे पहले आदिवासी शब्द का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। कारण जिससे आदिवासी नारियों की समस्याओं को गहराई से समझ लेना आसान हो जायेगा।

‘आदिवासी’ यह शब्द आदि और वासी इन दो शब्दों से बना हुआ है। आदि का मतलब प्रथम अथवा पहला, तो वासी का अर्थ रहनेवाला निवासी। इसका पूरा अर्थ जो पहले से रहनेवाला निवासी है उसे आदिवासी कहते हैं। तो अलग-अलग साहित्यकारों ने उन्हें जंगल का राजा, धरती के बच्चे, प्रकृति की गोद में रहनेवाले, आदिम अगर आदिवासी, पहले के निवासी, पिछड़े हुए हिंदु एवं नष्ट हो रही जनजातियाँ आदि विभिन्न नामों से पुकारा है। तो भारतिय संविधान ने उन्हें अनुसूचित जनजातियाँ कहा है। आदिवासी के बारे में गिल्लिन कहते हैं, “ एका विशिष्ट भूप्रदेशावर राहणारा, समान बोली भाषा बोलणारा व समान सांस्कृतिक जीवन जगणारा पण अक्षर ओळख नसलेल्या स्थानीय गटांच्या समुच्चायाला ‘आदिवासी समाज’ म्हणतात.”^१ (एक विशिष्ट भूप्रदेश पर रहनेवाला, समान बोली भाषा बोलनेवाला, और समान सांस्कृतिक जीवन व्यथित करनेवाला, पर अक्षर ज्ञान से रचित स्थानिय गुट समूह को ‘आदिवासी समाज’ कहा जाता है।) इस प्रकार जितनी भी परिभाषाएँ हुई हैं, उससे यह कह सकते हैं कि यह समाज सभ्य समाज से दूर जंगल में रहता है, अज्ञानी तथा अशिक्षित होता है। समाज जीवनशैली को अपनाकर जीवन जीनेवाला होता है। कुल मिलाकर यह समाज अन्य समाज से पीछड़ा होता है। अतः ऐसे समाज में स्त्री के प्रति भला कैसे उच्च दृष्टिकोण हो सकता है।

इसलिये आज के इस युग में उन्हीं में से थोड़ी आगे बढ़ी स्त्रियाँ अपने जीवन को साहित्य के माध्यम से यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति कर रही हैं। जिनमें रोज केट्टा नामक आदिवासी साहित्यकार नाम लिया जाता है। जिन्होंने हिंदी में दो कहानी संग्रह लिखे हैं, ‘पगहा जोरी-जोरी रे घाटो’ ‘विरुवार गमछा’। ‘पगहा जोरी जोरी रे घाटो’ में सोलह कहानियाँ संकलित हैं। जिनके माध्यम से रोज केरकट्टा जी ने आदिवासी नारी जीवन को प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में आदिवासी साहित्य के आलोचक डॉ. वीरभारत तलवार मानते हैं कि “‘रोज केरकट्टा की कहानियाँ आदिवासी जीवन की सघनता और संपूर्णता के साथ व्यक्त करती हैं। उन्होंने जो जिया, उसे ही लिखा है। साहित्य में चल रहे स्त्री विमर्श से इस संग्रह की कहानियों को अलगाते हुए कहते हैं, रोज की कहानियाँ पुरुष के विरोध में नहीं, व्यवस्था के विरोध में खड़ी हैं। यहाँ अलग तरह का नारीवाद है।”^२ अर्थात् प्रस्तुत कहानी संग्रह में चित्रित नारी व्यवस्था का विरोध करती नजर आती है।

१. पितृ सत्ताक समाज का विरोध करनेवाली नारी:-

भारतीय समाज पितृसत्ताक है। ‘पितृसत्ता’ अंग्रेजी ‘पैट्रियार्की’ का हिंदी समानार्थी शब्द है। अंग्रेजी में यह शब्द यूनानी शब्दों ‘पैटर’ और ‘आर्क’ को जोड़कर बना है। ‘पैटर’ का अर्थ है पिता तथा ‘आर्क’ का अर्थ शासन होता है। इस तरह पैट्रियार्की का शाब्दिक अर्थ पिता का शासन।^३ अतः भारतीय समाज के परिवार में संपत्ति पर पिता का या घर के सबसे बड़े बुजुर्ग पुरुष का ही अधिकार होता है। यह अधिकार उत्तराधिकार के निश्चित नियमों के तहत एक पुरुष से दूसरे पुरुष को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता था। एक प्रकार से समाज में पुरुषों की सत्ता चलती है। जहाँ स्त्रियाँ हमेशा अपने अधिकारों वंचित ही रहती हैं। जबवह अपने अधिकारों के लिए लड़ती हैं, तब समाज उसके साथ हमेशा क्रूरता का ही व्यवहार करता है।

इसकी झलक ‘भँवर’ कहानी में मिलती है। प्रस्तुत कहानी की नायिका मालकिन पितृसत्ताक समाज व्यवस्था में फँसी नजर आती है। मालकिन को दोनों बेटियाँ हैं। पुत्र न होने की वजह से उसे संपत्ति नहीं मिलती। १४ अप्रैल, १९३७ को स्त्रियों का संपत्ति पर अधिकार का अधिनियम पारित हो चुका था। सामाजिक कानून की तहत विधवा का पति की संपत्ति पर हक्क था। इसलिए वह कानून का भी सहारा लेती है। बहुत प्रयास करने के बाद भी संपत्ति पर उसे अधिकार नहीं मिलता। परंतु मालकिन ने अनुभव किया कि कानून से सामाजिक व्यवस्था बंधी नहीं। सामाजिक व्यवस्था भी उनके लिए है, जिनके पास ताकद है। वह प्रयास करती है इसलिए माँ-बेटी दोनों को भी पुरुषी वासना का शिकार होना पड़ता है। जैसेलेखिका लिखती है, “आधी रात अचानक धांगर की चीख सुनाई दी। मालकिन और उसके बेटियों की नींद खुल गयी। और फिर चारों ओर सन्नाटा छा गया। पंद्रह-बीस मिनट के बाद मालकिन के दरवाजे पर लात पड़ने लगी। बड़े-बड़े पत्थरों

और कुल्हाड़ी से दरवाजा तोड़ा जाने लगा। पुरखौती घर था। मजबूत किवाड़ लगे थे। पर दरवाजा टूट ही गया। कपाटों के गिरने की देरी थी सारे वहशी लोग माँ-बेटी पर टूट पड़े। सारी रात माँ-बेटी को गिद्धों की तरह नोचते रहें।”⁴⁵

इस तरह केवल अपने ही संपत्ति पर अधिकार माँगने के कारण मालकिन को समाज के कूरता का सामना करना पड़ता है।

२. निम्न जाति की वजह से संघर्ष करनेवाली नारी:-

उच्च भू वर्ग के संपर्क में आने के कारण आदिवासियों के सामने अनेक समस्याएँ निर्माण हो गयी हैं। जिसमें आदिवासी स्त्री की अपनी अलग समस्या है। आदिवासी स्त्री के साथ उच्च वर्ग के पुरुष जब संबंध रखते हैं तब वह हिन नहीं होती, लेकिन जब वह अपने अधिकार के बारे में बात करती तब वह हिन बन जाती है। इतना ही नहीं तो हिन जाती की होने की वजह से उसे समाज से बहिष्कृत किया जाता है। जो आदिवासी स्त्रियों की सबसे बड़ी समस्या है। जो केवल झारखंड के स्त्री की नहीं तो संपूर्ण आदिवासी समाज के स्त्री की है। झारखंड में औद्योगिक कारखाने स्थापित हो गए। परिणामस्वरूप बाहर के अनेक लोग वहाँ आकर बस गए हैं। कभी – कभी वे वहाँ स्थायी रूप से बस भी जाते हैं। उनका आदिवासी स्त्रियों के साथ संबंध आता है। तब वह स्त्रियाँ उन्हें अपना सबकुछ नौछावर कर देती हैं। परंतु वह उनका कुछेक ही काम कर सकती हैं। हिन होने की वजह से वह खाना पकाने का और पानी भरने का काम नहीं कर सकती। इस प्रकार आदिवासी नारी को निम्न जाति की वजह से संघर्ष करना पड़ता है।

इसे रोजकट्टा ने इसे ‘घाना लोहार का’ कहानी में चित्रित किया है। प्रस्तुत कहानी की नायिका रोपनी है। जिसे जगतसिंह अपने पास पत्नी के जैसा रखता है। वह घर का सारा काम जैसे-झाड़ू लगाना, गोबर फेंकना, कपड़े धोना आदि काम करती है, परंतु वह पीने के पानी नहीं भर सकती और रसोई भी नहीं पका सकता। कारण वह बाहरिया थी। लेखिका लिखती है, “रोपनी को ऊँची जाती के पुरुष का प्यार, घर और धन-दौलत मिला। वह पहुँची तो जगतसिंह की बिमार पत्नी विरोध न कर सकी। उनकी जाती में ऐसा होना नई बात नहीं थी। जगतसिंह ने जाती के रिवाज को नहीं तोड़ा। रोपनी को घर के अंदर नहीं ले गया। दालान के बगल में बने कमरे में जगह दी, जिसके दरवाजे अंदर बागान की तरफ खुलते थे। १७-१८ वर्ष की जवान रोपनी मन को भाँती थी। उसने गोबर फेंकना, झाड़ू लगाना, मवेशी देखने से लेकर कपड़े धोने तक का काम सँभाल लिया। बस पीने का पानी नहीं भरती और रसोई नहीं बनाती थी। वह थी बाहरिया।”⁴⁶ परंतु रोपनी ने अपने आप को जगतसिंह को पूर्णतः समर्पित किया था। जिससे उसे सोमरू नाम लड़का भी होता है। परंतु वह निम्न जाति की होने के कारण उसे घर, जमीन-जायदाद किसी पर भी अधिकार नहीं मिलता। वह पंचायत में भी न्याय माँगने का प्रयास करती हैं, फिर भी असफल रहती है। इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में रोज केरकट्टा ने आदिवासी नारी को हिन जाती की होने की वजह से जो संघर्ष करना पड़ता है, उसे चित्रित किया है।

३. शिक्षा के लिए संघर्ष करनेवाली आदिवासी नारी:-

किसी भी समाज की स्थिति उस समाज में स्त्रियों की दशा का देखकर पता चलती है। महिलाओं की स्थिति में समय-समय पर देश-काल के अनुसार परिवर्तन होते रहे हैं। जिससे दिन-ब-दिन महिलाओं के स्थिति में गिरावट आती गई तथा गरीब, आदिवासी महिलाओं पर इसका प्रभाव अधिक पड़ा। समाज के निर्माण में महिलाओं की भूमिका उतनी ही प्रमुख है जितने कि शरीर का जीवित रखने के लिए जल, वायु और भोजन की है। स्त्रियाँ ही संतति की परंपरा में मुख्य भूमिका निभाती हैं। फिर भी प्राचीन समाज से लेकर आधुनिक कहे जानेवाले समाज तक स्त्रियाँ उपेक्षित ही रहीं हैं। मनु ने जो कहा था, “पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने। रक्षति स्थविर पुत्रा, न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।”⁴⁷ अर्थात् बचपन में पिता रक्षा करते हैं, तो यौवन अवस्था में भाई रक्षा करता है। बुढ़ापे में पुत्र रक्षा करता है, यहाँ स्त्री को पूर्ण स्वातंत्र्य नहीं है। यहीं बात आज के समाज में भी दिखाई देती है। परिणामस्वरूप आज भी स्त्रियों को अपने अधिकारों तथा अस्तित्व के लिए लड़ना पड़ता है। इस संदर्भ में स्त्री समानता और मताधिकार किताब में लिखा है, “समाज में पुरुष प्रधान- पितृसत्ताक ढाँचे के साथ वैश्वकरण, उदारीकरण, धर्मांधता, कौमवाद तथा जातिवाद जैसी समस्याओं के माहौल जितने अधिक मजबूत ढंग से गुंथते जा रहे हैं उसी रूप में महिलाओं की समस्याओं की जटिलता भी बढ़ती जा रही है।”⁴⁸ आदिवासी नारी के सामने यह जटिलता अधिक रूप में दिखाई देती है। उसे पग-पग पर संघर्ष का सामना करना पड़ता है। ‘केराबाँझी’ कहानी में बालधन ने अपने पत्नी हिरामती को समझाया था कि वह केवल एक ही संतान को जनम देंगे। उसके अनुसार वह एक बेटी को जन्म देते हैं। परंतु ससुर कालिंदीचरण को यह बात ठीक नहीं लगती। कारण इनके समाज में ज्यादा-से-ज्यादा बच्चों को जनम देने की प्रथा है। परंतु बालधन पढ़ा-लिखा होने के कारण उसे पिताजी कि यह बात मान्य नहीं। परंतु कालिंदीचरण इसका दोष हिरामती को देता है। वह हिरामती को कहता है, “ई बालधनवा को देखों। एके गो बेटी जनमा तरना चल रहा है। अरे कोटी-कुकर से क्या होगा? कनियो ओइसने लाया है। अरे, बहुआ पुरा समाज, जात-गोतिया तुम्हें नाम धरेगा। केराबाँझी कहेगा रे। हाँ, केराबाँझी कहेगा।”⁴⁹ इस प्रकार हिरामती को ही ताने सुनने पड़ते हैं।

‘पगहा जोरी—जोरी रे घाटो’ कहानी में दया का शिक्षा के लिए संघर्ष करना पड़ता है। दया अपनी माँ और पिता के साथ संघर्ष करती है। वह पिताजी से कहती है, “मुझे स्कूल जाना है बाबा, मैं पढ़ना चाहती हूँ।”^१ पहले—पहल पिताजी इन्कार करते हैं। परंतु मास्टर जी दया की लगन को देखकर मास्टर जी उसके पिताजी को समझाते हैं। कारण मास्टर जी ने चरवाहे के बच्चों का डाँटा था। परंतु बाकी चरवाहों ने मास्टर की डाँट से मैदान में मवेशियों को चराना बंद कर दिया, लेकिन दया ने मवेशियों को चराते समय खिड़की के पास खड़े होकर पढ़ना नहीं छोड़ा था। वह बालू पर क ख ग के साथ वाक्यों को भी निरंतर लिखती रही। दया की निरंतर पढ़ाई के प्रति जागरूकता को देखकर मास्टरजी उनके माता—पिता से मिलते हैं और स्कूल में दया का नाम लिखवाया जाता है। वह प्राथमिक स्तर की पढ़ाई पूरी कर लेती है और पिता जब कहते कि “तुम बहुत पढ़ चुकी हो अब घर में रहो”^२ तब दया खाना—पीना छोड़ देती है और सिसक—सिसक कर रोती रहती है कभी घर के पीछे, कभी बिछावन पर। इसप्रकार प्रस्तुत कहानी में दया को पढ़ाई के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि स्त्री चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित, ग्राम की हो या नगर की, उसे अनेक समस्याओं का सामना करते—करते ही जीवनयापन करना पड़ता है। अतः इससे आदिवासी नारी कैसे छूट सकती है। वह तो सभ्य कहेजानेवाले समाज से बहुत दूर दराज जंगल में रहती है। विभिन्न रित—रिवाजों के बीच रहती है। जहाँ शिक्षा का पूर्णतः अभाव ही है। ऐसे समाज में अगर कोई औरत परिवर्तन की दृष्टि से प्रयास करेगी तो उसे अपने सामाजिक बंधनों से संघर्ष करना ही पड़ेगा। ऐसे ही रोज केरकट्टा लिखित ‘पगहा जोरी—जोरी रे घाटो’ कहानी की आदिवासी स्त्रियाँ संघर्ष करती नजर आती हैं। उन्हें अपने समाज से संघर्ष करना पड़ा है, परंतु वह नारियाँ अपने प्रयास से पीछे हटती नहीं। अन्याय—अत्याचार सहन करती हैं, फिर भी अपने अस्तित्व के लिए लड़ती रहती हैं।

संदर्भ सूची:—

१. भारतीय आदिवासी — गुरुनाथ नागगोंडे पृ. २ से उद्धृत
२. अभिगमन, ४ जुलाई, २०१७
- ३- www.online.com
४. भँवर — रोज केरकट्टा, पृ. ऑनलाइन किताब से
५. घाना लोहार का — रोज केरकट्टा, पृ. ऑनलाइन किताब से
- ६- www.online.com
७. स्त्री समानता और मताधिकार — नारी आंदोलन का इतिहास भाग २ — उन्नति — विकास संगठन एवं सहचर स्त्री संगठन, २००९ पृ. ११
८. केराबोझी — रोज केरकट्टा, पृ. ऑनलाइन किताब से
९. पगहा जोरी—जोरी रे घाटो — रोज केरकट्टा, पृ. ऑनलाइन किताब से
१०. वही, पृ. वही

सहअस्तित्व चिंतन : आदिवासी कविता

डॉ प्रकाश कृष्णा कोपड़े

हिंदी विभाग प्रमुख

वैद्यनाथ कॉलेज परली, जिला - बीड

‘कलम को तीर होने दो’ यह आदिवासी काव्य संकलन हिंदी की ख्यात लेखिका रमणिका गुप्ता द्वारा संपादित आदिवासी कविता पर केंद्रित है। इस संकलन में संताली, मुंडारी, खड़िया, कुडुख, नगपुरिया आदि भाषा के कवियों की कविताएं हैं। अर्थात् व्यापक फलक पर आदिवासी दर्शन को इन कवियों के भावावेश के माध्यम से कविता में स्थान मिला है।

प्रकृति से असीम आस्था, सहजीवन, सामूहिकता, सहजीवनानुभूति से युक्त आदिवासी व्यक्ति नहीं समभाव में आस्थावान है, इसीलिए जीवन रक्षा का समस्त भाव बोध व्यक्ति से प्रकृति, जीव-जंतु, प्राणी तक विस्तार लेता है। वर्तमान ताप वृद्धि से जुड़ता ‘उत्तर औद्योगिक लोक’ जिसे ‘पर्यावरण चेतना’ कहता है, आदिमों के लिए वह आदिधर्म, सहधर्म से भी अधिक है।

आदिवासी दर्शन सहअस्तित्व को प्राथमिकता देता है इसीलिए प्रकृति अस्तित्व में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते जल, झरने, नदी, नालों को लेकर आदिवासी सोच सचेत नजर आती है, नदी को लेकर मुंडारी कवि रामदयाल मुंडालिखते हैं- "नदी और आग से / न कीजिए नादानी/ एक मारती है पानी से/दूरेदिन पानी"1 चेतावनी देते रामदयाल पानी के अस्तित्व की जीवन से होड़ लेते हैं। वहीं आग में जलते जंगल अगर नहीं बचे तो जीव, जंतु, पशु-पक्षी समेत आदिवासी और संस्कृति दोनों ही गायब हो जाएंगे। 'हे समय के पहरदारों' इस कविता में कुडुख कवि ग्रेस कुजूर वर्तमान प्रगति के आड़ में नष्ट होती प्रकृति का चिंतन प्रस्तुत करती हैं, खत्म होते नदियों के उद्गम पर उनकी चिंता है- "आज तुम अपने ही स्वार्थ के लिए/ पर्वतों के पत्थर / तोड़ रहे हो / बारूदी गंध से / जीवन मरोड़ रहे हो /क्या कभी नदिया / लौटकर पूछेंगी/ अपने खंडहर होते / पर्वतों से- कि कहां गया/ उनका उद्गम ? / कहां गया उनका वैभव"2

यह केवल सवाल नहीं; बल्कि भविष्य की विकराल समस्याओं का ऊहापोह है। नदियों का समाप्त होना। पर्वतों का खंडहर बनना। अर्थात् जल तथा जैवविविधता का समाप्त होना है। ऐसे में मनुष्य प्रजाति भी संकट में आ जाती है। जहां ऐसे प्राकृतिक संकट आते हैं, वहां से जीवन पोषक स्थलों की खोज में विस्थापन भी आरंभ होता है। ऐसा विस्थापन सभ्यता सूचक प्रतीकों के विनाश के अंतिम रूप में परिणत होता है, इसीलिए नदी का अस्तित्व एवं उद्गम स्थलों का होना बहुत कुछ मायने रखता है।

पेड़ आदिवासी उदरनिर्वाह तथा जंगल के होने को एक सटीक आधार प्रदान करते हैं। तथाकथित सभ्य वैज्ञानिक सोच पेड़ को ऑक्सीजन का पूरक प्रदाता मानती है इस सोच में भी निजी स्वार्थ होता है, लेकिन आदिम पेड़ को अपने जीवन का अभिन्न अंग मानते हैं 'साखू पेड़ ढह गया गया' इस कविता में कुडुख भाषी ज्योति लगड़ा अपनी भावनाओं को यूँ बयान करती है- "दिउडी का वह साखू पेड़ ढह गया / जिस साखू के पत्ते से / फूलचिभियां चिड़िया अंडे देने के लिए / अपना घोंसला तैयार करती रहीं / जिसके खोंडर में सुग्गा मैना, धनेस/ और गुदरूम बच्चे चेंरे -बेरे करते रहे/ वह साखू पेड़ ढह गया"3 साखू पेड़ हमारे लिए ऑक्सीजन, लकड़ी ही है; लेकिन ज्योति लकड़ा के लिए फूलचिभिया का घोंसला, सुग्गा, मैना, धनेस का आश्रय, बच्चों का क्रीड़ा स्थल है। अर्थात् सहभाव, सहजीवन यही तो है। अपने आसपास को भी अपना मानना तथा एक पेड़ की सहभागिता को चिन्हित कर उसे पारिवारिक सदस्य की तरह सम्मान देना; सभ्य समाज के लिए सबसे बड़ी सीख है। आदिवासी अनुभव आदिम के साथ प्रासंगिक भी अधिक नजर आते हैं।

मनुष्य विकास के तथाकथित विकासवादी प्रारूपों के कारण प्रकृति में हस्तक्षेप अधिक हो रहा है; जहां-जहां आदिवासी बसे थे, वहां अपार प्राकृतिक संपदा रही इसी की गंध से अधुनिक जनो ने उन पर अतिक्रमण किया पूंजी ने माया जाल फैला अकूत संपदा को लूटा और जो बचा है वह है- "परेशान है दादी / अपने समय के जंगल को यादकर/ जहां से चुन लाती थी अपने खोपा के लिए/ मकरकन्द के फूल/ बीमारी के लिए नाना प्रकार की/ घास की जड़े"4

'इन दिनों यहां' इस कविता में निर्मला पुतुल आदिम धरती का विनष्ट वर्तमान प्रस्तुत करती है। बुलडोजर, मशीनों के चलने के बाद धरती बांझ बनती है। आदिमों की रोजी-रोटी और दवा-दारू के साधन जंगल उनकी थाती है, किंतु पूंजी हस्तक्षेप से वे जंगल विनाश के कगार पर हैं। जिन्हें आदिवासी आत्मा कहां जाता है। रामदयाल मुंडा की 'जंगल जल रहे हैं' कविता भी जंगलों की सफाई से उगती पूंजी परस्त उपजाऊ भूमि की ओर संकेत कर प्रकृति में मनुष्य किस प्रकार मनचाहा परिवर्तन लाकर स्वार्थों की सिद्धि कर रहा है, को प्रस्तुत करती है। लेकिन जब कोई जंगल एक बार कटता है तो दोबारा उगता नहीं। जंगल मनुष्येतर सृष्टि संचालन में आवश्यक सभी जीवों का घर होता है। इसीलिए रामदयाल जंगल, पहाड़ को 'बनाए रखें प्रिय, बनाए रखो' पुकार उठे हैं।

महादेव अपनी कविता 'आप क्यों हंसते हैं' में जंगल कटने के कारणों पर प्रकाश डालते हैं- "जंगल का यह कौन सा पत्ता है? / कौन सा पेड़ है? बताइए? / जानिए फुटकल भी दवाई है- ब्राह्मी बूटी भी/ और भी ऐसी अनेक औषधियां हैं जंगल में / क्या आप बता सकते हैं यह/ इनके पत्ते देखकर या उनकी जड़े सूंघकर?"5

बकौल महादेव यहां सवाल नहीं; बल्कि जवाब दे रहे हैं, कि क्यों तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग वृक्ष कटाई, जंगल कटाई की हामी भरता है; क्योंकि उन पेड़ों, पौधों बेलों का उनके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है, इससे अज्ञात है। ज्ञानी तथा प्रयोग करता तो उनका सहचर आदिवासी है। अतः महादेव भौतिकतावादी अभिजनों को प्रकृति ज्ञान देकर दृष्टि प्रदान करना चाहते हैं। जिससे की जंगल बचे। आदिवासी बचे और उनका जीवन राग बचे तथा पृथ्वी का एक सशक्त संचलन भी निर्वाह करें।

प्रकृति दोहन के लिए पूंजीवादी मानसिकता ने हर पैतरा आजमाकर अपनी जेबे भरी है। आदिम अपने सीमित साधनों से उन से लड़ रहे हैं; किंतु सत्ता, दलाल और धन के बल पूंजी संधमारी करने में सफल बनी हैं। आदिमों का पूंजी प्रतिरोध पूंजी धारण हेतु नहीं अथवा मालिकाना हक के लिए तो बिल्कुल भी नहीं। अपनी प्रकृति या प्रकारांतर से साहचर्य साथी को जीवित रख स्वयं भी जीवनयापन रूपी अस्तित्व को बचाना चाहते हैं, लेकिन पूंजी सत्ता का वर्चस्व उन पर कसता ही जा रहा है। युवा आदिवासी कवि अनुज लुगुन अपनी कविता 'शहर के दोस्त के नाम पत्र' में लिखते हैं-"हमारे जंगल में लोहे के फूल खिले हैं / बॉक्साइट के गुलदस्ते सजे हैं/ अभ्रक और कोयला तो ठोक और खुरदा दोनों भाव में/ मंडियों में रोज सजाए जाते हैं / यहां बड़े-बड़े बांध / भी फूल की तरह खिलते हैं/ उन्हें बेचने के लिए/ सैनिकों के स्कूल खुले हैं"6 कहना न होगा कि पूंजी के अनुकूल व्यवस्थाएं अपनी व्यवस्थाओं को सजदे में खड़ी कर शोषण पर सियासी मुहर लगाती है। तब भारतीय लोकतंत्र की 'अंत्योदय उद्धार' की बात मात्र ढकोसला बन जाती है। आदिवासी मात्र दर्शक और विस्थापित, पीड़ित रूप में ही बचता है और उसी के साथ बेहद प्रकृति शोषण के उत्तर औद्योगिक पुराण रचे जाते हैं।

घने जंगल, नदी, पर्वत, पहाड़ के साथ-साथ उत्तर औद्योगिक आक्रमण से भारत की उपजाऊ भूमि भी संकटग्रस्त बनी है। कई प्रकार के प्रदर्शनों ने ऊपर ऊपर के साथ-साथ जीवन को भी हाइब्रिड बना दिया है। भौतिकता की व्यापकता से प्राकृतिक तत्व ध्वस्त हो रहा है, इसी की ओर सरोज केरकेड़ा की 'रास्ते बंद है' कविता संकेत देती है- "खेतों पर सड़कें / उग आई है / अगल-बगल / गिट्टी- मिट्टी बालू / पाइप-पीपे कीलें / भर गई है खेतों की मेड़ों पर"7

खेतों को निरस्त कर खड़े होते कंक्रीट के जंगल में सिर्फ एक ही भौतिकतावादी भूमि का निर्माण कर रहे हैं; बल्कि उसके मूल में प्रकृति का विनाश है। इसीलिए अनुज लुगुन भी दादू को केंद्र में रख एक प्रश्न उपस्थित करते हैं कि आखिर दादू जाए तो कहां जाए ? कंक्रीट के जंगल में या कटते जंगल में वही निर्माण के बाद विनाश का षड्यंत्र रचते लोग योजनाओं की कार्यवाही में जुट जाएंगे अर्थात् कई किशतों में विनाश का एक फलसपा ही उभरेगा। एक तरफ किसानों की चिता पर बसते यह शहर अनाज की तंगी में इजाफा ही करते हैं।

सुरसा के मुंह की तरह फैलता भौतिक विकास प्रकृति के विनाश के एवज है। मनुष्य को जिंदा रहने के लिए प्रकृति का जिंदा रहना अनिवार्य है, जिस पर पूंजी तर्कों का बड़ा वर्ग भौतिक विकास के पक्ष में खड़ा होता है, तर्क देता है। संताली भाषा कवि से सिर्फ दो अपनी कविता फिर होगा उलगुलान में निर्माण और विनाश के विलोम का असंगत चेहरा या कहे विडंबना को हमारे सम्मुख रखते हैं- "मेरे शहर में / विगत कुछ वर्षों में कमाल हो गया है/ एयरपोर्ट, बंदी ग्रह से लेकर / होटल, जूतों की दुकान तक से / शहीद बिरसा मुंडा का नाम जुड़ना/ मेरे लिए एक बड़ा सवाल हो गया है"8 सबसे बड़ा सवाल इसलिए क्योंकि बिरसा मुंडा जल, जंगल, जमीन और आदिवासी बचाव के लिए 'उलगुलान' करते रहे और जो सुविधा के नाम पर व्यवस्थाएं बनी है, और जिन्हे बिरसा का नाम दिया गया है, उन्हें बनाया गया जल, जंगल, जमीन से आदिमों को बेदखल करके। इसीलिए निर्माण और विनाश का यह असंगत खेल पूंजी चरित्र है, जिसे यहां उद्धाटित किया है। पूंजी का विसंगत चरित्र और क्या हो सकता है।

विनाश और सृजन के इन पूंजीवादी तर्कों की कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है अथवा निर्माण हेतु भूमि आदि पर आदिवासी कवि भी अपनी ओर से सशक्त तर्क प्रस्तुत कर अपनी क्षमताओं का परिचय देते हैं-" हे समय के पहरेदारो! / तुमने अवश्य सुना होगा/ एक वृक्ष जगह /लगाओ दूसरा वृक्ष/ क्या कभी सुना है/ एक पर्वत के बदले/ उगाओ दूसरा पर्वत"9

ग्रेस कुजूर का यह तर्क की क्या हम पहाड़ के बदले पहाड़ उगा सकते हैं? उत्तर है-नहीं। तो फिर जिसका हम निर्माण कर नहीं सकते, उसका विनाश करने का अधिकार हमें किसने दिया। प्रकृति के प्रति इतना गहरा तादात्म्य ही आदिमों में समभाव और सहजानुभूति जैसे उच्च दर्शन को जगाता है, जो मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति है। यहां भौतिकतावाद, विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र की समस्याओं पर भी अप्रत्यक्ष रूप से उंगली निर्देश किया है। अर्थात् सर्जन के आधुनिक स्वांग पर भी समकालीन आदिवासी कविता पर्याप्त समीक्षात्मक कटाक्ष का प्रतिरोध जतलाती है।

निर्मला पुतुलबाहरी सोच पर गंभीरता से अपनी कविताओं में टिप्पणी देती है। बहुनिगम, राजनेता, पूंजी आदि ने आदिवासियों को पलायन के लिए अथवा उनके जैसा होने के लिए मजबूर किया है। 'आदिवासी बचाओ' का नारा लगाते तथाकथित गैरआदिवासी लोग जिस प्रकार एक षड्यंत्र के तहत उन्हें फंसाते हैं, उसे वह यों बयान करती है- "आखिर वे लोग/ जो हमारे भीतर जल जंगल बचाने का/ जज्बा देखते हैं/ झारखंडी अस्मिता और देशज/ संस्कृति तलाशते हैं/ उन्हें की संगति ने हमारी/ भाषा बिगाड़ दी /और प्यास बुझाने के लिए/ पेप्सी और स्प्राइट का/ चस्का लगा दिया"10 तथाकथित एनजीओ का नकाब हटाते हुए निर्मला आदिवासियों के खिलाफ उन में ही रहकर चलाए जाते षड्यंत्र पर यहाँ टिप्पणी करती है। वह सारे सभ्य विचार अंत में शोषण तक आकर ही खत्म होते हैं। प्रकृति से दूरकर पेप्सी, स्प्राइट से प्यास

बुझाते आदिवासियों की पहचान छीनी जा रही है। एक बार ऐसा करने में वे सफल हो जाए तो फिर जंगल, जल, जमीन का मनचाहा दोहन चक्र आसान हो जाता है।

‘चार मुक्तक’ कविता में चौथे मुक्तक में कुडुख भाषा उरांव कवि ओली मिंज प्रकृति साधनों के विनाश से आखिर मनुष्य कहा जा रहा है को सटीक रूप में बयान करते हैं- "पेड़-पौधों को रौंदकर/ जंगली जानवरों की खाल पर/ पक्षियों के पंखों को टांककर/ निस्संदेह आदमी/ संपूर्णमानव समुदाय के लिए/ एक खूबसूरतकफन बना रहा है"।¹¹ यहां ओली मिंज स्पष्ट एवं बेबाक रूप में अपने और अन्य सभी मनुष्य जाति के विनाश की आहट को रेखांकित करते हैं। वर्तमान मनुष्य भौतिक लालसाओं तथा पेड़, पशु, पक्षी, जानवरों को मारकर कृत्रिम सौंदर्य के उत्पादनों का निर्माण आवासों में शोभा बढ़ाने को कर नयी ‘भौतिकतावादी सौंदर्य दृष्टि’ का परिचय तो दे रहा है; लेकिन इन सब में वह विनाश की लीला का किरदार बना है। प्राकृतिक तत्वों का विनाश का दूसरा अर्थ है मनुष्य स्वयं के लिए कफन बना रहा है। यह तथ्य वर्तमान ‘तापवृद्धि’ और ‘अशुद्ध जलवायु’ तथा ‘समुद्र जलस्तर’ से पृथ्वी की डूबने की आशंका आदि चिंतनीय तथ्यों में आकर वैज्ञानिकता की कसौटी पर भी सत्य साबित हो रही है। इसीलिए आदिवासी चिंता वैश्विक चिंता है। सहजीवनानुभव सह अस्तित्व का उनका दर्शन वैश्विक प्रासंगिकता से संपूर्ण है। जिसे स्वीकारने पर विश्व वैज्ञानिकों में एकमत हुआ अर्थात् बहुत कुछ छूटने के बाद अब कितना क्या बचाया जा सकता है, यह एक बड़ा सवाल है।

संताली भाषा कवि शिशिर टुडू अपनी कविता ‘जान देंगे, जमीन नहीं’ में बदलते परिवेश का दर्दनाक वर्णन करते हुए आखिर क्यों आदिवासी अपनी जमीन कल कारखानों के लिए नहीं देना चाहता का जवाब देते हैं- "कौन हूं मैं कहां है गांव मेरा/ सब कुछ तो हो गया स्वाहा जलकर/ इस कारखाने की धमन भट्टी में"।¹² कारखाने की धमन भट्टी में आदिवासी और उनके द्वारा अब तक संरक्षित प्राकृतिक खनिज संपदा तथा उसके दोहन के लिए जंगल कटाई से जीव जंतु, जल, आदि खत्म होते हैं। वही जल वायु प्रदूषण की आगत समस्या अलग ही है। इन सबके बाद आदिवासी अपन गांव और अपना नाम भी खो देते हैं। जिसे अविरत विस्थापन के सिलसिले, मजदूरी तथा वेतन शोषण, आदिवासी स्त्री देह शोषण, संस्कृति विनाश और अंततः पहचान और अस्तित्व का संकट जैसी आदिवासी समस्याएं उभरकर मूलनिवासियों को ही बेदखली से पस्तहाल कर देती है। इसीलिए शिशिर अपनी जमीन कल कारखानों के लिए देना नहीं चाहता, क्योंकि वह उखड़ कर अपनी पहचान गवाना नहीं चाहता।

ऐसा ना हो इसलिए उनका ‘उलगुलान’ पूंजी के खिलाफ कारगर भूमिकाओं का निर्वाह कर रहा है, लेकिन तथाकथित व्यवस्थाओं में बना विकार ग्रस्त गठजोड़ उन्हें परास्त कर वर्चस्व स्थापित कर रहा है। दुनिया के तमाम तंत्र पूंजी के ‘ग्लोबल देवताओं’ के सामने नतमस्तक है। समस्त सुविधाओं को प्रदान कर वे शोषण को एक मजबूती प्रदान कर रहे हैं। भारत में पूरे समर्थन में होता सरकारी हस्तक्षेप चिंता का कारण है। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन मार्ग सरकारी रियायतों, छूटों में दर्ज है। जंसिता केरकेट्टा लिखती है- "पहाड़ के पहाड़ दे दिए जाते हैं/ यहां लीज पर/ लीज मिले पहाड़ों के सीने पर/ होता है हर रोज विस्फोट / और एक पहाड़ बन जाता है/ खंडहर"।¹³ हालांकि पहाड़ खंडहर नहीं बनते खंडहर तो हमारी बुद्धि, सोच, विचार और मानसिकता है। जिन्हें निष्कर्ष के रूप में हम योजनाओं का जामा पहनाकर प्रकृति को नष्ट कर रहे हैं।

उदासीनता का यह दौर ऐसे ही चलता रहा तो भौतिक प्रगति चरम विनाश का कारण बन जाएगी। तथाकथित विकास के असली चेहरे को समझ प्रकृति प्रदत्त तत्वों की सुरक्षा में ही मानव हित है, उसे समझना और समझाना होगा। विकास, प्रगति का अर्थ पूंजी साधना है, उसे व्याख्यायित कर के शाश्वत सृजन हेतु प्रतिरोध का एक स्वर आदिमों के साथ हमें भी भरना होगा। उसके लिए प्रकृति से एकरूपता स्थापित करने के प्रयास सभी को करने होंगे-

"मैं उस फसल का सम्मान लौटना चाहता हूं/ जिसकी जड़ों में हमारी जड़े हैं/ उसकी टहनियों में लौटते पंछियों का घोंसला लौटना चाहता हूं/ जिनके तिनकों में हमारे घर/ उस धरती के लिए बलिदान चाहता हूं/ जिसने अपनी देह पर पेड़ों को उगाने पर कभी आपत्ति नहीं की/ नदियों को कभी दुखी नहीं किया/ और जिसने हम ने सिखाया कि/ गीत चाहे पंछियों के हो या जंगल के/ किसी के दुश्मन नहीं होते"।¹⁴ पेड़, जड़े, तने, जंगल, नदी या प्राकृतिक तत्व सभी के प्रति समभाव सद्भाव और अपनत्व जताते हैं। मनुष्य अगर उनसे सीख ले तो विनाश शत्रु भाव स्वाहा हो जाएगा। समस्त प्रकृति एक-दूसरे पर आश्रित है। मनुष्य को विजेता-भाव छोड़कर सह अस्तित्व, सहभागिता को अपनाकर प्रकृति संरक्षण में समभाव अपनाना होगा। नदी, नाले, पक्षी, जल, जंगल, पहाड़ बचाने होंगे; क्योंकि इन सब का अस्तित्व माने मनुष्य जीवित है। आदिम जिन भावों से प्रकृति से तादात्म्य रूप है। वैसे सभी को होना होगा। इस दृष्टि से पर्यावरण चिंतन के पथदर्शन और पथगामी आदिमों का अनुकरण अगर स्वयं को पर्यावरणवादी मानते करेंगे, तो एक सशक्त पर्यावरण केंद्री प्रतिरोधी आंदोलन खड़ा हो सकता है। आदिवासियों का दर्शन पर्यावरण आंदोलन का दर्शन होना चाहिए। 'एकल' के स्थान पर 'सह' की स्थापना से 'मानव जाति विनाश संकट' से बचा जा सकता है।

संदर्भसंकेत

1. गुप्ता रमणिका, संपादक कलम को तीर होने दो (झारखंड के हिंदी आदिवासी कवि), प्रथम संस्करण 2015, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ क्रमांक 37
2. वहीं, पृष्ठ क्रमांक, 105
3. वहीं, पृष्ठ क्रमांक, 176
4. वहीं, पृष्ठ क्रमांक 218
5. वहीं, पृष्ठ क्रमांक 121
6. वहीं, पृष्ठ क्रमांक 77
7. वहीं, पृष्ठ क्रमांक 254
8. वहीं, पृष्ठ क्रमांक 234
9. वहीं, पृष्ठ क्रमांक 106
10. वहीं, पृष्ठ क्रमांक 216
11. वहीं, पृष्ठ क्रमांक 136
12. वहीं, पृष्ठ क्रमांक 233
13. वहीं, पृष्ठ क्रमांक 196
14. वहीं, पृष्ठ क्रमांक 62-63



आदिवासी विमर्श के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी कहानी

डॉ. प्रिया ए.

असिस्टेंट प्रोफेसर

हिंदी विभाग, के.जी. कॉलेज

पाम्पाड़ी, कोट्टयम, केरल-686502

इक्कीसवीं सदी तक आते-आते हमारा देश प्रगति के पथ पर निरन्तर अग्रसर हो रहा है। विकास की सीढ़ियों की ओर प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। दुनिया की तेज रफ्तार में हमारे देश का एक बड़ा समाज मुख्यधारा से अलग होकर जीवन बिता रहा है। विस्थापन का शिकार होकर कराह रहा है। ऐसे विडंबनात्मक माहौल में आदिवासी की चिंता जल, जंगल, ज़मीन, भाषा एवं संस्कृति की है; जो उनकी अस्मिता की आधारशिलाएँ हैं। देश के मूल निवासी माने जानेवाले तमाम आदिम समुदायों का सामूहिक नाम है 'आदिवासी'। आदिवासी विमर्श में आदिवासी समाज के रहन-सहन, उनकी संस्कृति, परम्पराएँ, साहित्य, अस्मिता से जुड़ी समस्याएँ एवं उनके अधिकारों के बारे में विस्तृत चर्चा की जाती है। समकालीन हिंदी कहानियों में आदिवासी जीवन, बदलते परिवेश एवं नवीन संघर्षों और चुनौतियों की अभिव्यक्ति हो रही है।

समकालीन समय में आदिवासी समाज के सामने सबसे बड़ी चुनौती है - विस्थापन की त्रासदी। विकास की योजनाओं के तहत आदिवासी वर्ग की स्वतंत्रता, उनकी बुनियादी ज़रूरतें सब कुछ कुचली जा रही है। विस्थापन के शिकार होकर उन्हें अपनी ज़मीन से, जंगल से बेदखल किया जाता है। अपनी ज़मीन से निर्वासित होकर उन्हें सुदूर महानगरों में जाकर रहना पड़ता है। उनके जीवन में अचानक आनेवाली इस विवशता को, बदलाव को वाल्टर भेंगरा तरुण की कहानी 'संगी' में ओम प्रस्तुत किया है - "आज बड़े-बड़े कारखानों, खदानों और बड़ी-बड़ी योजनाओं के नाम पर यहाँ के आदिवासी उखड़ने और बिखरने लगे हैं। हर रोज़ सैकड़ों आदिवासी यू.पी., दिल्ली, पंजाब, नागालैंड और कहाँ-कहाँ नहीं रोज़ी-रोटी की तलाश में जा रहे हैं।" आदिवासी जीवन के अनुभवी यथार्थ का चित्रण कहानी के पात्र फागू मुंडा के शब्दों में देख सकते हैं।

भूमंडलीकरण, निजीकरण एवं उदारीकरण के दौर में आदिवासियों की तबाही, लूट, शोषण आदि का प्रामाणिक चित्रण हम कहानियों में देख सकते हैं। बाजारीकरण की नीतियों से साम्राज्यवादी ताकतों पूर्ण रूप से जंगल एवं जंगल के संसाधनों पर कब्ज़ा जमा चुकी हैं। प्राकृतिक संसाधनों पर निर्दय रूप से शोषण होने लगा है; फलस्वरूप पहाड़ी इलाकों में कोलियरियां बड़ी मात्रा में पनप रही हैं। इस प्रकार बाहरी ताकतों के हस्तक्षेप से आदिवासी वर्ग का खेत-खलिहान बर्बाद होने लगा है। इस हकीकत को पीटर पॉल एक्का की कहानी 'राजकुमारों के देश में' स्पष्ट करती है - "वहाँ एक नयी कोलियरी खुल गयी थी। जाने गंगा पार के किन देशों से लोग आकर बसने लगे थे। वर्षों की मेहनत से बने-बनाए खेत दब गए थे। मुआजा के नाम मिली रकम गाँव के सरपंच की झोली में चली गयी थी।"²

आदिवासियों की अपनी धरती, कबीलाई संस्कृति आज भी जीवित है। जल, जंगल, ज़मीन तथा खेत-खलिहानों में उनका अधिकार है। पर निजीकरण की प्रक्रिया ने उन्हें अपनी संस्कृति, जड़ों और जीवन शैली से अलग कर दिया। ऐसे वे अपने घर में परदेशी होकर जीवन बिताते हैं। दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में वे स्वत्वहीन होकर यायावर भूमिहीन श्रमिक बन गए हैं।

साम्राज्यवादी ताकतों ने आदिवासियों की मानसीकता पर भी अधिकार जमाया है। उनकी ईमानदारी और मासूमियत का भी सदियों से खूब शोषण हो रहा है। वर्तमान समय में यह शोषण कार्य ज़्यादा तेज़ बन गया है। उनके श्रम और मेहनत का फायदा पूँजीवादी वर्ग को ही मिलता है। ऐसी विकल वास्तविकता को चित्रित करनेवाली कहानी है मंगल सिंह मुंडा की 'धोखा' - इस कहानी में ठेकेदारों के पैसे हड़पने की चाल को सरदार यों व्यक्त करते हैं - "ये ही झारखंड के गरीब आदिवासी। ईश्वर ने इन्हें बड़ी सूझ-बूझ से बनाया है। जो कहो, 'हां' ही में उत्तर देंगे / 'न' कहना तो ये जानते ही नहीं। ईमानदारी की तो ये सजीव मूर्ति है। यही सब कारण है इनके डिमांड का / जिस ठेकेदार के हाथ लगे कि वह चाँदी काटने लगता है, क्योंकि बीस का हिसाब लगाओ और पन्द्रह का भुगतान कर दो / पाँच अपनी जेब में भर लो।"³

अपनी खेती-बाड़ी संस्कृति से अलग होकर, मजदूर बनने के लिए विवश आदिवासियों के श्रम से इन्हीं ठेकेदारों द्वारा अनुचित लाभ उठाया जा रहा है। आदिवासियों के क्षेम के लिए सरकार द्वारा बनायीं जानेवाली योजनाओं का छोटा सा हिस्सा भी उन्हें प्राप्त नहीं होता। सरकार की इस कूटनीति के विरुद्ध पीटर पॉल एक्का की कहानी के पात्र मंगलू काका कूटनीतिज्ञों पर सवाल उठाते हैं कि - "कोलियरी किनके लिए खुली थी, खेत-खलिहान किनके दबे थे, जंगली कंद-मूल, फल-फूल किनके बंद हुए थे, सखुए के उन लहलहाते वनों का क्या हुआ था, उनकी जगह सागवान के पेड़ क्यों लगाए गए थे। गाँव में राजनीति के बेहद धिनौने, फूहड़ भदे चक्र क्यों चलने लगे थे। पढ़े-लिखे बाबू बेबस भोलेभाले लोगों को बेरहमी से लूटते थे। आए दिन चोरी-डकैती, बलवा, खून होने लगा था। बहू-बेटियां खुले आम किनसे लूटने लगी थी? खुला-खुला, खूबसूरत बेफिक्र, अल्हड-सा पहाड़ी अंचल क्यों बेहया-सा बेपर्दा किया जाने लगा था?"⁴ इस कथन में आदिवासी जीवन की टूटन के स्वर और प्रकृति और स्त्री के प्रति होनेवाले शोषण के विरुद्ध सवाल किया गया है। तत्कालीन समाज में व्याप्त धिनौनी राजनीति, आदिवासी संस्कृति

पर मँडरानेवाले संकट, आदिवासी स्त्रियों के प्रति कुत्सित दृष्टि आदि सच्चाइयों के प्रति समाज को आगाह किया है। लोकतांत्रिक देश में मानवाधिकारों का हनन के सबूतों को समकालीन कहानी प्रस्तुत करती है।

भारतीय संविधान में आदिवासियों को प्रत्येक स्थान दिया गया है, पर आदिवासी समाज इससे भी वंचित रहा। जनतंत्र का नागरिक होने पर भी वह अपने अधिकारों से दूर कर दिए गए। सत्ताधारी समाज ने आदिवासी वर्ग को मुख्यधारा से अलग करके हाशिए पर रख दिया। सत्ताधारी वर्ग से मिलकर राजनीतिक दलों के नेता आदिवासी वर्ग को लूटते हैं। रक्षा करने का दायित्व भूलकर नेता वर्ग उनको षड्यंत्र की जाल में धकेल देते हैं। इस पीड़ाजनक सच्चाई को रामदयाल मुंडा की कहानी 'खरगोशों का कष्ट' आवाज़ देती है - "हां, आप लोग हमारे राज्य में कुछ कठिनाई में तो है, किन्तु यह भी है कि आप लोग राज्य चलाने के काम में कभी पड़े नहीं हैं, इसलिए आप को अलग से जंगल देने पर भी मुझे लगता है कि आप राज्य नहीं चला सकेंगे। इसलिए अलग जंगल पाने के पहले आप को राज्य कैसे चलाना चाहिए, इन सब बातों को सीखने की ज़रूरत है।"⁵

सदियों से शोषित, उत्पीड़ित, दमित वर्ग के विद्रोह को समकालीन कहानी ने अपनाया है। सब के विरुद्ध प्रतिरोधी स्वर को बुलंद करने का प्रयास आदिवासी विमर्श के द्वारा किया गया है। हाशिएकृत जनता को अपने अधिकारों के प्रति सजग एवं प्रतिक्रियान्वित होकर आगे बढ़ने की प्रेरणा समकालीन कहानियों में निहित है। आदिवासी विमर्श सशक्त विधा के रूप में उभरकर समकालीन हिंदी साहित्य को समृद्ध कर रही है।

संदर्भ

1. सं - वंदना टेटे - लोकप्रिय आदिवासी कहानियाँ - पृ. 26
2. सं - केदार प्रसाद मीणा - आदिवासी कथा जगत - पृ. 13
3. सं - वंदना टेटे - लोकप्रिय आदिवासी कहानियाँ - पृ. 35
4. सं - केदार प्रसाद मीणा - आदिवासी कथा जगत - पृ. 14
5. वही - पृ. 18



इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित विविध विमर्श (आदिवासी विमर्श)

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

पदनाम: सहायक प्रबंधक

MA (Hindi), Post Graduation Diploma in Translation

Ex-Corporal (Indian Air Force)

संस्था नाम: इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय मदुरै

किसी भाषा के वाचिक और लिखित को साहित्य (शास्त्रसमूह) कहते हैं। कहते हैं साहित्य समाज का आइना होता है। यह हमें समाज का इतिहास यथार्थ रूप में बताता है। जब हम साहित्य की चर्चा करते हैं तो यह पाते हैं कि दुनिया में सबसे पुराना वाचिक साहित्य हमें आदिवासी भाषाओं में मिलता है। इस दृष्टि से आदिवासी साहित्य सभी साहित्य का मूल स्रोत भी माना जाता है। आदिवासी साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जिसमें आदिवासियों का जीवन और समाज, उनके दर्शन के अनुरूप अभिव्यक्त हुआ हो। इस साहित्य को विभिन्न देशों में विभिन्न नामों से जाना जाता है: यूरोप और अमेरिका में इसे नेटिव अमेरिकन लिटरेचर, कलर्ड लिटरेचर, स्लेव लिटरेचर और अफ्रीकन-अमेरिकन लिटरेचर, अफ्रीकन देशों में ब्लैक लिटरेचर और ऑस्ट्रेलिया में एबोरिजिनल लिटरेचर, तो इंग्लैंड में इंडीजिनस लिटरेचर, फर्स्टपीपुल लिटरेचर और ट्राइबल लिटरेचर कहते हैं। भारत में इसे हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में सामान्यतः 'आदिवासी साहित्य' ही कहा जाता है।

भारत में आदिवासियों को दो वर्गों में अधिसूचित किया गया है- अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित आदिम जनजाति। चूँकि हमारा लेख इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित "आदिवासी विमर्श" विषय पर केन्द्रित है, इसलिए हम इस शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। लेकिन भारतीय संविधान के अनुसार, इस शब्द का इस्तेमाल किसी भी सरकारी दस्तावेज में नहीं होना चाहिए। लेकिन कुछ प्रादेशिक सरकारों और संगठन जानको गुमराह कर रहे हैं। जब कोई किसी को आदिवासी बूझकर इस शब्द को बढ़ावा दे रहे हैं और एक बड़ी जनसंख्या बोलता है, तो उसके दिमाग में एक बर्बर, असभ्य, नगधङ्ग, जंगली, अनपढ़गवार, कालेकलूटे व्यक्ति की छवि उभरती है। आदिवासी शब्द-से नहीं उसके साथ उभरनेवाली इस विकृत छवि से पीड़ा होती है। दुख होता है और असह्य वेदना का बोध होता है; और यह महसूस होता है कि क्या जनजातियों के लोग किसी अन्य ग्रह के प्राणी हैं ... और क्या इन्हें सामान्य इंसान की तरह से सम्मान और इज्जत नहीं मिलनी चाहिए। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर पाने के कोशिश में मैं आगे आदिवासी शब्द के जगह पर अनुसूचित जनजाति शब्द का प्रयोग करूँगा ताकि हमारे संविधान में दिए गए प्रावधान के अनुसार उन्हें थोड़ी इज्जत एवं सम्मान दिया जा सके। भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में जाट, गोंड, मुंडा, खड़िया, हो, बोडो, भील, खासी, सहारिया, संथाल, मीणा, उरांव, परधान, बिरहोर, पारधी, आंध्र, टोकरे कोली, महादेव कोली, मल्हार कोली, टाकणकार आदि शामिल हैं। भारत में सभी आदिवासी समुदायों की अपनी विशिष्ट भाषाएं हैं।

हम जानते हैं कि भारत की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा जनजातियों का है। जनजातीय कार्य मंत्रालय के मुताबिक (भारत सरकार), जनजातियों की संख्या, की जनगणना के अनुसार 1961, 3 करोड़ थी; जो अब 2011 के जनगणना के अनुसार बढ़कर 10.5 करोड़ हो गई है। अनुसूचित जनजाति साहित्य (आदिवासी साहित्य) पर कुछ कहने से पहले इससे सम्बद्ध पहलुओं पर नजर डालते हैं। जैसा कि हमें विदित है कि यह साहित्य दुनिया का सबसे प्राचीन साहित्य तथा जीवन्तता से भरा हुआ साहित्य में सुमार है। इस साहित्य को विद्वत मंडली द्वारा जान-बुझकर अनदेखा किया गया है। यहाँ ये बात उल्लिखित करने लायक है कि हमारे लेखन कला ने भी जोकि दुनिया में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम माना जाता है इस साहित्य के प्रति उदासीनता दिखाया है। यदि कोई लेखक इनके बारे में लिखने की कोशिश भी किया तो पूर्ण रूप से लिख नहीं पाये। दुनिया की सर्वप्रथम प्राप्त लिपि "हड़प्पा मोहनजोदड़ो" की लिपि लिखने वाले भी इन्हीं समुदाय को माना जाता है। हड़प्पा मोहनजोदड़ो की खुदाई से यह भी प्राप्त होता है कि नापतौल तथा डिजाइन आदि की खोज भी इनके द्वारा ही किया गया था। फिर भी न तो हमारे समाजशास्त्री न तो हमारे पुरातत्व विज्ञानियों का ध्यान इस तरफ आकर्षित हुआ। इसकी लिपि और भाषा को लम्बे अरसे तक पहचान ही नहीं मिल सकी इसलिए उनका संरक्षण और विकास भी बाधित हुआ। प्रतिष्ठित मराठी आदिवासी साहित्यकार **वाहरू सोनवणे** का यह कहना ठीक है कि लिखित ही केवल साहित्य होता है यह कहना ही आदिवासियों की दृष्टि से असंगत है। साहित्य और कला, साहित्य और जीवन के बीच जो दीवारें समाज में खड़ी हैं, उन दीवारों का आदिवासी समाज में कुछ भी स्थान नहीं है। इन व्याख्याओं को बदलना जरूरी है क्योंकि आज आदिवासी समाज में कई प्रथाएं लोकगीत और नाटक तथा अनेक अन्य कलाएं विद्यमान हैं जिसे शब्दबद्ध नहीं किया गया है। आज भी टेलीविजन, सोशल मिडिया तथा अन्य पत्रकारों, राजनीतिज्ञों या विशेषज्ञों द्वारा आदिवासियों का जो चेहरा हमारे सामने उकेरा जाता है वह बहुत ही खतरनाक एवं शर्मनाक है।

आज जब संपूर्ण विश्व भूमंडलीकरण एवं अदृष्टीकरण के चरमोत्कर्ष पर है संपूर्ण विश्व एक गांव में तब्दील हो रहा है ऐसे में समकालीन आदिवासी साहित्य अपने आप में महत्वपूर्ण हो जाता है। आज आदिवासी लेखन अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक विशिष्टताओं का उद्घाटन कर उस समूची व्यवस्था को प्रश्नांकित कर रहा है जिस पर सभ्य कही जाने वाली सभ्यता गुमान करती रही है। यह भी कि यह विमर्श समूची सांस्कृतिक परम्परा के पुनर्पाठ की आवश्यकता भी जता रहा है। आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। यह ऐसा विमर्श है जिससे इस समुदाय की परंपरा रूढ़ियां, संस्कृति, अन्याय, अत्याचार, अपमान, शोषण सभी कुछ बयान हो रहा है। दो दशक पूर्व भारत की केंद्रीय सरकार द्वारा शुरू की गई आर्थिक उदारीकरण की नीति ने बाजारवाद का रास्ता खोला। मुक्त व्यापार और मुक्त बाजार के नाम पर मुनाफे और लूट का खेल आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन से भी आगे जाकर उनके जीवन को दांव पर लगाकर खेला जा रहा है। आंकड़े गवाह हैं कि पिछले एक दशक में अकेले झारखंड राज्य से 10 लाख से अधिक आदिवासी विस्थापित हो चुके हैं। इनमें से अधिकांश लोग दिल्ली जैसे महानगरों में घरेलू नौकर या दिहाड़ी पर काम करते हैं। विडंबना यह है कि सरकार के अनुसार राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में मूलतः कोई आदिवासी नहीं है, इसलिए यहां की शिक्षण संस्थाओं और नौकरियों में आदिवासियों के लिए आरक्षण या कोई विशेष प्रावधान नहीं है। विकास के नाम पर अपने पैतृक क्षेत्रों से बेदखल किए गए ये लोग जाएं तो कहां जाएं ? यह दुखद है कि जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1993 को 'देशज लोगों का अंतर्राष्ट्रीय वर्ष' के रूप में मनाने का फैसला किया तो भारत सरकार की प्रतिक्रिया थी- 'संयुक्त राष्ट्र द्वारा परिभाषित इंडिजिनस लोग भारतीय आदिवासी या अनुसूचितजनजातियां नहीं हैं, बल्कि भारत के सभी लोग देशज लोग हैं और न यहां के आदिवासी या अनुसूचितजनजाति किसी प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक पक्षपात के शिकार हो रहे हैं।

आदिवासी या अनुसूचितजनजाति समाज मेरा नहीं बल्कि हमारा संस्कृति पर आधारित होता है। उनका कोई भी निर्णय पुरे काबिले के लिए मान्य होता है या वो कहें कि प्रत्येक निर्णय संपूर्ण काबिले या समूह को ध्यान में रखकर लिया जाता है ऐसे समुदायों का मुख्य पेशा या रोजगार कृषि एवं जंगल से जुड़ा होता है। जैसा कि हमें विदित है कि भारतीय सरकार द्वारा अपनाए गए विकास के गलत मॉडल ने आदिवासियों से उनके जल, जंगल और जमीन छीनकर उन्हें बेदखल कर दिया। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई। इस प्रक्रिया में एक ओर उनकी सांस्कृतिक पहचान उनसे छूट रही है, दूसरी ओर उनके अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न भी खड़ा हो गया है। ऐसे में वे बेरोजगार तो हुए साथ-ही-साथ वे अपनी सांस्कृतिक पहचान भी खो दिए। इस प्रकार वे लोग शहरीकरण की तरफ रुख किये जहां उन्हें न कोई आरक्षण का प्रावधान दिया गया न ही उचित सुविधा मुहैया कराई गई। अब सिर्फ जरूरत है तो उन्हें प्यार और संवेदना के साथ उन्हें भी लेकर चलने की ताकि वे लोग भी मुख्य धारा के साथ जुड़ सकें। जब हम उन्हें मुख्य धारा से जोड़ेंगे तो वे स्वयं ही अपना समुचित विकास की ओर ध्यान एकत्रित करेंगे और कुछ समय पश्चात् हमारे साथ हमारे देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में बराबर के सहयोग दे पाएंगे।

आत्मकथात्मक लेखन केन्द्रीय स्थान नहीं बना सका, क्योंकि स्वयं आदिवासी समाज 'आत्म' से अधिक समूह में विश्वास करता है। इस प्रकार के समुदाय पर लिखित पूर्व साहित्यदर्पण से जो प्रतिबिम्ब सामने आती है वो है सभ्य समाज की बर्बरता तथा अमानवता का उल्लेख। अपितु मानव सभ्यता के इतिहास की जमीनी हकीकत को मटियामेट करने की कहानी भी अभिव्यक्त होती है। सभ्य समाज द्वारा आदिवासियों में हीन भावना विकसित कर उन्हें मुख्य समाज एवं मुख्य धारा से वंचित करना भी एक साजिस है ऐसे हालत में आदिवासी साहित्य हीन भावना से ग्रस्त समाज को मुक्ति दिलाने का प्रयास कर सकता है तथा चेतना जागृत करने एवं आत्मविश्वास जगाने का मुख्य साधन बन रहा है।

आज का समय पूर्ण रूप से सोशल मिडिया, डिजिटल तथा इंटरनेट पर आधारित है। अब अनुसूचित जनजाति समाज भी इससे अछूते नहीं रहें। उनके हाथों में भी स्मार्ट मोबाइल तथा आधुनिक सेवाओं से युक्त मोबाइल आसानी से देखा जा सकता है अब वे भी समसामयिक समाचारों एवं सरकार द्वारा घोषित योजनाओं की विस्तृत जानकारी आसानी से ले सकते हैं। इस तरह के लगभग सभी समुदाय आज उत्कर्ष पर हैं। इनके विकास एवं उत्थान हेतु भारत सरकार ने भी कई योजनाओं का शिलान्यास किया है। जिसके तहत वन बंधु कल्याण योजना, आदिवासी विकास योजना, स्टैंड अप इंडिया, मिड डे मील आदि। वर्ष 2010 के बाद आदिवासी समुदायों में उतरोत्तर विकास देखा जा सकता है। सरकार के योजनों के द्वारा या हम सब की भागीदारी जोकि इनके समूह को उत्थान की ओर ले गया है। ऐसे में कई आदिवासी अपनी पहचान बना सके हैं जैसे कि **जयपाल सिंह मुंडा** भारतीय आदिवासियों और झारखंड आंदोलन के एक सर्वोच्च नेता थे। वे एक जाने माने राजनीतिज्ञ, पत्रकार, लेखक, संपादक, शिक्षाविद् और 1925 में 'ऑक्सफोर्ड ब्लू' का खिताब पाने वाले हॉकी के एकमात्र अंतरराष्ट्रीय खिलाड़ी थे। उनकी कप्तानी में 1928 के ओलंपिक में भारत ने पहला स्वर्ण पदक प्राप्त किया। दूसरा है **एलिस एक्का** हिंदी कथा-साहित्य में भारत की पहली महिला आदिवासी कहानीकार हैं। हिंदी की पहली दलित कहानी लिखने का श्रेय भी एलिस एक्का को है।

भारत सरकार के अलावा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी आदिवासी कल्याण हेतु संयुक्त राष्ट्रसंघ ने 9 अगस्त को 'विश्व आदिवासी दिवस' के रूप में पहचाना है। इस दिन संयुक्त राष्ट्र संघ ने आदिवासियों के भले के लिए एक कार्यदल गठित किया था जिसकी बैठक 9 अगस्त 1982 को हुई थी। उसी के बाद से संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने सदस्य देशों को प्रतिवर्ष 9 अगस्त को 'विश्व आदिवासी दिवस' मनाने की घोषणा की।

भारत की तमाम आदिवासी भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य हिंदी, बांग्ला, तमिल जैसी बड़ी भाषाओं में अनुदित और रूपांतरित होकर एक राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर रहा है। प्रकारांतर से पूरा आदिवासी साहित्य बिरसा, सीदो-कानू और तमाम क्रांतिकारी आदिवासियों और

उनके आंदोलनों से विद्रोही चेतना का तेवर लेकर आगे बढ़ रहा है। चूँकि आदिवासी साहित्य विमर्श अभी निर्माण-प्रक्रिया में है, इसलिए अभी इसके मुद्दे भी आकार ले रहे हैं। साहित्य जगत में आदिवासी मुद्दों को उठाने, उनसे जुड़े सृजनात्मक साहित्य को प्रोत्साहन देने में इन पत्रिकाओं ने अहम योगदान दिया है- 'युद्धरत आम आदमी' (दिल्ली, हजारीबाग. संपादक- रमणिका गुप्ता), 'अरावली उद्धोष' (उदयपुर, संपादक- बीपी वर्मा 'पथिक'), 'झारखंडी भाषा साहित्य, संस्कृति अखड़ा' (रांची, संपादक- वंदना टेते), 'आदिवासी सत्ता' (दुर्ग छत्तीसगढ़. संपादक-केआर शाह) आदि। इनके अलावा 'तरंग भारती' के माध्यम से पुष्पा टेते, 'देशज स्वर' के माध्यम से सुनील मिंज और सांध्य दैनिक 'झारखंड न्यूज लाइन' के माध्यम से शिशिर टुडु आदिवासी विमर्श को बढ़ाने में लगे हैं।

संदर्भ सूची

1. आदिवासी विमर्शकार : गंगा सहाय मीणा
2. इंटरनेट : गूगल
3. समकालीन आदिवासी साहित्य में जन चेतना : डॉ. संतोष रामचंद्र आंडे
4. शोध आलेख: कृष्ण कुमार



‘आंध’ आदिवासी जमाती की लोककथाओं में चित्रित ‘रामकथा’

डॉ. विश्वनाथ देशमुख
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
राजराम महाविद्यालय, कोल्हापुरा

सारांश :

भारत में आदिवासियों की संख्या विश्व के किसी भी देश की तुलना में अधिक है। ई. 2001 की जनगणना के अनुसार देश में आदिवासियों की संख्या 85.57% लक्ष्य बताई गई है। भारत के वनों, पर्वतों, दुर्गम प्रदेशों में आदिवासियों के अस्तित्व को पाया जाता है। मूल निवासी के रूप में अपनी संस्कृति, परंपरा और सामाजिक नीति नियमों का पालन करते हुए जीवन जी रहे हैं। महाराष्ट्र तथा आंध्रप्रदेश में ‘आंध’ आदिवासी समाज का अस्तित्व है। महाराष्ट्र के नांदेड़, हिंगोली, परभणी, यवतमाल, अकोला, बुलढाना आदि जिलों में तथा आंध्रप्रदेश के आदिलाबाद जिले में इनका अस्तित्व है। लोकसाहित्य की मौखिक परंपरा को बरकरार रखते हुए पीढ़ी-दर-पीढ़ी संक्रमित किया जा रहा है। लोकगीत, लोककथा, लोकनाट्य, लोककला, मुहावरे और कहावतें आदि लोकसाहित्य विभिन्न धाराप्रवाहित होती दृष्टिगोचर होती है। मराठवाड़े के हिंगोली, परभणी, नांदेड़, यवतमाल आदि जिलों में ‘आंध’ आदिवासी जनजाति में शाम के समय में ‘दंडारण’ नामक लोकधर्मी नाट्य खेला जाता है। ‘आंध’ आदिवासी की ‘आंध’ बोली को लिपि न होने के कारण नागरी लिपि में प्रस्तुत करना महत्वपूर्ण है। ‘आंध’ स्त्री के मन में मर्यादा पुरुषोत्तम राम की प्रतिमा को संभालकर रखती है। राम को अपने लौकिक जगत में लाकर सोचती है। राम के प्रति अपनी आराधना प्रकट करना ‘आंध’ का मूल उद्देश्य होता है। रामायण की अनेक घटनाएँ कथा के द्वारा प्रकट की जाती हैं। दंडारण का प्रकटीकरण सहज होता है। राम, लक्ष्मण और सीता की वेशभूषा अत्यंत साधारण होती है। इसमें नाट्य नृत्य, गीत, संगीत, हास्य-व्यंग्य आदि का समावेश होता है।

मूल शब्द : आदिवासी, आंध, आंध बोली, लिपि, लोकनाट्य, दंडारण, नाट्य, नृत्य, गीत, संगीत, हास्य-व्यंग्य

भूमिका :

विश्वपटल पर आज आदिवासियों की संख्या हर देश में पाई जाती है। अमेरिका, रशिया, फ्रान्स, जर्मनी, चायना आदि विकसित देश तथा अफ्रिका, इंडोनेशिया, वेस्ट इंडिज, भारत, नेपाल, बंगला देश, श्रीलंका आदि अविकसित देशों में अपनी संस्कृति परंपरा को संभालते हुए जीवनयापन कर रहे हैं। अन्य समाज की तुलना में आदिवासियों की जीवन जीने की पद्धति भिन्न है।

मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो सांस्कृतिक विरासत को बरकरार रखते हुए अगली पीढ़ी को हस्तांतरित करता रहा है। अपने-अपने देश की विशिष्ट संस्कृति रही है। भारत एक ऐसा देश है जहाँ संस्कृति की विभिन्न धारा प्रवाहित होती है। खानपान, आचार-विचार, भाषा, धर्म, रहन-सहन आदि संस्कृति विभिन्न की झाँकियाँ प्रस्तुत होती हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी तथा असम से गुजरात तक के प्रदेशों में सांस्कृतिक गरिमा का दर्शन होता है। हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि धर्मों की सांस्कृतिक विभिन्नता महत्वपूर्ण है।

साथ ही एक ऐसा वर्ग भी है जो इन सभी से दूर अपना जीवनयापन कर रहे हैं वह है आदिवासी जनजाति। वे वनों, जंगलों, पहाड़ों में अपना जीवन बरसों से बिताते आ रहे हैं। प्रकृति ही उनकी देवता है। उसे ही वे आराध्यमानते हैं।

सारा विश्व संस्कृति का खजाना है। विश्व के प्रत्येक देशों में सांस्कृतिक गतिविधियाँ चलती रहती हैं। शिष्ट तथा अशिष्ट दोनों जातियों में संस्कृति की अलग-अलग झाँकियाँ प्रस्तुत होती रही हैं और आगे भी होती रहेगी। आदिवासी जनजाति में लोकनाट्य की परंपरा प्राचीन काल से देखी जाती है। ‘आंध’ जनजाति में ‘दंडारण’ नामक लोकनाट्य को परंपरा से प्रस्तुत किया जा रहा है। इस लोकनाट्य को साधारण परिवेश में प्रस्तुत किया जाता है। अधिकतर पुरुष पात्र ही स्त्री पात्र को निभाते हैं। नाट्य का प्रस्तुतीकरण सहज रूप में होता है। नाट्य की अभिव्यक्ति सहज साधारण जनभाषा में होने के कारण बस्ती के लोग उसे आसानी से समझ लेते हैं।

‘आंध’ आदिवासी :

महाराष्ट्र में आदिवासी जन-जातियों की संख्या 45 के आस-पास है। गोंड, प्रधान, कोलम, भील, कोरकू, कोकणी, पारधी, आंध, ठकार, वारली इनमें प्रमुख हैं। महाराष्ट्र तथा आंध्रप्रदेश में ‘आंध’ आदिवासी समाज का अस्तित्व है। महाराष्ट्र के नांदेड़, हिंगोली, परभणी, यवतमाल, अकोला, बुलढाना आदि जिलों में तथा आंध्रप्रदेश के आदिलाबाद जिले में इनका अस्तित्व है।

‘आंध’ के संदर्भ में आज भी कई धारणाएँ विवादास्पद हैं। महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश के कुछ जिलों में इनका अस्तित्व है। किन्तु वह महाराष्ट्र के है या आंध्रप्रदेश के यह आज भी अनुसंधान का विषय है। समाजशास्त्रीय विद्वान रसेल और हिरालाल के विचारों से “आंध जमात उनके नाम से आंध्रप्रदेश की अनार्य जमात होगी और ‘आंध’ नाम स्थानांतरण से पड़ा होगा।” (S T in Maharashtra) ‘आंध’ शब्द की

व्युत्पत्ति 'आंध्र' शब्द से होकर वे महाराष्ट्र के कई हजारों वर्षों से निवासी के रूप में रहे होंगे। अन्य समाज उन्हें 'आंध' के नामों से पहचानता होगा।

खान-पान, रहन-सहन साधारण है। शिक्षा के अभाव के कारण शिक्षित समाज से वे दूर ही रहते हैं। आर्थिक विवशता हमेशा सताती रहती है, इसका असर शिक्षापर हुआ है। फिर भी परंपरागत व्यवसाय को बरकरार रखे हुए अपना जीवनयापन चल रहा है।

'आंध' जनजाति की अपनी बोली भाषा 'आंध' थी। किंतु आज उस बोली के कुछ शब्द मात्र शेष रह गए हैं। अन्य भाषा-भाषी समाज के संपर्क में आकर वे अपनी मूल भाषा को भूल चुके हैं। आज मराठीभाषा का प्रयोग करते समय कई प्रकार के 'आंध' बोली के मूल शब्द वार्तालाप में सहज ही आ जाते हैं। उनके गीतों को नागरी लिपि में लाकर लिपि बद्ध करना भी एक उद्देश्य रहा है। मृतप्राय बोलियों को बचाने के लिए इस प्रकार के प्रयास होना वर्तमान समय की आवश्यकता बनती जा रही है।

दंडारणः

महाराष्ट्र के नांदेड़, हिंगोली, परभणी, यवतमाल, अकोला, बुलढाना आदि जिलों में तथा आंध्रप्रदेश (अब का तेलंगाना) के आदिलाबाद जिले में इनका अस्तित्व है। इस जनजाति में शाम के समय में 'दंडारण' नामक लोकधर्मी नाट्य खेला जाता है। इस नाटक में अनेक प्रकार की पौराणिक कथाओं का प्रचलन देखा जाता है। इसमें नृत्य संगीत, अभिनय तथा हास्य-व्यंग्य होने के कारण नाट्याविष्कार दृष्टिगोचर होता है। कथा के साथ-साथ गीतों का प्रस्तुतिकरण कर हास्य-व्यंग्य भी साथ में जोड़ दिया जाता है।

नागपंचमी, दशहरा, दीपावली, रंगपंचमी आदि त्यौहारों के समय 'दंडारण' को प्रस्तुत किया जाता है। "आंधाचे दिंडार किंवा दंडार मात्र वैशिष्ट्यपूर्ण आहे दिंडारात पौराणिक कथाभागावर आधारित कथागीत, संगीत, नृत्य, अभिनयाच्या साथीने सादर केली जाते." (डॉ.व्यवहारे) "निसर्गातील देवशक्तीच्या उपासना विधीतुन आंधाचे 'दिंडार' उदयास आले असे म्हणण्याइतपत अवशेष दिंडारात पाहावयास सापडतात. या विधीनाट्यात नृत्य, नाट्य आणि संगीत यांचा सुरेख समन्वय साधलेला दिसून येतो" (डॉ.डोईफोडे) 'दंडारण' का प्रारंभ विधि से होता है। देवकुंभ के वृक्ष की डाली जमीन में खड़ी की जाती है। महादेव, मरिमाय, पोचामामाय, मेसकामाय, खोकलामाय आदि देवताओं की प्रतिस्थापना की जाती है। इन देवताओं की पूजा कर नमस्स्वंदना गीतगाकर 'दंडारण' का प्रारंभ किया जाता है। हाथ में छोटी सी लाठी लेकर सूत्रधार दंडारण की कथा को आगे बढ़ता है। "हातात दंड म्हणजे आखूडकाठी किंवा डहाळी घेऊन केलेला नृत्य- नाट्याविष्कार म्हणजे 'दंडार' असे या लोकनाट्याविषयी म्हणता येते." (डॉ.व्यवहारे)

आंध दंडारण में रामकथा:

पुराणग्रंथों का बहुत बड़ा प्रभाव 'आंध' आदिवासी समाज पर दृष्टिगोचर होता है। 'रामायण', 'महाभारत' आदि ग्रंथ उनमें प्रमुख हैं। 'रामायण' के महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में राम का चरित्र उभरकर आता है। राम के बाल्यावस्था के रूप के बजाय मर्यादा पुरोषत्तम 'राम' का रूप 'आंध' स्त्री तथा पुरुष को प्रिय है। राम को आदर्श मानकर उसे अपने लौकिक जीवन में लाना चाहते हैं। रामायण में अनेक प्रसंग सामने आती है, परंतु राम के बनवास का प्रसंग ही 'आंध' समाज में विशेष प्रिय है। ईश्वर राम के बजाय एक साधारण व्यक्ति के रूप में राम की प्रतिमा समाज में रूढ़ हुई है।

"राम लक्ष्मण चालले सडकेन / रामाला आला घाम / सीता पुसते पदराना" (रामकिसन मेंढे)

वन में चलते समय राम, लक्ष्मण के साथ सीता भी है। राम को पसीना आ रहा है, उसे देखते ही सीता अपने वस्त्र (पल्लु) से राम का पसीना पोंछती है। पसीना आना साधारण मनुष्य की पहचान है। 'आंध' स्त्री अपने पति को राम में तथा अपने आप को सीता के रूप में देखती है। इस लोकनाट्य में 'सीता' का पात्र एक पुरुष भले ही करे लेकिन मूल संवेदना राम के सीता की होती है।

अपने पिता से आज्ञा लेकर पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ चौदह वर्ष के लिए 'वन' के लिए प्रस्थान करते हैं। राजा दशरथ का प्रिय पुत्र राम है। राम का बनवास जाना दशरथ के प्राणों पर बितती है। तभी 'आंध' स्त्री के मन का दुःख उमड़ पड़ता है –

*"राम चालले वनाला / राम चालले वनाला।
सात सीता संगतीला / राम चालले वनाला।
सात लक्ष्मण संगतीला / राम चालले वनाला।
कई कई घेते वचन / दसरत राजा बाजवर
राम चालले वनाला।
जाऊनी वनामंदी / सीता झाडा-झाडी करी
राम थकले बसले / लक्ष्मीणाला ना रहावले
राम चालले वनाला" (माधव काळे)*

जीवन के हर प्रसंग में सीता राम के साथ खड़ी होती है। अपने पति के साथ दुखों को बाँटने का काम करती है। कैकेयी के कारण राम को चौदह वर्ष का वनवास हो जाता है। कैकेयी के प्रति 'आंध' समाज में अनादर का भाव है। वह राजा दशरथ को वचन की याद दिलाती है, और अपना स्वार्थ साध्य करने की सोच रखती है। 'आंध' स्त्री इसप्रकार व्यक्त करती है –

“दसरत म्हणते आईक कई कई राणी / नको धाडू रामवनी,
दसरताच्या हातामंथी कई कई न देला हात / गावीला वचनात माझा ग दसरत,
राम-ग-लक्ष्मण निघाले वनाला / या धनुष्ये बानाला, रेशमाचे गोंडे त्याला,
बया या वनात सोन्याची कमान / गुफा बांधली रामान
गुफावरली पेटी उघड लक्ष्मीमना / गुफेमधी सीता नाही
राम ग लक्ष्मण दोघे पडले विचारी / कोठे गेली सीता राणी
जटाळू पाखरू लंकेच्या वातवरी / सांगे रामाला खबरी सीता रावणाच्या घरी
राम लक्ष्मण मारोतीच्या दारी / गरुडपक्षी झाडावरी सांगे रामाला खबरी
सीता रावणाच्या घरी” (जळबाजी लोखंडे)

राजा दशरथ अपनी रानी कैकयी से कहता है कि हे रानी तू अपना वचन वापस ले और मेरे प्रिय पुत्र राम को वन में मत भेज। वह दशरथ का कहना न मानकर अपने वचन को निभाने की बात ठान लेती है। राम और लक्ष्मण दोनों वन के लिए प्रस्थान करते हैं। साथ में सीता भी निकलती है। अपनी आत्मरक्षा हेतु दोनों के पास शिवधनुष्य हैं। वन में जानेपर वहाँ घास की झोपड़ी बनाते हैं। अचानक सीता घर से गायब हो जाती है, तब राम तथा लक्ष्मण दोनों उसे ढूँढने हेतु वन में चले जाते हैं। ‘जटायु’ पक्षी के द्वारा उन्हें जानकारी मिलती है कि लंकापति रावण उसे अपनी लंका में लेकर गया है। अंत में गरुड़ मारुती के द्वारा राम को पता चलता है, कि रावण ने ही सीता का हरण किया है।

‘आंध’ स्त्री के मन में राम, सीता, लक्ष्मण और हनुमान के प्रति अपार श्रद्धा है। कैकयी को दिए गए वचन के अनुसार वह दशरथ से राम को वनवास भेजने का वचन मांगती है। राजा दशरथ उसे अपना वचन पीछे लेने की मांग करता है लेकिन वह नहीं मनती। ‘आंध’ स्त्री को मर्यादा में रहनेवाले राम अत्यंत प्रिय है।

वन में जाकर वे छोटी सी झोपड़ी बनाकर उसमें रहते हैं। सीता सभी वस्तुएँ अपनी जगह पर रखती है। राम को पसीना आ रहा है, वह थक चुके हैं यह देखकर लक्ष्मण अपने भाई राम की सेवा कर रहे हैं। ‘आंध’ स्त्री तथा पुरुष को भाई-भाई, भाभी-देवर के रूप में राम, लक्ष्मण, सीता अधिक प्यारे लगते हैं। ‘आंध’ स्त्री को घर-गृहस्थीवाले राम अच्छे लगते हैं। यहाँ माता-पिता, पति-पत्नी, भाई, सेवक अदि सभी प्रकार के पात्र उसे भाते हैं। उन्हें अपने लौकिक जीवन में प्रवेशित करना चाहती है।

रावण सीता का हरण करने के पश्चात मारुती की सहायता से लंका में सीता के होने का पता चलता है। रावण से युद्ध करने के पश्चात सीता को अयोध्या लाया जाता है। अयोध्या की जनता तथा माता कैकयी सीता के पवित्रता पर सवाल उठाती है। सीता को अपनी अग्नी परीक्षा देनी पड़ती है। राम के इस तरह के व्यवहार से ‘आंध’ स्त्री नाखुश होती है वह कहती है—

“लंकापती रावण घेऊन / सीता माता
चालला वनोवनी / कुटीत नाही सीता
राम मन कळवळे / मारोती संगे बोली
माता सीता शोधायाशी / सोध लागेल अंजनीपुत्रा
मारामारी झाली एकदाची / सीता सुटोनी झाली मुक्त
राजा रावण मोठा ज्ञानी / निरमल मन त्याचे
सीता माता समजुनी / केले रामाच्या हवाली
संसय झाला मोठा / अगनी जावे लागे सीता

अगनी देव झाले सुखी / माता येई सुखरूप” (माधव कोकाटे)

इसप्रकार सीता माता के प्रति ‘आंध’ स्त्री, पुरुष के मन में श्रद्धा है। वह पवित्र है पतिव्रता नारी है किसी भी संकट का सामना करने का सामर्थ्य उसमें है। इस कथा में रावण भले ही खलपात्र हो किंतु ‘आंध’ स्त्री और पुरुष के मन में रावण के प्रति सम्मान का भाव जागृत होता है। सीता माता की पवित्रता को भंग न कर उसे राम के हवाले कर देता है। पति-पत्नी के संशय की परिसीमा का वर्णन यहाँ आता है। अपनी माँ कैकयी और जनता के साथ राम निर्णय लेते हैं। भले ही राम का निर्णय ‘आंध’ स्त्री को बुरा लगता हो, फिर भी राम के उपर की श्रद्धा में कोई कमी नहीं आती। वह भोले हैं, अपनी पत्नी के बजाय अयोध्या की जनता पर विश्वास कर सीता को अग्निपरीक्षा के लिए बाध्य करते हैं।

निष्कर्ष :

दिनभर खेत-खलिहान, वन-जंगल में श्रम करने के पश्चात् शाम के समय में ‘वाडी’ तथा ‘दरी’ में कुछ गिने-चुने सदस्य मौखिक परंपरा को बरकरार रखते ‘दंडारण’ प्रस्तुत कर थकान को मिटाने का प्रयास करते हैं। लोकनाट्य की यह मौखिक परंपरा बरसों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी संक्रमित की जा रही है। ‘आंध’ आदिवासी जनजाति में राम कुल के लगभग सभी सदस्य के प्रति अतीव संवेदना दृष्टिगोचर होती है। राजा दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, सीता तथा मारोती के प्रति भावना गीतों के द्वारा प्रकट होती है। राम को लौकिक जीवन में लाकर अपने भाई या

पति के रूप में देखने का प्रयास 'आंध' स्त्री कराती है। ससुराल के सदस्यों में अपने पति को राम का तथा अपनी सास को कैकई के रूप में देखती है। राम के मर्यादा पुरुषोत्तम का ही रूप उसे भाता है। जो दुःख सीता ने भोगा था उसे लौकिक जीवन में लेआने का प्रयास करती है। 'दंडारण' में प्रचलित कथा को देखकर उसके चेहरे के भाव परिवर्तित होते रहते हैं।
वर्तमान में भी 'आंध' समाज में अंधविश्वास, शिक्षा, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक समस्याओं से निगडित कथाएँ 'दंडारण' के द्वारा प्रकट की जाती है।

संकलित लोकगीत:

1. रामकिसन मेंढे, दंडारण गीत (ग्राम- डोंगरगाव, तहसिल-किनवट, जिला- नांदेड)
2. माधव काळे, दंडारण गीत (ग्राम- माळकोल्हारी, तहसिल-किनवट, जिला- नांदेड)
3. जळबाजी लोखंडे, दंडारण गीत (ग्राम- माळकोल्हारी, तहसिल-किनवट, जिला- नांदेड)
4. माधव कोकाटे, दंडारण गीत (ग्राम- माळकोल्हारी, तहसिल-किनवट, जिला- नांदेड)

संदर्भ ग्रंथ:

1. Scheduled Tribe in Maharashtra (Bombay, The Maharashtra Census office: Census of India- 1961 Volume x - 1972)
2. डॉ. व्यवहारे शरद, मराठी लोकगीत स्वरूप विशेष (नागपुर: विद्याभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1990 ई.)
3. डॉ. डोईफोडे विलास, मराठी विधीनाट्य (परभणी: लोकविद्या प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2006 ई.)
4. डॉ. राजेश धनजकर, मराठवाड्यातील आंध जमातीचे लोकसाहित्य (नांदेड, अनुराधा प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2013 ई.)



समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी नारी का जीवन—संघर्ष

विक्रम बालकृष्ण वारंग,
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
डी.बी.जे. महाविद्यालय, चिपलून,
जि.रत्नागिरी, महाराष्ट्र।

भारतीय समाज व्यवस्था में 'नारी' का स्थान महत्वपूर्ण है। नारी के देवी, शक्ति, माता, सहचारिणी, जननी, गृहिणी, आदि कई रूप हमें समाज में दिखाई देते हैं। नारी परिवार तथा मानव जीवन का आधार है। नारी वह नूर है, जिसके बिना समुचा विश्व सूना है। माया, ममता, प्रेम, निष्ठा आदि मानविय मूल्यों की वह पहचान है। लेकिन भारतीय पुरुष प्रधान संस्कृति के कारण नारी को घर तथा समाज में दुय्यम स्थान ही मिला है। नारी का समाज में 'अबला रूप' ही प्रधान रहा है। धार्मिक, समाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में स्त्री की उपेक्षा ही की गयी। उसे मानविय अधिकारों से वंचित रखा गया। शहरी नारी, ग्रामीण नारी, दलित नारी के समान 'आदिवासी नारी' का जीवन भी नानाविध समस्याओं से भरा है। वह युगों-युगों से पीड़ित, अत्याचार की शिकार, वासना-तृप्ति का साधन बनी अपमानित एवं लाचार जीवन जी रही है। आदिवासी नारी के जीवनसंघर्ष को प्रकाशित करनेवाले समकालीन हिन्दी उपन्यास निम्न प्रकार से हैं —

१) अल्मा कबूतरी :-

मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' इस उपन्यास में 'बुंदेलखंड' क्षेत्र में रहनेवाली 'कबूतरा' आदिवासी जाति के जीवन—यथार्थ के साथ आदिवासी नारी की अस्मिता और विवशता का चित्रण किया है। आदिवासी कबूतरा समाज में नारी की स्थिति अत्यंत शोचनीय है, विषम है। उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र 'अल्मा' के नाम के आधार पर ही लेखिका ने उपन्यास का नामकरण किया है। अल्मा रामसिंह कबूतरा की एकलौती बेटी है। अल्मा के तेरह-चौदह वर्ष की उम्र में ही उसका जीवन में 'राणा' नामक युवक प्रवेश करता है। वह यौवनावस्था में राणा के प्रेम में बँधकर उसी को जी-जान से चाहती है। अपने मन में राणा के प्रति सच्चा प्रेम होने के कारण, वह राणा के साथ शारीरिक संबंध भी रखती है। अल्मा गर्भवती होती है, लेकिन आगे भयावह हादसे में उसे 'गर्भपात' का शिकार होना पड़ता है।

राणा को पति के रूप में स्वीकारने से पहले ही उसके पिता रामसिंह की किसी के द्वारा हत्या हो जाती है। पिता की हत्या के बाद 'अल्मा' को दुर्जन कबूतरा के घर पहुँचाया जाता है। पिता रामसिंह द्वारा उठाए गए कर्ज को उतारने के लिए अल्मा को गिरवी रखा जाता है। वह आगे सूरजभान के हाथों बेची जाती है। सूरजभान उसके सुंदरता का उपयोग कर बड़े लोगों को खुश करना चाहता है। अल्मा का 'सौंदर्य' ही उसका दुश्मन बनकर उसे पैसे कमाने का साधन बना देता है। सूरजभान की कैद में अल्मा बलात्कार की शिकार होती है। वहाँ धीरज नामक व्यक्ति की सहायता से वहाँ से भागने में सफल होती है। लेकिन दुर्भाग्य उसका साथ नहीं छोड़ता और वह दूसरे कूचक्र में फँस जाती है।

सूरजभान से मुक्त होकर अल्मा प्रदेश के समाज—कल्याण मंत्री 'श्रीराम शास्त्री' के घर पहुँचती है। वहाँ वह मंत्री श्रीराम शास्त्री की 'रखैल' बनकर अपना जीवन—यापन करती है। अत्याचारों का सामना करती हुई परिस्थिति से समझौता करती है। वह सोचती है — "भाग कर भी कहाँ तर जाएँगी? फिर कोई ऐसा ही खतरनाक हाथ आएगा, नए सिरे से नंगा करेगा। हर आदमी की एक ही भूख।" एक दिन मंदिर जीर्णोद्धार के समय श्रीराम शास्त्री की किसी के द्वारा गोली मारकर हत्या की जाती है। शास्त्री के मृत्यु के बाद अल्मा विधवा हो जाती है। वह पत्नी के रूप में शास्त्री जी का क्रियाकर्म करती है और अंत में पति श्रीराम शास्त्री की रिक्त विधानसभा सीट की दावेदार बनती है। अल्मा भी राजनीति, अपराध और प्रशासन के विकृत रूप को स्वीकार करती है।

उपन्यास में अल्मा के अलावा 'कदमबाई' नामक एक महत्वपूर्ण नारी पात्र है। उसका विवाह 'मंडोरा' खुर्द के जंगलिया नामक युवक से होता है। वह अपने चौर, डकैत अपराधी पति को जी-जान से चाहती है। रोटी, कपड़ा, मकान के लोभ से जंगलिया मंसाराम का गुलाम बनकर उसके इशारे पर काम करता है। कदमबाई के सौंदर्य से घायल मंसाराम एक षडयंत्र रचता है। अपने फरार पति जंगलिया से मिलने के लिए कदमबाई फसल भरे खेत में आती है। वहाँ व मंसाराम के वासना का शिकार होती है। उसी समय जंगलिया थाने में मारा जाता है। कदमबाई एक बेटे को जन्म देती है, उसका नाम 'राणा' रखा जाता है।

इस तरह इस उपन्यास में आदिवासी नारी की विवशता, यातना, जीवन संघर्ष को बड़ी मार्मिकता के साथ मैत्रीय पुष्पाने चित्रित किया है।

२) रेत :-

रेत भगवानदास मोरवाल का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। जिसके केंद्र में अंग्रजोंद्वारा घोषित अपराधी 'बंजारा' जनजाति के 'कंजर' समाज है। 'कंजर' अर्थात् काननचर, जंगल में घूमने वाला घुमंतू। इस उपन्यास की संपूर्ण कथा 'गाजूकी' गाव में स्थित 'कमला सदन' के आस-पास घूमती है जो एक विशाल भवन है। कमला सदन में कमला बुआ, सुशीला, रुक्मिणी, वंदना, पूनम, संतो और अनिता भाभी रहती है। कंजरों में भाभी का अर्थ है — शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार तथा त्रासदी, यातनामय जीवन।

'रेत' इस उपन्यास की नायिका 'रुक्मिणी' है। वह कहती है "रुक्मिणी ऐसी रेत है, जिसे जैसी चाहे हवा अपने साथ उड़ा ले जाये, जैसा चाहे पानी बहा ले जाय और जिसके जी में आये अपनी मुट्ठी में बंद कर ले जाए क्या है इसका अपना कुछ भी तो नहीं, भला रेत का भी अपना कोई वजूद होता है।" रेत उपन्यास में रुक्मिणी का जीवन संघर्ष, आत्मगौरव का यथार्थ चित्रण हुआ है। युवा नेता मुरली बाबू से रुक्मिणी का परिचय समाजवादी नेता तिवारी बाबू के माध्यम से होता है। आगे मुरली के माध्यम से 'सावित्री' का परिचय होता है। सावित्री इज्जतदार समाज की सेविका है। रुक्मिणी और सावित्री में फर्क केवल इतना है कि एक पेशेवर और जन्मजात वेश्या है तो दूसरी सभ्य और सुसंस्कृत समाज की प्रतिनिधि है।

उपन्यास में चित्रित नारी पात्र—कमला बुआ, सुशीला, माया, रुक्मिणी, वंदना, पूनम, पंकी, अंगुरी, आदि अपना जिस्म बेचती है। वे कहती है — "दरोगाजी, जैसे ये इज्जतदार अपनी मेहनत बेचते हैं न, वैसे ही हम अपनी देह बेचते हैं, हमारे लिए तो हमारी यह देह ही हमारी मेहनत है।" इन उद्गारों से हमें पता चलता है कि किस प्रकार का नारकिय जीवन ये नारीयाँ भोग रही हैं। सावित्री रुक्मिणी से कहती है — "रुक्मिणी, अगर मेरे भाग्य में मेरी अपनी देह से खेलना बंदा है। तो मैं क्यों न अपनी मरजी से खेलूँ।" सावित्री युवा नेता मुरली बाबू की एजेंट है। वह भी उनके साथ रंगेलियाँ मनाती है। संतों शादी कर भाभी बनकर कमला सदन में आई और एक दिन सारे निति-नियमों को तोड़कर किसी इज्जतदार आदमी के साथ भाग जाती है। उपन्यास के अंत में रुक्मिणी मंत्री बनती है।

इस प्रकार इस उपन्यास में नारी के विविध रूपों तथा उनके नारकिय जीवन का पता चलता है।

३) डेरा-बस्ती का सफरनामा :-

लेखक सतीश दुबे जीने इस उपन्यास में आदिवासी नारी की अस्मिता और उसकी विवशता को रेखांकित किया है। इस उपन्यास में मध्य-प्रदेश के उत्तर-पश्चिम मालवा क्षेत्र के आस-पास के भूभाग में निवास करनेवाले 'बाछंडा' समाज का वर्णन हुआ है। बाछंडा समाज में प्रथा-परंपरा के आड में नारी का शारीरिक शोषण किया जा रहा है। सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अभिशाप को भोगते हुए यहाँ की महिलाएँ देह-व्यापार करने को बाध्य होती हैं सबसे दुखद बात यह है कि इस कार्य में उन्हें ढकेलने का काम उनके माता-पिता तथा भाई ही करते हैं। वे ही इस अनैतिक कार्य में उनके भागीदार होते हैं।

लेखक सतीश दुबेजी ने बाछंडा समाज में प्रचलित कन्या देह व्यापार प्रथा के कारणों पर प्रकाश डाला है। उन्होंने इस समाज के बीच रहकर समस्या के मूल में जाने का प्रयास किया है। उपन्यास का अंत कथानक की एक मुख्य पात्र शांभवी शैल मैडम के कथन से होता है। जिसमें वे सभी महिला संगठनों से आवाहन करती हैं कि वे एकजुट होकर इस प्रकार की कुप्रथा के खिलाफ आवाज उठाएँ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपरोक्त तीनों उपन्यासों में आदिवासी नारी का जीवन-संघर्ष, आदिवासी नारी की अस्मिता और उसकी विवशता को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ सूची —

- १) हिन्दी आँचलिक उपन्यासों में दलित जीवन — डॉ. भरत सगरे।
- २) समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श — डॉ. शिवाजी देवरे, डॉ. मधु खराटे।
- ३) अल्मा कबूतरी — मैत्रीय पुष्पा।
- ४) रेत — भगवानदास मोरवाल।
- ५) डेरा — बस्ती का सफरनामा — सतीश दुबे।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातीय आत्मकथा लेखन की परंपरा

व्यंकट धारासुरे

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में दलित साहित्य ने अपना स्थान बनाया। यह सर्वविदित है कि हिंदी में दलित साहित्य की अवधारणा मराठी साहित्य के बाद हुई। इसकी प्रेरणा अमेरिका में चले 'ब्लैक पैथर' और डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर को जाता है। यह सच है कि डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के चिंतन, मनन और दर्शन के पीछे गौतम बुद्ध, संत कबीर, महात्मा फुले के विचारों का प्रभाव है। यही प्रभाव दलित मराठी कविताओं में विद्रोही स्वर बनकर उभर आया। ऐसी कविता लिखने में दया पवार, नामदेव ढसाल, वामन निम्बालकर, अर्जुन डांगले, वामन कर्डक आदि प्रमुख माने जाते हैं। कविता-गीतों के आलावा मराठी दलित साहित्य में कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथाएँ आदि के लेखन हुआ है। दलित साहित्य को बढ़ावा देने में मराठी में प्रकाशित पात्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिसमें 'अस्मितादर्श' (गंगाधर पनतावने, औरंगाबाद) जैसे साहित्यिक पत्रिकाओं के माध्यम से समय-समय पर दलित साहित्यकारों की कविताएँ, कहानियाँ तथा आत्मकथाएँ प्रकाशित हुए हैं।

दलित साहित्य की अन्य विधाओं की तरह मराठी में अनेक दलित आत्मकथाएँ लिखी गयी हैं। डॉ. निर्मल कुमार फडकुले का कहना सही है कि-"दलित साहित्य में उपन्यास साहित्य प्रकार कुछ ज्यादा विकसित नहीं हुआ है। किन्तु आत्मकथाएँ उल्लेखनीय हैं।" जिनमें दया पवारकृत अछुत (1980), प्र.ई. सोनकांबले कृत यादों के पंछी (1983), शरणकुमार लिंबाले कृत आक्करमासी (1984), शंकरराव खरात कृत तरल-अंतराल (1986), बेबी कांबले कृत जीवन हमारा (1986), माधव कोंडविलकर कृत मुक्काम पोस्ट देवाचे गोठने (1979) नरेन्द्र जाधव कृत असीम है आसमां (1993), आदि प्रमुख माने जाते हैं। इन रचनाकारों की प्रेरणा पाकर अन्य भारतीय भाषाओं के दलित रचनाकार खास कर हिंदी के भगवानदास कृत मै भंगी हूँ (1981), मोहनदास नैमिशराय कृत अपने-अपने पिंजरे (1995), ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत जूठन (1996), कौशल्या बैसंत्री कृत दोहरा अभिशाप (1999), डॉ. डी. आर. जाटव कृत मेरा सफ़र मेरी मंजिल (2000), सूरजपाल चौहान कृत तिरस्कृत (2002), माताप्रसाद कृत झोपडी से राजभवन तक (2002), डॉ. शौराज सिंह बेचैन कृत मेरा बचपन मेरे कन्धों पर, डॉ. तुलसी राम कृत मुर्दहिया, मणिकर्णिका, सुशीला टाकभौरे कृत शिकंजेका दर्द आदि प्रमुख साहित्यकारों ने आत्मकथाएँ लिखीं। इन आत्मकथाओं ने हिंदी में हलचल पैदा कर दी है। हलचल पैदा करने का कारण, इन आत्मकथाओं में मानवता को शर्मसार कर देने वाला जीवन यथार्थ जो बेहद अमानवीय है और जिसको इन दलित लेखकों के साथ-साथ संपूर्ण दलित समाज ने भोगा है।

हथियेकृत विमर्श में मूल स्वर अस्मिता है। दलित साहित्य ने दलित आस्मिता की तलाश का कदम उठाकर इस वर्ग को जागृत किया। इस साहित्यकारों ने इस संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और बंधक और पीड़ित की स्थिति से बाहर आने का रास्ता भी दिखाया है। अस्मिता की पहचान करते हुए साक्षात् मस्के कहते हैं-"अस्मिता की पहचान का अर्थ अपने आपको उसी स्थिति में बनाये रखकर संघर्ष करना नहीं है इसका वास्तविक उद्देश्य जातीय जकड़नों से मुक्ति के पश्चात् खुले में साँस लेना है और सारे समाज के साथ समानता स्थापित करना है।" इसी तरह अस्मिता को बचाए रखने लिए व्यक्ति और समुदाय संघर्षरत रहते हैं और अस्मिता के प्रति इन्हें जागरूकता दिशाहीन होने से बचती है।

अस्मिता प्राप्ति के संघर्ष की शुरुआत अपने वंचित, पीड़ित और प्रताड़ित होने के अहसास से शुरू हो जाती है, जिससे अपनी पहचान को प्राप्त करना सबसे बड़ा उद्देश्य हो जाता है। यह बहुत आवश्यक है कि उनकी अस्मिता को उचित स्थान मिले। आज भी ऐसे तमाम साहित्यकार हैं जो विमर्श द्वारा वर्गीकृत समाज से अधिक किसी अन्य समाज से संबंध रखते हैं। यह बहुत आवश्यक है कि उनकी अस्मिता को उचित स्थान मिले। मेरी नजर में कई ऐसे साहित्यकार हैं जो मूलतः विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों से हैं। किन्तु उनके द्वारा साहित्य को दलित साहित्य के अंतर्गत मानकर या रखकर अध्ययन-अध्यापन किया जाता रहा है। परन्तु आज विमुक्त एवं घुमंतू हथिये के विमर्श में अस्मिता के महत्व को देखते हुए यह जरूरी हो जाता है कि विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के साहित्यकारों को उनकी मूल अस्मिता के अंतर्गत रखने का प्रयास किया जाए।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की घोषणा 'शिक्षित बनो, संघटित हो और संघर्ष करो' की प्रेरणा के साथ तमाम हाशियाकृत समाजों के कार्यकर्ता 'दलित पैथर' के आन्दोलन में शामिल हुए थे। जिसमें विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के कार्यकर्ता भी अपने सामुदायिक संघटनों के साथ दलित आन्दोलन में सम्मिलित हुए। विमुक्त एवं घुमंतू जाति के युवाओं ने फुले, शाहू, आंबेडकर के विचारों से प्रभावित होकर सामाजिक एवं साहित्यिक आन्दोलन में भाग लिया। जिनमें दौलतराव भोसले, बालकृष्ण रेणके, लक्ष्मण माने, लक्ष्मण गायकवाड़, दादासाहेब मोरे, भीमराव गस्ती आदि प्रमुख थे।

महाराष्ट्र में दलित साहित्य तथा प्रगतिशील साहित्य की प्रेरणा से मराठी में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का पदार्पण 1980 में लक्ष्मण माने की आत्मकथा 'पराया' से हुआ है। इसके उपरांत आज तक विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की पैतीस के आसपास आत्मकथाएँ लिखी गयी हैं। आत्मकथाओं के साथ-साथ उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता, संस्मरण आदि विधाओं का भी लेखन हुआ है। परन्तु इसका प्रभाव हिंदी पट्टी में दिखाई नहीं देता।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की अपेक्षा दलित और आदिवासी समाज की भौगोलिक सीमा निश्चित है। इन तीनों के जीवन में कुछ समस्याएँ उभयनिष्ठ हैं, किन्तु रहने के लिए स्थायी जगह, उदरनिर्वाह के लिए रोजगार, व्यवसाय, जातपंचायत,

रुढ़ि-परंपरा, भाषा के कारण विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का दुःख व्यापक और असीमित हो जाता है। इसलिए दलित-आदिवासी समाज की अपेक्षा विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का जीवन अधिक कष्टप्रद है। यही अथाह पीड़ा आत्मकथाओं के रूप में प्रस्तुत हुई है। ये आत्मकथाएँ केवल एक व्यक्ति विशेष का सन्दर्भ नहीं देती, बल्कि समूची जाति-जनजाति के जीवन को प्रस्तुत करती हैं; जिनमें दर्ज जीवन-पद्धति, रुढ़ि-परंपरा, जातपंचायत, दरिद्रता, बेरोजगारी, भूखमरी, लाचारी, संघर्ष का भी परिचय देती है। डॉ. अर्जुन चव्हाण कहते हैं-“खासकर वे आत्मकथाएँ जिन्होंने दलित साहित्य-आन्दोलन में अपने अलग तेवर के जरिये न सिर्फ मराठी साहित्य को बल्कि संपूर्ण भारतीय साहित्य को एक नई दिशा, सोच और समझ प्रदान की तथा उर्जा भी।”ⁱⁱⁱ इसलिए विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का संक्षिप्त परिचय अनिवार्य है।

विमुक्त जनजातियों की आत्मकथाएँ-लक्ष्मण मानेकृत उपरा(पराया)(1983), भीमराव गस्ती कृतबेरड(1987), लक्ष्मण गायकवाड़कृत उचल्या(उचक्का)(1987), आत्माराम राठोड कृततांडा, भीमराव गस्ती कृतआक्रोश (1993), शिवाजी राठोड कृत टाबरो(1994), बलिराम पाटिल कृत आलेख समाज प्रगतिचा(1996), भीमराव जाधव कृतकाटेरीतारेच्या कुंपणाची(1998), रावजी राठोड कृत तांडेल(1999), रामचंद्र नलावडेकृत दगडफोद्या(2000), पंजाब चव्हाण कृतयाडी(2003), पारध्याचं जिण-रत्नेश काले (2007), चोरटा-संतोष पवार(2007), मी एकदगडफोद्या-बाबा वडार(2007), झगडा- रामचंद्र नलावडे(2007), एका तांड्याची यशोगाथा-मधुकर पवार(2007), वलंबा-शिवमूर्ति भांडेकर(2007), सिटी ऑफ मांडवी-उमा राठोड(2009), तिम्मा-प्रकाश जाधव(2009), उदई- प्रकाश चव्हाण (2009) आदि।

घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाएँ- दादासाहेब मोरे कृत गबाळ(डेरानगर)(1983), वैजनाथ कलसे कृतआयरनीच्या घना(1986), मारोतराव जाधवकृत भटक्या(1991), के.ओ. गिर्हे कृत भटक्या(1991), हातोडा- पुंडलिक गवंडी(1992), मरणकला- जनाबाई गिर्हे(1993), किशोर शांताबाई काले कृतकोल्हाट्याच पोर (छोरा कोल्हाटी का)(1994), किशोर शांताबाई काले कृतमी डॉक्टर झालो(1995), तीन दगडाची चूल- बापूसाहेब चव्हाण(1997), तीन दगडाची चूल- विमल मोरे(2000), बिराड- अशोक पवार(2001), यातनापूर्व- के.ओ. गिर्हे(2005), धडपड- गणेश जाधव(2006), रानभैरी- गुलाब वाघमोडे आदि।

आजादी के बाद इन विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति के बारे में सोचा नहीं गया। इस कारण इनकी स्थिति न घर की रही और न जंगल की ही। इसका सीधा मतलब न दलित रही, न आदिवासी वे केवल 'घुमंतू' रही। समाज ने भी इन्हे स्वीकार नहीं किया। जीवन यापन के लिए ये जनजातियाँ भीख माँगने से लेकर चोरी करने तक का काम भी मजबूरी में करती रहीं। बेरोजगारी की वजह से इनकी हालत आज भी अच्छी नहीं बन पायी है। विमुक्त एवं घुमंतू आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं में जो अनुभव व्यक्त किए हैं वो आजादी के कुछ वर्षों के बाद की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, संवैधानिक स्थिति की हालत बेहद दयनीय दिखाई देती है। उन्हें भूखे रहना पड़ा, भिक्षा मांगनी पड़ी, चोरी करनी पड़ी, रोजगार के लिए लाचार होना पड़ा, उनकी स्त्रियों को शरीर बेचना पड़ा। ऐसे भूख से लाचार आत्माओं की आबादी का वर्णन आत्मकथाओं के माध्यम से देख सकते हैं।

अतः घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाएँ अपने समाज की वास्तविकता को रेखांकित करती हैं। जिसमें समाज द्वारा नकारी गई विषम, जातीय, नारकीय, अस्वीकृत समाज की दास्ताँ है। इस सामाजिक अस्वीकृति को ढोंगी बताते हुए लक्ष्मण गायकवाड़ लिखते हैं-“हम लोगों ने प्रत्येक जाति के चरित्र को लेकर, उसकी ईमानदारी को लेकर भिन्न-भिन्न परिधियाँ बना रखी हैं। इन परिधियों के अनुसार ही हम प्रत्येक का मूल्यांकन करते रहे हैं। इन भिन्न-भिन्न परिधियों के कारण ही पूरा समाज एक ढोंगी जीवन जी रहा है। इसमें वे ही रौंदे जा रहे हैं, जो उपेक्षित हैं, गरीब हैं, जन्म से गुनाहगार माने गए हैं, इच्छा होते हुए भी जिन्हें ईमानदारी का जीवन जीने नहीं दिया जाता।”^{iv} ऐसी ढोंगी व्यवस्था के प्रस्थापित (मुख्यधारा) साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों, मध्यवर्गियों को उपेक्षित, वंचित समुदायों स्थिति की ओर आकर्षित करने, महसूस कराने और समाज का सच दिखाने के लिए आत्मकथा का माध्यम अपनाया।

संदर्भ सूची

1. ⁱविमर्श के विविध आयाम, अर्जुन चव्हाण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं-2008, पृ. सं- 53
2. ⁱⁱपरंपरागत वर्णव्यवस्था और दलित साहित्य, साक्षांत मस्के, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं-2009, पृ. सं- 30
3. ⁱⁱⁱडेरानगर, दादासाहेब मोरे, अनु- अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं-2014, पृ. सं- v
4. ^{iv}उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्र., दिल्ली, सं-2014, पृ. सं-VI

भूमंडलीकरण और युवा मानसिकता

प्रा. अर्चना वसंत तराल
शोधछात्रा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

सन 1930 'मुक्तव्यापार धोरण' स्वीकारने से समाज में भौतिकता बढ़ती गई। जिससे मनुष्य को रोजगार के नए-नए अवसर प्राप्त होने लगे। लोगों में भोगवादी मनस्थिति पनपने लगी। उदारीकरण और जगतिकरण से रोजगार साधनों में बढ़ोती होने लगी। औद्योगिक क्रांति का विकास होने लगा। विदेशी वस्तुओं को खरीदने में लोगों की दिलचस्पी बढ़ाने लगी। अपनी जरूरतें एवं मनोरंजन के लिए वे विदेशी संस्कृति को अपनाने लगे। उदा- टी.वी., रेडिओ, मोबाइल, कम्प्यूटर, इलेक्ट्रॉनिक वस्तुएँ, घरेलू सामान आदि का उपयोग बढ़ने लगा। गावों का जगतिकीकरण होने लगा, जिससे 'संत तुकड़ोजी महाराज जी ने बताई ग्रामसंस्कृति खतरे में आने लगी। आज इक्कीसवीं सदी के दौर में समाज में नए-नए परिवर्तन हो रहे हैं। जिससे संस्कार और संस्कृति की परिभाषा ही बदल गई है, जिसे ही 'भूमंडलीकरण' का नाम दिया गया। भूमंडलीकरण का सर्वाधिक प्रभाव भारत की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक घटकों पर हुआ है। इस हो रहे भूमंडलीकरण से मनुष्य का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, मानसिक स्तर बदला है।

आज भूमंडलीकरण के इस प्रभाव से हिंदी साहित्य भी अछुता नहीं रह पाया है। आधुनिक साहित्य में भी भूमंडलीकरण कम-अधिक मात्रा में दिखाई देता है। आज भूमंडलीकरण जैसे विस्तृत विषय को लेकर कई साहित्यकारों ने अपनी कलम चलाई है जिसमें महिला लेखिकाएँ भी पीछे नहीं रह पाई हैं। इक्कीसवीं सदी की हिंदी लेखिकाओं ने साहित्य में भूमंडलीकरण की वजह से समाज की दुःरावस्था को अपने लेखन का माध्यम बनाया है। इनमें ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, शशीप्रभा शास्त्री, मंजुल भगत, किरण बेदी, रजनी गुप्त आदि बहुचर्चित हैं। आज की मल्टीमीडिया, तकनीकी दुनिया की इस संचार क्रांति ने दुनिया को बदल दिया है आज 'ग्लोबलाइजेशन' का जमाना आ गया है जिसे हिंदी में भूमंडलीकरण कहा जाता है। "भूमंडलीकरण शब्द अंतर्राष्ट्रीय सहायता केंद्र, मानव अधिकार आयोग, तकनीकी प्रगति, उदारीकरण, विश्वग्राम आदि का समेकित नाम है।"¹

आज की आधुनिक लेखिकाओं में से रजनी गुप्त एक बहुचर्चित लेखिका हैं जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से भूमंडलीकरण के अतिरेक से हो रही समस्याओं को उजागर किया है अपने 'कुल जमा बीस' इस उपन्यास के अंतर्गत भूमंडलीकरण के चपेट में जकड़े युवाओं की समसामयिक स्थिति, उनकी मानसिकता, बदलती वैचारिकता, अनैतिकता का वास्तविक चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास आज के समाज की दयनीय अवस्था को भलीभांति प्रस्तुत करता है।

1) **नैतिक मूल्यों का पतन**—भूमंडलीकरण के इस दौर में आज के युवाओं की मानसिकता अधिक मात्रा में बदल गई है। कपड़े बदलने की भांति रिश्ते बदल रहे हैं। आधुनिकता की होड़ में युवाओं की बुद्धि विचार शुन्य बनती जा रही है, सही-गलत की पहचान करना उनके लिए कोई मायने नहीं रखता। उनकी विचारधारा नैतिक मूल्यों के बांध तोड़ रही है। प्रस्तुत उपन्यास में ऐसी ही युवा मानसिकता का विवेक किया है, जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को धोका देकर नैतिक मूल्यों का उलंघन कर रही है "तेरी हॉबी है नए-नए लड़कों को अपने रुपजाल में फांसना, उनसे शादी के वादे करना या करवाना, फिर कुछ दिन इंजॉय करने के बाद छोड़ देना। बड़ी अच्छी हॉबी है ये न तेरी?"²

2) **इंटरनेट की बढ़ती अराजकता**—आज इंटरनेट मनुष्य के लिए एक वारदान माना जाता है किन्तु आज के युवा इसका गलत फायदा उठा रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास में आशु के माध्यम से आज के युवाओं की मानसिकता का चित्रण किया है। आज की युवापीढ़ी मल्टीमीडिया और इंटरनेट प्रसार माध्यम, फेसबुक, ट्विटर जैसे माध्यमों के मायाजाल में फसती जा रही है। वह अपना ज्यादा से ज्यादा समय इंटरनेट पर ही बिताते हैं। अश्लील छायाचित्र, गंदे विडिओ देखते रहते हैं। "ओफफो! क्या-क्या चलता रहता इस संसार में? पॉर्न की रंगीन साइटें और लड़के-लड़कियों की वे अश्लील तस्वीरें देखकर हैरान था वो, विचलित था वो। आवक था वो स्तब्ध था।"³

3) **भोगवादी मनस्थिति**—भूमंडलीकरण एवं पाश्चात्य संस्कृति से युवापीढ़ी सर्वाधिक प्रभावित हुई है क्योंकि उनके लिए आज इंस्टेंट लाइफ का जमाना है। भूमंडलीकरण की चकाचौंध में मस्त आज की युवापीढ़ी लाइफ एंजॉय करने की कामना रखती है। जिंदगी के हस्तमहों का लुप्त उठाना चाहते हैं। जीवन के हर कायदे-कानून का परिहास करते अपना जीवन ज्ञापन करना चाहते हैं। उन्हें अपनी इंस्टेंट लाइफ के आगे किसी भी चीज की परवाह नहीं है। अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए वे हर ओ रास्ता अपनाते हैं फिर चाहे ओ गलत हो या सही— "मैं पूछता हूँ उनके पास इतना पैसा था, फिर क्यों नहीं वे ठीक से खर्च करते थे? हम तो जितना कमाएंगे, उतना पूरा का पूरा खर्चेंगे और एक शानदार जिंदगी जिएंगे। आन, बान और शान के साथ जीने में यकीन है हमारा।"⁴

4) **बढ़ती व्यसनाधीनता**—आज की इस चकाचौंध ने युवाओं को प्रभावित किया है। दूसरों से कुछ अलग करने की चाह ने उन्हें पथ भ्रष्ट किया है। गलत दोस्तों की संगत से शराब पीना, सिगार फूंकना, गुटखाखाना जैसी लत इन्हें लगी हैं। आज कम उम्र में ही बच्चे मद्यपान करने लगे हैं। शराब जैसी चीज स्वास्थ्य के लिए कितनी हानिकारक होती है, यह पता होने के बावजूद उसका अति सेवन करते हैं। इंजॉय करने की चाह में

अपने ही जीवन के साथ-साथ अपने परिवार को भी नष्ट कर रहे हैं। भूमंडलीकरण के इस दौर से आज के युवा भी नहीं बच पाएँ हैं। आज की युवापीढ़ी जीवन का लुप्त उठाने के चक्कर में अपनी ही जिंदगी तबाह कर रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास में आशु आज की युवापीढ़ी का प्रतीक है जो दोस्तों की संगत में रहकर शराब पीने लगता है।-“आशु, तुम्हारे मुंह से कैसी तो बांस आ रही है कहीं तूने कुछ पी तो नहीं लिया?”⁵

5) गैरमार्ग से पैसा कमाने की होड़- अपनी सुख-सुविधा, अपने स्वार्थ एवं अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए आज की युवापीढ़ी गलत रास्ते पर जा रही है। कम्प्यूटर, इंटरनेट जैसे भौतिक साधनों के माध्यम से सायबर क्राइम जैसे गुनाह हो रहे हैं। शॉटकट का मार्ग अपनाकर पैसे कमाने की होड़ आज के युवाओं में अधिक मात्र में दिखाई देती है। अपनी कभी न खत्म होनेवाली अनैतिक जरूरतें पूरी करने के लिए और ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाने के लिए आज सोशल क्राइम हो रहे हैं। लड़कियों के अश्लील विडियो बनाना, एम एम एस बनाना, गन्दे फोटो निकालना और उन्हें सोशल मीडिया पर वायरल करना या फिर इसके लिए राईस लड़कियों को ब्लाकमेल करना। इस प्रकार के क्राइम आज हो रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास में आशु भी अपने राईस दोस्तों की तरह पैसे कमाना चाहता है और उनकी तरह आराम से लाइफ इंजॉय करना चाहता है।- “हूँ पैसा तो सचमुच हमारी सबसे बड़ी जरूरत बन चुकी है। ये जो इतनी सारी सुखसुविधाओं के अंबार लगे हैं ये नवीन, करण जैसे लोग ही जीवन को इंजॉय कर रहे हैं वो सब पैसों के बलबूते”⁶

निष्कर्ष:

हम कह सकते हैं कि, आज भूमंडलीकरण के प्रभाव ने सभी क्षेत्रों को झंझोड़ कर रख दिया है। आज एक भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जो भूमंडलीकरण के प्रभाव से दूर रह पाया हो। हिन्दी साहित्य में भी आज भूमंडलीकरण की परछाई छाई हुई है। रजनी गुप्त जी का प्रस्तुत उपन्यास इसी की गवाही देता है। प्रस्तुत उपन्यास द्वारा लेखिका ने आधुनिक युवा मानसिकता का वास्तविक चित्रण किया है। भूमंडलीकरण एवं निजीकरण से युवाओं में हो रहा बदलाव सही मायने में आज हमें विचार करने पर मजबूर करता है।

संदर्भ

1. सं. डॉ. जोसेफ बाबू, 'भूमंडलीकरण और हिंदी कविता', अमन प्रकाशन, कानपूर, पृ.- 157
2. सं. रजनी गुप्त, 'कुल जमा बीस', सामयिक प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, पृ- 17
3. सं. रजनी गुप्त, 'कुल जमा बीस', सामयिक प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, पृ- 101
4. सं. रजनी गुप्त, 'कुल जमा बीस', सामयिक प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, पृ- 95
5. सं. रजनी गुप्त, 'कुल जमा बीस', सामयिक प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, पृ- 94
6. सं. रजनी गुप्त, 'कुल जमा बीस', सामयिक प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, पृ- 97

भूमंडलीकरण और हिंदी भाषा

शोधकर्ता

डॉ. भगवान रामकिशन कदम

मास्टर दिनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय, औरादशाहजानी

ता. निलंगा जि. लातूर

आज का युग भूमंडलीकरण अर्थात् ग्लोबलाइजेशन का युग है। इस प्रक्रिया से संपूर्ण विश्व एक परिवार के रूप में निकट आ रहा है। जिसके चलते ही विश्व एक ग्लोबल विलेज याने भूमंडली गांव बन गया है। भूमंडलीकरण से तात्पर्य विश्व बाजारवाद है। भूमंडलीकरण के दौर में भाषा की भूमिका महत्वपूर्ण है। भारत विश्व का सबसे बड़ा बाजार है और इस बाजार की माध्यम भाषा है हिंदी। भूमंडलीकरण के इस नाटकीय दौर में जहाँ तक हिंदी भाषा के प्रयोग का सवाल है, यदि हिंदी सॉफ्टवेयर पूर्ण रूप से विकसित हुआ तो निःसंदेह हिंदी संसार की सबसे लोकप्रिय और प्रचलित भाषा बन जायेगी।

भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी भाषा को कुछ मात्रा में लाभ हुआ है तो कुछ मात्रा में हानी भी हो रही है। भूमंडलीकरण दौर में हिंदी भाषा को लाभ यह हुआ है कि हिंदी भाषा का शब्द समुह बढ़ गया अर्थात् हिंदी की शब्द संख्या में बढ़ोत्तरी हुई है, तो संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का विकास हो रहा है, हिंदी भाषा को एक अलग स्थान मिला है, भूमंडलीकरण ने हिंदी भाषा को कई नये आयाम दिए हैं। भूमंडलीकरण के वजह से हिंदी भाषा की जो हानी हो रही है वह यह है कि विज्ञापनों में हिंदी भाषा का व्याकरणिक ढांचा बिगड़ रहा है। हिंदी भाषा को लाभ के सिंधुतक तक ही सिमित रखा जा रहा है। ऐसा यदि होगा तो आनेवाले दिनों में हिंदी भाषा केवल एक बोली भाषा बन जाएगी इस का डर है क्योंकि लिपि के लिए अंग्रेजी भाषा का ही प्रयोग किया जा रहा है। इस तरह भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी का कुछ विकासोन्मुख तो कुछ मात्रा में —हासोन्मुख ब्यौरा हम इस प्रकार से दे सकते हैं।

आज भारत एक बहुत बड़े बाजार के रूप में उभरकर आया है। यहाँ उपभोगताओं की संख्या बहुत है। इसीलिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भूमंडलीकरण के युग में हिंदी की अनिवार्यता को महसूस कर रही हैं क्योंकि यहाँ के ७० करोड़ से भी अधिक उपभोगता हिंदी समझते हैं और बोलते हैं। इस संदर्भ में राधाकृष्ण जी का कथन दृष्टव्य है— “ हिंदी विश्व में तीन सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषाओं में परिगणित है सौ करोड़ लोग हिंदी बोलते और समझते हैं। आज चीनी और अंग्रेजी के समकक्ष हिंदी खड़ी है।” हिंदी दुनिया की सबसे सरल भाषा है इसका मुख्य कारण यह है कि वह जैसे बोली जाती है वैसे ही लिखी जाती है। इसीलिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने विज्ञापन के लिए हिंदी भाषा को चुना है। यही कारण है कि भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी संपर्क भाषा के रूप में उभरकर आयी है। परंतु हमें यह ध्यान में रखना होगा कि विज्ञापनों द्वारा प्रयुक्त हिंदी भाषा में व्याकरणिक नियमों का उल्लंघन न करे किंतु आज तो ठीक इसके विपरित दिन—ब—दिन हिंदी विज्ञापनों में व्याकरणिक ढांचा बिगड़ता जा रहा है।

सूचना प्रौद्योगिकी के वर्तमान दौर में हिंदी का दबदबा बढ़ते जा रहा है हाल ही में मायक्रोसॉफ्ट ने अपने एम.एस. ऑफिस नामक लोकप्रिय पैकेज का हिंदी रूपांतर बाजार में उतारा है सबसे बड़ी बेस कंपनी और कल हिंदी में समस्त डेटा बेस ला रही है। यहाँ तक कि आज मोबाईल फोन पर भी हिंदी का प्रयोग संभव हो गया है। सी डेक पूणे ने क्रांतिकारी शोध द्वारा हिंदी में यह सॉफ्टवेयर उपलब्ध कराए जो कि अंग्रेजी में है। आज कम्प्यूटर पर हिंदी में कोई भी काम किया जा सकता है। हिंदी में इमेल भेजने की सुविधा आज उपलब्ध है। आज इंटरनेट पर हिंदी की लोकप्रियता कॉफी बढ़ गई है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी भाषा के विकास एवं सुधार के लिए सकरकार एवं विविध संस्था और विद्वतजनों द्वारा विविध प्रयास किए जा रहे हैं। जिस में सातवें विश्व हिंदी साहित्य संमेलन की भूमिका सराहनीय है, जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को अधिकारिक भाषा बनाना विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पीठों की स्थापना, एक उच्चस्तरीय अंतरराष्ट्रीय पत्रिका का प्रकाशन, विश्व स्तर पर हिंदी वेबसाइट का सृजन, हिंदी विद्वानों का एक विश्वनिर्देशिका का प्रकाशन, १० जनवरी २००४ से १० जनवरी को विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाएगा। कैरिबिये में हिंदी परिषद की स्थापना भारत में एम.ए. हिंदी पाठ्यक्रम में विदेशों में हिंदी लेखन को एक प्रश्न पत्र के रूप में शामिल किया जाए। साथ ही सूरीनाम की प्राथमिक कक्षाओं के माध्यम भाषा के रूप में डच एवं अंग्रेजी भाषा के साथ—साथ शामिल किया जाए।

भारतीय वर्तमान हिंदी सिनेमा वर्तमान विश्व के अनेक देशों में लोकप्रिय है और भारतीय टि.वी. धारावाहिकों ने विदेशों में हिंदी प्रसार और समझ में पर्याप्त योगदान दिया है इंडिया टू डे में प्रकाशित आंकड़े के अनुसार अमरिका में ६० प्रतिशत से भी अधिक नवयुवक हिंदी फिल्म देखने में रूची रखते हैं। आज भी भाभी जी घर पे है, बालिका वधु, रामायण, महाभारत, ऑफिस—ऑफिस, आदि अनेक धारावाहिकों को विदेशी लोग बड़े चाव से देखते और सुनते हैं अर्थात् यहाँ हिंदी का क्षेत्रीय विकास हो रहा है। भारत से बाहर १०५ से भी अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन और अध्यापन कार्य हो रहा है। अनेक विदेशी विद्वान अपने देशों में हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में लगे हुए हैं। जिसमें जर्मनी के डॉ. लोठार लुत्सें और नैदरलैण्ड के थियाडेमिस्टी के नाम इस क्षेत्र में अग्रगण्य हैं।

विदेशी संचार माध्यम विशुद्ध हिंदी में प्रसारण करते हैं रेडियो स्टेशन जापान रेडियो, चायना रेडियो इण्टरनेशनल आदि अनेक विदेशी रेडियो स्टेशनों से आप नियमित हिंदी के कार्यक्रम सुन सकते हैं।

भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी अब खतरे में है इस संदर्भ में कृष्णकुमार जी ने लिखा है कि— “भाषा का संकट यह भी है कि वह इन माध्यमों द्वारा अपना स्वरूप बिगाड़ रही है। भाषा का संकट यह भी है कि भाषा का वैज्ञानिक व्याकरणिक पक्ष नष्ट हो रहा है, भाषा का संकट यह भी है कि बहुत से लोगों को प्रेषित हो रही भाषा किसी और स्थान की लग रही है और आज भाषा का संकट यह भी है कि भाषा अपनी नहीं पराई लगती है।”

आज अभिभावकों में बच्चों को आरंभ से ही अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा दिलवाने की होड़ लगी रहती है। देहातों में भी अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा दिलवाने की होड़ लगी रहती है। देहातों में भी अंग्रेजी स्कूल खोले जा रहे हैं। दिन—ब—दिन अंग्रेज स्कूलों की बढ़ती संख्या और बच्चों का होड़ देखकर तो लगता है कि हिंदी का क्या होगा। कई प्रदेशों में तो पहली कक्षा से अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य भाषा के रूप में रखा गया है। लगभग यही स्थिति भारतीय विश्वविद्यालयों की है यहाँ भी अंग्रेजी को अनिवार्य विषय के रूप में पढाया जा रहा है। हमारे देश के कुछ कुटिल राजनेताओं के कारण हिंदी को रोजगार की भाषा नहीं बनाने दिया जा रहा है। यहाँ सरकार द्वारा हिंदी भाषा में तकनीकी साहित्य और शिक्षा के विकास पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। ऐसे कई कारण हैं जो हिंदी को भूमंडलीकरण के इस दौर में पिछे ला सकती हैं इसके लिए हमें सतर्कता या सावधानी बरतनी चाहिए। भले ही हिंदी भाषा भूमंडलीकरण के इस दौर में संपर्क भाषा के रूप में और अधिक विस्तृत हुई हो या इसका भाषाई विकास हो रहा है, या इसकी शब्द संख्या को नया आयाम दिया हो यह सब कुछ होते हुए भी हमें ध्यान देना होगा कि हिंदी का व्याकरणिक ढांचा भूमंडलीकरण के इस दौर में ना बिगड़े, जो विज्ञापनों के माध्यम से बिगड़ रहा है जैसे—“अब तो इसका बैंड बजकर रहेगा, ऐसे विज्ञापनों के कारण हिंदी मुख्यधारा में अंग्रेजी शब्दों एवं मुहावरों की घुसपेठ बढ़ रही है जैसे “हम तो बिंदास हैं”।

भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी भाषा को जीवित रखना है तो सबसे पहले हमें अपनी मानसिकता को सुधारना होगा। साथ ही साथ हिंदी भाषा को लाभ के सिद्धांत तक सीमित न रखते हुए उसे सरल एवं लचिली बनाने की आवश्यकता है। उसके व्याकरणिक ढांचे पर ध्यान देना होगा, विज्ञापनों में व्याकरणिक नियमों का उल्लंघन ना हो इसकी हमें सतर्कता बरतनी होगी। इस प्रकार भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी भाषा को जीवित रखा जा सकता है।

भूमंडलीकरण और इक्कीसवीं सदी की कहानी

डॉ. दत्ता शिवराम साकोले

प्रपाठक हिन्दी विभाग

शिक्षण महर्षी ज्ञानदेव मोहेकर महाविद्यालय

कळंब जि. उस्मानाबाद ४१३५०७

इक्कीसवीं सदी का द्वितीय दशक में भारी बदलाव का दौर है। हर तरु व्यापक उथल-पुथल मची है। एक तरफ ग्लोबलाइजेशन के बीच सिकुडती दुनिया है। दूसरी ओर तेजी से बदलती परिस्थितियाँ और फैलता बदरंग यथार्थ है। वस्तुतः के सामने यथार्थ को तलछट तक पकड़ने की अनेक चुनौतियाँ हैं। आज का कथा साहित्य यथार्थ की जटिल यथार्थ को कथा साहित्य में प्रकट करता है।

भूमंडलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका क्षेत्र समस्त भूमंडल है। निर्मल वर्मा के शब्दों में कहा जाए तो- “पृथ्वी और आवास स्थल। आज की दुनिया में जिसे दुनिया का भूमंडलीकरण कहा जाता है, उसमें दोनों ही परोक्ष रूप से शामिल हैं। समूचे ब्रम्हांड में हमारी धरती ही एकमात्र ऐसी है, जो प्रकृति का अंग होते हुए भी मनुष्य के जीवन को ही नहीं समूचे जीव प्राणी-जगत को संभव बनाती है। मनुष्य प्रकृति का अंग होते हुए भी मनुष्य के जीवन को ही नहीं संचूचे जीव प्राणी-जगत को संभव बनाती है। मनुष्य प्रकृति का अंग भी है और उसे रूपांतरित करने का उपकरण भी। पृथ्वी को मानवीय कृति में रूपांतरित करने की प्रक्रिया में संस्कृति का जन्म होता है। संस्कृति एक तरह से मनुष्य की आत्मचरना है, जीव जगत के बीच रहते हुए भी मनुष्य यदि इससे कुछ अलग और उपर है तो इसलिए कि केवल निष्क्रिय भोक्ता ही नहीं सजग आत्म द्रष्टा भी है। वह जिस आँखों से अपने को देखता है, उससे अन्य भी दिखाई देता है, जिसके द्वारा यह देख जा रहा है।”

भूमंडलीकरण एक आर्थिक प्रक्रिया है जिसके तहत आर्थिक व्यापारों में लगे मात्रात्मक प्रतिबंधों को हटाकर यह पूँजी एवं व्यापार के स्वतंत्र प्रवाह की हिमायती है। भूमंडलीकरण की प्रमुख विशेषता पूँजी और व्यापार का उदारीकरण है। व्यापारिक उदारीकरण के तहत ही विश्वबैंक और अंतर राष्ट्रीय मुद्रा कोश के द्वारा नाना प्रकार के आर्थिक सुधार अथवा संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम लागू किए हैं। इस नव उदारवाद का बुनियादी सिद्धांत है कि उसमें पूँजी और व्यापार का स्वतंत्र प्रवाह हो अर्थात्, देशी और विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को स्थानिय इकाईयों की तरह समान अधिकार प्राप्त हो कि वे कमी अपने उद्योगों और व्यापारों में श्रम और पूँजी का उपयोग मनचाहे ढंग से करें। इसमें अनेक प्रकार के सवाल उठते हैं जैसे कि इसके लिए चालक की भूमिका कौन निभाएगा। इसको विज्ञान के तौर पर देखा जाए तो सूचना-संसार यातायात संबंधी प्रौद्योगिकी के क्षेत्र ये काफी तेजी से विकास हुआ है ऐसे में प्रौद्योगिकी भूमंडलीकरण के मुख्य चालक की भूमिका अदा करती है।

भूमंडलीकरण में बाजार पूर्णत्व को प्राप्त करेगा। भूमंडलीकरण की अवधारणा का आधार यह है कि विभिन्न राष्ट्रों की अर्थ व्यवस्था में शासन द्वारा जो नियंत्रण, नियम और नियमन बाजार की शक्तियों को संसाधनों के लिए पूरा मौका दिया जाए। इस प्रकार भूमंडलीकरण की प्रक्रिया का केंद्रीय रंगमंच मुक्त बाजार है। आज शब्द कोशों में इस अवधारणा का अर्थ यह है किऐसा कोई भी कार्यया प्रसंग जिसका प्रभाव समूची दुनिया को अपने को अपने घेरे में लपेट लेता है जो चीज भारत में घटती हो वही वस्तु हजारों मील घटने वाली घटनाएँ तय करे। ‘ग्लोबलाइजेशन’ के बारे में आम तौर पर यह कह सकते हैं कि यह एक सजग और सयास प्रक्रिया है जो मूलतः उत्पादों के लिए विश्व बाजार को हासिल करने और दुनिया के विभिन्न हिस्सों पर प्रभुत्व करने की गतिविधियों ये जुड़ी हुई है।

इक्कीसवीं सदी का दौर भूमंडलीकरण का है। भूमंडलीकरण विचारों की पूर्णता में नहीं, विखंडन में विश्वास करती है। इसी कारण एक शब्द के अनेक अर्थ, अनेक चैनल, अनेक सत्ता केंद्र और अनेक पार्टियों हो रही है। प्रायोजित या प्रस्तुत यथार्थ मिथ्या होता है। और उसके परे या यथार्थ ही सत्य है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति कहना कुछ और है और उसका आशय कुछ और होता है। इसका मतलब यह हुआ कि जमाना संशय का है। आज के समाज में हर कार्य एक विश्वास के बल पर चल रहा है। ऐसे में भूमंडलीकरण में उसका मूल तत्व संशयवाद या निषेधवाद होगा तो उसका कोई वस्तुगत सत्य नहीं रहेगा, कोई मूल्य नहीं रहेगा, आदर्श नहीं रहेगा जिसके आधार पर जीवन को सुलझाया जाए। वैसे देखा जाए तो सारा विश्व अविश्वास में जी रहा है। ऐसा लगता है कि आज की दुनिया के सामने या यूँ कह सकते हैं कि भूमंडलीकरण में विश्वास की कमी के कारण एक बड़ा संकट है।

इक्कीसवीं सदी के प्रमुख कहानीकार - उदय प्रकाश, अखिलेश, संजय खाती, दूधनाथ सिंह आदि। उदय प्रकाश की कहानी ‘पॉल गोमरा का स्कूटर’ भूमंडलीकरण के दौर में मध्यमवर्गीय मनुष्य के प्रति उदारीकरण की अनुदारता की कहानी है। यह बाजारवादी - उपभोक्तावाद की आँधी में ढहते हुए विचारों एवं आदर्शों की कहानी है जो उत्तर - आधुनिक यथार्थ के बीच मध्यवर्गीय मनुष्य को उसकी अमानुषिकी परिणति का अहसास कराती है और उदार अर्थव्यवस्था के अमानवीय चेहरे को बेनकाब कर देती हैं। यह एक एक ऐसी प्रयोगधर्मी कहानी है जिस पर अनेक सवाल भी उठाने गये हैं। फिर भी, इक्कीसवीं सदी के द्वितीय दौर के भारत की एक मुकाम्मल तस्वीर यह कहानी हमारे पेश करने में पूरी तरह सफल हैं।

राजधानी के एक राष्ट्रीय दैनिक में काम करने वाले सीधे-सादे, कर्तव्यनिष्ठ, हिंदी कवि राम गोपाल सक्सेना कहानी के नायक है। अत्याधिक तेजी से बदलते समय से वे हैरान हैं। बाजारवाद, उपभोक्तावाद और पश्चात्य संस्कृति की हवा में उन्हें अपने विचारों,

मूल्यों और आदर्शों को संभाले रखना असंभव हो जाता है। वे दो निर्णय ले लेते हैं। “एक वे अपना नाम राम गोपाल सक्सेना से ‘पॉल गोमरा’ रख लेते। यह अंग्रेजियत, तथाकथित आधुनिकता और पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव है। दो, वे एक स्कूटर खरीदने का फैसला करते हैं। यह उपभोक्तावाद की उन पर जीत है। हालांकि वे स्कूटर खरीदने को अपने मान्य सिद्धांतों के तहत तरह-तरह से आधार प्रस्तुत करते हैं। स्कूटर की दास्तान के साथ-साथ उदय प्रकाश ने हमारे समय का पूरा यथार्थ निर्ममता के साथ उधेड़कर सामने रख दिया है। कहानी की संवेदना से जुड़ी हुयी सुचनाओं का अंवार इसमें है और प्रासंगिक समसामयिक घटनाओं की अप्रत्यक्ष झलकियाँ भी हैं। समय की भयावहता को उजागर करते हुए जब कहानी पॉल गोमरा की कारुणिक परिणति तक पहुँचती है तो पॉल गोमरा की नियति, बाजारवादी-उपभोक्तावाद में पिसे हुए संपूर्ण निम्न-मध्यवर्ग की नियति दिखाई पड़ती है।

उदय प्रकाश बेहतरीन खाकानवीस हैं। खाके, किस्सागोई के आंज में लिखे जाते हैं। यही तकनीक ‘पॉल गोमरा...’ में अपनाई गई है। बात से बात खुलती जाती है। लेकिन भाषा का प्रवाह गजब का है और पाठक को बाँधे रहता है। उनकी भाषा में व्यंग्यार्थ नए ढंग से समाहित है। वे व्यंग्य करते हुए तटस्थ भी बने रहते हैं और भोलेपन से कटाक्ष भी कर देते हैं।

संजय खाती की कहानी पिंटी का साबुन एक सीधे-सरल ग्रामीण जीवन में उपभोक्तावाद बनाम बाजार के प्रवेश की कथा है। हमारे समय के एक यथार्थ की बेहद नए ढंग से प्रस्तुति की वहज से यह कहानी खासी चर्चित रही।

बाजार का हडकंप गाँव के लोगों को उपभोक्तावाद की दौड़ में शामिल नहीं कर रहा, बल्कि वहाँ के बेहद सहज और आत्मीय संबंधों पर भी असर कर रहा है। कहानी में पहाड़ी अंचल का एक सीधा-सरल गाँव है। जहाँ महकदार साबुन पहले पहल पहुँचता है तो हडकंप मच जाता है। महकदार साबुन जा डिप्टी साहब की बेटी पिंटी लगाया करती थी, एक कंपनी द्वारा विज्ञापन अभियान के लिए आयोजित की गई दौड़ में गाँव के एक युवक को पुरस्कार के रूप में मिलता है। इस तरह उपभोक्तावाद की दौड़ में अनजाने ही वह शामिल हो जाता है। युवक के हाथ साबुन क्या आता है कि पूरे गाँव में खलबली मच जाती है। “हर कोई साबुन देखने को बेकल था। सारे गाँव में जंगल की आग तरह यह बात फैल गयी थी। लोग मुझे रोक लेते, कोई बहाना खोजकर चले आते। वे चाहते हैं कि अनको साबुन दिखा दूँ। जब मैं, इन्कार कर देता तो वे नाराज हो जाते डॉट-डपट करते। अलबत्ता वे मुझे सूँघ जरूर लेते।”

परदेशीराम वर्मा लिखित हैसियत कहानी में लेखक ने भूमंडलीकरण के कारण लोगों की हैसियत समय-समय पर कैसे बदल जाती है। इसकी ओर ध्यान आकर्षित किया है।

कहानी में रामलखन नामक पात्र जो अंग्रेजों के उपरांत जमीनदारी प्रथा को सरकार ने उखाड़ फेंकने के रवैया पर मेहरबान इंसान के नाम जमीन करवाते थे, रामलखन खरात या औरों की फेंकी हुई रोटी पर पलने वाला इंसान नहीं था। वह अपने दम पर अच्छी कमाई कमा लिया था। लडके रामेश्वर की पुत्री का विवाह वह अपने गाँव में करवाना चाहता है जहाँ वह जन्मा है, कमाई या पेट की भूख के लिए गाँव वतन छोड़ा तो क्या हुआ उसे भुलाया थोड़े जाता है। नये सिरे से अपनी पौत्री का विवाह हमवतन करवा के लौटना चाहता है। रामेश्वर इसके खिलाफ रहता है। बच्चे जहाँ पले बड़े होते हैं उसी वातावरण में अनुकूल खुद को संभालते हैं। नये माहौल में खुद को मेल लगाने में काफ़ी दिक्कत होती है।

पिताजी की मनमानी के कारण रामेश्वर चुप से लडका देखने जाता है लडके की चालाकी वह देखते ही पैर छू लेता है, उनका मन प्रसन्न होता है। कितना धन वह खुद बोल रहे थे उससे ज्यादा की माँग बड़े रोब से वह राजी करवाने में कामयाब होता है।

पहले वाली हैसियत भूल वह अब दामाद बनने के कारण रोब जमाता है। रामेश्वर पिताजी की गलती परा शर्मिदा है। पिताजी जो खेती के काम में बैलों को जी जान से प्यार करते हैं उसे दामाद ले जाकर वापस करवाने का नाम न लेकर बदले में वापस ले जाने के लिए बीस हजार रुपये की शर्त रखता है।

रामलखन को अपनी कही हुई बात पर अफसोस हो रहा है जो समधियों की बातों में आकर आवेश में पैसों के साथ-साथ बेबस नातन को उनके घर बाँध दिया था।

“अपनी हैसियत में रहो जी, अभी रामलखन जिंदा है। शादी हम कर देंगे तुम नाहक मूह मत मारो। इसने जो माँगा है तो समझ लो हमारी हैसियत देखकर ठीक ही माँगा है। कमाने के लिए ही न हम यहाँ से बाहर गए। तो आखिर किस दिन कमाएँ हैं धन।” रामेश्वर को ठोंटे बात पर और अपनी बेवजह बेकार वक्तव्य पर रामलखन को शर्मिदगी महसूस हो रही है।

इन्सान को सही आदमी की परख होनी चाहिए जहाँ बच्ची को ब्याहा जा रहा है वहाँ तो खासकर लडके, समधी और लोगों की पहचान करवा लेना जरूरी है। अनजान जगह, अनजान लोगों की उपरी बातों पर आकर धन तो फूट में दे ही देते हैं, बेटी का जीवन नर्क करने के जिम्मेदार बनते हैं।

लवलीन की कहानी ‘सहेलियाँ’ भूमंडलीकरण के कारण बाजारवाद की दौड़ में परिवार को भूलने वाले नवीन तथा उसकी पत्नी रुचिरा जो घर में कीमती वस्तुओं से ज्यादा वह उससे प्रेम चाहती थी। इस कहानी में अपने वैवाहिक जीवन से उबती और उसका कोई विकल्प निकालने की कोशिश-रुचिरा इसलिए निराश हैं- “पति-पत्नी के रिश्ते में जे शेयरिंग केयरिंग विहरिंग, लर्निंग और डेवोरिंग होनी चाहिए, जो कि प्रेम की रेसिपि है, वह जीवन में नहीं है। रुचिरा को अपने पति नवीन का सहज साहचर्य उपलब्ध नहीं है। इन दोनों पति-पत्नियों के बीच जीवन की दिशा और जीने की प्रविधि को लेकर गहरा विभेद दृष्टिगोचर होता है। नवीन एक व्यवसायी है और वह उसमें इतना व्यस्त है कि उसे यह ध्यान नहीं होता कि उसकी पत्नी की उससे क्या अपेक्षाएँ हैं। रुचिरा एक चित्रकार है मगर उसकी कोई परवाह नहीं करता। उसे लगने लगता है” स्त्री के जीवन की कल्लगाह है। पग-पग पर उसकी इच्छा, मान-सम्मान, सत्त्व, महत्त्वकांक्षा और स्वाभिमान की बलि चढ़ाई जाती है।”

संदर्भ ग्रंथ:-

- १) निर्मल वर्मा - भूमंडलीकरण के दौर में, वागर्थ, फरवरी, २००० पृ.सं.११,१२
- २) विश्वंभरनाथ उपाध्याय - आलेख, वैधीकरण, परिवेश पत्रिका, अप्रैल-दिसं. ९६, पृ.सं.९५
- ३) विजय कुमार - परिवेश - ९६ - त्रैमासिक पत्रिका, पृ.सं.११
- ४) उदय प्रकाश - पॉल गोमरा का स्कूटर, इंडिया टुडे साहित्य वार्षिकी, १९९५
- ५) संजय खाती - पिंटी का साबुन (कहानी संग्रह), पृ.सं.१२
- ६) परदेशी वर्मा - हैसियत औरत खेत नहीं, पृ.सं.१०५
- ७) कथाबिंब सप्टें, ऑक्टोबर २०१५
- ८) भारतीय वर्तमान साहित्य जनवरी, फरवरी २०१७



भूमंडलीकरणके परिप्रेक्ष्य में जानकीदास तेजपाल मैशन

डॉ. दीपक रामा तुपे

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
विवेकानंद कॉलेज (स्वायत्त), कोल्हापुर

आज भूमंडलीकरणके कारण पूरा विश्व ग्लोबल ग्राम में तब्दील हो गया है। भूमंडलीकरणसे मनुष्य एक-दूसरेके करीब आ चुका है; जिससे वह विश्व की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक गतिविधि से परिचित हो रहा है। भूमंडलीकरणके प्रभाव से आज मानव जीवन का कोई क्षेत्र अछूता नहीं रहा है। इसके लिए न समाज अपवाद है और न साहित्य। भूमंडलीकरण की सारी समस्या आज मानव जाति की समस्या बन गई है; जिसका चित्रण साहित्य का केंद्रीय विषय बनता जा रहा है। भूमंडलीकरणके कारण विदेशी संस्कृतियों का असर हमारे देश की संस्कृतियों पर हो रहा है। ऐसे में हमारे सांस्कृतिक मूल्य बचाए रखना एक चुनौती बन गई है। न की सांस्कृतिक मूल्य बल्कि देश का भविष्य भी खतरे में पड़ गया है। भूमंडलीकरणसे प्रभावित इन्हीं चुनौतियों का चित्रण अलका सरावगी लिखित **जानकीदास तेजपाल मैशन** उपन्यास में हुआ है, जो राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा सन् 2015 ई. में प्रकाशित है। प्रस्तुत उपन्यास भूमंडलीकरणसे उत्पन्न विभिन्न खतरों को हमारे सामने लाता है। उपन्यास का कथानक कलकत्ता के सेंट्रल ऐवन्यू स्थित जानकीदास तेजपाल मैशन नामक अस्सी परिवारों की एक भव्य इमारत के इर्द-गिर्द घूमता है। यह इमारत हमारे देश का प्रतीक है। उपन्यास का नायक जयगोविंद कोलकाता के जादवपुर विश्वविद्यालय से 1970 के दशक में इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी कर स्नातक बन जाता है। जयगोविंद के पिताजी एडवोकेट बाबू उसे कम्प्यूटर इंजीनियरिंग की मास्टर डिग्री करने के लिए अमेरिका की मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी में भेज देना चाहते हैं, उसे माँ का विरोध है। इसके बावजूद पिताजी के आग्रह से जयगोविंद को अमेरिका में भेज दिया जाता है। अमेरिका में सात साल बीता जाने के बाद जयगोविंद वापस कोलकाता लौटता है, लेकिन सच बात तो यह है कि वह न उधर का रहता है और न इधर का। हैरानी की बात यह कि जयगोविंद की पीढ़ी न सिर्फ इस देश में उथल-पुथल में फँसी हुई पीढ़ी थी बल्कि भाग्य चक्कर में और पोस्ट वार फेरे में फँसी हुई पीढ़ी है। आदमी को एक ही जिंदगी मिलती है और उसमें गलत-सलत हो जाता है तो बहुत कुछ ढोना-भुगतना पड़ता है इसलिए इक्कीसवीं में भी लोग पंडितों और ज्योतिषियों के चक्कर में फँस जाते हैं। स्वयं लेखिका के शब्दों में-“इक्कीसवीं सदी में एक तरफ कम्प्यूटर और मोबाइल हर धोबी-सब्जीवाले और दूधवालेके पास हैं और बच्चे गूगल कर अपन होमवर्क कर रहे हैं, पर टी. वी. में बेजान दारुवाला ग्रह-नक्षत्रों की बात कर न जाने कितने पैसे कमा रहा है। अखबारों में विज्ञापन भरे पड़े हैं, जो आपकी हर समस्या को तंत्र-मंत्र-रत्न से एक दिन में सुलझाने का दावा कर रहे हैं। इस देश में इन सबकी दु कानेंबेधड़क चल रही हैं तो शायद इसीलिए कि यहाँ आप अपने भाग्य के अलावा किसी पर भरोसा नहीं कर सकते।”ⁱ इक्कीसवीं सदी में इन्सान भाग्य भरोसे जी रहा है।

जयगोविंद हिंद मोटर कंपनी में नौकरी जरूर प्राप्त करता है, मगर टिक नहीं पाता। इस कदर एडवोकेट बाबू और माँ का दिल टूट जाता है। उसके बाद वह स्टील ट्रेडिंग कंपनी शुरू करता है, मगर उन दिनों स्टील खरीदना और बेचना गैरकानूनी था। परिणामस्वरूप उसे जेल जाना पड़ता है। जेल का मामला रफा-दफा करने के बाद वह व्यासजी की मदद से वह राजारामबाबू का ए. डी. सी. बनकर रह जाता है यानी राष्ट्रपति के पीछे खड़ा रहने वाले सुदर्शन या रोबोटनुमा चौकन्ना व्यक्ति की तरह। राजाराम बाबू का हर काम वह करता है। दिल्ली मंत्रालय सहित हर जगह वह अपनी पहुँच बना देता है। राजाराम बाबू से छुटकारा पाने के बाद उसका दोस्त प्रीतम भंसाली का कोलकत्ते स्थित बेहाला की जमीन खाली करने का काम उसके पास आता है। बेहला के सबसे बड़े मस्तान दिवाकर घोष की मदद से बेहाला की जमीन लगभग खाली कर कई लोगों को बेघर बना देता है, मगर एक बुढ़िया वहाँ से जाने के लिए तैयार नहीं होती। उस बुढ़िया के पास दूर का भतीजा रहता था। दिवाकर ने उसे भतीजे की मदद से नींद की गोली खिलाकर इस दुनिया से बेघर कर दिया। इधर, आफताब हुसैन ने कॉरपोरेशन के चीफ इंजीनियर की सिफारिश पर जानकीदास तेजपाल मैशन को गिरा दिया और जयदीप को बेघर कर दिया। “उधर बुढ़िया भागी, इधर जयदीप। एक ही रात में दोनों बेघर हो गए थे।”ⁱⁱ अपने को बेदखल किए जाने की पीड़ा दूसरों को बेदखल करने में आड़े नहीं आती। संयोग की बात यह है कि किसी को बेदखल करना या बेदखल होना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लेखिका ने जयदीप के माध्यम से जीवन के इस शाश्वत सत्य उजागर कर दिया है कि “सारी दुनिया इसी तर्ज पर चलती है। आदमी आदमी का खून पीना चाहता है। अमेरिका वियतनाम को मार रहा है। पाकिस्तान अपने ही धर्म के बंगाली भाईबंदों को। नक्सली पुलिस को, पुलिस नक्सलियों को। कोई किसी को जीने नहीं दे सकता। हर आदमी दूसरे का हक मारना चाहता है।”ⁱⁱⁱ स्पष्ट है कि भूमंडलीकरणके कारण मानवता नाम की कोई चीज विश्व में बची ही नहीं है। सारी दुनिया एक-दूसरे का हक मारने पर तुली हुई है और आदमी आदमी के खून का प्यासा बना हुआ है। आज हर आदमी हर जगह अपना फायदा देखता है। फायदे की हर चीज वह खरीदता है, लेकिन नींद को खरीद नहीं सकता। जयदीप के बेटे रोहित के शब्दों में-“पूरी दुनिया में रुपए का बाजार दिन-रात चल रहा है। अमेरिका के रुपए हांगकांग में किसी के काम आने वाले हैं और जापान में किसी सौदे में उन्हीं रुपयों से बड़ी रकम का फायदा हो सकता है। बस सोना यानी कि नींद ही मेरे लिए एक ऐसी महँगी क्मोडिटी है, जिसे मैं खरीद नहीं सकता।”^{iv} स्पष्ट है कि आज समग्र दुनिया में दिन-रात रुपयों

का बाजार चलता रहता है; जिसमें आदमी को हर चीज मिल रही है, लेकिन नींद नहीं मिल रही है। भूमंडल के बाजार में सबकुछ मिल रहा है, लेकिन मनुष्य चैन की नींद और सुकूनभरी जिंदगी दुर्लभ हो गई है।

सन् 1970 के दशक में जयगोविंद अमेरिका से पढ़कर कोलकाता लौटा ऐसा कम्प्यूटर इंजीनियर है जो अपना जीवन अधूरे उपन्यास में जयदीप के रूप में जीता है तो दूसरा जीवन नक्सलबाड़ी आंदोलन से लेकर भारत के बड़े बाजार को “नेशन स्टेट” से “रीयल इस्टेट” बनाने की यथार्थता में जीता है। “विडंबना यह नहीं है कि जयगोविंद का जीवन जयदीप से असम्पृक्त है; बल्कि दोनों को अलग करना मुश्किल है।”^v फर्क यह है कि वस्तुनिष्ठ आत्मकथा लिखने के प्रयास में वह बार-बार अपने आपको बचाने की कोशिश करता है, जो अपने ही लिखे को सही नहीं मानता। इस क्रम में आजादी के बाद इस देश की जवान पहली पीढ़ी को मिले धोखे और नाकामयाबी सिस्टम की दास्तानें अमेरिका के वियतनाम-युद्ध से लेकर विकीलीक्स के धोखे तक फैली हैं। अमेरिकन यूनिवर्सिटियों में वियतनाम में अमेरिकी सेना उपस्थिति को लेकर भारी बवाल मचा हुआ था; जिसे शांत करना भी एक चुनौती है।

जयगोविंद के नए. आर. आई. मित्र हैं, जो इंफेक्शन के डर से इंडिया नहीं आते और वह लौटने के लिए तड़पता रहता है। जयदीप का बेटा रोहित जो विदेश में पढ़कर आया है वह इंडिया को चिड़ियाघर कहता है। इस चिड़ियाघर के कोलकाता शहर में जानकीदास तेजपाल मैनशन नामक एक इमारत की वास्तविकता मेट्रो की सुरंगलगाने से ढहने और ढहाए जाने में है। इस इमारत को बचाने के लिए जयगोविंद जी-जान से प्रयास करता है। इसके लिए वह मेट्रो-पीड़ित बंधु एसोसिएशन प्रेसिडेंट का अध्यक्ष भी बनता है। यह इमारत गुजरती बस की आवाजाही से हिलती रहती है; जिसका गिर जाना तय है। राजनीति, प्रशासन, पुलिस, नक्सली और पूँजी के बीच बिचौलियों का तंत्र सबसे कमजोर लोगों को देश से अर्थात् जानकीदास तेजपाल मैनशन से पहले बेदखल करने में तुले हुए हैं, लेकिन नायक जयदीप उसे बचाना चाहता है। यहाँ के अंडरवर्ल्ड गैरकानूनी ढंग से धन हड़पने, सौदेबाजी और जुगाड़ की दुनिया से पैसे ऐंठकर देश को ढहाने में लगे हुए हैं। इस दुनिया के कई पात्र हमारे जाने हुए हैं, लेकिन हम नहीं जानते कि वे किस हद तक हमारे जीवन को चलाते हैं और कब हमें अपने में शामिल कर लेते हैं।

इस दौरान उपन्यास में जयदीप की मां तिरबेनीबाई, एडवोकेट बाबू, पत्नी दीपा, बेटा रोहित और सुमित, प्रेमिका मिशेल, हर्षद मेहता, समर शुक्ला, रमेश खेतान, गोवर्धन दास, राधेश्यामबाबू उर्फ राजारामबाबू, मिंटू चौधरी, समरेंद्र किल्ला उर्फ सैमकी, ज्योतिरमय गुप्ता, जयंत भाई, नक्सली नेता देवनाथ मुखर्जी, जतींद्र मोहन, नेताजी सुभाषचंद्रबोस के विचारों का अनुयायी शांतनु बैनर्जी, ऊषा अय्यर उर्फ ऊषा उत्थुप, मजदूर नेता अशोक तिवारी, राजीव मिश्रा, दीपंकर सेन, प्रीतम भंसाली, सिनियर बिडला, आर. एन. मुखर्जी, असीम चटर्जी, शेखर रतन, जादवपुर विश्वविद्यालय के कुलपति गोपाल सेन, अफताब हुसैन, राजू बंसल, विमल कोठारी, प्रियंजनदास मुंशी, दरबान तिवारी, विजय जैन, सुमेधा बने, बालानंद पंडित, व्यास आदि पात्रों की गौण कथाएँ उपन्यास को गति देने में सफल रही हैं। उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल एवं प्रसंगानुकूल है। संवाद बहुत ही कम और संक्षिप्त है। आजादी की पूर्व स्थिति और आजादी के बाद का माहौल प्रस्तुत उपन्यास में अंकित है। भाषा सीधी, सरल, सरस है, लेकिन बंगाली के प्रभाव से प्रभावित भी है। उपन्यास का शीर्षक जानकीदास तेजपाल मैनशन समर्पक है। जिस तरह जानकीदास तेजपाल मैनशन गिरने की स्थिति में है, उसी प्रकार अपने देश का सुनहरा भविष्य भी विनाश की कगार पर है, जो टूटते सपनों का कड़ुआ सच है। लेखिका प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से विनाश की ओर जा रहे देश को बचाने का संकेत देती है। जानकीदास तेजपाल मैनशन के माध्यम से हमारे पुराने मूल्य ध्वस्त होते जा रहे हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हमारे पुराने मूल्य, साहित्य, संस्कृति और हमारी धरोहर बचाने की चुनौती है, जो भूमंडलीकरण से उत्पन्न हो चुकी है। आज हमारे देश की राजनीति, प्रशासन, पुलिस व्यवस्था, नक्सली, पूँजीपति, आतंकवादी, बिचौलिए हमारा लोकतंत्र, देश यानी जानकीदास तेजपाल मैनशन से बेदखल करने में तुले हुए हैं। यही जानकीदास तेजपाल मैनशन हमारे देश का प्रतीक है। यह घर यानी हमारा देश है और यह घर जिन समस्याओं से जूझ रहा है उन्हीं भूमंडलीय समस्याओं से आज हमारा भारत देश जूझ रहा है। इसी कारण जानकीदास तेजपाल मैनशन का भविष्य खतरे में पड़ा हुआ है। अंडरवर्ल्ड गैरकानूनी ढंग से धन हड़पने, सौदेबाजी और जुगाड़ की दुनिया से पैसे ऐंठकर देश को ढहाने में लगे हुए हैं। इस दुनिया के कई पात्र हमारे जाने हुए हैं, लेकिन हम नहीं जानते कि वे किस हद तक हमारे जीवन को चलाते हैं और कब हमें अपने में शामिल कर लेते हैं। आज भूमंडलीकरण के कारण उत्पन्न समस्याओं के चलते हमारी संस्कृति खतरे में पड़ गई है। सांस्कृतिक धरोहर बचाए रखने के लिए हमारे साहित्य में न्याय, समता, बंधुता जैसे मानवीय मूल्य का संवहन होना जरूरी है।

संदर्भग्रंथ सूची:

- ¹ अलका सरावगी, जानकीदास तेजपाल मैनशन, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाषमार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2015, पृ. 90
- ¹ वही, पृ.-184
- ¹ वही, पृ.127
- ¹ वही, पृ.-130
- ¹ वही, मलपृष्ठ से उद्धृत।

हिंदी कविता में बाजारवाद
(भूमंडलीकरण के विशेष संदर्भ में)

डॉ. गोविंद गुंडप्पा शिवशेट्टे

सहायक प्राध्यापक

हिंदी- विभाग

महाराष्ट्र महाविद्यालय, निलंगा जिला लातूर

भूमंडलीकरण एक व्यापक तथा जटिल प्रक्रिया है। कुछ विद्वान इससे वैश्वीकरण, बाजारवाद, उदारीकरण, व्यापारवाद और जागतिकीकरण आदि नामों से अभिहित कर अर्थ का प्रतिपादन करते दिखाई देते हैं। भारतीय विद्वान इससे विश्वकुटूंबकम के रूप में देखते हैं। दुनिया के विभिन्न देशों में आपसी सहयोग की वृत्ति बढ़ाना इसका मूल लक्ष्य नहीं है। बल्कि शुद्ध व्यापारवाद है या बाजार को अपने नियंत्रण में लेने की बात है। सर्वविख्यात हैं कि दुनिया विकसित और अविकसित दो खेमों में विभक्त है। विकसित राष्ट्रों ने अपने उत्पाद को दुनिया भर में बेचने तथा मुनाफ़ा कमाने की दृष्टि से बनाई गयी नीति है यह। भूमंडलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जहां एक ओर देशों—देशों की दूरिया कम करती हैं तो दूसरी ओर यह विकसित राष्ट्रों के बाजारवाद को बड़ावा देती हैं। आज भी यह प्रक्रिया कइयों के समझ के परे है। सामान्यतः देखे तो कल के बाजार में चीनी 30 रु किलो दाम में हमने खरिदी किंतु आज वही चीनी 35 रु किलो दाम पर खरिदनी पड़ती है। या ज्वलनशील पदार्थों के मूल्यों में रोजाना उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है। यह बात आम आदमी के समझ के बाहर है। किंतु उपरोक्त होनेवाला यह बदलाव भूमंडलीकरण की नीति का प्रत्यक्ष परिणाम है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में लघु से लघुत्तम और बृहत् से बृहत्तम देश, राज्य, समाज, व्यक्ति, चीजें, विचार सब कुछ समाहित हो चुके हैं। भूमंडलीकरण से क्या भाषा, साहित्य, संस्कृति, क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या जन, जल, जंगल, जमीन सभी प्रभावित हो चुके हैं।

भूमंडलीकरण की इस नई सभ्यता का प्रभाव साहित्य, संस्कृति और भाषा पर सर्वाधिक मात्रा में हुआ है। विदेशी भाषाएं देशी और प्रादेशिक भाषाओं पर हावी होती जा रही हैं। सांस्कृतिक स्तर पर मूल्यों का पतन गति के साथ हो रहा है। साहित्य में भूमंडलीकरण या बाजारवाद ने दस्तक दी है। समझ से परे है कि हिंदी कविता में बाजार और बाजार में कविता एक दूसरे में कब घुलमिल गई है।

दुनिया एक बाजार है। इन्सान न तो मनुष्य रहा न आदमी बल्कि बाजारवाद के दौर में केवल और केवल ग्राहक या कस्टमर बनकर रह गया है। कबीरदास ने भी बाजार के बारे में 'कबीरा खड़ा बजा में' कहा था तब बाजार का मतलब खुली जगह, इकट्ठा हुए लोग था। कवि कंदारनाथ सिंह जब बाजार की बात करते हैं तो वहां न खुली जगह दिखाई पड़ती है और न लोग। यह आज के भूमंडलीकरण के दौर का नया बाजार है यह। कंदारनाथ सिंह लिखते हैं—

“बाजार में न धूल थी

न जनता

दोनों को साफ कर दिया गया था।”

समय दौड़ रहा है और बाजार दौगुनी रफ़्तार से दौड़ रहा है। बाजार में आदमी नहीं चीजें महत्वपूर्ण हो गई हैं। विशेषतः उन चीजों का मूल्य उंचे स्तर पर है जा विलायत की हैं, ब्रॉड या कंपनियों की हैं। सामान्य चीजों का बाजार में कोई गौरव का स्थाण नहीं है। पेड पर लगे अमरुद बाजार में पहुंचते हैं तो अमरुदों की जगह फुटपाथ पर ही हैं, गौरवान्वित बाजार में नहीं। कवि कंदारनाथ इस स्थिति को बखुबी व्यक्त करें हैं—

“अमरुद किर आ गए हैं बाजार में

और यद्यपि वहां जगह नहीं थी

पर मैने देखा छोटे-छोटे अमरुदों ने

सबको ढेल-ढालकर

फुटपाथ पर बना ही ली

टपने लिए थोड़ी जगह।”

हां यह बात अलग है कि बाजार में जगह न होते हुए भी फुटपाथ पर ही वे एक छोटी सी टाकरी में शंहेशाह की भौंति जमें हुए हैं। तात्पर्य देशी व्यापार, चीजें नये बाजारों से लापत्ता होती दीख रही हैं। यही दशा हमारे सामान्य आदमी की भी बन चुकी है। महंगे बाजारों में आम आदमी फुटपाथ की स्थिति पर आ पहुंचा है।

कवि कुमार अंबुज ने वैश्वीकरण की नई सभ्यता को पुरानी सभ्यताओं, परम्पराओं को रौंदकर आने की बात बात पर मुहर लगाते हैं। 'नई सभ्यता की मुसीबत' कविता में लिखते हैं—

“नई सभ्यता ज्यादा गोपनीयता नहीं बरत पाती है

वह आसानी से दिखा देती हैं अपनी जंघाएँ और जबड़े
वह रौंदकर आई है कई सभ्यताओं को
लेकिन उसका मुकाबला गहुत पुरानी चीजों से हैं
जिन पर अभी तक लोग विश्वास करते चले आए हैं।"

भूमंडलीकरण या बाजारवाद ने हमारी परम्परागत चीजों, सभ्यताओं को बेदखल करने का काम किया है।
हमारे पूर्वज जो कि जीवित रहने के लिए उन्हें अधिक विधियाँ ज्ञात थी, जबकि हमारी स्थिति यह है कि हमें मरते
चले जाने की ज्यादा जानकारी है। बाजारवाद में हमें चाजों ने घेर लिया है। और चीजों की दूरलभता के कारण
हम पूरी तरह से वैश्विक बाजार पर अवलंबित हो चुके हैं। कुमार अंबुज लिखते हैं—

"जितनी चीजों से तुमने घेर लिया है हमें
उनमें से कोई जरा सा भी ज्यादा जीवन नहीं देती
सिवाय कुछ नई दवाइयों के
जो यों भी रोज-रोज दूरलभ होती चली जाती हैं।
और एक विशाल दुनिया को अधिक लाचार बनाती हैं।"

विश्व बाजार के कारण सामान्य आदमी अब लाचारी और मजबूरी के दौर से गुजर रहा है। परावलंबी
होता जा रहा है।

वैश्विक बाजार का प्रभाव सामान्य किसान जन पर अत्यधिक मात्रा में हुआ है। आज महाराष्ट्र ही नहीं पूरे
भारत वर्ष में आत्महत्या करनेवालों की तादात में किसान सर्वाधिक हैं। यह चिंता से अधिक चिंतन का विषय
है। गांव का किसान गांव में ही बपनी रोजी-रोटी कमा लिया करता था। उसे जरूरत नहीं थी किसी शहर,
कारखानों, साहुकारों की। किंतु भूमंडलीकरण या बाजारवाद की नई सभ्यता में किसान बेदखल होता जा रहा
है। युवा कवयित्री किरण अग्रवाल 'बेदखल' कविता में किसान की पीडादायक स्थिति को व्यक्त करती हैं—

"मैं एक किसान हूँ
और अपनी रोजी नहीं कमा सकता इस गांव में
मेरी हंसुआ, मेरी खुरपी
मेरी कुदाल और मेरी जरूरत नहीं रही
मैं जानता हूँ
उन्नत तकनीक द्वारा बेदखल किए जाने के बाद
चौड़े डील और ऊंची सींगवाले हमारे बैल
सबसे पहले कसाइयों द्वारा खरीदे गए
कोई कसाई
कोई कसाई कर रहा है मेरी बेदखली का इंतजार।"

क्या यह बेदखली समझा से परे है? नहीं। वैश्वीकरण के दौर में नई तकनीक के द्वारा बनायी गई
चीजों की बदौलत परम्परागत औजार बेकार साबित होने लगे हैं। परम्परागत तौर तरीके से जीवनयापन करनेवाला
किसान, उसके बैल बेदखल होते दिखई पड़ते हैं। वर्तमान स्थिति में एक ओर किसान खुदकुशी करते हुआ
दिखाई पड़ते हैं तो दूसरी ओर उसके बैल कसाइयों के द्वारा कत्तलखनों के लिए खरिदे जा रहे हैं। बाजारों को
चलानेवाले कसाई की जिंदगी खुब मजे में है।

भूमंडलीकरण या बाजारवाद ने हमारा सरल, साधा और सादगी पूर्ण जीवन हमसे छीन लिया है।
गांव, मोहल्ला, बस्ती, दादा-दादी, माँ का आंचल, बरगद की डांव, रेत के टिले अब बीते कल की बात हो चली हैं। गंदे
शहरों की फुटपाथ पर कीचड़ पट्टी में जीवन जीने के लिए लाचार हैं—

"मैं नहीं जानता कि मुझे कहा जाना है
किस दिशा में
मैं जानता हूँ कि बरगद की छांव के मेरे दिन गए
नदी की धार के मेरे दिन गए
माँ की आंचल की छांव और दुलार के दिन मेरे गए
सरसों के फूल
और तारों से भरा आसमान
मेरा नहीं रहा....
...और मेरा गांव ?
मेरा गांव बसेगा
मेरा गांव बसेगा दिल्ली और मुंबई जैसे महानगरों

की कीचड़-पट्टी में।"

गांव का सादगी पूर्ण जीवन अब खतरे में आ चुका है। भूमंडलीकरण के दौर में हमारे बाजार, छोटी मंडियाँ, सामान्य विक्रेता, कारीगर हाशिए पर आ चुके हैं। जमाना ब्रॉड का है। देशी कारीगरों के पास न तो ब्रॉड है और न मुकम्मल बाजार। फुटपाथ पर रजाई, मीट्टी के घड़े, आमरूद, सब्जी इत्यादी बेचनेवाला कहा जानता है। भूमंडलीकरण के दौर में केवल लेबल का माल ही बिकाऊ है। कवि राजेंद्र राजन 'बाजार में कबीर' कविता में इस भयावह स्थिति को सटिक रूप में व्यक्त किया है—

"मुझे लेनी थी एक चादर/सो, मैं गया कबीरदास के घर
वहां पता चला/वो तो बाजार के लिए निकल चुके हैं
उन्हे मैं खोजता तो कहां खोजता / एक पेड़ के नीचे जहां
कबीरदास का ठिकाना था/वहां न पेड़ था, न थे कबीरदास
विशाल चमचमाती दुकानें थी वहां/लुभावनी चीजों का लुभावना दृश्य था।"

कबीर जैसा चादर बुनकर अपना गदर लेकर बाजार में बेचने पहुंचे हैं पर वे जिस जगह बैठा करते थे वहां न तो पेड़ हैं न कबीरदास, वहां तो केवल चमचमाती दुकानें थी। जहां दुनिया के हर कंपनी का ब्रॉड और महंगी से महंगी चाजें उपलब्ध हैं। जो आम आदमी के बस की बात नहीं है। सच तो यह है कि जिनके पास पैसा है व चीजें देखते हैं मेल नहीं। पैसे से बाजार था सा बाजार में पैसा था जैसी कशमकश की स्थिति आज के बाजारों में है। राजेंद्र राजन लिखते हैं—

"कहना मुश्किल था कि
खरिदनेवालों की जरूरतें ज्यादा थी
या बाजार ज्यादा था।"

बाजार की स्थिति यही तक ही सीमित नहीं है बल्कि वह निरंतर फैल रहा है बिल्कुल ब्रह्मांड की तरह। कबीरदास की तलाश करते कवि जब आगे बढ़े और प्यास से बेहाल हाकर पानी की तलाश करने लगे—

"मुझे जरूरत थी थोड़े पानी की
पानी कहां मिलेगा पुछने पर/ बताया गया थोड़ा आगे
एक दुकान है जहां मिलेगा/ किसी कंपनी का पानी
पानी की दुकान/ मैं हैरान/कबीरदास होते साथ तो शायद
कहते, देखें, कही हवा की दुकान भी होगी
धर्म की दुकान तो होगी ही/पैसा हो तो खरीदा जा सकता है
सत्य भी पुछो—दया, प्रेम, करुणा की दुकान भी होगी
और मैं कबीरदास की आँखों में झांकता कि
उनमें कितनी पीड़ा है, कितनी हंसी।"

बाजारवाद के दौर में चारों ओर दुकानें सजी हुई हैं पानी भी अब बॉटलों में बंद है। कवि हैरतअंगेज हैं कि अब पानी भी खरीद कर पीना पड़ेगा यही सचाई है वर्तमान समय की। कवि को लगता है कि कही धर्म, सत्य, प्रेम, दया, करुणा आदि की भी दुकानें होगी पैसे होंगे तो खरीदा जा सकता है। यह स्थिति जितनी हास्यास्पद लगती है उससे ज्यादा पीड़ादायक है। बाजार इतने फैल रहे हैं कि कबीरदास की खोज में निकले कवि भी अपने घर का रास्ता भूल चुके हैं—

"कि मेरे गांव की तरफ कौनसा रास्ता जाता है
और बाजार हर तरफ इतनी दूर तक फैला हुआ था।"

दुनिया एक बाजार बन चुकी है। घर अब घर न रहकर बाजार हो चुके हैं। इस कौने में फ्रीज, उस ओर टि.व्ही, उपर ए.सी चारों ओर चीजें ही चाजें हैं। सुर्य दुबने की स्थिति में कवि महोदय को कबीरदास जी देख पड़े—

"विदा होते सुर्य की रोशनी में/उसे देखे अचानक कबीरदास /उन्हे दो आदमियों ने
पकड़ रखा था/और डपटकर पूछ रहे थे/कि उनका माल किस कंपनी का है....
किसी कंपनी का होना चाहिए/अगर नहीं है तो भरना होगा जुर्माना
परेशान खड़े थे कबीरदास खाली हाथ/एक भी चादर नहीं बिकी थी,
उलटे फस गये थे/जुर्माने की गिरफ्त में..."

कबीरदास जी की जो हालात हुई हैं उससे अलग हमारे देशी कारीगरों की नहीं हैं। ब्रॉड, कंपनी के नाम पर बनावटी चीजें लेने के लिए आज का खरीददार विवश है।

सुचना प्रौद्योगिकी के विस्फोट के दौर में आकाशवाणी, दूरदर्शन, सिनेमा, कम्प्यूटर, मोबाईल आदि का अमर्याद इस्तेमाल की वजह से मानवीय रिस्ते खतरे में आ चुके हैं। लोग आजकल घर, मोहल्ले, गांव, शहर में कम इंटरनेट पर ज्यादा मिलते हैं। कवयित्री किरण अग्रवाल लिखती हैं—

“नेट पर एक पूरी दुनिया हैं/हर क्षण रूप बदलती हुई
गति और रोमांच से भरपूर/नेट पर एक पूरी दुनिया हैं
और इस दुनिया के एक हिस्से में/बंद है मेरा प्रोफाइल
इस प्रोफाइल में दर्ज है मेरा नाम/मेरी पसंद-नापसंद,यात्राएँ,उपलब्धियाँ
मेरे अनुभव,मेरी जरूरतें , मेरा कॉन्टैक्ट नंबर और इ-मेल आयडी
सबकुछ मौजूद हैं वहां मेरे बारे में
लेकिन मैं कहां हूँ वहां सोचती हूँ मैं।”

कहा तो जाता है कि इंटरनेट की दुनिया ने देशा-विदेश,व्यक्ति-व्यक्ति के बीच की दूरियाँ दूर की हैं,किंतु यह भी सच है कि आपसी नाते-रिस्तों में अब औपचारिकता का स्तर आ पहुँचा है ,इस बात को कोई नकार नहीं सकता।व्यक्ति अपने को तलाश रहा है प्रोफाइल तो है किंतु स्वयं गायब है। यही उपनिवेशवाद की त्रासदी है।

संदर्भ ग्रंथ/पत्रिका

- आलोचना अंक-2012
- वागर्थ अंक-2014,2015



भूमंडलीकरण और साहित्य

प्रस्तुत कर्ता

प्रा. सौ. मानसी संभाजी शिरगांवकर

हिंदी विभागाध्यक्षा

कन्या महाविद्यालय मिरज

भूमंडलीकरण बाजारवाद की नीतियों को ऐसा व्यापक प्रभाव इधर हिंदी के साहित्य पर पड़ा है कि उसमें राजनितिक—सांस्कृतिक क्षरण के घाव पाठक को रिसते हुए दिखाई दे रहे हैं । नवउपनिवेशवाद, नवसांस्कृतिक साम्राज्यवाद और 'लेट कैपिटलिज्म' की समवेत ताकत के कारण भारतीय समाज में सांस्कृतिक—नैतिक मूल्यों की समस्या गंभीर संकट का रूप ले रही है । बाजारवाद के संकट ने 'अब सब चलता है' की सैद्धांतिकी अपनाकर भारतीय समाज को मरुस्थल में ला पटका है । हमारे सभी जीवन मूल्य भूमंडलीकरण की अमेरिकी थ्योरी के कारण संकटग्रस्त हो गए हैं । यह रोग इतना भयंकर है की थामे नहीं थम रहा। अरविंद, विवेकानंद, तिलक, गांधीजीने स्वाधीनता आंदोलन के दौरान जो आत्मविश्वास पैदा किया था — उसे स्वाधीनता प्राप्ति के बाद मार्क्स, माओ, मैक्समूलर, मैकाले, नीत्से ने अपने विचारों से तोड़ा है और भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति हिकारत का भाव नई पीढ़ी में पैदा किया है । गांधी जी ने हिंद स्वराज्य में जिस पश्चिमी शैतान सभ्यता से दूर रहने की सलाह दी थी उस सलाह को ठुकराकर हमने विश्वयारी में उदारवाद, नवउदारवाद, नवपूँजीवाद, देहभोगी उपभोक्तावाद को अपनाया है । नतीजा यह हुआ की हमारी कला, धर्म, संस्कृति, साहित्य, दर्शन में हर ओर सांस्कृतिक—क्षरण के कारण मूल्यांधता पसर रही है । साहित्य में भारतीय परंपरा के मूल स्वर टूट रहे हैं । एक योगी के पिछे अंधा साहित्य, संस्कृति का समाज बिंबो —प्रतिकों, रूपकों, प्रकरणों में उभर रहा है । अज्ञेय जी ने जिस स्वाधीन, आत्मान्वेषी, सर्जनात्मक समाज —संस्कृति का कल तक सपना देखा था — वह आज आधुनिकतावाद, उत्तर— संचरनावाद, सांस्कृतिक अध्ययनों, सबाल्टर्न चिंतनों में जलकर खाक हो रहा है । यह संचार — क्रांति का डिजिटल युग है । भारत तथा भारतीय साहित्य 'ग्लोबल कल्चर' को अपनाने की ठसक में है ।

भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण या विश्व — व्यवस्था के अंतर्गत नव — उदारवाद, नव— साम्राज्यवाद, नव — पूँजीवाद का पूरा वर्चस्व है । इसलिए भूमंडलीकरण केवल एक अवधारणा है । अनेक संदर्भोंसे निर्मित दुर्बोध जटील अवधारणा । आधुनिक भूमंडलीकरण का पहला, सीधा और प्रधान अर्थ है — विश्व का अर्थतंत्र और विश्व बाजार व्यवस्था का निर्माण, जिससे प्रत्येक देश प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को हर हालत में प्रगति और विकास के लिए जुड़ना ही पड़ेगा । सच को हम इस तरह भी समझ सकते हैं कि पहले यह अर्थव्यवस्था — 'जनरल एग्रीमेंट ऑफ टैरिफ एंड ट्रेड्स' जिसे 'गैट' कहते हैं, के जरिए यह प्रक्रिया चलाई जा रही थी । लेकिन अब इसकी जगह विश्व व्यापार संगठन ने ले ली है । भूमंडलीकरण का दुसरा अर्थतंत्र और बाजार की जरूरतों के आधार से संचालित —नियंत्रित करना । इस संचालन तंत्र में टेंगडी मारनेवाले राष्ट्रों की स्वायत्तता और प्रभुसत्ता से निबटने के लिए अमेरिका के नेतृत्व में 'युरोपीय संघ' का निर्माण और जापान का शक्तिशाली गठजोड़ — भरा वर्चस्व, आज इसी गठबंधन की ओर लपक रहा है । भूमंडलीकरण का तीसरा तात्पर्य है — कंप्यूटर, इंटरनेट और मीडिया क्रांति के जरिए संसार के समुदायों, राष्ट्रों, संस्कृतियों और व्यक्तियों के बीच उभरते तनावों, संघर्षों, दूरियों, मतभेदों, विरोधों, द्वंद्वों को निरंतर कम —से —कम करने का प्रयत्न करना ।

भूमंडलीकरण और संस्कृति

आज विश्व एक ऐसी जटिल और खतरनाक अवस्था से गुजर रहा है की भूमंडलीकरण एक शब्द नहीं रहा — एक संस्कृति है । वृद्ध पूँजीवाद और नवउदारवाद की विचारधारा ने सभी परंपरागत प्रतिमान ध्वस्त कर दिए हैं । भूमंडलीकरण का रिश्ता नवसाम्राज्यवाद से है । 'साम्राज्यवाद' पुस्तक में (१९७१) जॉर्ज लिचीम का विचार था कि साम्राज्य के अनेक चेहरे हैं — छवियाँ। इन छवियों का अनुभव तो किया जा सकता है, लेकिन यथार्थ रूप में ठीक ठीक परिभाषित नहीं किया जा सकता । भूमंडलीय अवस्था में पूँजी का वर्चस्व पुरानी संस्कृति को मिटाकर नई संस्कृति की स्थापना करता है । असल में, हर तकनीक एक संस्कृति को साथ लाती है । फिर वर्चस्व की इच्छा आर्थिक से ज्यादा सांस्कृतिक होती है जिसे साम्राज्यवाद, अतिसाम्राज्यवाद, नवसाम्राज्यवाद, सांस्कृतिक नवसाम्राज्यवाद के संदर्भ में यों ही टाला नहीं जा सकता । आज हम नस्लवाद — जातिवाद, क्षेत्रवाद की संस्कृति के कई रंग साफ देख रहे हैं । यह बार बार कहा जाता है की उपनिवेशवाद का तो अंत हो गया है लेकिन साम्राज्यवाद का अंत नहीं हुआ है, क्यों की गरीब देशों की पूँजी अमीर देशों की ओर बरबस जा रही है और अमीर देशों में इसके जाने का खास अर्थ है । आज की विश्व बाजार व्यवस्था में राष्ट्रीय पूँजी और आंतरराष्ट्रीय पूँजी की पारस्परिकता इतनी बढ़ी है की दोनों एक हो गए हैं। भारत में अंग्रेजी समाज ने दो काम जरूर किए —

परंपरागत भारतीय समाज व्यवस्था का संहार तथा पश्चिमी ढंग की समाज व्यवस्था संस्कृति की दृढ़ता से महत्त्व — प्रतिष्ठा । भारत में समुद्र और भाप के इंजनों से उतरे साम्राज्यवाद ने जो काम अधुरा छोड़ा था उसे नवसाम्राज्यवादी संस्कृति पूरा कर रही है । शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद अमेरिकी पूँजी पर टिकी बाजार व्यवस्था को विद्वानों ने 'नवउपनिवेशवाद' नाम दिया और गरीब देशों को अमेरिकी नवपूँजीवाद की कठपुतली कहा । कौन नहीं मानता है की विदेशी पूँजी शोषण करते हुए ही 'विकास' करती है । और विश्व बाजार से जुड़ने की विवशता पराधीन बनाती है ।

हिंदी के रामविलास शर्मा जैसे चिंतक निरंतर कहते हैं की विश्व बाजार व्यवस्था के साम्राज्यवाद से भारत को मुक्त कर लेना चाहिए । आर्थिक निर्भरता देती क्या है ? दीनता और परवशता । औद्योगिक समाज का उत्तर औद्योगिक समाजों में बदलना पश्चिम की नई तकनीकी क्रांति से संभव हुआ, लेकिन अविकसित देशों पर वर्चस्व का तरीका नया रूप लेकर आया । डैनियल बेल ने विस्तार से द कमिंग ऑफ पोस्ट इंडस्ट्रियल सोसायटी (१९७४) नामक पुस्तक में इस बदलाव की तार्किक व्याख्या प्रस्तुत की है । उत्तर औद्योगिक समाज के प्रबंधन में नई समस्याओं को जन्म दिया । अब तक उपेक्षितों — वंचितों परिधि पर खड़े लोगों को हक माँगने का मौका प्रदान किया ।" डैनियल के इस विचारपूर्ण कथन में नवसाम्राज्यवाद या उत्तर— साम्राज्यवाद की अर्थगत गूँजो का एक बड़ा अर्थ —संदर्भ है । उत्तर साम्राज्यवाद ने पूँजी, विज्ञान और तकनीक के मेल से सेवा उत्पादक व्यवस्था में उस संस्कृति को जन्म दिया है जिसमें पुरानी विचारधाराओं का अंत था और यह वर्चस्व भूमंडलीकरण की संस्कृति को नई अवधारणाओं में रूपांतरित कर देता है ।

नए पूँजीवाद में 'श्रम' का 'सेवा' में बदलना किसी बड़े खतरे की घंटी नहीं है क्या ? पर्यावरण प्रदूषण, जलप्रदूषण, उपनिवेशों में भूखमरी और हत्या, युद्ध, आतंकवाद, सांप्रदायिकता नवीन साम्राज्यवादी संस्कृति के वे लक्षण या सिस्टीम हैं जिन्होंने खास तरह के भय को जन्म दिया है । पुराने इतिहास का अंत नए भय के युग का आरंभ नहीं है क्या ? उत्पादक शक्तियों का वेस्टेज और मौजूदा स्रोतों के दोहन से उत्पन्न नाश । पुरी दुनिया एक शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, हर माल, हर वस्तु, हर विचार बिकाऊ । इसीलिए भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ विदेशी पूँजी का प्रवेश बढ़ा और बाजारवाद के तर्क पैदा हुए । इन तर्कों ने 'ग्लोबलाइजेशन' के 'ग्लोबल क्लचर' की जड़ों को खाद पानी दिया । रिचर्ड जे. बार्नेट ने अपनी ग्लोबल रीच पुस्तक में भूमंडलीयता का आज का वह ब्रम्ह ज्ञान माना है — जिसे बहुराष्ट्रीय निगम चलाते हैं — हाँकते हैं । इन बहुराष्ट्रीय निगमों की कृपा से धरती एक गाँव जैसी होकर रह गई है, लेकिन इस गाँव में असमानता, विषमता, बेरोजगारी और भूखमरी कम नहीं हुई है बल्कि कई रूपों में हिंसक होकर बढ़ा ही है । तीसरी दुनिया के देशों में उत्तर सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का खतरा मँडराने लगा है, क्यों की मानव चेतना पर उसका कब्जा 'वर्चस्व' की शक्ल ले रहा है । नई पीढ़ी की भोग —संस्कृति मैडोना, माइकेल जैक्सन की संस्कृति में बदल रही है और भारत मिनी अमेरिका और व्याकुल युरोप बन रहा है । विश्व सुंदरी प्रतियोगिताओं में संस्कृति का नया सौंदर्यशास्त्र, समाजशास्त्र झाँक रहा है । यही है न मुक्त देह का नवरीतिवादी अप्सरावाद । यह अप्सरावाद हमारे घरों में घुस चुका है । स्त्री देह से खेलनेवाला समाज संगीत की संस्कृति में सेक्स का छौंक लगा रहा है ।

मीडिया क्रांति की नवसांस्कृतिक साम्राज्यवाद शक्तियों ने विश्वभर के नए सृजन चिंतन को अपूर्व अनुभव के मोड़ दिए हैं । वृहद पूँजीवाद वैश्विक —संस्कृति के बाजारवाद ने सन १९८० के बाद की हिंदी कविता के पुरे कथ्यात्मक तेवर, ज्ञानात्मक संवेदना तथा संवेदना से उत्पन्न अनुभूति प्रेरणा को भीतर बाहर से बदला है । पूँजी, ज्ञान और मीडिया ने मिलकर जीवन के सभी पैराडाइम शिफ्ट कर दिए हैं — और 'फ्यूचर शॉक' यह कि कविता को बाजार बना दिया है । कविता का मनुष्य भीतरी तनावों — यातनाओं — विद्रूपताओं के साथ बाजार में खड़ा है । हर पारंपारिक वर्जना का नैतिक हो या धार्मिक, यहाँ निषेध है । 'कबिरा खड़ा बाजार में' वाला समय नहीं रहा — अब तो पुरा केंद्रवाद ही परंपरागत मूल्यों का टूट गया है । इतिहास का अंत, कर्ता का अंत, विचार का अंत, महाख्यानों का अंत यह 'अंतवाद' का युग है । इस 'अंतवाद' ने अपनी भस्म से विराट संस्कृति उद्योग (कल्चर स्टडी, जेंडर स्टडी, फेमिनिज्म, ब्लैक लिटरचर, दलित — साहित्य आदि) को जन्म दिया है । कविता एक तरह के नवउपनिवेशवाद के घेरे में आ गई है । समकालीन कविता के सामने सबसे बड़ा संकट संस्कृति उद्योग ने पैदा किया है । यह संस्कृति उद्योग फंतासी का संसार रचता है — मायावी यथार्थ से छलता है । मास मीडिया पॉपुलर कल्चर परोस रहा है । बाजार ने कविता की कीमत को उपभोक्तावादी संस्कृति से नाभि — नाल कर दिया है । कविता की पठनीयता मरी है और बाजार प्रायोजित कविता, उपन्यास, आलोचना का चक्र चल पड़ा है । हर साहित्य की सांस पर पब्लिशिंग हाउसों का कब्जा है । 'कविता का अंत', 'उपन्यास का अंत', 'आलोचना का अंत' एक विचारहीन घोषणा है । संजय कुंदन की कविता 'एक और कवि' में : हर नए मौसम के साथ /कमीज की तरह /विचार बदलता हुआ /पान की तरह /कवियों का इतिहास चबाता हुआ पाठक आलोचक है ।

प्रायोजित कविता, प्रायोजित आलोचना ने कविता, उपन्यास, नाटक को बाजार के अनुकूल बनाने का खेल शुरू किया है । आज की विभाव दशा है नव —साम्राज्यवाद से प्रेरित नव—टेक्नॉलॉजी, एडवर्टाइजमेंट मेथड और सेक्स का जादू

। इधर बद्रीनारायण, अरूण कमल, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, कुमार अंबुज, निलय उपाध्याय, संजय कुंदन से लेकर अनामिका तक — बाजार ने अपना हाथ बढ़ाया हुआ है। इनकी कविताओं में बार — बार बाजार की उपस्थिति बड़ी है। उत्तर सामाजिक समाज में निलय उपाध्याय की कविता बाजार की सुविधाओं पर वक्तव्य देती है : मकड़ी / जैसे खुद बुने जाल में दम तोड़ देती है / सुविधाओं के पीछे पागल/दम तोड़ देगी दुनिया/बाजारवाद से निर्मित सुविधाएँ जीवन को लील रही हैं/जीवन में 'घर' खो गया है/यह वही 'घर' है जिसे अज्ञेय जी, केदारनाथ सिंह आदि खोजते रहे/लेकिन वह 'घर' नहीं मिला — मरुथल जहाँ जलहरी में देवता मर रहे हैं — जलहरी सूख रही है। भूमंडलीय बाजार में मंगलेश डबराल पाते क्या है : यह बाजार एक ठोस आध्यात्मिक आधार है / इसलिए चमत्कारों का उत्पादन सबसे बड़ा व्यापार है। पुरी दुनिया एक शॉपिंग कॉम्प्लेक्स में बदल गई है और हम 'ग्लोबल मार्केट' में हैं। राजेश जोशी की कविता 'संयुक्त परिवार' एक व्यंग्य है : सुख — दुख में भी पहले की तरह इकट्ठे नहीं होते लोग। सब बेचैन भाग रहे हैं — बाजार ने पड़ौसी तक को 'अजनबी' बना दिया है। इस गंभीर संकट पर बद्रीनारायण की यातना बढ़ती है : कोई रोम बचाएगा। कोई मदीना। कोई चॉंदी बचाएगा कोई सोना। मैं निपट अकेला। कैसे बचाऊँगा तुम्हारा प्रेमपत्र। प्रेम पर सांस्कृतिक आर्थिक संकट है। कुमार अंबुज ने सांस्कृतिक संकट को लेकर लिखा है : वे चाहते हैं विस्मृत कर दूँ मैं अपना जन्मस्थान अपनी भाषा/भूल जाऊँ अपनी नदी का नाम और उसका संगीत / भूमंडलीकरण बाजारवाद ने संस्कृति, साहित्य, इतिहास, धर्म, दर्शन, देश प्रेम की स्मृति को परंपरा को मिटाने का बीड़ा उठाया हुआ है। क्यों की स्मृति को मिटाकर ही हमें विस्मृति के अंधकार में धकेलकर 'ग्लोबल मैन' बनाया जा सकता है। राजेश जोशी 'अहद' कविता में कहते हैं कि इस होटल में संस्कृतिकर्मियों में ग. म. मुक्तिबोध, परसाई जैसे लेखक आते थे — मगर अब और तेजी से बदल रही थी बाजार की शक्ल। सिकुड़ रहीं थीं बतियाने और गप्पे मारने की जगहें/ लगता है आसमान पर बैठा दर्जी। काट काटकर छोटा करता जाता है हमारे दिन का थान / जहाँ होटल था अब वहाँ चमचमाते जूतों की एक अलीशान दुकान है / अजमल कमाल ! जहाँ चमकदार शब्द भरे थे अब वहाँ जूते भरे हैं — यही है बाजारवाद का समय। बाजारवाद ही पर्यावरण का उजाड़ है — अज्ञेय जी को पता है कि नंदा देवी के वन पर किसकी कुल्हाड़ीयाँ चल रहीं हैं। पर्यावरण का संकट बाजारवाद ने पैदा किया — तीर्थों, पवों, उत्सवों को उजाड़ दिया है। भारतीय जीवन की वह कालिदासिय लय तोड़ दी है जिसे लेकर हम जीते आए थे। कविता में कामधेनू, कल्पवृक्ष, कुबेर, यक्ष, फूल, रस, रागिनी सब खो चुके हैं — शेष बचा है बाजारवादी संस्कृति का भोगवाद। हिंदी कविता बाजारवाद के प्रतिरोध में लिखी जा रहीं हैं — उसमें चिड़चिड़ापन लिए हुए विवश खिसियाहट भरी हुई है। यहाँ कविता के लगभग सभी आंतरिक मूल्य मूढ़ता हर तरह के अन्याय से जुझती कविता है। वह हर तरह के धर्म और राजनीति संवाद पर 'विमर्श' का नया 'पाठ' रच रही है।

उपन्यास हमारे समय के सबसे भरोसेमंद लेखन के रूप में उभरा है। वह हमें भूमंडलीकरण की सच्चाइयों के पास ले जाता है तथा हमारी सोच में नई हलचल उत्पन्न करता है। मुझे चॉंद चाहिए उपन्यास में सुरेंद्र वर्मा के हाथों राधिका शर्मा का वर्षा वशिष्ठ होकर एक बड़ी हस्ती हो जाना क्या व्यंजित करता है ? पुरा उपन्यास वर्षा वशिष्ठ की व्यावसायिक निपुणता का बाजारवाद में खड़ा सच है। इधर बाजारवाद की ताकतों ने जीवन का अनुक्रम बदल दिया। अब धन पिशाच एक व्यक्ति एक सत्ता नहीं है — अंतरराष्ट्रीय कंपनियाँ हैं, कंप्यूटर युग का कल्चर है। हमारे रचनाकारों की ज्ञान संवेदना पर इस राष्ट्रीय — अंतरराष्ट्रीय हवा का गहरा असर पड़ा है। इक्कीसवीं शताब्दी की युवती अपने शर्तों पर जिएगी। उसे घर — परिवार, पति की मान मर्यादा से कुछ लेना देना नहीं है। सभी मर्यादाएँ उसके लिए धिनौने पाखंड हैं और सभी भोग उसके संकल्प हैं। इसलिए नारीवाद और दलित साहित्य में सौंदर्यशास्त्रीय — काव्यशास्त्रीय 'विमर्श' के लिए कोई जगह ही नहीं बची है। इसलिए परंपरागत उपन्यास को खदेड़कर नए ढंग का लेखन या तो स्त्रियों कर रहीं हैं या फिर दलित। यह परिवर्तनकारी उपन्यास का सार्थक लेखन है। कृष्णा सोबती, नासिरा शर्मा, गीतांजलीश्री, अलका सरावगी, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग राजी सेठ आदि के लेखन में अनुभव की नई आग भी है और नारी यातना को सामने लाने वाले शिल्प का हुनर भी है। उपेक्षितों, वनवासियों, गिरिजनों की कथा — व्यथा का यह एक नया सृजन लोक है। हाशिए पर पड़े लोगों को केंद्र में लाने की पहल प्रेमचंद कर चुके थे और उपन्यास इतिहास के नायकों — कुलीनों के महाखानों को त्यागकर लोक समाज की ओर बढ़ रहा था। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास कही ईसुरी फाग बुंदेलखंड के लोक जीवन पर है। इन उपन्यासों में संपूर्ण जातीय परंपरा के साथ सदियों से अभिशापित समाज की व्यथा — विडंबना का चित्रण है। परंपरा की रूढ़ियाँ, विचारधाराओं के ठहराव, सामंती समाज का क्षरण, जाति व्यवस्था की विसंगतियों और सत्ता — राजनीति से जुड़ी प्रश्नाकुलताएँ हैं। यह भी दिलचस्प स्थिति है की बाजार प्रलोभन के कारण राम और कृष्ण, विवेकानंद और गांधी से जुड़े उपन्यास ऐतिहासिक इतिवृत्तों, विवरणों में बदलते गए हैं।

यथार्थ अनुभवों की ज्ञानात्मक संवेदना से बना — बना कथ्य भगवानदास मोरवाल के काला पहाड़ तथा असगर वजाहत के उपन्यास सात आसमान में नई आग के साथ आया है। मुस्लिम परिवारों की त्रासद विडंबना और विस्थापन की

पीडा का इतिहास है । मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, मृदुला गर्ग, अलका सरावगी तथा गीतांजलीश्री के उपन्यास में समय — समाज का सांस्कृतिक संकट और संकट से उत्पन्न मूल्यों का क्षरण सभी नारी पात्रों के चित्रण में दिखाई देता है । नागार्जुन, कमलेश्वर, शिवप्रसाद सिंह, रमेशचंद्र शाह, गिरीराज किशोर जैसे नामी कथाकार भी इस तथ्य को लेकर बेहद चौकन्ने हैं कि बाजार आज के समय की सर्वाधिक ताकतवर शक्ती का नाम है । 'धारावाहिक' संचार — प्रौद्योगिक की कला का कमाल दिखा रहे हैं । उधर कमलेश्वर का कितने पाकिस्तान उत्तर आधुनिक राक्षसी पूँजीवाद की पुरी पोल खोलकर रख देता है । इधर बाजार के आक्रमण को परमगति के उपन्यासकार भगवानसिंह ने 'अजब एक फैला हुआ जाल' कहकर लिखा है ।

निष्कर्ष —

आज पुरा भारतीय समाज जिन राजनितिक, सांस्कृतिक मूल्यों के क्षरण के बीच फँसकर हॉफ रहा है — उसमें क्षयग्रस्त, अतीत है — देश के बौद्धिक पतन की एक अकथनीय गाथा है । समाज में दलित, आदिवासीख नारी समूह हाशिए से केंद्र की ओर बढ़कर हजारों सालों की दासता से लड़ाई लड़ रहे हैं । हिंदी में तुलसीराम की मुर्दहिया जैसी तमाम आत्मकथाएँ जातिवाद की विषमताओं को लेकर सुलग रहीं हैं । लेकिन उत्तर पूँजीवाद के गर्भ से पैदा विनाशकारी नव उपनिवेशवाद थमने का नाम नहीं लेता है । इधर हिंदी आलोचना में मार्क्सवाद, फ्रायडवाद, माओवाद के वर्ग भी ढह रहे हैं ।



सन २०१० के बाद की हिंदी कविता में भूमण्डलीकरण

डॉ. नाजिम शेख

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

श्री. विजयसिंह यादव कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,
पेठ-वडगाव जि. कोल्हापुर.

वर्तमान का युग भूमण्डलीकरण का युग है। सोवियत युनियन के विघटन के पश्चात पूरे विश्व में पूंजीवादी नई व्यवस्था को जन्म दिया। पूंजीवाद ही मनुष्य के जीने का साधन माने जाने लगा। पूरे विश्व में खुली अर्थव्यवस्था को स्वीकारा गया। इसे ही ग्लोबलाइजेशन कहा गया, यह पूंजीवादी आर्थिक तंत्र का ही एक नया रूप था जिसे विश्व के आर्थिक विकास के रूप में स्वीकारा गया। उदारवाद के रूप में इस तंत्र ने पूरे विश्व की आर्थिक व्यवस्था को अपने कब्जे में लेना शुरू किया। बाजारवाद भी एक नई अवधारणा पूरे विश्व में पूरी गति से विकसित हुई। पूंजीवादी इस व्यवस्था ने अर्थव्यवस्था के साथ-साथ सभी देशों की सांस्कृतिक, सामाजिक तथा नैतिक मान्यताओं को भी प्रभावित किया। देशों की अपनी-अपनी पहचान मिटती गई तथा पूरी दुनिया एक 'ग्लोबल विन्टेज' के रूप में सामने आई। पूंजीवादी इस नई व्यवस्था से भारत अछुता नहीं रहा। देखते ही देखते हमारे देश से रीति-रिवाज, खान-पान, वेशभूषा, तीज-त्यौहार, उत्सव आदि पर इसका गंभीर रूप से प्रभाव दिखाई देने लगा। कुछ ही दिनों में हमारी सांस्कृतिक पहचान समाप्त होने लगी और पूरी दुनिया एक रूप में दिखाई देने लगी।

साहित्य समाज से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। समाज में होनेवाले परिवर्तन का असर साहित्य पर भी दिखाई देने लगा। समकालीन कविता पर भी इस नए आर्थिक बदलाव, उदारवादी खुली अर्थव्यवस्था, बाजारवाद, उपभोगतावाद का सीधा असर हुआ। इस कविता में भारतीय जन-जीवन को अत्यंत सकारात्मक रूप से अभिव्यक्ति मिली। एक ओर भूमण्डलीकरण से हो रहे फायदों को भी सकारात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया तो दूसरी ओर इस से आम आदमी के हुए नुकसान का भी पर्दाफाश किया गया। विश्णु खरे, नरेश सक्सेना, भागवत रावत, चंद्रकांत देवताले, लीलाधर जगूडी, अशोक वाजपेयी, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, उदय प्रकाश, आदि कवियों ने वर्तमान भी इस समस्या पर अपनी कविताओं के माध्यम से गहरी चोट की।

समकालीन हिंदी कविता में अपने आस-पास के जीवन को सूक्ष्मता से रेखांकित किया गया। आजादी के साठ वर्ष के पश्चात भी जब सामाजिक वर्गीकरण के ढांचे में कोई सुधार इन कवियों ने नहीं देखा तब भला इन कवियों की लेखनी कैसे चुप रह सकती है -

अंधी है वह
जिह्वा मगर
गूंगी नहीं है व्यवस्था
बोलती बहुत है
वाचाल

लच्छेदार, मुगध करनेवाली भाषा
वाक्यशक्ति से ही तो

नियंत्रित की जाती है जनशक्ति।" (एकांत श्रीवास्तव - नागकेसर का देश यह पृ. ५०)

राजनेताओं ने और वर्तमान की बनी व्यवस्था ने भूमण्डलीकरण को और बढ़ावा दिया। इस का गलत अर्थ में प्रचार और प्रसार किया। समकालीन हिंदी कविता में वर्तमान समाज की सही संवेदना को भी अभिव्यक्त किया गया। तत्कालीन परिस्थिति का ब्योरेवार चित्रांकन इस में दिखाई देता है। भागवत रावत लिखते हैं -

“जब से भूमण्डल नहीं रहा भौगोलिक
चढ़ गया है भूमण्डलीकरण का बुखार
जब से गायब होना शुरू हुई उदारता
फैला प्लेग की तरह उदारतावाद
जब से उजड़ गये गावों-कस्बों और शहरों के
खुली मैदानों के बाजार
घर-घर में घुस गया नकाबपोश
बाजारवाद”(भागवत रावत-देश एक राग है- पृ. २३)

कवि वैश्वैकरण को समाज का बुखार मानते हैं जो कि आर्थिक साम्राज्यवाद के ताप का परिणाम है। इसी के कारण हमारे देश के गांव, कस्बे और शहर उजड़ गए हैं। हर घर में आज बाजारवाद दिखाई देने लगा है, मानव भी मानो एक प्रोडक्ट ही बन कर रह गया है। रामप्रकाश कुशवाह लिखते हैं -

बाजार में आदमी बिकता ही है अपने लिए
या फिर बचाने के लिए अपने को
अपनों की जगह
कभी कभी तो वह सपने खरीदने के लिए
सपने बेच रहा होता है" (रामप्रकाश कुशवाह - हँस-मई २०१० पृ. ५३)

वर्तमान की इस बाजारवादी व्यवस्था के कारण मनुष्य की सोच भी बाजार बन गई है। वर्तमान का मनुष्य बाजार में मानों बिकता जा रहा है। वह अपने-आप को बेचकर भी अपने को बचाए रखने का प्रयास कर रहा है। उसके लोभ ने उसे बाजार बना दिया है। संवेदनाएं मानों खत्म हो चुकी हैं। मदन कश्यप लिखते हैं -

“खरीद फरोख्त के इस युग में
निष्ठाएं और प्रतिबद्धताएं ही नहीं
आत्माएं और संवेदनाएं भी बिक रही हैं
सस्ते में बिक गई जम्हूरियत
हम अब और क्या-क्या बेचेंगे
क्या-क्या खरीदेंगे” (मदन कश्यप - नीम रोशनी में निर्बल पाखंडी पृ. ७७)

वर्तमान का मानव इतना संवेदनहीन हो गया है कि न जाने वह क्या-क्या बेच डालेगा। कवि कहते हैं बाजारवादी व्यवस्था ने हमें अपनी निष्ठाएं एवं प्रतिबद्धताओं को तक बेचनेपर मजबूर किया है साथ ही हमारी आत्माएं और संवेदनाएं भी बिक रही हैं। हमारे जनतंत्र को भी मानों हम ने बेच दिया है। और आनेवाले युग में हम न जाने क्या क्या बेचने और खरीदने वाले हैं। कवि ने मनुष्य की उस प्रवृत्ति को उद्घाटित किया है जिस में सही अर्थ में वह बाजारवादी बन गया है। दुनिया मानों गांव में सिमट गई है निर्मला गर्ग लिखती हैं -

“अब जब कि
दुनिया एक गांव बनने जा रही है
और एक विश्व बाजार है जिस में
हम सब बिला जाएंगे
कितना जोखिम भरा शब्द हो गया है भरोसा
और उससे भी बड़ा जोखिम है उसे बचाना” (निर्मला गर्ग - सफर के लिए रसद)

भूमण्डलीकरण के कारण जन-सामान्य की सोच में तेजी से परिवर्तन आ रहा है। मनुष्य की भावनाएं एवं मूल्य भी इस के गिरफ्त में हैं। पूरी दुनिया का गांव में तबदील होना यह मनुष्य के छोटे बनने की निशानी है। आज के इस युग में कोई किसी पर भरोसा नहीं कर रहा है हर एक अपने आप को बचाने की फिक्र में है। निर्मला गर्ग जी की यह पंक्तियाँ वर्तमान भारतीय समाज के यथार्थ स्थिति को रेखांकित करती हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भूमण्डलीकरण के इस युग में सामाजिक अवमूल्यन, संवेदनहीनता निरंतर बढ़ती जा रही है। मनुष्य की संवेदनाएं ही खत्म होती जा रही हैं, मानवीय रिश्तों की ऊष्मा ही थंडी पड़ने लगी है तथा पूंजीवाद और उदारीकरण के बीच वर्तमान का मानव पीस रहा है। एक ओर बाजारवाद की चकाचौंध भरी दुनिया है तो दूसरी ओर दो वक्त की रोटी को तडपता, अपने-आप को बेचनेपर तुला मनुष्य दिखाई दे रहा है। समकालीन हिंदी कवियों ने समाज के इन दोनों पक्षों का चित्रांकन अत्यंत सटिकता से अभिव्यक्त किया है। बाजारवाद के इस दौर में अपने आप को सभी संकटों से बचाते मनुष्य का, उस की जिजीविषा का, उस के जीने की जद्दोजहद का सही और सूक्ष्म चित्र इस कविता में अंकित हुआ है। सामाजिक विषमताएँ, राजनीतिक हातकंडे, महानगर की भयानकता, युवकों की बेकारी, रोज बढ़ती सांप्रदायिकता, धर्मांधता आदि का पर्दाफाश इन कवियों ने तिखे व्यंग्य के माध्यम से किया। भूमण्डलीकरण की विद्रुपता को इन कवियों ने अत्यंत ईमानदारी से अभिव्यक्त किया है। कहा जा सकता है समकालीन हिंदी कविता समाज में एक नई उम्मिद, नया विश्वास, मनुष्यता और मानवीय प्रेम को नए सिरे से उजागर करती है।

इक्कीसवीं सदी में भूमण्डलीकरण और मीडिया

आर.अरुणा

शोधार्थी

डॉ.जी.शान्ति

निर्देशिका

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग

श्री अबिरामी इल्लम

2/179B2 वनप्रस्था रोड, वडवल्लि

कोयम्बतूर - 41 तमिलनाडु

24 जुलाई 1669 में अर्थात् बीसवीं शती के अंतिम दशक में 'ग्लोबलाइजेशन' अर्थात् भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, बाजारीकरण जैसे शब्द सुनाई देने लगे। वैश्वीकरण शब्द ने अपनी मूल संकल्पना से हटते हुए नये संदर्भों के साथ नये अर्थ ग्रहण किए। भारतीय संस्कृति में वैश्वीकरण शब्द वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से संपृक्ता था। लेकिन समय की गति के साथ इसमें और भी नव-नवीन अवधारण जुड़ रहे हैं। भूमंडलीकरण शब्द में 'भू' पर अर्थात् 'पृथ्वी' पर अपनी-अपनी राजनीतिक और आर्थिक प्रभुसत्ता के साथ बसे हुए देशों, राष्ट्रों का मंडलीकरण, जिसके कारण राष्ट्र-राष्ट्र के बीच सभी प्रकार के व्यवहार सहज सुलभ हों। आगे चलकर हर राष्ट्र की प्रभु सत्ता में राजनीतिक और आर्थिक व्यवहारों ने शक्ति का रूप धारण कर लिया। जिसके कारण राष्ट्र-राष्ट्र की राजनीतिक और आर्थिक महत्वाकांक्षाएँ प्रबल होती गयी। इसने एक ऐसे विश्व अर्थतंत्र का और विश्व बाजार का निर्माण किया, जिसमें प्रत्येक राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था को अनिवार्य तौर से जुड़ना ही था।

इसका प्रधान अर्थ है - विश्व में एक ऐसे अर्थतंत्र की संरचना और वैश्विक बाजार का निर्माण करना जिसके अंतर्गत प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को अनिवार्य रूप से जुड़ना होगा। भूमण्डलीकरण का दूसरा अभिप्राय दुनिया की राजनीति को विकसित पूँजीवादी देशों तथा शक्ति संपन्न राष्ट्रों के फायदे के अनुसार संचालित करना एवं अमेरिका की साम्राज्यवादी नीति को बनाए रखना।

वैश्वीकरण के अंतर्गत कंप्यूटर, इंटरनेट तथा संचार के अन्य साधनों के माध्यमों से विश्व में मानव समुदाय के बीच संस्कृतियों-सभ्यताओं तथा विचारों के फासलों में लगातार कमी आती जा रही है। यह एक 'विश्व ग्राम' या 'ग्लोबल विलेज' की परिकल्पना को साकार रूप दे रहा है। भूमण्डलीकरण का विशेष अर्थ सैटेलाइट टी वी. चैनलों की मदद तथा मीडिया के संजाल द्वारा भूमण्डलीय संस्कृति की संरचना करना है।

भूमंडलीकरण की परिभाषा

भूमंडलीकरण ऐसे विचार और व्यवहार का नाम है जो अपनी सार्वभौमिकता के जरिए व्यक्तियों और समुदायों को उनकी पारिवेशिकता का अतिक्रमण करने का आश्वासन देता है।

- राजनीति भास्त्री

(डॉ.श्यामबाबू शर्मा, भूमण्डलीकरण और समकालीन हिन्दी कविता, 110/138 मिश्रा पैलेस, जवाहर नगर, कानपुर, 2014, Pg.18)

भूमंडलीकरण की विशेषताएँ

भूमंडलीकरण मनुष्य को उपभोक्तावादी बनाने के लिए यह पहले व्यक्ति की वैचारिकता पर कब्जा करता है। भूमंडलीकरण को सबसे अधिक खतरा विचार से ही नजर आता है। इसकी ओछी नीति रही है कि समाज छोटी-छोटी लड़ाइयों में उलझा रहे और उसे सोचने-समझने का विवेक न रह जाए। मीडिया के विभिन्न घटकों द्वारा यह बाजार पर कब्जा कर लेता है तथा पूरी दुनिया को एक वैश्विक बाजार में तब्दील करने का प्रयत्न करता है। उपभोक्तावादी संस्कृति का सृजन विज्ञापन के माध्यम से होता है। भूमण्डलीकरण ने जहाँ एक ओर लोगों के जीवन को भौतिक समृद्धि की ओर ऊँचा उठाया वहीं इसका दूसरा पक्ष गरीबी तथा भुखमरी को लगातार बढ़ाता जा रहा है। यह हमारे परंपरागत कुटीर उद्योगों तथा हस्तकला को क्षरित करता जा रहा है। बड़ी-बड़ी मशीनें सैकड़ों आदमियों का काम कम समय तथा कम लागत में कर पाने में सक्षम हैं।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में देश एक दूसरे पर परस्पर निर्भर हो जाते हैं और लोगों के बीच की दूरियाँ घट जाती हैं। एक देश अपने विकास के लिए दूसरे देशों पर निर्भर करता है।

भूमंडलीकरण दुनिया भर में लोगों, कंपनियों और सरकारों के बीच बातचीत और एकीकरण की सेतु है। परिवहन और संचार प्रौद्योगिकी में प्रगति के कारण वैश्वीकरण बढ़ गया है। बढ़ती वैश्विक बातचीत के साथ अंतरराष्ट्रीय व्यापार, विचारों और संस्कृति की वृद्धि होती है।

वस्तुएँ जिन्हें हम अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं। जैसे भोजन, कपड़े, फर्नीचर, बिजली का सामान या दवाइयाँ, आराम और मनोरंजन आदि। भूमंडलीय आकार के नेटवर्क से हम तक पहुँचती हैं। देश के पास हो

सकता है और इस पर वास्तविक प्रक्रिया किसी अन्य स्थान पर हो सकती है और हो सकता है कि उत्पादन के लिए पैसा एक बिल्कुल अलग देश मिल सकता है इसी प्रकार विश्व के विभिन्न प्रदेशों में बसे लोग एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। उनकी परस्पर निर्भरता केवल वस्तुओं के उत्पादन और वितरण तक ही सीमित नहीं है। वे एक दूसरे से शिक्षा, कला और साहित्य के क्षेत्र में भी प्रभावित होते हैं। देशों और लोगों के बीच व्यापार, निवेश, यात्रा, लोक संस्कृति और अन्य प्रकार के नियमों से अंतर्क्रिया भूमंडलीकरण की दिशा में एक कदम है।

जनसंपर्क

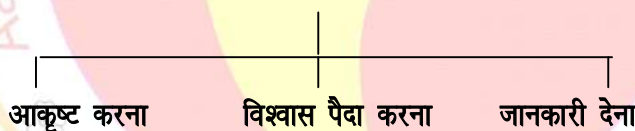
वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण की नींव या आधार जनसम्पर्क ही है। आजकल हर ओर जनसंपर्क की ही चर्चा है और जीवन के हर क्षेत्र में जनसंपर्क की विधा का जमकर इस्तेमाल किया जा रहा है। परंपरागत रूप से चुनाव के दौरान विभिन्न राजनीतिक दलों के उम्मीदवार तो जनसंपर्क करते ही हैं साथ ही आधुनिक कार्पोरेट क्षेत्र भी जनसंपर्क के कौशल का खूब प्रयोग कर रहा है। जनसंपर्क का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी की मानव सभ्यता। प्राचीन काल में राजा महाराजा लोग, प्रजा से संपर्क करने के लिए और सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए जनसंपर्क की मूल शैली का ही प्रयोग किया करते थे। प्राचीन काल के राजाओं के दरबार में कुछ कवि और लेखक हुआ करते थे जो राजा की प्रशस्ति लिखा करते थे। इसी प्रकार राजा द्वारा कुछ दूत या चारण भी नियुक्त किए जाते थे जो पूरे राज्य भर में घूम-घूम कर राजा की सकारात्मक छवि का निर्माण करते थे। कहा जाता है कि प्राचीन मिस्त्र के राजाओं ने जनसंपर्क की विभिन्न विधाओं का जमकर इस्तेमाल करते थे। यह सब जनसंपर्क की विधा का प्रयोग ही था क्योंकि इनकी सहायता से वे अपनी छवि का निर्माण करना चाहते थे। प्राचीन काल में हेलेनिस्टिक सभ्यता काफी विकसित थी। कहा जाता है कि यह अपने समय की सबसे विकसित सभ्यता थी। इस सभ्यता के दौरान शरीर विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, पुस्तकों के प्रकाशन और कुछ वैज्ञानिक उपकरणों का विकास हुआ। विद्वान मानते हैं कि हेलेनिस्टिक सभ्यता के विकास में जनसंपर्क का अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जनसंपर्क के द्वारा तत्कालीन शासकों ने जनता के साथ बेहतर तालमेल और संवाद स्थापित किया जिस कारण सभ्यता, विकास के पथ पर अग्रसर हो सकी।

“Public Relation is the planned effort to influence opinion through good character and responsible performance, based upon mutually satisfactory two way communication.”

Scot M.Cutlip and Allen H.Center

डॉ. सुजाता वर्मा, जनसंचार जनसम्पर्क एवं विज्ञापन, ज्ञानोदय प्रकाशन, पी.रोड., कानपुर, २००७९,

जनसम्पर्क के कार्य



जन-सम्पर्क का कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत है। यह हमारे व्यक्तिगत जीवन से कारपोरेट जीवन तक जुड़ गया है। आज व्यक्ति को सर्वाधिक लोग जानते हैं जिसका व्यक्तिगत सम्पर्क सशक्त होता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति जो नित नए सम्पर्कों से कतराता है, समाज से अलग-अलग पड़ जाता है इसके विपरीत एक बहिर्मुखी व्यक्ति अपने जन-सम्पर्क के माध्यम से निरन्तर लोकप्रियता की सीढ़ियों चढ़ता जाता है।

संचार माध्यमों का प्रमुख कार्य है सूचना देना इसलिए 'सूचना तंत्र' शब्द अब संचार माध्यमों का पर्याय बन गया है। सूचना तंत्र का विस्तार हुआ है। वर्तमान संचार व्यवस्था में यदि क्रांति आई है तो सूचना के नए-नए उपकरणों के अविष्कार से सूचनाओं में हर माध्यम की सामाजिक और आर्थिक भूमिकाएँ निहित रहती हैं। यद्यपि अखबारों में या दूरदर्शन में विज्ञापनों का प्रतिशत पचास प्रतिशत से भी ज्यादा रहता है और शेष में से बहुत-सा भाग मनोरंजन या अन्य कार्यक्रमों के लिए भी होता है, लेकिन सच यही है कि उनका बुनियादी लक्ष्य सूचना देना ही है। यद्यपि जनसंचार माध्यमों के प्राथमिक कार्यों में सूचना देने के अतिरिक्त विश्वास पैदा करना, राजी करना, प्रेरित करना है, मनोरंजन करना भी है और संस्कृति का संप्रेषण करना भी है। जनसंचार माध्यम इन कार्यों को भी कर रहे हैं और लेकिन मूल रूप से सूचना प्रदान करने में उनकी रुचि ज्यादा रहती है। यह सूचना चाहे नई खबरों की हो, घटनाओं या हलचलों की अथवा नए-नए उत्पादों से संबंधित हो, लेकिन इतनी बात तय है कि इनमें सूचना की प्रमुखता रहती ही है।

जनसंचार के साधन व प्रकार:

जन संचार के साथ समस्त प्राणियों विशेषकर मानव में संचार की भावना आदिकाल से सतत रूप से सक्रिय रही है। वह अपने विचार-सम्प्रेषण हेतु नित नए माध्यम अथवा साधनों को विकसित करता रहा है।

आदिकाल में विकसित संचार के अनेक साधन वर्तमान युग में अर्थहीन अवश्य हो गए हैं । किन्तु उनका अस्तित्व आज भी है। जनसंचार के साधनों को मूलतः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

- जनसंचार के पारम्परिक साधन।
- जनसंचार के आधुनिक साधन।
- जनसंचार के अत्याधुनिक साधन।

जनसंचार के पारम्परिक साधन

यांत्रिक संचार—साधनों के विकास के अभाव में भारत में लोग विचार—सम्प्रेषण के लिए विभिन्न साधनों का प्रयोग करते थे। इन साधनों को पारम्परिक साधनों के रूप स्वीकार किया गया है। इन साधनों के माध्यम से लोग एक दूसरे से व्यक्तिगत रूप से संवाद स्थापित करते थे। यह संवाद निम्न माध्यमों से सम्पन्न होता था। जैसे : देशाटन, सभा समिति, शास्त्रार्थ, राजकीय घोषणाएँ, नृत्य, संगीत एवं लोक गीत, रंगमंच, मेले या पर्व, लोकनाट्य, लोक गीत, लोक नृत्य, कटपुत्ली आदि।

आधुनिक साधन

वर्तमान में जन—संचार के आधुनिक साधनों में श्रव्य, दृश्य तथा श्रव्य—दृश्य तीनों साधन समुन्नत दशा में हैं। श्रव्य साधनों में रेडियो, टेपरिकोडर व लाउडस्पीकर का प्रमुख स्थान है। दृश्य के अन्तर्गत समाचार—पत्र, पत्रिकाएँ, वीडियो, पोस्टर, पैमप्लेट्स, हार्डिंग्स तथा वेब साइट जन संचार का मेरुदण्ड हैं। श्रव्य—दृश्य की श्रेणी में चल—चित्र, दूरदर्शन तथा कम्प्यूटर, आधारित कुछ प्रोग्राम महत्वपूर्ण हैं। आधुनिक संचार के साधन व्यक्तिपरक न होकर यांत्रिक हैं। वह न केवल तीव्रतर हैं अपितु उनका प्रभाव क्षेत्र भी विशाल है। एक ही माध्यम से एक ही समय में आधे से अधिक दुनियाँ में संदेशों का प्रसारण किया जा सकता है।

जनसंचार के अत्याधुनिक साधन

विज्ञापन, रेडियो, टी.वी. कार्यक्रम, लघु चित्र, देशाटन, भ्रमण, रोडशो, पत्र—प्रकाशन, सूचना पुस्तिकाएँ, प्रदर्शनी व मेले, आमसभा की कार्यवाही का प्रकाशन, जन—समूह को सम्बोधन, व्यक्तिक सम्पर्क, हार्डिंग्स, पोस्टर, समाचार पत्र व पत्रिकाएँ, प्रेस कान्फ्रेंस, विशेष कार्यक्रम, वेबसाइट, कर्मचारियों से संचार हेतु विशेष चैनल, प्रचार साहित्य, सूचना प्रकोष्ठ, गृह—पत्रिकाएँ, क्लोज सर्किट, क्लब, बुलेटिन बोर्ड, वाद—विवाद, आइडिया बाक्स प्रदर्शनियों का आयोजन, रोड शो, पुरस्कार योजनाएँ, फोन सम्पर्क, गृह सम्पर्क, मोबाइल फोन मैसेज, प्रेस कांफ्रेंस, प्रेस—दूर आदि।

संचार तंत्र मीडिया क्रांति

आज का समाज हाइटेक, कंप्यूटर और इंटरनेट का है। नई—नई परिकल्पनाएँ तथा आविष्कार समाज और पूरी मानव जाति को आंदोलित कर रहे हैं। नए—नए संचार माध्यमों और मीडिया जगत ने पूरी दुनिया को समेट कर एक 'विश्व ग्राम' या 'ग्लोबल विलेज' बना दिया है। तकनीक मनुष्य को मनुष्य से जोड़ रही है एवं ग्लोबल विलेज की परिकल्पना को साकार कर रही है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया को उच्च प्रौद्योगिकी और नए—नए संचार माध्यमों से तेज गति मिली है। नई टेक्नोलॉजी ने रेडियो, टी.वी. के पुराने संजाल में बदलाव किया है। आकाशवाणी और दूरदर्शन के माध्यम से कृषि क्षेत्र में पैदावार बढ़ाने के तरीके, जनता में शिक्षा की रोशनी तथा ज्ञान के प्रति जागरूकता के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते थे। दूरदर्शन के पश्चात इसका दूसरा चैनल मेट्रो के नाम से आया। चूँकि पहाड़ी इलाकों में स्थित घरों में टेलीविजन संकेत ठीक से नहीं पहुँच पाते थे अतः केबल टी.वी. का अस्तित्व भारत में आया जो कि आज एक व्यवस्थित उद्योग के रूप में स्थापित हो गया है। संचार क्रांति के क्षेत्र में डिजिटल क्रांति यानी आंकिक क्रांति भी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में बड़ी तेजी से बदलाव ला रही है। विदेशी टी.वी. चैनलों ने भारतीय टेलीविजन को विज्ञापन की लड़ाई का हथियार बना लिया है। सन् 1991 में खाड़ी युद्ध के पश्चात विदेशी चैनलों को भारतीय मीडिया में प्रवेश का रास्ता मिल गया। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का परिदृश्य आज बिल्कुल बदल गया है। राष्ट्रीय तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ दोनों मीडिया की तकनीक के सहारे अपना हित साध रही हैं।

भूमंडलीकरण और मीडिया :

बीसवीं सदी का उत्तरार्ध तथा 21 वीं सदी का उत्तरार्ध उच्चतम तकनीकी विकास का पर्याय बन गया है। 21 वीं सदी के आते—आते विश्व में सूचना के क्षेत्र में अप्रत्याशित क्रान्ति हुई। अत्याधुनिक संचार तकनीकी के विकास से सम्पूर्ण विश्व सिमट गया और विश्व—गाँव की अवधारणा साकार हुई। आज विश्व भर के लोग संचार के तीव्रतर साधनों के द्वारा एक दूसरे के अत्याधिक समीप आ गए हैं। अब न केवल उनकी आवाजों को सुन सकना सम्भव हो सका है। अपितु उनके सजीव चित्रों को और उनके संदेशों को पलक झपकते प्राप्त करना भी सम्भव हो सका है।

जन संचार के विभिन्न माध्यमों ने आज पूरे विश्व को एक सूत्र में बाँध दिया। हाँ, एक जमाना था, एक प्रदेश में घटित घटनाओं को दूसरी जगह पहुँचाना कठिन था, शायद कई लोगों को मालूम ही नहीं पड़ेगा कि कहाँ क्या हो रहा है। लेकिन आज के समाज में मीडिया की अहम भूमिका है। 'मीडिया' एक ऐसा सशक्त साधन है, जो विश्व के एक कोने में घटित घटना को क्षणों में दूसरे कोने तक पहुँचाने की क्षमता रखता है। मीडिया दूरियों को कम करने के साथ-साथ, विश्व को एक मुट्ठी में लार दिया है।

देश एवं समाज के विकास में मीडिया की भूमिका प्रमुख है। धर्म, संस्कृति, राजनीति, साहित्य, कला, अर्थ, व्यापार, विज्ञापन, मनोरंजन, शिक्षा, चिकित्सा, विज्ञान एवं तकनीकी, खेलकूद, कृषि, आदि कोई भी क्षेत्र क्यों न हो मीडिया का सबसे सम्बन्ध है। आज ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहाँ मीडिया का हाथ न हो।

जनसंचार के माध्यमों में विकास हुआ। एक समय ऐसा था। केवल पढ़े लिखे लोग ही इन माध्यमों का उपयोग कर सकते थे। आज तकनीकी विकास ने विभिन्न एपों के रूप में माध्यमों को एक ही मोबाइल में समावेश कर दिया। आज प्रायः सब के पास मोबाइल है। वाट्सप, यूट्यूब, ट्विटर, इन्स्टाग्राम, फेसबुक, फायरफोक्स, लिंकडइन, स्नेपचैट आदि विभिन्न एपों द्वारा सभी वर्ग के लोग अपनी इच्छानुसार विषय को देखते हैं। मोबाइल में दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों एवं आकाशवाणी भी उपलब्ध है। तकनीकी का विकास ही नहीं, सब को तकनीकी ज्ञान का भी विकास हो गया है। ये उपकरण सभी क्षेत्र, विषय के लोगों को आमने सामने ले आता है। जिससे समय एवं श्रम की बचत होती है। कार्य की पूर्ति शीघ्र होती है। जानकारी पाना, लेन देन सब आसान बन गया है। समाचार, मनोरंजन के साथ-साथ ये माध्यम मानव के दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को भी पूरा करता है। उदाहरण के लिए वीडियो कोल के द्वारा बिना पासपोर्ट या वीजा के एक देश से दूसरे देश में रहने वाले व्यक्ति को हम देख सकते हैं उनसे बातें कर सकते हैं अपने विचारों और अनुभवों को बाँट कर सकते हैं। वीडियो कोल द्वारा विदेशों में होने वाली किलासों में भी हम भाग ले सकते हैं। आज कल तो भिन्न-भिन्न देशों में रहने वाले चार लोग कोनफिरेंस मीटिंग वीडियो कोल पर ही रखते हैं। इस से समय और पैसे की बचत होती है। आज कोई भी व्यक्ति अपने परिवार से दूर होकर भी दूर नहीं है।

यह अतिशयोक्ति नहीं है कि सोशल मीडिया एक ऐसा मीडिया है, जिसने भूमंडलीकरण के कार्य को और भी अधिक आसान कर दिया है। वह बाकी सारे मीडिया से अलग है। सोशल मीडिया इंटरनेट के माध्यम से एक वर्चुअल वर्ल्ड बनाता है जिसे उपयोग करने वाला व्यक्ति सोशल मीडिया के किसी प्लेटफॉर्म आदि का उपयोग कर पहुँच बना सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

- डॉ.जितेंद्र वत्स, जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता सर्वांग, डी-5 नियर दुर्गा मन्दिर इन्द्रापुरी, लोनी, गाजियाबाद, 2010
- मीनाक्षी सिंह, जनसंपर्क प्रबंधन, लक्ष्मी गार्डन, गुडगांव, 2008
- डॉ.सुजाता वर्मा, जनसंचार जनसम्पर्क एवं विज्ञापन, ज्ञानोदय प्रकाशन, पी रोड, कानपुर, 2007
- डॉ.रमा नवले, भाषा और साहित्य के विभिन्न आयाम, 311 सी. विश्व बैंक बर्रा, कानपुर, 2011
- मिथिलेश कुमार पांडेय, आधुनिक मीडिया प्रबंधन, हिन्दी पार्क, दरियागंज, नई दिल्ली – 002, 2009
- डॉ.श्यामबाबू शर्मा, भूमंडलीकरण और समकालीन हिन्दी कविता, 110/138 मिश्रा पैलेस, जवाहर नगर, कानपुर, 2014

भूमंडलीकरण और इक्कीसवीं सदी का उपन्यास साहित्य

प्रा.डॉ. शिवाजी उत्तम चवरे

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
प्रा.संभाजीराव कदम महाविद्यालय, देऊर

प्रास्ताविक :

इक्कीसवीं सदी का साहित्य नारी के परिवर्तित जीवन मूल्यों को अभिव्यक्ती प्रदान करता है। भूमंडलीकरण और औद्योगिक समाज ने इक्कीसवीं सदी में नारी आंदोलन को नया मोड़ दिया। हिंदी उपन्यास भी नारी आंदोलन से अछूता नहीं रहा। विख्यात उपन्यासकार भगवान सिंह ने महानगरीय नारी के इस बदलते स्वरूप को सूक्ष्मता के साथ अभिव्यक्त किया है। 'शुभ्रा' इक्कीसवीं सदी के आरंभ में प्रकाशित उनका महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसमें नारी जीवन का बदलता पक्ष प्रखरता से मुखरित हुआ है। यह उपन्यास इक्कीसवीं सदी के नारी जीवन के रूप का प्रारंभीक दस्तावेज है। इक्कीसवीं सदी के आरंभ में महानगरीय नारी जीवन के परिवर्तित मूल्यों को अभिव्यक्ति प्रदान करने की दृष्टि से यह उपन्यास 'मील' का पत्थर प्रतीत होता है। इस उपन्यास में दिल्ली महानगर और उसके आसपास के वातावरण का चित्रण हुआ है। व्यंग्य इस उपन्यास की आत्मा है। यह उपन्यास व्यंग्य से आकार ग्रहण करता है और व्यंग्य को ही समर्पित हो जाता है।

भूमंडलीकरण के संदर्भ में 'शुभ्रा' उपन्यास :

भूमंडलीकरण और औद्योगिक समाज ने इक्कीसवीं सदी में नारी आंदोलन को नया मोड़ दिया। उपन्यास की नायिका शुभ्रा जीवन में अनेक समस्याओं से गुजरती है। यह एक प्रेमकथा है किंतु प्रेम वर्णन के साथ नारी जीवन के विविध अंगों को वाणी प्रदान की गयी है। हिंदी भवन में शुभ्रा की देवेश के साथ मुलाखात होती है। देवेश शुभ्रा से प्यार करने लगता है। शुभ्रा साहित्य लिखती है। वह कहानियाँ लिखती है। उसने अनन्य पत्रिका में स्वयं के जीवन पर आधारित कहानी लिखी है। उस कहानी की नायिका अर्थिक अभाव के कारण संघर्ष करती है। यहाँ तक कि अपनी माँ को भी बचा नहीं सकती। इस कहानी में रामजतन के परिवार का भी वर्णन है जिसके सभी सदस्य अनैतिक व्यवहार करते हैं और दूसरों को भी अनैतिक व्यवहार करने के लिए मजबूर करते हैं। रामजतन की पत्नी नौकर के साथ रंगरलियाँ मनाती है और कहानी की नायिका को भी सोनू के साथ अनैतिक संबंध रखने के लिए मजबूर करती है। जब नायिका अपनी माँ के क्रियाकरम के लिए रामजतन की पत्नी से पैसे माँगने जाती है तब रामजतन की पत्नी उसे कहती है " पैसे तो मैंने तुम्हारे जाते ही सोनू के हाथ भेज दिए थे। अभी तो वह बाहर गया है रात को ही आयेगा। रात को उसी के पास चली जाना और पैसे ले जाना "। बाद में सोनू उसके साथ सोता है। लेखक ने मजबूर नारी का फायदा उठानेवाली नारीपर व्यंग्य किया है। शुभ्रा देवेश को बताती है कि उस कहानी की नायिका स्वयं वह है तो देवेश हक्का-बक्का रह जाता है।

शुभ्रा देवेश के साथ उसके घर जाती है। वह भी देवेश से प्यार करती है मगर बंध जाने के डर से व्यक्त नहीं करती। एक दिन शुभ्रा की सहेली कमरा छोड़कर चली जाती है तब शुभ्रा उस सहेली के रिश्तेदार सरल को कमरे में जगह देती है। कुछ दिन बाद सरल उसके प्रति आकर्षित होता है लेकिन अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त नहीं करता। शुभ्रा भी एक दिन उसके प्रति आकर्षित होती है और मुक्तभोग भाव से अपनी कामवासना को तृप्त करती है। देवेश शुभ्रा को सरल के साथ देखकर चकित रह जाता है। शुभ्रा देवेश को सबकुछ समर्पित करती है मगर विवाह नहीं करना चाहती। वह कॉलेज में पढाती है और देवेश भी सरकारी नौकरी करता है। वह बार-बार शुभ्रा को विवाह के लिए मनाने का प्रयास करता है। शुभ्रा बंधन में रहना नहीं चाहती। इसलिए वह विवाह नहीं करना चाहती। देवेश उसे बहुत समझाने का प्रयास करता है लेकिन वह नहीं मानती। एक दिन वह कॉलेज के होस्टेल में रहने चली जाती है।

होस्टेल में लतिका और शुभ्रा एक साथ रहती है। लतिका 'आभा' नामक पत्रिका में 'आपकी समस्याएँ : हमारा समाधान' नाम से कालम लिखती है। वह भी एक स्कूल में पढाती थी। किशोर अवस्था में उसे मोहन नामक युवक से प्यार हुआ था और दोनों परिवारवालों की अनुमति के बिना उन्होंने शादी की थी। शादी के बाद मोहन के स्वभाव में बदलाव आया। वह अन्य लड़की के साथ संबंध रखता था और बाद में उसके साथ शादी कर ली। लतिका कुछ दिन मायके रहने के बाद दिल्ली आकर नौकरी करने लगी। होस्टेल में सुरजित नाम की एक लड़की थी जो शुभ्रा के कॉलेज में पढाने का कार्य करती थी। होस्टेल में भिन्न भिन्न प्रवृत्ति की महिलाएँ रहती

थी। देवेश अब लतिका के नाम चिठ्ठीयाँ भेजा करता था। देवेश और शुभ्रा के संबंधों का अवलोकन करने से लतिका को ज्ञात होता है कि शुभ्रा नॉर्मल नहीं है। शुभ्रा बुद्धिवादी है और भावनिक या भावुक होकर जीना नहीं चाहती। इसलिए वह समाज के बंधनों का अस्वीकार करती है। शुभ्रा भी देवेश से प्यार करती है मगर अपने विचारों से परेशान करना नहीं चाहती। वह देवेश को भूलती नहीं पर अपने अहंकार के कारण उसका स्वीकार नहीं कर पा रही है। सुरजित और लतिका इस संबंध में शुभ्रा से वार्तालाप करना चाहती है तो वह विद्रोही रूप धारण करती है। वह सुरजित से कहती है " शादी करना इतना जरूरी नहीं कि इसके बिना रहा ही न जाय। मैं किसी से शादी नहीं करूंगी। करते ही बांधके रह जाना होता है। मैं बांधकर नहीं रह सकती।" अधुनिक नारी की बदलती मानसिकता पर लेखक ने व्यंग्य किया है।

शुभ्रा का स्वभाव क्रांतीकारी था इसलिए उसका जीवन विषयक चिंतन भी विद्रोही प्रतीत होता है। उसे लगता है कि अगर पुरुष विवाह के पूर्व और विवाह के बाद भी कई स्त्रियों के साथ अपने संबंध बनाये रख सकते हैं तो वह छूट स्त्रियों को क्यों नहीं? यह पुरुष प्रधान संस्कृति का नतिजा है ऐसा उसका मानना था। बंधन और मर्यादा केवल स्त्री के लिए क्यों हैं? इसी कारण वह बंधनों का अस्वीकार करती थी। वह सुरजित के साथ बातचित करते समय कहती है " अगर मैं किसी राज्य की महाराणी होती तो उसी तरह यारों का हरम बसाती जैसे पुरुष राजा बसाया करते थे। एक बार के लिए एक, बस ! " पुरुष प्रधान संस्कृति में पुरुष स्त्रियों से मुँह फेर लेते हैं इसलिए विद्रोह के लिए उसने देवेश से मुँह फेर लिया था। वह पुरुष प्रधान संस्कृति की आधारशिला को नष्ट करना चाहती थी।

शुभ्रा का कई बार कई कारणों से उपयोग हुआ था और उसे शोषण का डर भी लगा था। पर पहली बार तो डर को उत्सुकता ने दबा दिया था और बाद में उस सुख की लालसा ने दबा दिया। इसी तरह के परिवर्तनों ने मन में यह लालसा पैदा की थी कि यदि यही जीवन भर चलता रहा तो क्या हर्ज है? अब उसे डर किसी से संबंध हो जाने पर नहीं लगता था बल्कि यह सोचकर लगता था कि कहीं संबंध गाढ़ा न हो जाए। देवेश के साथ यही हुआ था। वह सोचती है कि अगर वह शादी के लिए जोर देगा तो वह ना नहीं कर सकेगी। ऐसी अवस्था में वह अपने को भीतर से मजबूत करने लगती है। वह देवेश के साथ अपने स्वच्छंदी आचरण को लेकर इसलिए बहस भी करती है कि उससे बिदककर वह विवाह का खयाल छोड़ देगा। यदि विवाह कर लिया तो वह कह सकेगी कि ' मैंने आपसे कुछ छिपाया तो नहीं था '। देवेश उसके भीतर में उतर चुका था और उसे वहाँ से कोई हटा नहीं सकता था। इतने सारे लोगों से गुजरने के बाद भी उसे लगता था कि उसका एक ही व्यक्ति के साथ संबंध हुआ था। देवेश के सिवा और किसी की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। यहाँ लेखक ने नारी की स्वच्छंदी प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है।

एक दिन होस्टेल में तहलका मच गया कि एक लड़की को पुलिस ने पकड़ लिया और समाचार अखबार में छप गया। वह लड़की होस्टेल में नहीं रहती थी। अपनी सहेली से मिलने कभी कभी आती थी। वह कॉलगर्ल के रैकेट से जुड़ी हुई थी। वह कहीं सौदा करते हुए पुलिस के जाल में फँस गयी थी और अपने परिवार की इज्जत बचाने के लिए बता दिया था कि वह उसी होस्टेल में रहती है। अपने बयान में उसने यह भी बता दिया कि होस्टेल अधिकांश युवतियाँ कॉलगर्ल का काम करती हैं और यह सब वार्डन श्रीमती चौधरी की सहमती से होता है। यहाँ लेखक ने शिक्षा जैसे पवित्र क्षेत्र में फैली गंदगी पर व्यंग्य किया है। उन्होंने शुभ्रा के जीवन में घटित विभिन्न घटना प्रसंगों के माध्यम से समाज व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है।

इस घटना के कारण शुभ्रा को अपने आप से भय लगने लगा। वह पहले भी यह मानती थी कि यह पुरुषों का समाज है जिसमें स्त्री नितांत असुरक्षित है। वह परदे के बाहर आने के बाद भी एक दूसरे परदे के भीतर ही रह सकती है। एक अपवित्र साजिश के तहत उन्हें ऐसे मामलों में भी मूक बने रहने को बाध्य किया जाता है। जिनसे उनका मानसम्मान जुड़ा रहता है। शुभ्रा इस घटना से आहत हो गयी थी, वह लतिका और श्रीमती चौधरी से विचार विमर्श करके आंदोलन या जुलुस निकालने का निर्णय करती है। सभी इस संदर्भ में श्रीमती ज्योति कपूर से मिलती है जो महिला संगठन की अध्यक्ष है। शुभ्रा कहती है, "मैंडम पुरुषों के लिए पुरुषोंद्वारा जो पुरुषों का समाज बनाया गया है उसमें महिलाओं को साँस लेने तक को जगह नहीं है। हमें लड़कर वह कोना हासिल करना होगा "। श्रीमती कपूर शुभ्रा के विचारों से बहुत प्रभावित होती है और जुलुस को समर्थन देती है।

शुभ्रा के विचारों के अनुसार स्त्री को स्वयं लड़कर अपना सम्मान हासिल करना होगा तभी उसे सम्मान से रहने का अधिकार प्राप्त होगा। वह कहती है, " दान में दिए हुए आत्मसम्मान पर जीना चाहते हैं उनका कोई आत्मसम्मान नहीं होता "। उसके मतानुसार अब तक स्त्रियों को जो कुछ मिला है वह पुरुषों की दयापूर्वक ही मिला है। स्त्रियाँ भले ही उन अधिकारों को भोग ले किंतु वे हमारे नहीं हैं। वह अधिकार तभी हमारे होंगे जब पुरुषों को पता चले कि स्त्रियाँ उसके लिए भी लड़ सकती हैं। भगवान सिंह ने उपन्यास में शुभ्रा के क्रांतिकारी विचारों को अभिव्यक्त किया है। जुलुस में सफलता प्राप्त होने के कारण शुभ्रा नारी आंदोलन में सक्रिय होती है।

वह सैक्स रैकेट का हिस्सा बने मंत्री महोदय को सबक सिखाती है। यहाँ लेखक ने राजनोताओं की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है।

एक दिन सुरजित जालंदर से दिल्ली आती है और सभी को शादी का निमंत्रण देती है। शुभ्रा और लतिका शादी में शरीक होती है। वहाँ जसबीर नामक युवक लतिका की ओर आकर्षित होता है। लतिका जसबीर का स्वीकार करती है। बाद में दोनों की शादी होती है। अब शुभ्रा के कमरे में लतिका की जगह नीरव आती है जो बदचलन लडकी है और एक साथ दो पुरुषों से संबंध रखती है जिनके नाम कमल और हरीपाल हैं। हरीपाल शादीशुदा होते हुए भी नीरव के साथ अनैतिक संबंध रखता है। नीरव भी मुक्त भोग की आकांक्षा रखने वाले युवती है जो मुक्त भोग में ही संतोष मानती है। शुभ्रा के मन में भी इसी प्रकार के विचार मंडराते हैं। वह लडको के समान रात देर तक रास्ते पर भटकती है, सीटीयाँ बजाती है और लडकों द्वारा मांगने पर चुंबन भी देती है। इतना सब बताने के बाद भी देवेश उसका स्वीकार करता है। भगवान सिंह ने उपन्यास में देवेश की उदारता और महानता के दर्शन कराए हैं। शुभ्रा होस्टेल से निकलकर पुरुषों के समान होटल में रहती है। वहाँ उसके कई पुरुषों के साथ शारीरिक संबंध हो जाते हैं यहाँ उसके मन में अपने आपसे घृणा उत्पन्न होती है वह वापस होस्टल में आती है। श्रीमती कपूर और श्रीमती चौधरी शुभ्रा के अंतरमन को जान कर उसका विवाह देवेश के साथ करती है। देवेश भी बिना किसी हिचकिचाहट से शुभ्रा का स्वीकार करता है। उपन्यासकार ने शुभ्रा के विद्रोही और क्रांतिकारी रूप के साथ उसके मन की वेदना को भी वाणी प्रदान की है।

निष्कर्ष :

शुभ्रा बचपन से आर्थिक अभाव के कारण अनेक संकटों से संघर्ष करती है। इसी आर्थिक अभाव के कारण कई लोग उसका उपभोग लेते हैं। आरंभ में न चाहते हुए भी वह सबकुछ सहती है। भगवान सिंह ने इस उपन्यास के माध्यम से नारी शोषण पर व्यंग्य किया है। उन्होंने शिक्षा, राजनीति, समाज में फैले अन्याय अत्याचार को उजागर करते हुए वर्तमान व्यवस्था पर तीव्र व्यंग्य किया है। नारी जीवन के परिवर्तित मूल्यों का चित्रण करते हुए उन्होंने पुरुष प्रधान संस्कृति पर व्यंग्य किया है। शुभ्रा यह उपन्यास इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ में महानगरीय नारी जीवन के परिवर्तित मूल्यों को अभिव्यक्ति प्रदान करनेवाला महत्वपूर्ण उपन्यास है। बाद में इस सुख की लालसा उसके मन में उत्पन्न होती है। उस लालसा की हद यहाँ तक बढ़ती है कि शादी भी उसे बंधन लगती है। अतः देवेश के साथ वह शादी के लिए इन्कार करती है और मुक्त भोग में जीवन व्यतीत करने का निर्णय लेती है। इसी विचारों के कारण वह पुरुषों के समान होटल में रहने लगती है। लेकिन वहाँ एक वेटर उसकी इच्छा के विरुद्ध बलात्कार करता है। इससे शुभ्रा के मन में अपने आपसे घृणा उत्पन्न होती है। उसे ऐसा लगता है कि पुरुष के बिना स्त्री अधूरी है। केवल शरीर संबंध ही जीवन नहीं है, केवल मुक्त भोग ही जीवन नहीं है। जिस सुख लालसा में उसने विवाह के लिए इन्कार किया था वह सुख अब उसे नरक के समान प्रतीत हो रहा था। उसे लगता है कि प्यार ही जीवन है, साहचर्य, सहजीवन, दंपती जीवन ही वास्तविक जीवन है। इसका मूर्तिमंत उदाहरण श्रीमती कपूर है जो अपनी सभी जिम्मेदारियों को निभाती हुई नारी आंदोलन में भी सक्रिय है। श्रीमती कपूर शुभ्रा को समझाती है कि परंपरागत मूल्यों की रक्षा करना आत्मिक सुख के लिए अनिवार्य है। केवल विद्रोह का सहारा लेकर जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता। उपन्यास में चित्रित सभी स्त्रियाँ प्राकृतिक संकटों के कारण ग्रस्त हैं। लेकिन शुभ्रा अपने अहंभाव के कारण स्वयं संकट में घिर जाती है। श्रीमती चौधरी और श्रीमती कपूर के मार्गदर्शन से वह सन्मार्ग पर आती है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेंद्र
2. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – डॉ. रामकुमार वर्मा
3. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास – डॉ. गणपतीचंद्र गुप्त
4. भगवान सिंह – शुभ्रा
5. डॉ. शशिभूषण सिंहल – हिंदी उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ
6. विजया पडोडे – जैनंद्र के उपन्यास साहित्य में हिंदी
7. शिवकुमार शर्मा – हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी में भूमंडलीकरण

डॉ. सविता धुडकेवार

सहायक प्रोफेसर
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास
टी.नगर, चेन्नई ६०००१७

भारत सदैव ही वसुधैव कुटुम्बकम् की बात करता रहा है। वसुधैव कुटुम्बकम् में संपूर्ण विश्व को एक परिवार मानकर विश्व में भाईचारे, प्रेम, सौहार्द की बात कही जाती है। आधुनिक युग में आर्थिक, व्यावसायिक धरातल पर भूमंडलीकरण की संकल्पना सामने आई है। मुक्त बाजार ने भूमंडलीकरण को औद्योगीकरण और तकनीकीकरण से जोड़ा है। इसके कारण संपूर्ण विश्व एक ग्लोबल ग्राम के रूप में सिमट कर पास आ गया है। वैश्वीकरण का आधार बहुदेशीय कंपनियों का फैलाव, विश्व में व्यापार पर अधिग्रहण, वैयक्तिक हितों का पोषण है। "अंतिम दशक के भूमंडलीकरण के औजार पूंजी बौद्धिकी आदि के छल छद्म और प्रौद्योगिकी के विकास ने मनुष्य की नियति बदली। उसे जाति धर्मांधता भी किया। मूल्यों, नैतिकताओं की जकड़बंदी से मुक्त कर नियति के ऐसे पालने में सुला दिया जहां हर क्षण भविष्य की आशंका ने उसे घेर लिया। पूंजीवादी व्यवस्था में आज वह एक खिलौना है। फलस्वरूप हमारी आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक स्थितियों में परिवर्तन आया। भूमंडलीकरण के नारों के बीच उपभोक्तावादी मानसिकता के प्रसार के चलते हमारे अर्जित संस्कारों, संस्कृति और मूल्यों का विघटन हुआ। सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, संयुक्त परिवार, सह अस्तित्व, राष्ट्रीय एकता जैसे मूल्य बेमानी हुए और स्वार्थपरता तथा रातों रात धनी होने की ललक एवं वैयक्तिकता का विकास हुआ।"^१

इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में समाज में उपभोक्तावाद के बढ़ते प्रभाव और उसके भयावह परिणामों का चित्रण बहुत ही यथार्थ रूप में हुआ है। मानवता को निगलने वाली उपभोक्तावादी मानसिकता के विरोध में वे उठ खड़े हुए हैं। उदय प्रकाश की 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी बाजारवादी युग की अमानवीयता और बदलते समाज का अहसास कराती है। कहानी के नायक रामगोपाल को अपना नाम पुराना आऊट डेटेड लगता है। वह आधुनिकता की आंधी में इस तरह पागल हो चुका है कि अपने नाम को उल्टा कर नया नाम पॉल गोमरा कर लेता है। नया चमचमाता स्कूटर खड़ा करके वह अपने स्टेटस को बाजार के मानदंडों पर ले आता है। वह हिंदी अखबार का प्रूफ रीडर है और धनी बनने की धुन में ऐसे कई करिश्माई व्यवसायों को याद करता है जहाँ शारीरिक नैतिक नंगई खुल जा सिम सिम का बीज मंत्र बन जाती है।"^२ लेकिन वह रामगोपाल ही है, अपनी सीमाओं से बंधा है। पल पल बदलने वाले बाजार के साथ उसका तालमेल संभव नहीं। भौतिक सुखों की चाह फिसलन भरी है, वह फिसलता ही जाता है।

मृदुला गर्ग की कहानी 'कलि में सत' बाजार के माध्यम से व्यक्तिगत सुखों के विस्तार की कहानी है। कहानी में भरत, उर्मिला, दशानन जैसा पौराणिक चरित्रों के माध्यम से बाजारवाद को दर्शाया गया है। कहानी में उर्मिला और भरत, लक्ष्मण और राम के वियोग में दुखभरा जीवन बिताने की बजाय अपनी अपनी प्रतिभाओं का उपयोग कर सफल जीवन व्यतीत करते हैं। इससे पर्यावरण और संस्कृति की सुरक्षा के नाम पर जंगलों गाँवों को साफ कर क्रीड़ा उद्यानों पैसी फाउण्टेनों और रेस्तराओं का विस्तार है – "कहते हैं देहात को जंगल बनाएंगे। जरा सोचो, तमाम धरती पर पेड़ पौधे उगा देंगे तो कारखाने, होटल बाजार कहाँ बनेंगे? कोठी बंगलों को जमीन कैसे मिलेगी? विकास कैसे होगा? कंपनियों का तो भट्टा बैठ जाएगा। भरत बेहद नाराज था.....बच गए"^३ कहानी में बहुराष्ट्रीय कंपनी का उत्तरप्रदेश के गांव को गोद लेकर पंचवटी नाम देना, वहाँ आलू की भजिया और टमाटर की चटनी बनाने का अति आधुनिक तकनीक से चलने वाला कारखाना खोलना, पर्यावरण सुरक्षा के लिए खोले गए कारखानों की भारतीय शाखा का आर्थिक सलाहकार उर्मिला देवी तथा एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर भरत को बनाना, पंचवटी को भारत ही नहीं पूरे यूरोप अमरीका का हिस्सा बनाने के लिए विकास को लक्ष्य पूरा करना आदि विकास के नाम पर धूल झोंकने की युक्तियाँ की जाती है। इस प्रकार कहानी मिश्रक के माध्यम से भूमंडलीकरण की भयावहता को दिखाती है।

भूमंडलीकरण से जुड़ा उपभोक्तावाद पहले नगरों महानगरों तक ही सीमित था, किंतु अब इसकी घुसपैठ कस्बों और गांवों तक हो चुकी है। गांवों और नगरों की व्यवस्था, उनके संबंध, बाजार के आ जाने से टूटने लगे हैं। समकालीन कहानी ने समय की इस आहट को भी चित्रित किया है। संजय खाती की कहानी 'पिंटी का साबून' इस संदर्भ में उल्लेखनीय कहानी है। कहानी में छोटे से गांव में बाजारवाद के प्रवेश के बाद की विसंगतियों बारिकी से दिखाया गया है। कहानी में पहाड़ी क्षेत्र का एक गांव है जो सुगंधित साबून से अनभिज्ञ है। ऐसा सुगंधित साबुन डिप्टी साहब की बेटी पिंटी ही लगाया करती है। ऐसे माहौल में गांव के एक सामान्य युवक को महकदार साबून मिलता है। शहर में कहीं कंपनी द्वारा चलाया जा रहे विज्ञापन अभियान के अंतर्गत करवायी गई दौड़ में इनामस्वरूप उसे साबुन मिलता है। गांव का यह सामान्य युवक पूरे गांव में हड़कप मचा देता है। युवा गोपियां साबुन पाते ही क्षणिक भ्रम की स्थिति में माँ, पिता, भाई बहन यहां तक कि सारे गांव से दुश्मनी ले लेता है। मैं भडक गया आखि रवह मेरी चीज थी।

मैंने काका से छीनने की कोशिश की। उसे गिराने के लिए संघर्ष किया, लेकिन लंबे खड़ूस से जीतना मेरे लिए नामुमकिन था।.... काका कुछ देर मुझे लाल लाल आंखों से घूरता रहा, फिर जा मर कहकर टिकिया फेंक दी। मैंने उसे लपक लिया। 'पत्नी भी दे' काका ने पत्नी फेंक दी। मैंने नाजुक टिकिया को फिर पत्नी में लपेटा और उसे सूँघता हंसता हुआ घर की ओर चला। काका से पहली बार दुश्मनी की शुरुआत थी। उस वक्त तो मैं साबून की उस भीनी खुशबू में इतना मगन था कि काका की ओर ध्यान देने का वक्त नहीं था।¹⁵ इस प्रकार कहानी में उपभोक्तावाद से संबंधों में आती दरार का वर्णन है।

भूमंडलीकरण की स्थिति ने भौतिकतवाद और दिखावे की संस्कृति को बढ़ावा दिया है। महानगरों में रह रहे बच्चे गांव की संपत्ति को बेचकर ऐशोआराम से रहना चाहते हैं। अपने मित्रों के बीच अपनी स्थिति को ऊँचा उठाना चाहते हैं चाहे इसके लिए उन्हें माता पिता की इच्छा के विरुद्ध उनकी जमीन जायदाद ही क्यों न बेचनी पड़े। कहानीकार अखिलेश ने 'जलडमरूमध्य' कहानी में इसे ही दिखाया है। सहाय जी की गांव में बड़ी प्रॉपर्टी है जिसे लेकर उनके बेटे बहू के मन में लालच उत्पन्न होता है। सहाय जी बहुत दिनों बाद गांव जाते हैं। गांव में गड़े खजाने की लालच में गांववालों द्वारा उनका घर खोद दिया जाता है। इसे देख उनका मन दुखी हो जाता है। बेटा चिन्मय बाप को बनावटी दिलासा देता है कि चिंता ना करें उसी जगह वैसा ही घर बनवा देंगे। परंतु बेटे बहू को गांव की पुरखों की जायदाद और वस्तुओं से कोई लगाव नहीं है। वे तो उसे बेचकर अच्छा पैसा लेकर दिल्ली में अपना स्टेस बढ़ाना चाहते हैं। बेटा चिन्मय माता पिता से कहता है गांव की प्रॉपर्टी को बनाए रखने से क्या फायदा और मां के टोकने पर कहता है — 'मैं पुरखों की प्रॉपर्टी को बर्बाद करने के लिए नहीं कह रहा हूँ मम्मी मैं तो बस उसे शिफ्ट करने की बात कह रहा हूँ। उसे बेचकर हम ऐसी व्यवस्था करें, जो अधिक लाभ की हो'¹⁶ बेटा चिन्मय और उसकी पत्नी मनजीत अपने फायदे के लिए अपने बच्चे मनु को दादा जी से कुछ मांगने के लिए उकसाते हैं। मनु से कहते हैं कि अपने बाबा से अपने लिए फार्महाउस या एक मेगा टी.वी सीरियल तैयार करने को कहे या ढेर सारे शेरर लेकर देने को कहे। उससे यह भी कहा जाता है कि बोलों कि आपके सारे दोस्तों के घर में ढेर सारा पैसा इन सब चीजों में इन्वेस्ट किया जा रहा है। इस प्रकार आज संबंधों में लाभ हानि को महत्व दिया जा रहा है। माता पिता के प्रति प्रेम आदर का रिश्ता भी अब लोभ में बदल गया है।

भूमंडलीकरण का प्रभाव ही है कि आज अवैध संबंधों को भी सहर्ष स्वीकारा जा रहा है। स्वार्थ की पूर्ति के लिए पवित्र प्रेम को भी लाभ के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। मैत्रेयी पुष्पा की 'गोमा हंसती है' कहानी में इसी तथ्य का खुलासा किया है। गोमा अपने पति किड्दा के मित्र बलीसिंह की ओर आकर्षित है और अपने लाभ के लिए पति का इस्तेमाल करती है। पति के सामने अपने अवैध संबंधों को स्वीकारती है और पति से कहती है — 'मैं अपनी खातिर कर रही हूँ सब? दाऊ लिख देंगे तो मालिक कौन होगा? जोतेगा बोएगा कौन? आज तुम दाऊ जी की धरती समेत पूरे चालीस बीघा के मालिक हो। गंगाराम पजरेगा नहीं? अरे लोग अपने लत्ता कपड़ा फाड़ेंगे। बाबरे होंगे। किसी की बढती देख कौन सिहरता है?'¹⁷ ठीक इसी तरह मैत्रेयी जी की फैसला कहानी में बसुमति का इस्तेमाल, उसका पति रनवीर करता है। वह आरक्षित सीट पर बसुमति को चुनाव लड़वाकर प्रधान बना देता है मगर सारे काम स्वयं ही करता है। पंचायत के कार्यों में पत्नी की दखल उसे बर्दाश्त नहीं है। हर जगह अपनी मनमर्जी चलाता है और कमीशन खाकर भ्रष्टारियों का साथ देता है। बसुमति केवल नाम की प्रधान बनकर रह जाती है। पति अपने स्वार्थ और लालसा के चलते अपनी पत्नी के प्रेम, विश्वास यहाँ तक कि उसके नाम तक का गलत इस्तेमाल करता है।

अखिलेश जी की कहानी 'हाकिम कथा' में भी लाभ के लिए पति के अवैध संबंधों को स्वीकारने की कथा है। कहानी की नायिका ज्योति अपने पुलिस अधिकारी पति के दूसरी स्त्री में रूचि लेने से दुखी है, परंतु जब उसके पिता जो स्वयं पुलिस में बड़े अफसर हैं, उसके पति का तबादला ऐसी जगह पर करवाने, जहां ऊपरी आमदनी कम है, करवाने की बात करते हैं तो ज्योति पिता को मनाकर देती है ज्योति के लिए पति का दूसरी स्त्री में रूचि लेना उतना दुखदायी नहीं है, जितना आमदनी का कम हो जाना। आमदनी कम होगी तो जीवन की सुख सुविधाएं कहां से आयेंगी? यह सोचकर ही वह पिता को बतादले के लिए मना कर देती है। भूमंडलीकरण का ही परिणाम है कि व्यक्ति भौतिक सुख को अन्य संबंधों से अधिक महत्व दे रहा है।

भूमंडलीकरण की स्थिति ने स्त्री को बाजार की वस्तु बनाकर रख दिया है। अब वह उपभोक्ता की वस्तु है न कि आदर सम्मान की। अकेले स्त्री का समाज में रहना दुभर हो गया है इसी का चित्रण सूरजपाल चौहान की कहानी 'मैं हूँ ना' में किया गया है। नायिका के पति का तबादला दूसरे शहर में हो जाता है जिसके कारण उसे अपने दो छोटे बच्चों के साथ अकेला रहना पड़ता है। वह नौकरी करती है। ऑफिस में उसे महिला साथियों का भरपूर सहयोग मिलता है परंतु पुरुष सहकर्मी उसकी इस स्थिति का लाभ उठाने की फिराक में लगे रहते। झूठी सहानुभूति दिखाते हुए उससे कहते कि 'मैडम आप अपने आप को अकेला मत समझना, कोई काम हो तो बेझिझक कहें...मैं दौड़ा-दौड़ा आधी रात में भी चला आऊंगा।'¹⁸ इस मदद के बहाने लोग उसे रात में बुलाने की बात करते हैं जो पुरुषों के नैतिक पतन और विकृत मानसिकता को दिखाता है। हद तो तब होती है जब एक सहकर्मी बी.सी आर्य उसे घूर के दरवाजे पर खड़े मिलते हैं और लगातार मुस्कराते हुए कहते हैं अपना समझकर आपके घर चला आया हूँ। मेरे लायक कोई काम हो तो निःसंकोच कहें। अकेली स्त्री को देख पुरुषों की बदलती मानसिकता का यथार्थ चित्रण हुआ है।

भूमंडलीकरण के चलते आगे बढ़ने की होड़ सी लगी है और इस होड़ में सभी संस्थान कंपनियां नंबर वन में रहने के लिए प्रतिभाओं का दोहन कर रही है। पंकज मित्र की कहानी 'क्विज मास्टर' में ऐसी ही स्थिति का चित्रण हुआ है। 'क्विज मास्टर' कहानी एक ऐसे कस्बे की है जो अभी अभी तरक्की कर रहा था। कहानी का नायक कुमार शहर के प्रतिष्ठित अंग्रेजी मीडियल स्कूल का शिक्षक है। वह अंग्रेजी और सामान्य ज्ञान में अव्वल है। स्कूल के संस्थापक श्रीवास्तव जी स्कूल में एडमिशन बढ़ाने के

चक्कर में कुमार को क्विज करवाने की जिम्मेदारी सौंपते हैं। बुद्धिजीवी कुमार में अपनी मेहनत और योग्यता के बल पर प्रतिष्ठित क्विज मास्टर के रूप में जाना जाने लगता है। अभिभावकगण भी कुमार के अंग्रेजी में किये गये प्रश्न और उनके उत्तर देते अपने बच्चों को देख परम संतुष्टि का अनुभव करते कि बच्चे ठीक हाथों में हैं। अपनी कलेजा निचोड़कर वह सभी विषयों की तैयारी करता पर बदले में उसे मिलते फूल और सूखी प्रशंसा। पत्नी आर्थिक स्थिति को देख कहती है – 'उनका स्कूल तो तरक्की कर रहा है, स्टूडेंट बढ रहे हैं। आपको क्या मिलता है?'^{१८}

कुमार जवाब देता है कि वह काम पैसे के लिए नहीं शौक के लिए करता है। पत्नी कहती है, 'इतना तो कुईज फईज में समय देते हो फ्री फंड का, इससे अच्छा ट्यूशन उशन पढा लेते तो कुछ काम का होता, अंग्रेजी का तो डिमांड भी बढा है इस कम्प्यूटर के जमाने में। अगल बगल देखने से आंख नहीं खुलती है।' ^{१९} बगल वाले शर्मा जी भी कहते हैं, 'अरे गोली मारिए गेम उम को.....पैसा कुमाइए पैसा। बरेन है तो बरेन से कमाइए, जो चीज है आपके पास उसी से कमाइए। अगल बगल देखते नहीं है का? जो है रख दीजिए बाजार में।' ^{२०} परंतु कुमार की मजबूरी है कि वह क्विज मास्टर बनकर एक मशीन बन कर रह जाता है। पति पत्नी के संबंधों पर भी इसका प्रभाव पडता है।

भूमंडलीकरण का ही प्रभाव है कि आज पानी तक बोटल में बिक रहा है। पंकज मित्र को कहानी 'बिन पानी डॉट कॉम' में इस पर व्यंग्य किया गया है। जवान सुल्तान की ताजपोशी होती हैं। इसके साथ ही परिस्थितियां बदल जाती हैं। सुल्तान पानी का इंतजाम करने से मुंह तोडता है और कंपनियां पानी का इंतजाम करने की बागडोर थाम लेती हैं। पानी ठेका बड़ी कंपनी को मिलते ही पानी की कीमत छः गुना बढ जाती है। कुएं मिट्टी से भरवा दिए जाते हैं और हैण्डपंप उखडवा दिये जाते हैं। धरती के अंदर के पानी का उपयोग करने की भी इजाजत नहीं है जो इसके विरोध में आवाज उठाता है विरोध करता है उसे दंड दिया जाता है। उद्दंड मानकर गोली से उडा दिया जाता है। कंपनी रिहायशी इलाकों में मीटर लगा देती है और जगह जगह पर बोर्ड लगाती है कि पानी ही जिंदगी है और आपकी जिंदगी हमारे हाथ हैं। आपकी जिंदगी महंगी है या पानी। इस प्रकार कहानी में पानी के बिकने और प्राकृतिक वस्तुओं पर से भी सामान्य जनता को वंचित किये जाने की बहुराष्ट्रीय कंपनियों की चाल का पर्दाफाश किया है।

भूमंडलीकरण के चलते विश्व गांव में परिवर्तित हो रहा है। सब कुछ पास आता जा रहा है परंतु इससे मानवीय जीवन प्रभावित हो रहा है। स्थानीयता, क्षेत्रीय रंग समाप्त होकर उस पर बाजारवाद का तंत्र हावी हो रहा है। स्वार्थ आगे बढने की होड़ अतिआधुनिकता, भौतिक सुखों की बढती चाह ने मानव मानव के रिश्तों को लील लिया है। इसके चलते जो बाजार की शक्तियाँ उभर कर आई हैं उसने मानवता के स्थान पर मुनाफे को बढावा दिया है। बाजार की शक्तियाँ मनुष्य की आवश्यकता को पैदा करने और बदल देने की ताकत रखती है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. डॉ. नीरज शर्मा अंतिम दशक की हिंदी कहानियाँ : संवेदना और शिल्प पृ. 22
2. उदय प्रकाशन पाल गोमरा का स्कूटर पृ. 53
3. मृदुला गर्ग कलि में सत – हंस पत्रिका संपादक राजेन्द्र यादव अगस्त 1999 पृ. 18
4. संजय खाती पिंटी का साबुन पृ. 23
5. अखिलेश जलडमरूमध्य प्रतिनिधि कहानियाँ पृ. 161
6. मैत्रेयी पुष्पा गोमा हंसती है प्रतिनिधि कहानियाँ पृ. 119
7. सूरज पाल चौहान धोखा कहानी संग्रह पृ. 28
8. पंकज मित्र क्विज मास्टर और अन्य कहानियाँ पृ. 17
9. पंकज मित्र क्विज मास्टर और अन्य कहानियाँ पृ. 17
10. पंकज मित्र क्विज मास्टर और अन्य कहानियाँ पृ. 18

इक्कीसवीं सदी के कथा साहित्य में चित्रित शिक्षा विमर्श (‘द्रोण की आत्मकथा’ उपन्यास के संदर्भ में)

सचिन मदन जाधव

सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग

सद्गुरुगाडगे महाराज कॉलेज, कराड (स्वायत्त) MS)

भारतीय सांस्कृतिक सामाजिक परंपराओं में गुरु की महत्ता सर्वोपरि है। प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय समाज में गुरु का स्थान माता-पिता के समान हमेशा से आदर्शित रहा है। इसका महत्वपूर्ण कारण है- गुरु का उत्तरदायित्व। भारतीय संस्कृति के अनुसार बच्चे को जन्म देना तथा उसका भरण-पोषण करना माता-पिता का काम होता है। गुरु का कार्य इससे भी अधिक महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि गुरु बालक या शिष्य के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यही वजह है कि गुरु का स्थान न सिर्फ माता-पिता से बढ़कर माना है, बल्कि उन्हें भारतीय संस्कृति के आदर्श मिथक स्वरूप देवों में गिना जाता है। प्राचीन भारतीय सभ्यता में गुरु के लिए आचार्य शब्द का प्रयोग किया जाता था। शिक्षा क्षेत्र में वह सर्वोच्च पद था। आचार्य शब्द का शब्दगत अर्थ- “वह व्यक्ति जो विद्यार्थी से आचार शास्त्रों के अर्थ तथा बुद्धि का आचयन कराता है।”¹ आचार्य शब्द के गर्भित अर्थ को देखे तो गुरु का अर्थ मात्र ज्ञान (जानकारी) देने का न होकर वह विद्यार्थियों में आचरणगत शुद्धता तथा बौद्धिक परिमार्जन करता है। मानवी सभ्यता की उन्नति में मनुष्य का बौद्धिक तथा आचरणगत परिमार्जन ही अपेक्षित है। व्यास रचित महाभारत में भीष्म द्वारा कौरव कुल के पुत्रों को शिक्षा देने की जिम्मेदारी द्रोण को सौंपी जाती है। जिससे वे समस्त कुरुकुल के गुरु बन जाते हैं और आचार्य पद प्राप्त करते हैं। द्रोण में शैक्षिक योग्यताएं तो उच्च कोटि की थीं। लेकिन गुरुपद के लिए आवश्यक जीवन दर्शन का अभाव था, जिससे महाभारतकालीन व्यवस्था ने उन्हें सम्मान तो दिया लेकिन प्रागैतिहासिक द्रोण को परवर्ती इतिहासकारों तथा आलोचकों ने आदर्शवादी गुरु की हैसियत से न देखकर एक पतनशील आचार्य के रूप में चित्रित किया है। उनका इस प्रकार का चित्रण कोरी काल्पनिकता नहीं है। इसके लिए प्रागैतिहासिक महाभारत को ही आधार बनाया गया है। अपने स्खलित गुरुत्व के कारण आचार्य द्रोण परवर्ती रचनाकारों के लिए एक मिथक बनकर रह गए। मनु शर्मा के उपन्यास में द्रोण को अति आदर्शवादी और अति पतित नहीं दर्शाया है। उन्होंने उपन्यास में व्यावसायिक अध्यापक की व्यावहारिकता को चित्रित किया है, जो पतनशील है।

प्रतिशोध पीड़ित व्यक्तित्व का मिथक :

भरद्वाज पुत्र द्रोण शास्त्र और शस्त्र ज्ञान में निपुण थे। ब्राह्मण होने के नाते तथा विरासत में मिले आश्रम को चलाकर विद्यादान का कार्य करना उनकी उपजीविका का साधन था। पिता की मृत्यु के पश्चात वे दीर्घ काल तक आश्रम को सुचारु रूप से नहीं चला सके। आचार्य परशुराम की संपत्ति पाने हेतु उनके पास चले गए, परंतु वे अपनी संपत्ति पहले ही बाँट चुके थे तो उनसे शस्त्रज्ञान हासिल करके वापस लौटे। परंतु परिवार चलाने की समस्या उनके सम्मुख थी। छात्रावस्था में राजकुमार द्रुपद की सहायता द्रोण ने की थी इसलिए वे चाहते थे कि अब वे उनकी सहायता करें परंतु राजा बनने पर द्रुपद ने द्रोण की सहायता न कर अपमानित किया, जिससे उनके अहंकार को ठेस लगी। चोट खाए अहं से ही प्रतिशोध का जन्म होता है। उपन्यास में द्रोण पत्नी कृपी द्रोण को समझाने का प्रयास करती हुई कहती है, “इतना दुःखी होने से कोई लाभ नहीं। प्रतिहिंसा वह आग है जो स्वयं से ही पैदा होती है और स्वयं को ही जलाती है।.....जरा संयम से काम ले। आप ही ने कहा था कि हमारी संपत्ति हमारा संतोष है, हमारी विद्या, हमारा त्याग है।”² परंतु पत्नी द्वारा समझाने पर भी द्रोण का प्रतिशोध शांत नहीं हुआ था। प्रतिशोध के लिए वे कुछ भी करने को तैयार थे। प्रतिशोध ने उनकी दार्शनिकता को तोड़ दिया था। इसलिए वे आश्रम परंपरा खंडित करके हस्तिनापुर के राजकीय चाकर बन गए। जिस क्षण उन्होंने राजकीय चाकर का मन बनाया तभी वे अपने गुरुगत अधिकार तथा सम्मान से दूर होकर अपमानित होते नजर आते हैं। मनु शर्मा के औपन्यासिक द्रोण कहते हैं, “पर दु योधनमाननेवाला नहीं था उसने कहा, आचार्य की नियुक्ति करना हमारे ऊपर है। हम इनकी नियुक्ति कराएँगे। इसमें कृपाचार्य की सहमति की क्या आवश्यकता? हम चाहे एक को आचार्य रखे था दस को। वृत्ति तो हमें देनी है। मुझे दु योधन के स्वर में अहम की मात्रा अत्यधिक दिखाई पड़ी। उसमें छात्रोचित विनय का अभाव था। जब विनय नहीं तो विद्या कैसी? यदि मैं अपने आदर्शों का पालन करना तो दु योधनको कभी भी अपना शिष्य न बनाता, पर इस समय वह द्रोण मर चुका था। एक नए द्रोण का जन्म हो चुका था, जो प्रतिहिंसा व वैभव की आकांक्षा लेकर जन्मा था।”³ द्रोण के इस वक्तव्य से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रतिशोध मात्र द्रुपद के प्रति न होकर द्रुपद द्वारा अपमान के मूल कारण गरीबी से भी है। इसलिए अपनी गरीबी को दूर करने के लिए भी उन्होंने अपनी आश्रम व्यवस्था को तोड़कर हस्तिनापुर के राजकीय चाकर बन गए। आधुनिक आलोचकों की दृष्टि से द्रोण की संपूर्ण जीवनयात्रा ही प्रतिशोध पर आधारित थी। प्रतिशोध ने उनके समूचे व्यक्तित्व को परिवर्तित कर दिया। जिसके कारण वे आदर्श की ऊँचाई छू नहीं पाए। सूर्यकांत बाली लिखते हैं, “मन ही मन द्रुपद ने बदला लेने का संकल्प कर दिया और द्रोण का शेष जीवन अपने इस प्रतिशोध भरे संकल्प की पूर्ति में ही खर्च हो गया। महाभारत

¹ <http://hi.m.wikipedia.org>, Date 5/1/2017

² मनु शर्मा, द्रोण की आत्मकथा, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011, पृ. 47

³ मनु शर्मा, द्रोण की आत्मकथा, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011, पृ. 53

युद्ध में भीष्म शरशय्या पर गिर जाने के बाद द्रोण कौरव सेना के सेनापति बने तो युद्ध में द्रुपद को मारकर द्रोण ने अपने जीवन की महत्वकांक्षा पूरी की।"⁴

हस्तिनापुर के कुरुकुल के आचार्य बनने के बाद अर्जुन के रूप में उन्हें एक ऐसा छात्र मिला जिससे वह द्रुपद से अपना प्रतिशोध पूरा कर ले। इसलिए विधिवत शिक्षा समाप्ति के पश्चात उन्होंने गुरुदक्षिणा के रूप में बंदी द्रुपद की माँग की। अर्जुन ने इस गुरुदक्षिणा की पूर्ति की और द्रुपद को बंदी बनाकर आचार्य द्रोण के सामने खड़ा किया। आचार्य द्रोण ने उसका आधा राज्य ले लिया और स्वयं राजा बन गए। तथा द्रुपद से मित्रता की बात करने लगे। तब द्रुपद द्रोण को धिक्कारते हुए कहते हैं कि, “वाह रे गुरुवाह रे गुरु दक्षिणाएँ! तुम्हारी इन आकांक्षाओं के भीतर से तुम्हारे मन का कलुष झाँकता है द्रोण! मैं अर्जुन द्वारा बंदी बनाया गया हूँ, परंतु तुम्हें तुम्हारी अनीतियों ने बंदी बनाया है, तुम्हारी पतित आकांक्षाओं ने बंदी बनाया है। मेरा शरीर बंदी है, तुम्हारा मन बंदी है। मेरा बंधन बाह्य है, तुम्हारा आंतरिक। मेरा बंधन टूट भी सकता है, किंतु तुम इस बंधन से कभी मुक्त नहीं हो सकते। मैं बंदी होकर भी उन्मुक्त हूँ और तुम उन्मुक्त होकर भी बंदी।”⁵ द्रुपद के इस वक्तव्य से द्रोण की कलुषित मानसिकता का ना केवल पर्दाफाश होता है बल्कि यह भी प्रकट होता है कि प्रतिशोध किसी व्यक्ति के प्रत्येक कार्य को किस तरह से प्रभावित करता है। एक गुरु होने के बावजूद न स्वयं के मन से प्रतिशोध हटा सके बल्कि अपने छात्रों का उपयोग भी अपने प्रतिशोध की अग्नि के लिए समिधा जुटाने के लिए किया। दाजी पणशीकर तो इस प्रतिशोध के प्रवाह को बहुत दूर तक देखते हैं। वे कहते हैं, “द्रुपद का प्रतिशोध चिंतन और द्रोण का शस्त्र सामर्थ्य इतना भयावह था कि इन दोनों के प्रतिशोध पूर्ति के लिए धृष्टद्युम्न और द्रौपदी की एक नई पीढ़ी अवतरित हुई।”⁶ इसको यदि और दूर तक ले जाए तो हम पाते हैं कि द्रौपदी पर बीते महाभयंकर वस्त्रहरण प्रसंग में आचार्य द्रोण का तटस्थ रहना शायद द्रुपद के प्रति अपने प्रतिशोध की पूर्ति का कारण भी माना जा सकता है।

संस्थागत अध्यापकों की परवशता का मिथक :

आचार्य द्रोण उन सभी संस्थागत अध्यापकों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अशैक्षिक व्यक्ति द्वारा स्थापित शिक्षा व्यवस्था में वेतनभोगी बनकर अध्यापन का कार्य करते हैं। इतना ही नहीं इस प्रकार की व्यवस्था के वे आद्य अध्यापक हैं जो अध्यापकों की पतनशीलता का मुख्य कारण भी हैं। आचार्य द्रोण द्वारा भारतीय महान गुरु परंपरा को खंडित करनेवाले जितने भी कार्य हुए हैं उसमें इस व्यवस्था की प्रत्यक्ष या परोक्ष भूमिका रही है। अध्यापक जब संस्थागत सेवा प्रदान करता है तो वह अध्यापक न रहकर संस्था के कार्य निर्देशों के अनुसार कार्य करनेवाला चाकर बन जाता है। परमार प्रीति रणवीर सिंह के मतानुसार, “यहाँ से गुरु द्रोण के जीवन में भयंकर प्रकार का मोड़ आता है। अपनी विपन्नता को त्यागकर वह हस्तिनापुर जाते हैं और पांडवों तथा कौरवों के गुरुपद का स्वीकार करते हैं। कुटिया से महल तक की यात्रा तो वह कर लेते हैं परंतु यहाँ से एक अनैतिक परंपरा की शुरुआत होती है- वैतनिक गुरु परंपरा।”⁷ कोई भी संस्था अपने अधिनस्थ सेवकों को कार्य की खुली छूट नहीं देती। अतः उनके कार्य पर संस्था का नियंत्रण रहता है। और अध्यापकों का कार्य बहुत हद तक संस्थापक के नीति-नियमों द्वारा नियंत्रित रहता है। ऐसे में किसे, कब व कैसे शिक्षा देनी है यह सब संस्था द्वारा निर्धारित किया जाता है। आचार्य द्रोण की परवशता पहली बार मुखरित होती है जब वह एकलव्य को अपना शिष्य बनाने से इनकार कर देते हैं। ऐसा नहीं था कि एकलव्य में आचार्य द्रोण का शिष्य बनने की योग्यता नहीं थी। खुद आचार्य द्रोण एकलव्य से प्रभावित थे परंतु अपनी असमर्थता के चलते उन्होंने उसे शिक्षा देने से इनकार किया। मनु शर्मा के औपन्यासिक द्रोण कहते हैं, “इन कुछ क्षणों में ही मैं उससे बहुत प्रभावित हुआ। मेरे मन ने मुझसे कहा, इस बालक में तुम्हारे शिष्य होने की पूर्ण योग्यता है। इसे अपना शिष्य स्वीकार करो। शास्त्रों की व्यवस्था तोड़ दो। शिष्य की पात्रता देखो। तुम आचार्य हो ना किंतु मेरी बुद्धि बोल उठी, तुम ऐसा कभी मत करना। तुम्हारा शिष्यत्व प्राप्त होते ही इसका तेज सूर्य की तरह प्रचंड हो जाएगा। तब तुम्हारे शिष्य कौरव और पांडवों का क्या होगा? इनमें से शायद कोई भी इस बालक का सामना न कर सके।.....तुम सोचते हो कि आर्यावर्त के आचार्यों की महान परंपरा में मैं एक आचार्य हूँ। यह तुम्हारी भूल है। तुमने तो अपना आचार्यत्व बेच दिया है। इस समय तुम हस्तिनापुर के मात्र राजकीय चाकर हो। राजकीय अनुमति के बिना तुम किसी को शिक्षा नहीं दे सकते।.....कहाँ है तुम्हारा आचार्यत्व? कहाँ है तुम्हारा गुरुत्व?”⁸ अपनी इस परवशता को लेकर आचार्य द्रोण का मन सदैव कचोटता रहा। भले ही प्रतिशोध के चलते या गरीबी के कारण उन्होंने हस्तिनापुर का आचार्यत्व स्वीकार किया हो लेकिन एक आचार्य होने के नाते व्यक्ति की स्वतंत्रता पर सोचते हुए अपने ईर्द-गिर्द अदृश्य बंधनों को महसूस करते हैं। और उसी अदृश्य बंधनों के कारण अपनी विद्या योग्य छात्र को न देकर सिर्फ सत्ताधिकारियों को या यों कहे पूँजीपतियों को बेचते रहें। भले ही एकलव्य को अन्य कारण देकर शिक्षा से दूर रखा हो। लेकिन उनका मन अपनी परवशता को जानता था। स्वप्नदृश्य में भी यह चिंतन उन्हें नहीं छोड़ता। सदैव अपने को अपराधी समझता रहा। “मुझे ऐसा लगा मेरे चारों ओर बहुत सारे बालक हैं। जानते हो हम कौन हैं? हम हैं इस देश के अभागे छात्र, जिन्हें मनचाही शिक्षा न मिल सकी, क्योंकि तुम्हारे ऐसे लोगों ने आश्रम की संस्कृति और अपनी विद्या थोड़े से स्वर्ण खंडों पर राजघरानों के हाथों

⁴ सूर्यकांत तिलाली, महाभारत का धर्मसंकट, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014, पृ. 82

⁵ मनु शर्मा, ‘द्रोण की आत्मकथा’, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011, पृ. 91

⁶ दाजी पणशीकर, महाभारत: एक सूडाचा प्रवास, पुणे, रविराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014, पृ. 221

(“द्रुपद के सूडचिंतन के भयानक होते आणि द्रोणाचे शस्त्रास्त्राचे सामर्थ्य इतके भयानक होते की, ह्या दोघांच्या सूडपूर्तिसाठी धृष्टद्युम्न द्रौपदीची एक नवी पीढी अवतीर्ण व्हावी लागली.”)

⁷ परमार प्रीति रणवीर सिंह हिंदी के पौराणिक उपन्यास: एक अध्ययन, पीएच.डी. शोधग्रंथ, अप्रकाशित, महाराजा सयाजी विश्वविद्यालय, बड़ौदा, पृ. 278

⁸ मनु शर्मा, ‘द्रोण की आत्मकथा’, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011, पृ. 61

बेच दी। हम तो तुम्हें प्रणाम करेंगे, पर हमारी संततियाँ कभी तुम्हें क्षमा नहीं करेगी। इस देश का भविष्य कभी तुम्हें नहीं छोड़ेगा।”⁹ द्रोण की यह परवशता आजीवन रही। इस व्यवस्था ने उन्हें इतना पंगु बना दिया कि कौरव कुल के कुमारों को पढ़ाने के पश्चात उन्होंने अन्य किसी को भी अपना शिष्य नहीं बनाया। चाहते तो दोबारा आश्रम चला सकते थे लेकिन इस व्यवस्था ने एक गुरु के पूर्णत्व को खंडित कर इस शिक्षा व्यवस्था का एक कल-पुर्जा बना दिया, जिसकी सार्थकता केवल व्यवस्था में ही है। व्यवस्था के बाहर वह मूल्यहीन बन जाता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि महाभारत के महत्वपूर्ण पात्र ‘द्रोण’ की पहचान आचार्य पद से है। इसलिए सिर्फ ‘द्रोण’ कहने से आधुनिक काल में इस पात्र का विशेष परिचय देने की आवश्यकता महसूस होती है। द्रोण के साथ आचार्य पद जोड़ने से ही उनकी पहचान पूरी होती है। आधुनिक मिथकीय समीक्षात्मक दृष्टि से देखे तो द्रोण की पहचान ही उनके पद से है। पद से प्राप्त गरिमा बाहरी खोल की तरह होती है। इस पद ने द्रोण की न्यूनताओं पर परदा डालने का काम किया लेकिन गरिमा का खोल भी व्यक्ति के अविवेक को ढँक नहीं सकता। महाभारतकार ने आचार्य द्रोण को हमेशा गौरवान्वित किया है। सिर्फ अंतिम महायुद्ध के समय व्यास तथा अन्य ऋषियों ने द्रोण को शस्त्र त्याग के लिए प्रेरित करने की घटना दिखाई देती है। परंतु आधुनिक साहित्यकारों ने तथा समीक्षकों ने गुरूपद से स्खलित द्रोण के कुटिल, प्रतिहिंसावादी, अविवेकी रूप को प्रकट किया है। इसलिए आधुनिक काल में द्रोण उच्चादर्श अध्यापक का मिथक न होकर पदस्खलित अध्यापक का मिथक है।



⁹ मनु शर्मा, 'द्रोण की आत्मकथा', नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011, पृ. 286-287

अधूरी देह में एक पूरी रूह को जीने के लिए अभिशप्त : किन्नर समुदाय (‘दरमियाना’ उपन्यास के विशेष संदर्भ में)

प्रा. डॉ. अनिलकुमार आर. राठोड
हिंदी विभाग
शहीद भगतसिंग महाविद्यालय, किल्लारी
ता. औसा जि.लातूर। महाराष्ट्र

आज विश्व भर में मानव समाज अस्मिताओं के प्रति पहले की अपेक्षा अधिक सक्रीय है और यह बौद्धिक संचेतना का सुफल है कि विश्व समुदाय से होते हुए आज भारतवर्ष में भी तमाम वंचितों के अधिकारों की बात उठने लगी है, ऐसा ही उपेक्षित और वंचित समुदाय है ‘किन्नर (हिजड़ा) समुदाय’।

आज जब दलित, स्त्री, आदिवासी और अल्पसंख्याक विमर्श अकादमिक, साहित्यिक दुनिया और सत्ता प्रतिष्ठानों में जगह बना चुके हैं ऐसी स्थिति में किन्नरों की इयत्ता सिरे नदारद है। हालाँकि भारतीय संसद और सर्वोच्च न्यायालय ने संवेदनशीलता दिखाते हुए विगत वर्षों में उन्हें कुछ सम्मानजनक नागरिक सुविधाएँ प्रदान की हैं। बावजूद इसके भारतीय समाज इनको लेकर सहज नहीं हो पाया है। आज भी यह हाशिये पर है और तिरस्कृत जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। मानवीय सभ्यता के भीतर उद्भूत विभिन्न धर्मों और समाजों ने भी उन्हें मनुष्यत्व की श्रेणी में नहीं रखा। कैसी विडंबना है कि धरती को स्वर्ग बनाने का दावा करनेवाले विभिन्न धर्म और समानता, न्याय और बंधुत्व के सिद्धांत स्थापित करनेवाली राजनीतिक क्रांति भी किन्नरों (हिजड़ों) के साथ मनुष्यता का व्यवहार तक नहीं कर सकी यही इस समुदाय का दूर्भाग्य रहा।

किसी भी वंचित ईकाई को अपना हक्क तथा अधिकार दिलाने में साहित्य की भूमिका अहम होती है। पर किन्नरों पर हिंदी साहित्य जगत् में प्रचलित विमर्शों की अपेक्षा अत्यल्प लेखन हुआ परिलक्षित होता है। हालाँकि भारत का बौद्धिक वर्ग निरंतर इस दिशा में भी प्रगति कर रहा है। हिंदी साहित्य जगत् की बात करे तो किन्नरों के जीवन त्रासदी पर अब तक कुछ कहानियाँ, पाँच छह उपन्यास, दो-तीन नाटकों के अतिरिक्त कुछ खास नजर नहीं आता है।

सन् २०१८ में अमन प्रकाशन कानपूर द्वारा प्रकाशित सुभाष अखिल कृत ‘दरमियाना’ उपन्यास पढ़ने को मिला। यह उपन्यास मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति में एक और वंचित ‘किन्नर समुदाय’ किस प्रकार देहगत एवं जीवनगत कमजोरियों को ढोते हुए संत्रासपूर्ण जीवन जीने के लिए अभिशप्त बना हुआ है इसे बखूबी उद्घाटित किया है। वास्तव में इस उपन्यास के सृजन का इतिहास अपने-आपमें काफी रोमांचक रहा है। लेखक सन् १९७८-७९ को जब एम. ए. की शिक्षा दिल्ली विश्वविद्यालय से कर रहे थे, उसी दौरान एक कहानी का जन्म हुआ जिसका नाम है - ‘दरमियाना’। लेखक जब छोटे थे तब एक लड़के ने लड़ाई-लड़ाई में गाली देते हुए कहा ‘तेरी माँ हिजड़ा है’। तब से ‘हिजड़ा’ यह गाली लेखक के लिए एक रहस्य बन गयी। यह रहस्य ही अनेक सवाल खड़े किए “‘उसने ऐसा क्यों कहा कि मेरी माँ हिजड़ा है? क्या होता है हिजड़ा होना?...ये क्यों माँ नहीं हो सकते?...क्या यह हमसे अलग होते होंगे?’” इन तमाम सवालों को जानने की जिज्ञासा ही किन्नरों के प्रति आकर्षण पैदा करती गई जिसका नतिजा कहानी का जन्म हुआ। तत्कालीन प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका ‘सारिका’ के अक्टूबर १९८० के अंक में ‘दरमियाना’ कहानी को ससम्मान प्रकाशित किया गया। पत्रिका संपादक कन्हैयालाल, संपादक सहयोगी एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार जैनेंद्रकुमार, विष्णु प्रभाकर, अजितकुमार, डॉ. नरेंद्र कोहली तथा अन्य सभी साहित्यकारों ने ‘दरमियाना’ को इस विषय पर लिखी गई हिंदी की पहली कहानी माना था।

सुभाष अखिल जी को जब दिल्ली प्रेस में नौकरी मिली तब वहाँ के वरिष्ठ साथियों के आग्रह तथा दबाव था कि ‘दरमियाना’ को एक उपन्यास होना चाहिए। इसी बीच अरविंद बाजपेयी जी का आदेश हुआ कि -“यह उपन्यास मुझे एक महीने में ही चाहिए, फिर तमाम विस्मृतियों को खंगाला गया...और ३८ वर्ष बाद ‘दरमियाना’ ने एक उपन्यास का रूप ले ही लिया।” वास्तव में किन्नरों को बच्चे के जन्म के अवसर पर, घरमें नई बहू के आगमन पर तथा किसी सुअवसर पर ताली बजाकर नेग माँगते हुए हम देखते तो जरूर है लेकिन उनके जीवन की वास्तविकता को समझने में कोई अहमियत नहीं देते। परंतु सुभाष अखिल ने अपने उपन्यास में किन्नरों के जीवन को किस अंदाज से देखा इस संदर्भ में उपन्यास के पिछले फ्लैप पर लिखते हैं -“किन्नरों को शहरों में चौराहों पर भी ताली बजाते उनके फैले हाथ हम अक्सर देखते हैं। कभी हम उन्हें कुछ दे जरूर देते हैं, लेकिन नहीं जानते कि वे कहाँ रहते और कैसे जीते-मरते हैं, उनके भीतर भी माया, ममता होती है या नहीं? उन्हें देखकर ऐसे अनेक सवाल मन में अक्सर उठते हैं लेकिन उनके जवाब नहीं मिलते। सुभाष अखिल का यह उपन्यास किन्नरों की रहस्य में डूबी दुनिया के बारे में ऐसे तमाम सवालों के जवाब देता है।”

प्रस्तुत उपन्यास 'तारा और रेशमा की संगत', 'संजय से संध्या होने तक', 'जिस्म और जज्बात का संतुलन', 'कातिल अदाओं का कत्ल' और 'दया की दया का अंत' इन पाँच उपशीर्षकों से अपने कथानक को आगे बढ़ाता है, जिसे हम संस्मरणात्मक उपन्यास की कोटि में रख सकते हैं।

दरमियाना एक 'तारा और रेशमा की संगत' में लेखक ने तारा और रेशमा तथा उनके साथी किन्नरों का रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, केशभूषा, साज-शृंगार, नाच-गाने के साथ-साथ, नेग मॉगकर जीवनयापन करना, ताली पिटना, बस्ती तथा मोहल्ले के लोगों द्वारा मजाक तथा मनोरंजन का विषय बनना, सभ्य समाज द्वारा उन्हें हास्य, घृणा तथा तिरस्कार की दृष्टि से देखते हुए उनसे अंतर बनाए रहना, निसंतानता का दुख एवं उनकी धार्मिक पूजा विधी का यथार्थ अंकन किया है। इसके अलावा लेखक के साथ तारा का आत्मीय लगाव, माँ की तरह प्रेम, ममता, माया, स्नेह एवं अपनत्व की झोंकी भी देखने को मिलती है। जैसे –“सान्निध्य से परिचय प्रगाढ़ होता है और परिचय की प्रगाढ़ता से प्रेम! किंतु जिस तरह सान्निध्य से प्रेम तक की प्रक्रिया को क्षणों में विभक्त नहीं किया जा सकता,.....मैं कब और क्यों उसके इतना समीप चला गया था, वह क्यों और कैसे मुझ तक सिमट आयी थी- नहीं कहा जा सकता।” इसी बीच पारिवारिक कारणों से लेखक और तारा के मिलन में कई वर्षों का अंतर पड़ जाना, पत्नी मधूर के साथ बाजार में खरीदारी को जाना वहाँ रेशमा का मिलना और रेशमा द्वारा तारा की बीमारी का पता चलना, तारा द्वारा बीमारी में बड़बड़ाते हुए कहना 'मेरे आशुए को ढूँढ लाओ' इसकी जानकारी देना, रेशमा द्वारा लेखक तारा को मिलने की याचना पाकर तारा को मिलने जाना, तारा को मिलते ही तारा की दोनों आँखों से पानी की एक-एक बूँद लुढ़ककर आना एवं सदा-सदा के लिए मौन हो जाना पाठक के मन और मस्तिष्क को झकझोर देता है। तारा किन्नर ताउम्र अपनी अधूरी देह में एक पूरी रूह को जीने के लिए कैसे संघर्षरत रही इसका यथार्थ चित्रण उपन्यास के प्रथम कथा शीर्षक में हुआ है।

उपन्यास द्वितीय अध्याय 'संजय से संध्या होने तक' में संजय के मर्दाने जिस्म में छटपटाता जनाना (स्त्री) मन की संत्रासपूर्ण अधूरी जीवन दास्तान को प्रस्तुत किया है। तारा की मृत्यु पश्चात् उसके मानसपुत्र होने के नाते लेखक तारा की मातमूर्ति के अवसर पर रेशमा के घर जाने पर वहाँ एक २३-२४ साल की संजय से संध्या बनी 'दरमियाने' द्वारा लेखक के स्वागत से इस अध्याय की शुरुवात होती है, जो रेशमा की चेली है। उसे देखकर लेखक चौंक गया था –“मर्दाने लिबास में जनाना नाम, यानी 'दरमियाना'। संजय का जन्म आग्रा में हुआ उसके परिवार में माता-पिता, छोटी बहन संध्या और भाई सचिन है। संजय जन्म से ही 'अकुआ' (लिंग सहित) पैदा हुआ इसीलिए परिवारवालों ने उसे लड़का ही समझा। पर जैसे-जैसे उम्र बढ़ती गई वैसे-वैसे उसमें स्त्रियोचित गुणों का विकास होने लगा। वह लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के साथ ज्यादा सहज महसूस करने लगी। जिसके कारण परिवार तथा समाज द्वारा उपेक्षा, प्रताड़ना एवं नफरत की भावना का शिकार उसे होना पड़ा। इस संदर्भ में वह कहती है –“यानी जिस पर खुद किसी को भी, या उसके घरवालों को नाज हुआ करता... वह मेरे लिए शर्म का सबब बन गया।...इसीलिए मेरी प्रताड़ना शुरू हो गई। घर में, स्कूल में और हर कहीं। माँ को मैंने कई बार सुबकते देखा था, इसी वजह से। पापा तो मुझसे बेहद नफरत करने लगे थे।” समाज द्वारा उलाहना एवं अपमान के कारण संजय के पिता भी चल बसते हैं। इसीलिए संजय रेशमा किन्नर की टोली में जाकर शामिल हो गया। यहीं पर वह संजय से संध्या बन बैठी। लेखक का उसके साथ संबंध बड़े भाई का रहा। इसीलिए लेखक के घर उसका आना-जाना चलता रहा, पत्नी मधूर को वह भाभी कहती थी। बच्चों से भी बहुत प्यार-दूलार करती। उसका एक गिरिया (साथी) है, जिसका नाम राहूल है और संध्या उसकी कोती (प्रेमिका) रही उसके साथ उसका संबंध बना रहा। आगे संध्या का रेशमा से कुछ अनबन होने से वह प्रताप गुरु की टोली में शामिल हो गई।

एक दिन संध्या लेखक की पत्नी मधूर को लेखक द्वारा उसके लिए कुछ करने का आग्रह करवाती है। परिणामतः लेखक संध्या के 'सेक्स ट्रांसप्लांट' के लिए देश एवं विदेश (जर्मनी) के अस्पताल में ले जाने का पूरा-पूरा इंतजाम करते हैं, पर प्रताप गुरु ने उससे पहले ही एक दिन संध्या का जालंधर छावनी के किसी नर्सिंग होम में उसका छिबरा (लिंग विच्छेदन) करवा देता है। काफी रक्तस्राव के कारण उसके मरने की आशंका से उसे उसके घर लाकर फेंक दिया जाता है। संध्या के ईलाज हेतु लेखक बड़े भाई के नाते विलिंग्डन हास्पिटल में भर्ती करते हैं परंतु 'हेमोफिलिया' रोग से ग्रस्त एवं अधिक रक्तस्राव के कारण संध्या दरमियाने का करुण अंत हो जाता है। संध्या की अंतिम ईच्छा के अनुसार उसकी अंतिम विधी हेतु लेखक उसके परिवार की अनुमति लेकर उसकी पहली गुरु रेशमा को उसका शव सौंप देते हैं। तारा की तरह संध्या भी अधूरी देह में एक अधूरी रूह जीती हुई समाज द्वारा अपमान एवं उलाहना के कड़वे घूँट पी-पीकर जिंदगी से हाथ धो बैठी। यही संध्या के जीवन की करुण दास्तान रही।

तृतीय अध्याय 'जिस्म और जज्बात का संतुलन' में लेखक ने सुनंदा 'दरमियाने' की अधूरी देह और उसके जज्बातों के संतुलन का संतुलित रेखांकन किया है। इस अध्याय में मुरादाबाद के एक हिंदू मिश्रा परिवार में किन्नर रूपमें जन्में नंदू किस तरह नंदा और सुनंदा बन गई जिसका मार्मिक चित्रण किया है। किन्नर रूपमें पैदा होने पर नंदू के परिवारवाले उसके नाम की मटकी फोड़ देते हैं, और नंदू भी अपने माँ-बाप के नाम की मटकी फोड़कर हमेशा के लिए मुस्लिम दम्पति फजल अहमद और रूखसाना बी एवं हमउम्र पुत्री रूखसार, पुत्र फतह के परिवार की नंदा बन जाती है। इस परिवार का छोटा पुत्र सुलतान का जन्म सुनंदा के इस परिवार के साथ जुड़ने के बाद होता है। पर एक दिन मुरादाबाद के कटघर गाड़ीखाना एवं पीपल महादेव मोहल्ले में हिंदू-मुस्लिम फसाद शुरू हुआ और इस हादसे में फजल मियाँ और फतह का कत्ल कर दिया गया। इस दुर्घटना से आहत नंदा ने ताई अम्मा और सुलतान को लेकर दिल्ली अपने समुदाय की नगमा के घर आश्रय पा लिया और हमेशा के लिए नंदा से सुनंदा बन

बैठी। परिवार की पूरी जिम्मेदारी सुनंदा अधूरी देह होते हुए भी पूरी ईमानदारी से निभाती रही। इस संदर्भ में ताई अम्मा कहती है—“वह कब नंदू से नंदा, नंदा से बेटी, बेटी से सखी, सखी से खुद ताई अम्मा की माँ बनती चली गई—न तो ताई अम्मा को पता चला और न ही खुद उसे।”

उपन्यास के कथानक का चतुर्थ शीर्षक ‘कातिल अदाओं का कत्ल’ में दिल्ली के मंडी हाउस के पास सांगली मैस की रजिन्दर से रेखा बनी किन्नर (दरमियाने) के विडंबनापूर्ण जीवन करुण दास्तान को प्रस्तुत किया है। लेखक पत्रकारिता से जुड़े हुए होने कारण पहले से इन लोगों पर एक फिचर तैयार करने की जिम्मेदारी उन पर रही। इसीलिए नगमा द्वारा परिचय करवाकर दी गई रेखा किन्नर के घर लेखक का आना जाना लगा रहा। आगे चलकर इन लोगों पर लेखक ने एक फिचर भी तैयार कर रविवार के संस्करण में छापा जिससे रेखा और उसकी सहेलियाँ भी काफी खुश रही। इस कथा प्रसंग में लेखक इन लोगों के आवासगत विडंबना के बारे में लिखते हैं—“इस क्षेत्र की एक बड़ी विडंबना यह है कि, अति महत्वपूर्ण क्षेत्र होने कारण आज इस जमीन की कीमत कई हजार करोड़ की है।...किंतु सरकार न तो इन्हें यहाँ से हटा पा रही है और न ही उन्हें अपने मकान पक्के करने दे रही है।” रेखा भले ही दरमियाने के रूपमें पैदा होकर सलमा गुरु से जा मिली हो पर कभी-कभार वह अपने घर आकर अपनी माँ, पिता तथा छोटी बहन निशा को आर्थिक दृष्टि से साह्यता करती रहती है। परंतु एक दिन पिता के चल बसने पर रेखा ने नफरत करनेवाले पिता की अंतिम संस्कार की पूरी जिम्मेदारी स्वयं उठाकर एवं माँ तथा बहन के भरण-पोषण का पूरा भार उठाकर अपनी मानवीयता, ममता, प्रेम जैसे उदात्त भावों को अपने चरितार्थ का हिस्सा बना लेती है। पर ऐसे अंतर्गत उदात्त गुण तथा बाहरी सौंदर्य की प्रतिमूर्ति रेखा का एक दिन अपने मोहल्ले के कुछ युवाओं द्वारा व्यक्तिगत रंजिश के कारण कत्ल कर दिया जाता है। यही इन लोगों की जीवनगत विडंबना, विसंगति एवं विद्रूपता का द्योतक बन पड़ा है। जो पाठक के मन पर आघात करते हुए उनकी जिंदादिली पर चिंतन करने के लिए बाध्य करती है।

रेखा के कत्ल में शामिल उन चारों युवाओं को सजा मिली। तत्पश्चात् कुछ दिनों के बाद लेखक के पिता की मृत्यु हो गई। इसलिए उन्हें दिल्ली से गाजियाबाद शिफ्ट होना पड़ा। गाजियाबाद शिफ्ट होने पर वे रेखा की गुरु सलमा की धरमबहन दया मौसी के संपर्क में आये। इसीलिए उपन्यास के अंतिम कथा शीर्षक का नाम ‘दया की दया का अंत’ है। जिसमें दयारानी को भले ही किताबी ज्ञान की कमी हो पर जमिनी हकिकत और व्यवहारिक समझ के कारण राजनीति के प्रति रुचि, सामाजिक कार्यों में आगे बढ़कर योगदार करने और किन्नर समाज के हितों की लड़ाई लड़ने का साहस उसमें कुट-कुटकर भरा हुआ है। परिणामतः किन्नर समुदाय में अस्तित्व की चेतना निर्माण कर धरना, प्रदर्शन और ट्रांसजेडर अधिकार आंदोलन कमिटी तैयार कर उन्हें ‘तीसरे लिंग’ के रूपमें अलग से मान्यता के दिलाने के लिए प्रस्ताव केंद्र सरकार तक भी पहुँचाती है।

किन्नरों को हक्क और अधिकार दिलाने में वह राजनीति को बहुत बड़ा शस्त्र मानकर मेयर, विधानसभा तथा लोकसभा का चुनाव भी लड़ती है, पर जीत हासिल नहीं कर पाती। किन्नर समुदाय के हित में लड़नेवाली दयारानी के भाई बाबू के निधन के बाद घर की माली हालत को देखकर अपनी भतिजी गीता उर्फ बबीता को परिवरिश हेतु अपने पास ले आती है। पर गीता के पूर्व प्रेमी वारिस और दया के पूर्व कार ड्रायवर द्वारा ५ जून २०१५ को दया की गोली मारकर हत्या कर दी जाती है। दयारानी की हत्या का कारण पुलिस द्वारा गीता और उसके कथित प्रेमी के बीच संबंधों में बाधा बनना बताया गया। इस दूर्घटना के लगभग एक साल बाद एक अन्य दरमियाने अन्नु शर्मा की भी हत्या दो हमलावरों द्वारा कर दी जाती है। इस हत्या के बाद सेकड़ों दरमियानों ने काफी रोष भी जताया। इसी के साथ उपन्यास का अंत हो जाता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि, सुभाष अखिल द्वारा लिखा गया संस्मरणात्मक उपन्यास ‘दरमियाना’ में चित्रित तारा माँ, सुनंदा, रेखा और दयारानी यह पात्र समग्र किन्नर समुदाय का प्रतिनिधित्व करनेवाले चरित्र के रूपमें उभरकर आये हैं। जो परिवार में द्वेष, तिरस्कार तथा ईर्ष्या, समाज में उलाहना एवं प्रताड़ना और सरकार द्वारा उपेक्षाभाव का शिकार बने हुए हैं। प्रस्तुत उपन्यास द्वारा लेखक ने हाशिए पर रखे किन्नर समुदाय की जीवनगत विडंबना, विसंगति एवं विद्रूपता का अंकन करते हुए उनके प्रति आत्मीयता, प्रेम एवं सहानुभूति भाव जगाकर उन्हें हक्क और अधिकार दिलाने की पूरजोर वकालत करता है।

संदर्भ ग्रंथ :

१. दरमियाना - सुभाष अखिल - अमन प्रकाशन, रामबाग, कानपूर। सन २०१८.
२. किन्नर विमर्श साहित्य के आइने में - डॉ. इकरार अहमद - वाङ्मय बुक्स, अलिगढ़। सन २०१७
३. हिंदी उपन्यासों के आइने में थर्ड जेंडर - डॉ. विजेन्द्र प्रतापसिंह - अमन प्रकाशन, रामबाग, कानपूर। सन २०१७..
४. थर्ड जेंडर आत्मकथा और जीवन संघर्ष - सं. डॉ. एम. फिरोज खान - विकास प्रकाशन, कानपूर। सन २०१६

‘इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर विमर्श’
(विशेष संदर्भ ‘किन्नर कथा’ तथा ‘पोस्ट बॉक्स नं. २०३, नालासोपारा)

प्रा.डॉ. अर्जुन शंकरराव कसबे
हिंदी विभाग
शिवाजी महाविद्यालय, रेणापूर जि. लातूर

हिंदी उपन्यास साहित्य में हाशिए का समाज को लेकर बहुत लिखा गया है, अब भी लिखा जा रहा है। जैसे दलित विमर्श स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि को लेकर दर्जनों उपन्यास लिखे गए हैं। जिनपर कई गोष्ठियों में चिंतन किया गया है। भारतीय समाज जीवन में स्त्री-पुरुष दो लिंग माने गये। परंतु एक तीसरा लिंग भी है जो वास्तव में है परंतु वह बुरी तरह उपेक्षित रहा है। हिंदी उपन्यासों में दलित, स्त्री-आदिवासी विमर्श की परंपरा में एक और विमर्श, हिजड़ा विमर्श आदि नामों से भी जाना जा रहा है। हमारी जानकारी के अनुसार हिंदी में किन्नर विमर्श को लेकर पहला उपन्यास निरजा माधव का ‘यमदीप’ २००२ में प्रकाशित हुआ। तब से लेकर किन्नर विषय पर अब तक दर्जन भर से ज्यादा उपन्यास तथा कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके बाद ‘मनमीत’ पत्रिका का ‘किन्नर विशेषांक’ प्रकाशित हुआ जो किन्नर जीवन के यथार्थ पहलुओं पर नया प्रकाश डालने में काफी मात्रा में सफल हुआ। इस विशेषांक के संपादक जाने-माने पत्रकार कुमार अरविंद ने कई किन्नरों के साक्षात्कार लिए जिससे किन्नरों की पीड़ा एवं वेदनाओं को जिवंत रूप में प्रकट किया गया। आज की तारीख में किन्नर विमर्श को लेकर खुलकर लिखा जा रहा है, गोष्ठियों में चर्चाएँ हो रही हैं तथा विविध विश्वविद्यालयों में इसपर संशोधन भी हो रहे हैं। हिंदी उपन्यासों में किन्नर या थर्ड जेंडर को लेकर विस्तार से लिखा गया है। उपन्यास जैसे बड़े फलक की साहित्यिक विधा में इस समाज की व्यथाएँ, पीड़ाएँ, उपेक्षाएँ, प्रताड़नाएँ तथा अभिशप्त जीवन की तमाम सुक्ष्मताओं तथा, व्यापकताओं को अभिव्यक्त करने की सुविधा प्राप्त हुई है। ‘यमदीप’ (२००२) उपन्यास के बाद किन्नर जीवन पर सक्षमता से चित्रित करनेवाला उपन्यास ‘किन्नर कथा’ सन २०१० में प्रकाशित हुआ। उपन्यासकार महेंद्र भीष्म ने ‘किन्नर कथा’ में किन्नर समाज की समस्या को बड़ी गहराई से लिया है। हमारे समाज के मुख्य दो स्तंभ हैं जिसपर मानव समाज का ढोंचा मजबूती से हजारों वर्षों से खड़ा है। आदिम सभ्यता से ही दोनों का काम आपसी सहयोग से संतान पैदा करना और मानव जाति को आगे बढ़ाता रहा है। परंतु एक और कड़वा सच यह भी है कि इन दोनों के अलावा एक तीसरा लिंग भी है जो न पुरुष है न स्त्री। वह न भिन्न लिंगी संबंध बना सकता है न गर्भ धारण कर सकता है। माता-पिता को उस बालक के थर्ड जेंडर होने का पता चलता है तो उसकी उपेक्षा और प्रताड़ना का दौर माता-पिता अर्थात् अपने परिवार से ही शुरू हो जाता है और बाहरी समाज तो उसे इतनी क्रूर यंत्रणा देता है कि वह न जी सकता है न मर सकता है। कुछ ऐसी ही व्यथा-कथा महेंद्र भीष्म के उपन्यास ‘किन्नर कथा’ की है। यह वर्ग कैसे मुख्यधारा के समाज में बहिष्कृत, घृणा, तिरस्कृत जीवन जीने को अभिशप्त होजाता है। ‘किन्नर कथा’ के लेखक ने किन्नरों की असीम पीड़ा को अद्भूत रूप में चित्रित किया है। ऐसा लगता है कि लेखक ने इस समूह की पीड़ाओं को अत्यंत निकटता से देखा, जाना और समझा है। हमारे समाज की सभ्यता का प्रतिशत उत्तरोत्तर बढ़ ही रहा है परंतु इतनी सभ्यता के बाबजूद अभी भी किन्नर वर्ग मुख्यधारा के समाज से जुड़ नहीं पा रहा है। इस उपन्यास का चरित्र सोना उर्फ चंदा अत्यंत सुंदर है। मात्र उसकी कंठध्वनि उसके किन्नर होने का पुख्ता प्रमाण है अन्यथा वह कहीं से भी किन्नर दिखाई नहीं देती। सोना अपने जुड़वा बहन के साथ एक समृद्ध राजघराने में जन्म लेती है। सोना के कंठध्वनि से उसके पिता समझ जाते हैं कि वह किन्नर है। सोना के पिता ने अपने राजघराने की लाज रखने तथा लोकलाज के कारण अपने सुंदर तथा अबोध लड़की की हत्या करने का जिम्मा अपने दिवान पर बड़ी निष्ठुरता से सौंप दिया। किन्तु दीवान संवेदनशील इंसान निकला और उसने सोना को दया-विभोर होकर किसी तारा नामक किन्नर गुरु को सौंप दिया और तारा ने उसका नामकरण चंदा किया। सोना से चंदा तक का यह सफर कोई आसान या जल्द हुआ ऐसा नहीं था। अपने अधूरी देह होने का बोध। तृतीय लिंग में परिवर्तित चंदा को जब होता है तब वह अपने अंदर-बाहर की दर्दनाक पीड़ा को कैसे झोलेती है उसका सचित्र वर्णन संवेदना के उच्चतम स्तर पर करने में उपन्यासकार सफल हुआ नजर आता है। किन्नर समाज की पीड़ा को चित्रित करने में महेंद्र भीष्म की लेखनी उत्कृष्ट बन पड़ी है, चंदा के जीवन में आये एक प्रतिष्ठित परिवार का पुरुष मनीष के माध्यम से अध्यात्मिक प्रेम या प्लुटोनिक लव को भी प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान समय में निरजा माधव के ‘यमदीप’, महेंद्र भीष्म के ‘किन्नर कथा’ पायल’ प्रदीप सौरभ के ‘तीसरी ताली’, निर्मला भुराडिया के ‘गुलाम मंडी’, तथा चित्रा मुद्गल के पोस्ट बॉक्स नं. २०३ नालासोपारा आदि उपन्यासों की किन्नर विमर्श के उपन्यास के रूप में देखा जा रहा है। इनमें महेंद्र भीष्म का उपन्यास ‘किन्नर कथा’ हिजड़ों के जीवन को बड़ी सच्चाई के साथ उद्घाटित करता है। वह भी किसी सामान्य हिजड़े की नहीं बल्कि एक राजघराने में पैदा हुई सोना उर्फ चंदा की कथा है। इस उपन्यास में चित्रित राजपरिवार के लिए यह एक आश्चर्यजनक घटना है। एक प्रतिष्ठित राजघराने में हिजड़े का जन्म होने की बात सोना की माँ कुछ दिनों तक छिपाती है। माँ होने का धर्म तो माँ ने निभाया परंतु राजा यह बात जान जाते हैं तो वे न सहन कर पाते हैं न ही सोना पर दया दिखाते हैं। अपने दीवान द्वारा उसे खत्म करने को कहते हैं। दीवान का दयाभान पाकर वह बच तो जाती परंतु उसकी सारी दुनिया उलट

पुलट जाती है। मौत के मुँह से बचकर वह किन्नर समुदाय में पहुँच जाती है। अब वह सोना से चंदा पूरी किन्नर बन गई है। उपन्यास में किन्नर समाज की चहेती किन्नर गुरु तारा द्वारा चंदा का लालन पालन किन्नर समुदाय के संस्कारों के रूप में हो रहा है। तारा ने चंदा को लाड प्यार दिया है, उसे दुलारा और सँवारा है। तारा का चरित्र बड़ा भावुक बन पड़ा है। फिर भी चंदा अपने माता पिता को याद करके हमेशा रोती हैं। अपनी बदली हुई देह और दुनिया को याद कर वह दुःखी हो जाती है। उपन्यास में ऐसे कई प्रसंग हैं जो भावुक बन पड़े हैं। अब तक के दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि विमर्शों को हमने हमारे आस-पास के समाज में देखा है, जाना है या उसकी स्वयं अनुभूति भी है। परंतु किन्नर विमर्श बिल्कुल अलग किन्तु यथार्थ विषय है। यह तीसरी दुनिया की अभिव्यक्ति साहित्य में देखने को मिल रही है। तृतीयपंथी लोगों के जीवन को कुछ ही मात्रा में सही अभिव्यक्ति मिल रही है। थर्ड जेंडर विमर्श का उद्भव हो गया है। इसी दृष्टि से 'किन्नर कथा' उपन्यास को देखा जा सकता है। इस उपन्यास की विषय-वस्तु प्रासंगिक तथा ज्वलंत समस्या पर आधारित होने के कारण पाठकीय प्रेरणाओं को जगाने में सफल रहा है। समाज में किन्नरों की स्थिति को सुधारने के लिए यह उपन्यास प्रकाश स्तंभ का कार्य करेगा और साहित्यिक सुधी जनों के मध्य साहित्यिक बौद्धिक अभिरुचि उत्पन्न करनेवाला मील का पत्थर सिद्ध होगा। उपन्यासकार महेंद्र भीष्म केवल नकारात्मक ही नहीं, सकारात्मक दृष्टि से भी किन्नर मन के भावों को चित्रित करने में सफल रहे हैं। वे चंदा के जीवन में आये प्रतिष्ठित परिवार के एक सज्जन पुरुष मनीष चंदा से प्रेम करते हैं। केवल प्रेम ही नहीं करते तो तमाम परंपराओं और मान्यताओं से हटकर मनीष चंदा को अपनाते हैं। यह उपन्यास फिल्मी मोड़ लेता हुआ अविश्वसनीय ढंग से सुखांत मोड़ लेकर समाप्त होता जरूर है। परंतु समाज का एक अहम हिस्सा किन्नर समुदाय, जो अंततः एक मनुष्य ही है, के महत्वपूर्ण मुद्दे को बड़े फलक पर प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। किन्नर को लेकर समाज की मानसिकता कैसे पुर्वग्रह से दूषित है इस मुद्दे को सक्षमता से उठाने में उपन्यास भी सफल रहा है। चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. २०३, नालासोपारा' सन २०१६ में प्रकाशित हुआ।

मुंबई की रक्तवाहिनी लोकल ट्रेन के पश्चिमी उपनगर का लगभग आखिरी स्टेशन है नालासोपारा। यहाँ मात्र वे लोग ही रहते हैं जो मुख्य शहर में न घर खरीद सकते हैं ना ही किराये से ले सकते हैं। २२४ पृष्ठों के इस उपन्यास को लेखिका ने हमारे समाज को उस खास तबका 'किन्नर' को आधार बनाकर लिखा है। यह उपन्यास बिल्कुल नये विषय को लेकर तथा एक नये शिल्प में लिखा गया है। लिंगदोषी समुदाय की समस्या को कमाल की मानवीय संवेदना की दृष्टि से इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। पत्रात्मक शैली में तथा उदात्त भावुकता के जरिये तृतीयपंथी समाज की दर्दनाक पीड़ा को लेखिका अनोखे ढंग से अभिव्यक्त करती है। विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली उर्फ दीकरा एक मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मा बालक है। आम बच्चों की तरह वह बड़ा हो जाता है। स्कूल भी जाने लगा है। खेलकूद करने, शरारते करने में बाकी बच्चों की तुलना में जैसा अव्वल है वह स्कूल पढ़ाई में भी अव्वल आता है। धीरे-धीरे वह महसूस करता है कि बाकी बच्चों से वह कुछ अलग है। उसकी शरीरी रचना थोड़ी अलग है। स्कूल की चारदीवारी से सटकर स्कूल के बच्चे पैट के बटन खोलकर जैसे सहज खड़े हो जाते हैं पर विनोद नहीं खड़ा हो सकता। वंदना बेन अर्थात् बिन्नी की बा को यह बात मालूम थी बाद में घर के अन्य सदस्य मोटा भाई सिध्दार्थ, छोटा भाई मंजूल बिन्नी के पप्पा, सेजल भाभी को पता चलती है। जाने कैसे हिजड़ा समुदाय को उसकी खबर लग जाती है। बिन्नी को अपने समुदाय में ले जाने के लिए समूह बनकर कालबादेवी के घर में आ जाते हैं। बा ने बिन्नी को बाथरूम में छिपाकर उसकी जगह छोटे भाई मंजूल को दिखाया गया। कपड़े उतारकर जताया गया कि यह एक सामान्य बालक है। सारे हिजडे ताली पीटते यह कहकर लौट जाते हैं कि खबर गलत हुई तो फिर आयेंगे। बा बिन्नी से बेहद प्यार करती थी। उसे दुनिया की हर कुरता और बुराई से बचाना चाहती है। बिन्नी किसी होस्टल में या उसके मामा के यहाँ रखना चाहती है। तब पिता और मोटा भाई कहते हैं कि चौदह वर्षों के बाद अगर हिजडे घर पहुँचते हैं तो होस्टल क्यों नहीं पहुँचेंगे। विनोद का स्कूल छूट जाता है। टेलिफोन पर अपने मित्रों से होमवर्क नोट्स लेकर वह पढ़ाई को आगे बढ़ाने की कोशिश करता है। वह पढ़ना चाहता है। वह बोर्ड टॉप करने का आत्मविश्वास रखता है। परंतु सब विपरित हो जाता है। अंततः विनोद उनकी पकड़ में आ जाता है। विनोद को पकड़ कर ले जाते समय बा के अन्तर्मन की पीड़ा को लेखिका ने हू-ब-हू चित्रित किया है। आगे बदनामी से डरकर यह परिवार कालबादेवी का घर छोड़कर मुंबई के लोकल ट्रेन का आखिरी स्टेशन नालासोपारा में जा बसता है।

यहाँ से शुरु होती है बिन्नी की ओर से अपनी माँ को एकतरफा चिट्ठीयों लिखने का सिलसिला इन चिट्ठीयों से वह अपनी समस्त पीड़ाएँ बयान करते-करते बा से कुछ प्रश्न भी करता है। एक स्थान पर बिन्नी चिट्ठी में लिखता है - 'मंजूल को सँभालते हुए मैंने तुझे प्रश्न किया था बा कि मेरे नुनू क्यों नहीं है तो तूने बहलाया था, 'बच्चे के जन्मते ही आटे का नुनू बनाकर लगाना पड़ता है। नर्स भूल गई तुझे लगाना। लगवा देंगे तुझे भी।' दिल्ली में बिन्नी को पता चलता है कि उसके परिवार ने घर बदला है और वे नालासोपारा में रहने लगे हैं। परिवार जनों ने उसे अपने नये घर, का पता तक नहीं दिया है। पोस्ट ऑफिस का पता दिया है। 'पो.बॉ.नं. २०३, नालासोपारा' इस पते पर वह चिट्ठीयाँ लिखता है और परिवार जन पोस्ट ऑफिस में पहुँचकर चिट्ठीयाँ पाई जाती थी। एक चिट्ठी में बा से बिन्नी पुछता है - 'मेरे घर का पता क्या कोई है बा।' बिन्नी जननांग दोषी समाज की विसंगतियों और सिमित विकल्पों से अब पूरी तरह परिचित हो गया है। वह इस समुदाय में परिवर्तन लाना चाहता है। राजनीति करनेवाले विधायक इस समुदाय का इस्तेमाल मात्र वोट बैंक के रूप में करना चाहता है। विनोद की मनोमन ईच्छा है कि जननांग दोषी समुदाय भी आम नागरिक की तरह जिये, उनको समाज में मान मिले, पढ़े-लिखें। उनको उनके जन्म के

हिसाब से विशिष्ट दर्जा देकर उन्हें आरक्षण अथवा अनारक्षण जो भी हो निश्चित करें। ताली पीटकर, जन्म समारोहों तथा शादियों में नाच-गाना कर भिख मांगना बिन्नी को नागवार लंगने लगा था। विधायक जी तथा अन्य राजनीतिज्ञों की शतरंज पर बिन्नी एक चुनौति के रूप में खड़ा हो जाता है तब उसे रास्ते से ही हटाने का कुविचार दिमाग में आ जाता है। जिस अड्डेपर बिन्नी को रखा जाता है वहाँ एक कुर सरदार, सायरा, चंद्रा और पुनम जोशी है। पुनम के मन में विनोद के लिए नारी-सुलभ आकर्षण है। विधायक का भतीजा बिल्लू और दोस्तों ने पुनम का बलात्कार किया है। उसे नाजूक स्थिति में अस्पताल पहुँचाया जाता है। अपनी माँ की अस्वस्थता का उसे पता चल जाता है। पुनम की हालत पर भी एक ओर वह चिंतित है। हवाई जहाज पकड़ने सांताकूज हवाई अड्डेपर बिन्नी जा रहा था तब गंदी राजनीति के कुर दरिंदो ने उसे पकड़कर बुरी तरह से उसकी हत्या कर देते हैं। हत्या भी कुछ इस तरह कि बिन्नी की पहचान तक मिटाई जाती है। जनजांग दोषी समुदाय के हित में काम करने की अधुरी मनिषा लिए बिन्नी का इस तरह से अंत हो जाता है। बड़ी सधी हुई लेखनी से चित्रा मुद्गल ने बड़े अनुठे ढंग से किन्नर समस्या को एक नयी वाणी दी है। उपन्यास की पूरी कथा 'बा' को अर्थात् माँ को संबोधित कर लिखी हुई है, जो कहीं पर भी बोझिल या नीरस नहीं लगती। यह उपन्यास हिजड़ा समुदाय पर गहरी और व्यापक नजर डालने को बाध्य करता है। बिन्नी का इस समुदाय के उत्थान और उनके हक का देने का जो सपना था उसे पूरा करने का विचार मुख्यधारा का समाज अगर करता है तो लेखिका के इस लेखन का बहुत कुछ सार्थक हुआ ऐसा माना जा सकता है।

इस प्रकार किन्नर या हिजड़ा या थर्ड जेंडर समुदाय की व्यथा था पीड़ा को लिंगधारी मानसिकता वाले समाज ने कैसे निर्माण की है इसका गायन 'किन्नर कथा' तथा 'पोस्ट बॉक्स नं०२३, नाला सोपारा' इन उपन्यासों में सुरेली वाणी में किया है। थर्ड जेंडर से जुड़ी जमीनी सच्चाइयों के साथ इन उपन्यासों में विस्तार से चर्चा हुई है। एक उपन्यास लिंग अस्पष्टता वाले बच्चे को परिवार से बाहर स्वयं परिवारवालों ने निकाल दिया है तो दूसरे में उस बालक की माँ उसे आश्रय देना चाहती है परंतु वह असफल हो जाती है। दोनों उपन्यासों के बालकों की व्यथा या उजड़े अन्तर्मन की वेदना समसमान है। बिना कोई अपराध किये मात्र लिंग अस्पष्टता के कारण हमारे मुख्यधारा के समाज की यंत्रणायें उन्हें झेलती पड़ी है। अपने को सभ्य समाज कहने वाले समाज को इस पीड़ित समुदाय के लिए मानवी दृष्टिकोण अपनाते हुए अपने में समा लेने तथा उनका जन्मजात अधिकार देने का कार्य करना चाहिए।

संदर्भ -

- 1- उपन्यास समीक्षा - कविता भट्ट के लेख से
- 2- किन्नर कथा - (उपन्यास) - महेंद्र भीष्म - प्रथम संस्करण २०१४, सामयिक बुक्स ३३२०. २१, जटवाडा, दरियागंज, एन.एस.मार्ग, नई दिल्ली - ११०००२.
- 3- पोस्ट बॉक्स नं. २०३., नालासोपारा - (उपन्यास)- चित्रा मुद्गल - सामयिक बुक्स ३३२०-२१. जटवाडा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली - ११०००२.

हिंदी कथा साहित्य में - किन्नर विमर्श

आलेख प्रस्तुत कर्ता
प्रा.दत्तात्रय महादेव साळवे
(हिन्दीविभाग)

सहकार महर्षि शंकरराव मोहिते-पाटील महाविद्यालय,
नातेपुते जि.सोलापुर,पिन कोड - ४१३१०९,

प्रस्तावना:-

दुनिया में सिर्फ स्त्री और पुरुष इन दो लिंगों को ही मान्यता मिली है। इन दो अलग अलग-लिंगों को ही कुदरत का आधार मान लिया है। लेकिन स्त्री पुरुष इन दो लिंगों, वर्गों के साथ और एक लिंग अथवा वर्ग को उपस्थित किया है उस वर्ग, लिंग का नाम है 'लैंगिक विकलांग'। इस लैंगिक विकलांग को उभयलिंगी मौसी, किन्नर, खुसरा, हिजड़ा, तृतीयलिंगी, तृतीयपंथी, आदि नामों से संबोधित किया जाता है। ऐसे लैंगिक विकलांग वाले वर्ग अथवा लिंग की ओर समाज हमेशा एक घृणित दृष्टि से देखता है। ऐसे घृणित दृष्टि से देखने वाले समाज के कारण यह 'लैंगिक विकलांग' वाला समुदाय पुराने ज़माने से आज तक अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है।

साहित्यिक दृष्टिकोन:-

साहित्य लिखनेवाले साहित्यकार के दृष्टिकोन से आज स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, अल्पसंख्यांक विमर्श, आदिवासी विमर्श, आदि ऐसे अनेक विमर्शों की चर्चा होती आ रही है। ऐसे अनेक विमर्शों के मध्यम से बहुत से वर्गों पर साहित्य लिखा गया। लेकिन समाज में जो अलग उपेक्षित लिंग, तृतीयपंथी, बहिष्कृत, निरपेक्ष समाज 'किन्नर' के विषय पर जितनी चाहे उतनी चर्चा नहीं हुई। साथ ही ऐसा भी कहा नहीं जाता कि, गवाह है की जिसमें पांच पांडवों और कौरवों की जीवन गाथा प्रस्तुत करनेवाला भारत का सर्वश्रेष्ठ 'महाभारत' का यह एक महाकाव्य है। जिसमें किन्नर पर इसके पूर्व कुछ नहीं लिखा गया। इस महाभारत महाकाव्य में 'शिखण्डी' नामक का एक पात्र था जो किन्नर था। इतना ही नहीं खुद अर्जुन ने अपने अज्ञातवास में एक साल का समय बिताते समय किन्नर का रूप धारण करके जीवन बिताया था। साथ ही प्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ 'कौटिल्य' ने अपने 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रंथ में भी 'किन्नर' वर्ग का उल्लेख किया है। साथ ही ऐतिहासिक वर्णनों के आधार पर हिन्दू और मुस्लिम इन दोनों शास्त्रों के द्वारा किन्नर वर्ग को खासतौर पर अन्तपुर और वहाँ की रानियों को रखवाली के लिए किन्नारों की नियुक्ति की थी।

'किन्नर' शब्द की उत्पत्ति:-

हिंदी साहित्य में 'किन्नर' यह शब्द 'कि' और 'न' ऐसे दो शब्दों के सहयोग से निर्माण हुआ है। इसका तात्पर्य 'हिमाचल प्रदेश के किन्नर' जनजाति से नहीं है। लेकिन इस वर्ग का ऐसे वर्ग से संबंधित है कि, जो वर्ग पूर्ण रूप से न स्त्री है और नहि पुरुष है। ऐसे वर्ग के लोगों को जनसामान्य की भाषा में 'हिजड़ा' कहते हैं। जब 'हिजड़ा' यह शब्द हमारे खयाल में आता है ताकि हमारे आँखों के सामने एक खास तौर पर इस तरह हमारे मन में भाव-भंगिमा, आचार-विचार, व्यवहार, रहन-सहन, चाल-ढाल, वेश-भूषा, केश-भूषा, निखारा हुआ चेहरा, अलग प्रकार से किया हुआ साज-शृंगार आदि मनुष्य की प्रतिमा सामने आ जाती है। ऐसे ही हिजड़ों को सामान्य भाषा में 'किन्नर' कहा जाता है। ऐसे किन्नर को बुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा ऐसे चार वर्गों में विभक्त किया जाता है।

किन्नर की परिभाषाएँ:-

हिन्दी साहित्य में 'किन्नर' की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं वह निम्नानुसार

- १) 'किन्नर' यह एक प्रकार की देवता है जिसका मुख घोड़े के मुख के समान दिखायी देता है।
- २) 'समाज में जो गाने बजाने का व्यवसाय करते हैं। उस जाती के लोगों को किन्नर कहते हैं'।
- ३) पुराण साहित्य में एक उल्लेख आया है कि, "स्वर्ग अथवा देवलोक में जो गायक, उपदेवता जिसका चेहरा घोड़े के मुख के समान होता है उसे 'किन्नर' कहते हैं"।

किन्नर का समाज में स्थान:-

समाज में स्त्री पुरुष इन दो लिंगों के साथ-साथ और एक लिंग देखने को मिलता है। समाज ऐसे लिंगवाले को मामू, बयक्का, छक्का, हिजड़ा, किन्नर, थर्ड जेंडर, तृतीयपंथी, अथवा उभयलिंगी आदि नामों से पहचाना जाता है। ऐसे समाज पर आज

कुछ ना कुछ लेखनी उठायी जाने लगी है। यह लेखनी कोई ना कोई समाज पढ़ता है और ऐसे किन्नरों के बारे में जानता, पहचानता है। फिर भी इस किन्नरों के जीवन में होनेवाला संघर्ष कम नहीं हुआ। यह किन्नर आज अभी हमें सड़को, बसस्टॉप, ट्रेन आदि स्थानों पर भीख माँगते हुए दिखायी देते हैं। इतना ही नहीं तो यह 'किन्नर' अपनी एक टोली बनाकर नाच-गाने के रूप में घर-घर जाकर, बाजार में होने वाले हर एक चिजों को माँगकर अपनी पापी पेट का सवाल पूरा करते हैं। यह 'किन्नर' जाति के लोग अपनी अलिंगी जिश्म को लेकर जीवन के अंतिम तक तिरस्कृत, अपमानित, घृणित, दर-दर के ठोकरे खाकर संघर्षमय जीवन यापन करते हैं। 'किन्नर' वर्ग के जीवन की व्यथा 'मै पायल' इस उपन्यास में लिखे हुए गीतों के द्वारा अभिव्यक्त की है।

जैसे "अधुरी देह क्यों मुझको बनाया।
बता ईश्वर तुझे ये क्या सुझाया।
किसी का प्यार हूँ ना वास्ता हूँ।
न तो मंझिल हूँ मै, ना रास्ता हूँ।
कि अनुभव पूर्णता का हो न पाया।
अजब खेल यह रह रह धुप छाया।"

ऐसे किन्नर के सामने समाज में पैसा कामाने के दो ही मार्ग बचे हुए हैं, एक भीखमाँगना तो दूसरा देह का व्यापार करना। इसके साथ-साथ वे किसी के भी घर जाकर नाच-गाना करके, बधाई माँगना आदि किन्नरों को देखकर घर परिवार वाले इन्हें अपने घर में आने नहीं देते। ताकि इनके प्रति समाज का दृष्टिकोण ही नकारात्मक है। इतना ही नहीं तो पुलिस वाले इसे रातों-रात उठाकर ले जाते, उसे परेशान करते, उन्हें अनायास गायब करते हैं। इससे मालूम होता है कि किन्नरों के प्रति समाज का देखने का दृष्टिकोण ही अलग होता है। यह लोग अपने जीवन में होनेवाले अंधेरे को मिटाकर प्रकाश में लाने के लिए अधिक संघर्ष कर रहे हैं।

किन्नर विमर्श :-

आज समाज में जितने वर्ग हैं इन सभी वर्गों के जीवन में सुख-दुःख कठिनाईयाँ उनकी पीड़ा इनके जीवन की सत्यता इस वर्ग कि अच्छाई-बुराई, आदियों पर कोई ना कोई लेखनी लिखी है। उसी तरह समाज में होनेवाले उभयलिंगी जिसे हिन्दी में 'किन्नर' कहते हैं। इनके जीवन कि सुख-दुःख, पीड़ाएँ, उनके जीवन कठिनाईयों आदि के बारे में लेखनी उठायी है। ऐसे किन्नर वर्ग पर कई महत्वपूर्ण लेखकों ने उपन्यास, कहानी, नाटक और कविता लिखी है। जिसमें साहित्यकार नीरजा माधव, महेंद्र भीष्म, प्रदीप सौरभ, चित्रा मुदगल, अनुसूया त्यागी, निर्मला भुराडिया आदि हैं।

किन्नर कथा:-

'किन्नर कथा' यह उपन्यास २०११ में लेखक महेंद्र भीष्म ने लिखा हुआ है। इस उपन्यास में एक राज घराने में सोना उर्फ चंदा को किन्नर 'राज' नामक लड़के का जन्म हुआ। 'राज' की माँ को पुत्र जन्म के कारण अधिक आनंद होता है। माता को मालूम है कि हमें जो बालक हुआ है वह किन्नर है। लेकिन इन्होंने ममता के कारण अपने पुत्र के बारे में यह बात किसी को नहीं बतायी थी। मगर ये बात राज के पिता राजा जगतराज सिंह को मालूम होने से वह ऐसे किन्नर बालक को मारने का आदेश देता है। अर्थात् लेखक महेंद्र भीष्म ने इस उपन्यास के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि इतना बड़ा राज घराना होकर उसमें किन्नर की तरह लड़का पैदा होने से उसे कैसे दूर किया जाता है यह वास्तविक वर्णन लेखक ने करने का प्रयास किया है।

तीसरी ताली:-

'तीसरी ताली' यह प्रदीप सौरभ ने २०१४ में लिखा उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में 'गौतम' नामक व्यक्ति के परिवार का वर्णन किया है। 'गौतम' को विनीत नामक एक बेटा था। यह विनीत भी किन्नर वर्ग का होता है। गौतम अपने किन्नर रूप वाले विनीत नामक बेटे को समाज की नजरों से हमेशा दूर ही रखता है। लेकिन कई दिन बीत जाने से समाज की अवहेलना के कारण गौतम अपने विनीत नामक किन्नर जैसे लड़के को त्यागा देता है। अर्थात् एक किन्नर पैदा होने से पिता भी अपने बेटे को त्यागा देता है। बाद में ऐसे विनीत को अपने जीवन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

पोस्ट बॉक्स नंबर २०३ नाला सोपारा:-

चित्रा मुदगल लिखित २०१६ में लिखा हुआ यह एक उपन्यास है। इस उपन्यास के द्वारा माता अपने पुत्र को किन्नरों से दूर रखने का प्रयास करती है। माँ के इस मत के कारण बेटा 'विनोद' को एक छोटी सी 'बिन्नी' बनना पड़ता है। वह अपने माता के सपनों को सच करने का प्रयास करता है। बाद में वह 'बिन्नी' रूपी लड़का यह संकल्प करता है कि, भविष्य में वह कुछ बड़ा बनेगा और अपने घराने, बिरादरी, के लोगों को समाज में मान सन्मान, शान दिलाने का प्रयत्न करेगा।

जिंदगी ५०-५०:-

यह एक भगवंत अनमोल का २०१७ में प्रकाशित हुआ उपन्यास है। इसमें किन्नर विमर्श का अधिक वर्णन किया है। अनमोल को 'हर्ष' नामक का एक भाई है। इस हर्ष को जबरदस्ती से किन्नर का कष्ट अपने जिंदगी में झेलना पड़ता है। नायक 'अनमोल' को 'सूर्या' नामक का एक पुत्र है। लेकिन अनमोल अपने पुत्र 'सूर्या' को ऐसे किन्नर के दंश से कई दूर रखने का बीड़ा

उठता है। अर्थात् इस उपन्यास के द्वारा लेखकने यह स्पष्ट किया है कि, किसी भी व्यक्ति जिंदगी में पूर्ण रूप से नहीं होतावह आधा-आधा, फिफ्टी-फिफ्टी होती है। फिर भी लोग किन्नर के प्रति एक अलग दृष्टि से देखते, समझते हैं। उसे समझा जाता है। अर्थात् ऐसे किन्नरों को एक जनरल व्यक्ति को समाज में जीने का अधिकार दिया तो निश्चित वह अपने जीवन में परिवर्तन करेगा

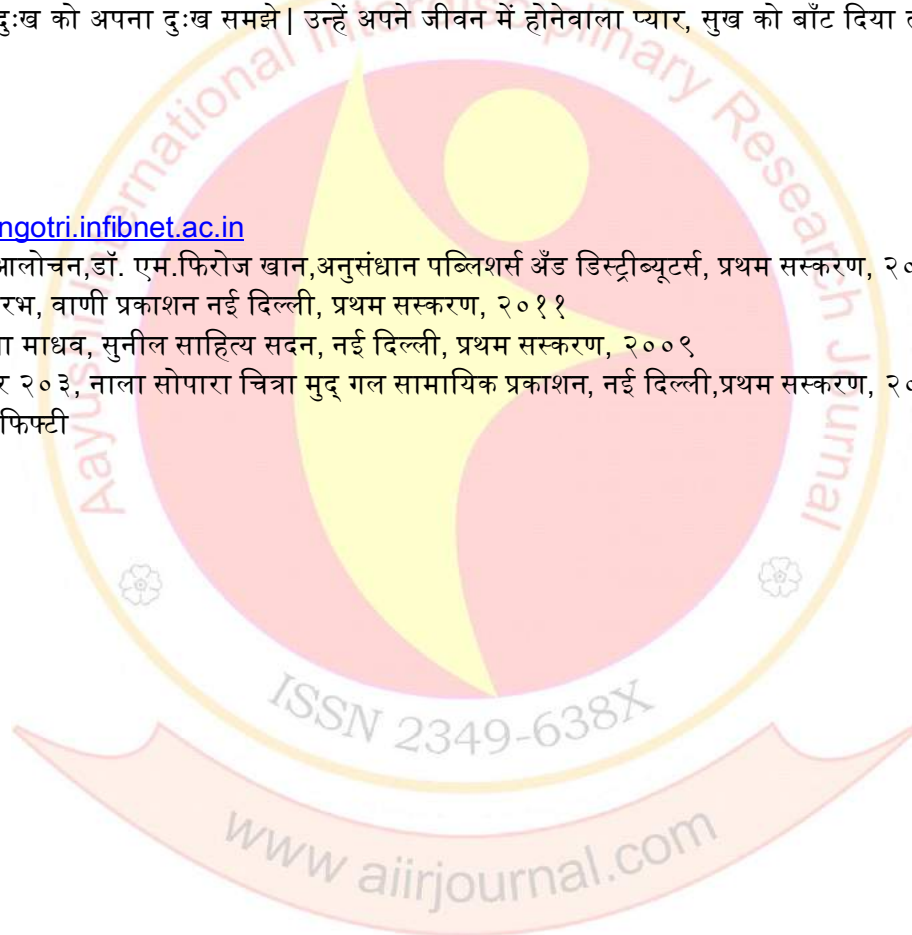
इनकी उपन्यास के साथ-साथ डॉ. अनुसूया त्यागी लिखित 'मैं भी औरत हूँ' नीरजा माधव लिखित 'यमदीप' आदि के साथ-साथ रचनाकारों ने किन्नरों के जीवन पर कहानी, आत्मकथा और कविताएँ लिखकर किन्नरों के जीवन में आनेवाले सुख-दुःख, समाज में उनका मान-सन्मान आदि के बारे में लेखनी उठाकर किन्नरों के जीवन को, उनकी दशा, दिशा, प्रकाश का मार्ग दिखाने का प्रयास किया है।

निकर्ष:-

अंत में हम कहते हैं कि, समाज में स्त्री पुरुष इन दो वर्गों के शिवा तीसरा जो वर्ग है वह है तृतीयपंथी, उभयलिंगी, किन्नर, हिजड़ा तो अंग्रेजी भाषा में इसे थर्ड जेंडर कहते हैं। किन्नर इस वर्ग को अन्य वर्गों के साथ-साथ इनके भी जीवन में परिवर्तन होना चाहिए। ताकि अन्य वर्गों के लोगों के सामान यह भी लोग हैं। इस वर्ग को भी अन्य वर्गों की तरह बदलने का हक्क है। 'किन्नर' को 'छक्का' अथवा 'हिजड़ा' कहना गलत है। इस वर्ग के लोगों को मनुष्य समझे। इन्हें समाज के मुख्य धारा में लाना भी आवश्यक है। इन्हें प्रत्येक स्तर पर अधिकार, इनके जीवन का दुःख, उनकी कराह जीवन का संघर्ष आदि पहचानना भी अनिवार्य है। जहाँ किन्नर हैं वहाँ जाकर इनके भावनाओं को कद्र करनी चाहिए। इन्हें भी अन्य वर्ग, समाज, मनुष्य की तरह मान-सन्मान दे। इनके दुःख को अपना दुःख समझे। उन्हें अपने जीवन में होनेवाला प्यार, सुख को बाँट दिया तो उनका जीवन सुखमय हो जाएगा।

संदर्भ सूची:-

- 1) www.shodgangotri.infibnet.ac.in
- 2) थर्ड जेंडर कथा आलोचन, डॉ. एम.फिरोज खान, अनुसंधान पब्लिशर्स अँड डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रथम संस्करण, २०१७ (3) तीसरी ताली- प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, २०११
- 4) यमदीप - नीरजा माधव, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, २००९
- 5) पोस्ट बॉक्स नंबर २०३, नाला सोपारा चित्रा मुद् गल सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, २०१६
- 6) जिन्दगी फिफ्टी-फिफ्टी



किन्नरों के तहखाने में झाँकता 'तीसरी ताली'

डॉ. दिलीपकुमार कसबे
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
स.गा.म. कॉलेज (स्वायत्त)
कराड-४९५१२४ (महाराष्ट्र)

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में गद्य लेखन की परम्परा आधुनिक काल की देन है। जब अंग्रेज भारत में आए तब उनके व्यापार के साथ ख्रिश्चन धर्म के प्रचार-प्रसार का काम भी शुरू हो गया था। भारत में अंधश्रद्धा, अज्ञान, अशिक्षा, जातिवाद आदि को देखकर ख्रिस्ति मिशनरियों ने ख्रिश्चन धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु "बाइबिल" का अनुवाद हिंदी में किया था जिसका नाम था "इंजिल"। "इंजिल" की गद्य में बनायी किताबें देखकर पद्य में लेखन करनेवाले भारतियों ने गद्य में लिखना शुरू किया, तब से भारतीय साहित्य में गद्य लेखन का आरंभ सा हो गया था। उपन्यास विधा भी गद्य की विविध विधाओं में से एक है। प्रारंभ में जो उपन्यास लिखे गए थे उनमें जासूसी तिलस्मी और अय्यारी प्रकार की अधिक उपन्यास थे। फिर भारतेन्दु और द्विवेदी युग के रचनाकारों ने उपन्यास लिखकर इस विधा के विकास में अपना योगदान दिया। प्रेमचंद के आगमन से काल्पनिक जगत में विचरण करती यह विधा यथार्थ धरातल पहुँची और गाँव-गाँव, गली-गली, घर-परिवार, व्यक्ति-व्यक्ति के बीच की सुख-दुःख की बातें पाठकों तक पहुँची, साथ ही भारत की आत्मा जहाँ बसी है वहाँ तक के साधारण किसान का चित्रण होने लगा था। आज सामाजिक, मनोविश्लेषणात्मक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक, स्पृश्य-अस्पृश्य आदि विषयों पर उपन्यास लिखे जा रहे हैं। आज ऐसा कोई विषय नहीं बचा होगा जिस ओर उपन्यासकारों की पैनी दृष्टि नहीं पहुँची होगी। 'प्रदीप सौरभ' कृत २०११ में प्रकाशित 'तीसरी ताली' किन्नरों पर लिखा उपन्यास उसी का ही असर है।

विषय प्रवेश -

प्रस्तुत "तीसरी ताली" उपन्यास में समाज के हाशिए पर जिंदगी व्यतित करनेवाला एक वर्ग जिसमें हिजड़ों, लौण्डो, लौण्डेबाजों, लेस्बियनों अतः प्रकृति का वह विकृत वर्ग जो भारत के अलीगढ़ से लेकर आरवलिया, छपरा, देवरिया यानी एबीसीडी जिले तक दिल्ली से लेकर पूरे भारत में फैला हुआ है। उनकी दुनिया समान्तर जीवन जीती है। लेखक ने उस समाज के तहखाने तक पहुँचकर उनके जीवन के वास्तव चित्र को अंकित करने का प्रयास किया है। वह वर्ग हमें मालूम तो है मगर हमारे आसपास उनके होने पर भी हम उनके जीवन से उतने परिचित नहीं हैं। उनमें से अधिकतर नपुंसकत्व, परलिंगी या अप्राकृत यौनवाले ही हैं। परिवार परित्यक्त, समाज बहिष्कृत दंडित ये जन भी किसी तरह जीते हैं। साथ ही दुर्भाग्यवश किसी के परिवार में अप्राकृत, नपुंसक ने जन्म लिया तो उस परिवार पर क्या बीतती है। जन्म लिए हुए नपुंसक को इस दुनिया में रहना भी उसकी आत्मसंतुष्टि के खिलाफ रहता है। और वे घर-बार छोड़कर भटकने लगते हैं। माता-पिता भी समाज में किसी को मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहते। ऐसे नपुंसकत्व के जन को अपने जैसे समुदाय में ही जाकर रहना पड़ता है। उनके रस्म, व्यवसाय, रहन-सहन अलग-सा बनता है। इस उपन्यास की कथा के दो भाग किए जा सकते हैं।

प्रथम भाग में दिल्ली के 'सिद्धार्थ एनक्लेव' में रहनेवाले गौतम साहब सेंट्रल सेक्रेटरियट में यूडीसी थे। उन्हें तीन बेटियाँ थीं। मगर वारिस न था इसी कारण वे उदास थे, मगर तीन बेटियों के बाद उनके घर वारिस पैदा होने पर उनका परिवार प्रसन्न हो गया था। किसी के घर खुशी या मंगल कार्यक्रम रहते तब हिजड़े आते। ठीक उसी प्रकार उनकी कॉलनी में हिजड़े आते हैं और द्वार खट-खटा कर शगुन मॉग रहे थे मगर उनसे द्वार न खोला जाने पर बिंदिया (हिंजड़ा) बद्दुआ देती है कडुवाहट के साथ उसने कहा था "हिंजड़ों को सगुण नहीं दोगे तो लल्ला हिजड़ा निकलेगा।" साथ ही उनके मण्डली की सरगना डिम्पल के साथ सभी चिल्लाए थे "गौतम का बच्चा हाय हाय....." गौतम साहब बड़े कंजूस थे मिसेज प्रतीक टण्डन ने भी बताया था... अरे, सौ-पचास दे देते तो छोटे बाप के न हो जाते।" अतः हिजड़ों के जीने का बड़ा सवाल है वे अपना नाचगाना करके पैसा कमाकर जीवनयापन करते थे। अधिकतर लोग हिजड़ों को बिना कुछ दिए खाली हाथ वापस नहीं लौटाते थे। बच्चे के जन्म के बाद भी गौतम साहब मौन से हो गए थे। उनके घर काम करने आनेवाली शन्नो ने यह बात हिजड़ों की एजंट आनंदी आण्टी को बताया था कि वह बच्चा किसी काम का नहीं है। डॉक्टरों ने कहा था "बच्चे में स्त्री और पुरुष दोनों के लक्षण हैं।" शन्नो की बात से आण्टी भी मौन सो हो जाती है। गौतम साहब का पूरा परिवार चिंतित हो गया था। बच्चे का नाम उन्होंने विनित रखा था किंतु उसकी सारी हरकतें लड़कियों जैसी थीं। परिवार के सभी उखड़े उखड़े रहने लगे थे। सब के सामने विनित आता भी नहीं था। विनित का स्कूल में जेण्डर स्पष्ट न होने से दाखिला न मिलने पर गौतम साहब ने दिल्ली के मशहूर "शहनाज ब्यूटीशियन इन्स्टीट्यूट" से ट्रेनिंग दिला दी थी। किंतु विनित अपनी बहनों के बाहर जाने पर ब्रा पेंटी पहनता था। एक दिन तो घर के बहुत सारे पैसे, बहनों के सलवार कुर्ते चुराकर दिल्ली में भाग जाता है। भटकते-भटकते दिल्ली के केजी मार्ग पर किसी के गाड़ी में

बुलाने से उनके साथ बैठ कर चला गया था। गाडी में सेठ के हथियाने जागों, वक्षस्थलों पर स्पर्श करने पर उसका स्त्रीत्व जागृत हो गया था। अपना काम तमाम होने पर गाडी से उतारते हुए गाडीवाले ने उसके हाथ एक हजार का नोट रख दिया था। किंतु विनित को जब गाडीवाले ने नाम पूछा था तो उसने विनित की जगह 'विनिता' बताया था। "फिर मिलेंगे" कहकर गाडी निकली थी किंतु केजी रोड के किसी हिंजडे ने विनित को देखकर अपना गुस्सा प्रकट किया था। हिजडों के एजलास में चर्चा हुई थी। फिर उसे पकड़ने का आदेश मुमताज और जरीना को दिया गया था। विनिता को पकड़कर उसको खूब पीटा जाता है सब राही आटोवाले देखकर भी उसकी मदद नहीं करते। जब इंस्पेक्टर शर्मा आते हैं तब जिब्सी में बिठाकर कनाटप्लेस पुलिस थाने ले जाते हैं। जहाँ कांस्टेबल राज चौधरी, हिजडों की चाचियों और रेखा चितकबरी से बचाकर अपने गाँव फरीदाबाद उसे लेकर जाते हैं। वे बेऔलाद थे बेटी के रूप में विनिता को संभालने लगे थे। मिसेज चौधराइन इस हिजडी को देखकर उखड़ गयी थी। उसने एक बार कहा था "इस घर में ये हिजडी रहेगी या फिर मैंगगग अगर ये यहाँ से नहीं गई तो मैं जहर खाकर जान दूँगी।" विनिता, चौधरी को बाबूजी कहती थी। विनिता की माँग के अनुसार उसे वे फरीदाबाद के दिलीप मानचंदा के ब्यूटी पार्लर में काम पर रखते हैं। धीरे-धीरे विनिता अपना खुद का बिजनेस शुरू करती है। उसका साऊथ दिल्ली का पार्लर नाज फाउंडेशन का अड्डा बना था। समलैंगिकों के अधिकारों के लिए लड़ाई वहाँ से शुरू थी। संविधान की धारा 309 को हटाने में विनिता का भी हाथ था। विनिता ब्यूटी की क्वीन बनी थी। एक बार विज्ञापन में गौतम साहब टी.वी. पर विनिता को देखकर पहचान गए थे धीरे-धीरे उनके भीतर के वात्सल्य ने उसे ढूँढ निकाला। सिक्स्योरिटी गार्ड उन्हें विनिता से मिलने नहीं छोड़ रहा था। विनिता को पता लगने पर उसने गार्ड से कहा था "बुजुर्ग को अन्दर ले आओ।" वह बुजुर्ग कोई बिरला नहीं था। विनिता के पास पहुँचने पर मालूम हुआ था वह बूढ़ा गौतम साहब थे। विनिता को लगा था पापा ब्यूटीशियन पार्लर की शिक्षा न देते तो आज ऊँचाई के इस कगार पर मैं अपने को न पाती। गौतम साहब को उसकी असलीयत मालूम हुई थी। एक पैकेट में से विनिता को उन्होंने एक बनारसी साड़ी, कुछ चुडियाँ, बिन्दी के पैकेट और सस्ती किस्म कुछ लिपिस्टिक न मेंकअप का सामान दिया था। फैशन शो में उसके साथ विजय रहता था लेकिन हिजडों की मण्डली की डिम्पल की बेटी मंजू विजय को खूप चाहती थी। उसके गले का मंगलसूत्र वह काटने नहीं देती थी। अंत में एक बार उसने विजय के सामने प्रेमनिवेदन की बात की थी। मंजू असल में गरीब घर की लड़की थी। हिजडों में बेच दी गई थी वह स्त्री थी मगर अंत में विजय ने कहा था "मंजू मैं तुमसे शादी नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ कि तुम एक मुकम्मक औरत होगगगपर मैं मुकम्मल पुरुष नहीं हूँ.....मैं एक हिजडा हूँ। हिजड़ाSSSS हिजड़ाSSSSहिजड़ाSSSS....." उसी समय विजय पर जान देने तुली विनिता भीतर से टूट गयी थी उसे लगा था विजय पुरुष होगा। मगर मानों किसी ने उसकी जड़ पर ही आरी चला दी थी आरी से एक नहीं दो दरख्तों को चीरा था।

द्वितीय भाग में हिजडों, लौण्डों, लौण्डेबाजों और लेस्बियनों का जीवन, उनका व्यवसाय, उनका डेरा, डेरे की गद्दी, गद्दी के वारिस, उनके रस्म रिवाज, उनके इष्टदेवता, हिजडों में कोई पुरुष, लौण्डा आया तो उसे हिजड़ा बनाने की पद्धति आदि पर प्रकाश डाला गया है। किसी के घर नपुसंक बच्चे ने जन्म लिया तो वह भी साधारण परिवार में नहीं रह सकता ऊपर गौतम साहब के बेटा विनित हिजडी था वह घर से भाग निकला था और उसने जीवन में काफी शौहरत पायी मगर हिजडों की दुनिया से बाहर नहीं निकल पाया था। हिजड़े का जीवन जीने अभिशप्त था। मंजू ने पहले डेरे में आए शेरपा (राजा) से संबंध रखा था वह पुरुष था। मगर हिजडों में पुरुषों का होना व्यर्थ होता है। जब एक डांस में वह चक्कर सी खाकर गिर पड़ी थी। उसे उलटी आयी थी तब डेरे की मालकिन डिम्पल पहचान गई थी और चार महिने का मंजू का गर्भ साफ दिखने पर उसे बुरा लगा था। डिम्पल ने गरीब घर से मंजू को लाया था वह लड़की थी। उसे लेकर डिम्पल मा ने उसकी पढ़ाई, शादी के काफी सपने देखे थे मगर हिजडों की बच्ची से कौन शादी करेगा ऐसा लगने से वह सब असंभव सा हुआ था। मगर उसके गर्भ को देखकर उसे शक हुआ था यह राजा से हुआ होगा। फिर अपने चार मुसटैण्डों को लेकर रात के अंधेरे में राजा को पकड़कर उसके पुरुषांग पर वार किया था। उसको मानों हिजड़ा बना दिया था। और मंजू को नर्सिंग होम ले जाकर पेट में जो बच्ची थी उसे मार दिया था साथ ही उसकी बच्चेदानी भी निकाल दी थी। उनके डेरे की मुखिया डिम्पल के दस बारह कमरे थे दो चार दुधारु जानवर थे। काफी हिजड़े उनके पास रहते थे। नाच गाना करके पैसा कमाना हिजडों को अच्छा लगता था। जिसे वे इज्जत का जीवन मानते हैं। किंतु दुकानों, सिग्नलों पर कारो को रोककर पैसा माँगना छिछोरा काम माना जाता है।

हिजडों में डेरे का प्रमुख पद मिले इसलिए होड-सी लगी भी रहती है। हिजडे, गिरिया को पति समान मानते हैं। गोपाल नरगिस का गिरिया था जो पाण्डवनगर का रहनेवाला था। नरगिस के कहने पर डेरे की गद्दी के लिए चन्द्राबाई की गद्दी, नरगिस ने चन्द्राबाई की हत्या करके उसकी गद्दी छिनी थी। किंतु पहले दिल्ली की चंद्राबाईने एक गद्दी के नीचे तीन उप गद्दियाँ रखी थी उसके पास करोड़ों की जमीन जायदाद थी। एक गद्दी नरगिस को दूसरी नीलम को और तीसरी रीना के हवाले। अतः कहने का मतलब हिजडें भी अपने धंधे में खूब कमाते हैं। एक बार गोपाल ने नरगिस को ठिकाने लगाकर गद्दी छिनी थी। गिरिया को हिजड़ो अपना पति मानकर करवा चौक से लेकर पति के लिए होनेवाले हर तीज-त्यौहार मानते हैं। गिरिया ढोलक या हारमोनियम बजानेवाले होते हैं या समलैंगिकी भी गिरिया बन जाते हैं। हिजडे मूछोंवालों को गिरिया बनाना पसन्द करते हैं। हिजडों में जब बाहर से हिजडे बच्चें आते हैं तब उन्हें चुनरी पहनाकर मुकम्मल हिजड़ा बनाने का रिवाज होता है। ऐसे समय में राजस्थानवासी मुर्गेवाली इष्टदेवी माँ की पूजा करना सबको भोजन इसतरह हिजड़ा बनाने का उनमें रिवाज है।

भारत में एबीसीडी जिले और अन्य प्रदेशों में लौण्डे और लौण्डेबाज पाए जाते हैं। बिहार के बलिया में लौण्डो को हाथी कहा जाता है। कहावत है कि हाथी पालना हर किसी के बस की बात नहीं है। लौण्डो को पालना नवाबी शौक होता है। लौण्डे को पाला तो उसके परिवार को भी पालना पड़ता है। पुरुष, लौण्डे का उपयोग स्त्री की तरह करता है उनको भी नाचना पड़ता है अगर बाहर के किसी पुरुष ने उसे स्पर्श किया छुआ उसका चुंबन लिया तो मालिक उसे जूठन समझकर निकाल देते हैं। बलिया के बाबू श्यामसुन्दर का एक लौण्डा दलित लड़का ज्योति को डांस के समय किसी ने छुआ था। तो उसे उन्होंने निकाल दिया था। उसकाजिना मुश्किल होने पर वह नीलम का पता लेकर दिल्ली उनके डेरे पर पहुँचकर पनाह की माँग कर रहा था। दिल्ली में उसे हिजड़ा बनाने का रस्म पूरा किया जाता है। उसके पुरुषांग को हलाल करके खून के घण्टों बहने से उसमें नारित्व के गुण प्रवेश कर जाते लकड़ी के गुटके के एक जरिए घाव को बन्द कर दिया जाता है। ताकि पेशाब का रास्ता खुला रहे और खतना एक्सपर्ट गुटके के आसपास टाँको के जरिए उस छेद को योनी का आकार दे देता है। जख्म पर गरम तेल डालकर जड़-बूटियों का लेप जख्म को जल्दी भर देता है। ऐसा प्रयास करके ही ज्योति को हिजड़ा बनाया था। लौण्डेबाजों का शौक फौज में घर से महीनों दूर रहनेवालों को लगता है। इसी कारण खुले आम इधर-उधरलौण्डे रखने का रिवाज है।

सारांश -

संक्षेप में कहा जाय तो प्रदीप सौरभ जी ने 'तीसरी ताली' में काल्पनिकता से हटकर कानपुर से घूमते-घूमते इलाहाबाद दिल्ली, गुजरात पूर्वोत्तर सहित देश के कई राज्यों में जन आन्दोलन, नौकरियाँ, चित्रांकन, पत्रकारिता, लघु फिल्मों, मीडिया सलाहकार, विश्वविद्यालयों में विजिटिंग फैकल्टी आदि के वास्ते जाते-जाते हिजड़ों, लौण्डों, लौण्डेबाजों, लेस्बियनों को करीब से देखकर उनसे बातें करके अनुभव का दायरा बढ़ाकर मिथक भगवान राम के चौदह वर्ष के वनवासपर से आने पर उनके आसपास आधी रात तक बैठे नाचगाना करनेवाले स्त्री और पुरुषों को उठकर जाने, और आराम करने कहा था मगर हिजड़ों को वही रहना पड़ा था। जिसके कारण तीसरी योनि के लोग नाचने गाने के लिए अभिशप्त है.... परिवार समाज से बेदखल है...।" इस बात का जनमानस तक बड़ी-खूबी के साथ पहुँचाने का प्रयास उपन्यासकार ने किया है। ये नपुंसकलिंगी कहाँ कैसे जिएँगे, कैसे जीते होंगे, समाज का स्वीकृत हिस्सा कब बनेंगे आदि सवालों के जवाबों के लिए शायद ही 'तीसरी ताली' के माध्यम से हमें उनके तहरवाने तक लेकर गए होंगे। पुरुष-पुरुष, स्त्री-स्त्री जैसे समलिंगियों पर भी प्रकाश डालकर धारा ३७७ हटाने की बात करके उन्हें खुले आम जीवन जीने देने का अधिकार देने का प्रयास भी यह उपन्यास करता है।

संदर्भ सूची -

तीसरी ताली, प्रदीप शौरभ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र. संस्करण २०११

- १) वही, पृष्ठ संख्या ११
- २) वही, पृष्ठ संख्या ४१
- ३) वही, पृष्ठ संख्या ८५
- ४) वही, पृष्ठ संख्या ६२
- ५) वही, पृष्ठ संख्या ११८
- ६) वही, पृष्ठ संख्या १६४

किन्नरों के जीवन की संवेदनाओं का लेखा जोखा
(विशेष संदर्भ:-पोस्ट बॉक्स नं.२०३ नाला सोपारा- चित्रा मुद्गल)

प्रा. जी.बी. उषमवार
हिंदी विभाग, श्री.सिधेश्वर
महाविद्यालय, माजलगाव जि.बीड

साहित्य समाज का दर्पण होता यह बात आज के साहित्य में बिल्कुल सही साबित किया है। आज का साहित्य यह समाज के हर तपके को लेकर लिखा जा रहा है। जैसे की आज के साहित्यमें दलित विमर्श, नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श, दिव्यांग विमर्श, अल्पसंख्यांक विमर्श, के साथ-साथ साहित्य में ऐसे विषयों को प्रस्तुत किया जा रहा है जो की समाज में उनका कोई वजूद ही नहीं है लेकिन साहित्य में उनका वजूद 'किन्नर विमर्श' से निर्माण किया है। 'किन्नर' समाज के बारे में हमारा समाज उसे देखा भी पसंद नहीं करता तो उनकी संवेदनाओं का लेखा जोखा प्रस्तुत किया है और इस समाज की मानवी संवेदना को झंझोरकर रख दिया है। आज हिंदी साहित्य के क्षेत्र में चित्रा मुद्गल एक ऐसा नाम है जो अपने उपन्यासों के विषयों को लेकर चर्चित रहती है। उनका पहला उपन्यास 'एक जमीन अपनी' जो विज्ञापन जगत में नारीदेह को एक प्रोडक्ट बेचने का साधन मात्र माना जाता। इस विषय को लेकर चलता है। तो दूसरा उपन्यास 'आवा' यह उपन्यास कामगारों के, श्रमिकों के प्रश्नों के साथ-साथ उच्च वर्ग की मानसिकता तथा मॉडलिंग की दुनिया आदि को लेकर चलता है। तीसरा उपन्यास 'गिलिगडु' इस उपन्यास में बुजुर्गों की समस्याओं को प्रस्तुत किया है। और आज जो चित्राजी का चौथा उपन्यास है। वह एक नयी जमीन को लेकर आया है। किन्नरों के वजूद तथा उनके जीवन की समस्याओं को लेकर लिखा गया यह उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं.२०३ नाला सोपारा' है।

पोस्ट बॉक्स नं.२०३ नाला सोपारा यह उपन्यास साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत है। इस उपन्यास में चित्रा मुद्गल ने बिल्कुल नया प्रयोग किया है। यह उपन्यास पूरा पत्रात्मक शैली में लिखा है। इस उपन्यास में एक मां अपने बेटे के साथ पत्र व्यवहार करती है वह अपने बेटे को घर के पते पर पत्र नहीं मंगवा सकती इसलिए वह अपने बेटे विनोद से पत्राचार करने के लिए उन्हें अपने घर के पास के पोस्ट ऑफिस से अपना निजी पोस्ट बॉक्स नंबर लेना पड़ा। इसी पोस्ट बॉक्स नंबर पर आधारित इस उपन्यास का शीर्षक है 'पोस्ट बॉक्स नं.२०३ नाला सोपारा' है। वंदना बेन इस की इस मजबूरी का कारण है। उसके इस मंझले बेटे विनोद का हिजड़ा होना है। इसी वजह से उसके परिवार वाले अपनी इज्जत बचाने के लिए विनोद को हिजड़ा चंपाबाई की मंडली को सोप दिया था और एक मां को अपनी ममता का गला घोटकर किशोर विनोद को हिजड़ों को सौपना पड़ा। संसार के सक्षम अपने पति और बड़े बेटे के उस झूठ में भागी बनवा पड़ा कि विनोद की एक सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो चुकी है। अपने 'किन्नर' बेटे विनोद की यादों को मिटा देने के लिए उसके परिवार वाले कालबा देवी वाला अपना पुराना घर बेचकर नाला सोपारा में एक फ्लैट ले लेते हैं। अपने बेटे बिन्नी से उसकी मां वंदना बेन चिट्ठी के माध्यम से संपर्क में ज़रूर रहती है लेकिन अपने पति और बच्चों से उसने यह बात छिपा रखी है। विनोद भी आपने आपको हिजड़ा पैदा होने को लेकर कही न कही गहरे अपराधबोध में है। वह स्वयं को इस बात के लिए माफ नहीं कर पाता कि अगर वह हिजड़ा न होता तो उसके बड़ा भाई सिद्धार्थ का नानू बाबा उसके घर पैदा होता, उसका बारसा भी बड़ा भाई की ससुराल बलसाइ में नहीं मनाया जाता। यह पूरा उपन्यास इन्हीं मां बेटे के पत्रों के माध्यम से जीते जी परिवार के लिए मर चुके इस हिजड़े युवक बिन्नी उर्फ विनोद उर्फ बिमला के जीवन की संवेदनाओं की त्रासदी को हमारे सामने प्रस्तुत हुआ है। चित्रा मुद्गल मानवतावादी दृष्टिकोण से हिजड़े होने की पीड़ा को हमारे पूरे समाज के सामने रखा है। इस उपन्यास का नायक विनोद है जो एक हिजड़ा है वह अपने कष्टों और तकलीफों का रोना रोकर समाज से दया करुणा की याचना नहीं करता अपितु वह अपने पैरों पर खड़े होने के लिए संघर्ष करता दिखाई देता है। विनोद से बिमली बना दिया गया वह बिन्नी तुलसीबाई के हिजड़ा डेरे पर रहते हुए भी फरीदाबाद की उमंग सोसायटी में सुबह सुबह गाड़िया धोने का काम करता है। आगे चलकर स्थानीय विधायक जी की मदद से कॉम्प्युटर संचालन का कोर्स करके विधायक जी के यही नौकरी करने लगता है। वह अपनी छूट चुकी पढ़ाई को इंगू के माध्यम से आगे पढ़ने को तत्पर होता है। उसका मन सुलगी भीगी लकड़ियोंसा धुआला रहता है कि हिजड़ा बिरादरी उन शर्तों को तोड़ने की कोशिश को नहीं करती जिन शर्तों के अधीन मुख्यधारा के समाज ने हिजड़ों को जिलाए रखने की साजिश की हुई है। वह मानता है कि जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है किंतु यह कोई ऐसी विकलांगता नहीं है कि अपनी मेहनत की रोटी इज्जत से न कमाई जा सके। चित्रा मुद्गल लिखती है- "अपने श्रम पर जिओ। मनोरंजन की दक्षिणा पर नहीं। हिंकारत की दक्षिणा जहर है, जहर। तुम्हें मारने का जहर। तुम्हें समाज से बाहर करने का जहर"। 19

चित्रा मुद्गल ने इस उपन्यास में हिजड़ों को भी मनुष्य मानने और उनके प्रति सहज मानवीय संवेदना रखने का संदेश देता है। लेकिन लेखिका थर्ड जेंडर या 'किन्नर विमर्श' की अंध भक्त नहीं है। इस उपन्यास का नायक विनोद खुद हिजड़ा होकर भी हिजड़ों की दुर्गति के लिए स्वयं हिजड़ों को जिम्मेदार बनाने का साहस करता है क्योंकि हिजड़ा बिरादरी मुख्यधारा द्वारा हिजड़ों पर थोपे गये हिजड़ागिरी के लक्षण से स्वयं को मुक्त करने के लिए प्रायः हाथ पैर नहीं मारते। भीख के अपमानजनक पेशे को उतार नहीं फेकते। यह भी एक सच्चाई है कि हिजड़े लोगो को समाज से मिलनेवाली उपेक्षा, सम्मानजनक रोजगार अवसरों के अभाव और पथभ्रष्ट हिजड़ा गुरुओं के कारण अपराध की काली दुनिया में

ढकेले जाते हैं। लेखिका लिखती है- “ असामाजिक तत्वों के हाथ की कठपुतली बनने में जितनी भूमिका किन्नरो के संदर्भ में समाजिक बहिष्कार-तिरस्कार की वही है, उसमें कम उनके पथभ्रष्ट निरंकुश सरदारों और गुरुओं की नहीं। उपर विकल्पहीनता की कुंठा ने उन्हें आंधी का तिनका बना दिया ”। 12 उपन्यास में सरदार तुलसीबाई के अपराधियों से संपर्क है। उसके डेर पर सुपारी की दलील खाने वाला बल्लभगढ़ का कासिम दादा आता है। सरदार पते से लेकर चिलम तक का नशा भी करता है और नशीली चीजों की खरीद फरोख्त में उस पुलिस द्वारा गिरफ्तार भी किया जाता है। कुछ हिजड़े देह व्यापार में भी लिप्त पाये जाते हैं। तुलसीबाई के ठिकाने पर रहनेवाली सायरा ऐसी ही हिजड़ा है। विनोद खुद हिजड़ा है किंतु संभ्रांत परिवार से आने के कारण और शिक्षित होने के कारण वह हिजड़ागिरी और अपराध से दूर रहता है।

चित्राजी ने एक किन्नर के माध्यम से एक किन्नर के लिए घर एवं परिवार क्या होता है उसका महत्व क्या है इसका चित्रण विनोद की घर तथा परिवार के प्रति संवेदनाओं के माध्यम से प्रस्तुत होती है। चित्राजी ने पूरे उपन्यास को किन्नरों के अधिकार तथा मानव मानवाधिकारों के पक्षको एक संवेदनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। जब विनोद मां से अपने बचपन के क्रश ज्योस्तना के बारे में पूछताछ करता है और उससे विवाह के सपने संजोने की बात कहता है, तब लेखिका मानो यह सवाल उठाना चाहती हो कि किन्नर समाज का एक सामान्य जीवन नहीं बीता पाते हैं ? विनोद की संवेदना इस वाक्य में प्रस्तुत होती है। चित्रा मुद्गल के शब्दों में – “ मैं कुछ बन जाता तो उससे ब्याह जरूर करता। जब कुछ बता देता उसे। कह देता, तू मुझसे फेरे लेले। अपनी इच्छाएं जिने के लिए तू स्वतंत्र है। बच्चा हम गोद ले लेंगे। गोद नहीं लेना चाहेगी तो जिससे मर्जी हो, बच्चा पैदा कर ले। खुशी-खुशी मैं उसे अपना नाम दूंगा। वे सारे सुख दूंगा जो एक बाप से औलाद उम्मीद करती है ”। 13 इस तरह से लेखिकाने समाज के सभी प्रश्नों को किन्नरों की कमी तथा उनकी संवेदनाओं को अत्यंत सरल और स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है। क्या यौनव सुख ही सब कुछ होता है क्या मर्द बनने के लिए उसके बच्चे पैदा करना जरूरी है। इन सभी बातों को चित्रा मुद्गलजी बेबाकी रूप से उपन्यास में प्रस्तुत करती है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि चित्रा मुद्गलजी ने इस मौलिक उपन्यास में एक किन्नर के जीवन का लेखा जोखा प्रस्तुत तो किया है, साथ ही उनकी समस्याओं और उनके प्रश्नों को समाज के सामने रखने का सफल प्रयत्न किया है। विनोद के माध्यम से किन्नर आत्मसम्मान और अपने पैरों पर खड़े रहने के प्रयत्न यहां सराहनीय है। साथ ही उपन्यास में एक बालक के जीवन में मां की सहमियता को हृद्य के हर स्पंदन में होनीवाली हलचल के साथ यहाँ प्रस्तुत किया है। मनुष्य को केवल मनुष्य के रूप में देखने के लिए यह उपन्यास प्रेरक है। मानवी संवेदना को यह उपन्यास झंझोटकर रख देता है। इस उपन्यास को पढ़ने के बाद पाठकों के मन में हिजड़ों के प्रति संवेदना और वह मनुष्य है ऐसी भावनी उत्पन्न होती है। और जो उसके मन में उनके प्रति तिरस्कार है वह अपने आप मिट जाता है। इस उपन्यास का उद्देश्य ताकि नई पीढ़ी को किन्नरों को सम्मान देने की प्रेरणा मिले यही सबसे बड़ी उपलब्धि चित्रा मुद्गलजी की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

- १) पोस्ट बॉक्स नं. २०३ नाला सोपारा - चित्रा मुद्गल, पृ.सं. ५०
- २) वही - पृ.सं. ८६
- ३) वही - पृ.सं. ३०

‘तीसरी ताली’ में अभिव्यक्त मंगलमुखियोंका जीवन संघर्ष

गंगाधर पिराजी रामडगे

पी-एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग
तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तिरुवारूर

चर्चित कथाकार प्रदीप सौरभ का उपन्यास ‘तीसरी ताली’ परिवार से बेदखल, समाज से बहिष्कृत और उपेक्षा का जीवन जीने वाले मंगलमुखी समुदाय के वास्तविक जीवनका यथार्थ अंकन है। ‘मुन्नी मोबाईल’ के बाद ‘तीसरी ताली’ लिखकर हिंदी उपन्यास जगत् में अपनी पहचान बनाने वाले प्रदीप सौरभ का यह दूसरा उपन्यास चर्चा का विषय बना हुआ है क्योंकि इसमें मंगलमुखी समुदाय का परिवेश उनकी संस्कृति, रहन-सहन तथा उनके जीवन संघर्षका जीवंत उदाहरण उपन्यास के हर एक पृष्ठ पर उभरकर सामने आता है। उपन्यास के शीर्षक से ही हमें यह ज्ञात हो जाता है कि ‘तीसरी ताली’ यानि एक ऐसी ताली जिसे समाज ने कभी स्वीकारा ही नहीं। ऐसे अभागी मंगलमुखियों को ही समाज में ‘किन्नर’, ‘हिजड़ा’, ‘छक्का’, ‘मामू’, ‘कोज्जा’, ‘तृतीयपंथी’, ‘उभयलिंगी’ आदि अनेक नामों से पहचाना जाता है। जैसे यह कोई उनके नाम नहीं, एक भद्दी गाली हो। उनके हिजड़ा होने पर उन्हें घर-परिवार एवं समाज से बेदखल कर दिया जाता है। मनुष्य का हिजड़ा होना जानवरों से भी बदतर समझा जाता है। इस भारतीय सभ्य समाज की मुख्यधारा में उनका कोई अस्तित्व ही नहीं माना जाता। ऐसे विपरीत परिस्थितियों के संघर्षमयी जीवन में रोटी-कपड़ा और मकान की व्यवस्था स्वयं करते हैं लेकिन दूसरी दुनिया के रूप में क्योंकि यह सभ्य समाज उन्हें अपने संग रहने और जीने नहीं देता। इसका वास्तविक चित्रण हमें इस उपन्यास में देखने को मिलता है।

हमारा उन्हें ‘हिजड़ा’, ‘छक्का’ या ‘मामू’ कहने से अच्छा है कि ‘मंगलमुखी’ कहे, इसी नाम से उन्हें जाने, पहचाने, क्योंकि सर्ववदित है कि यह लोग इंद्र दरबार में भगवान की गनिकाएँ थीं। भगवान श्रीराम के आज्ञाकारी भी थे तथा समाज में यह भी प्रचलित है कि इनका दिया हुआ सिक्का और आशीर्वाद कभी व्यर्थ नहीं जाता। इसीलिए शुभकार्यों में इनका आना और आशीर्वाद देना शुभ माना जाता है। उनका आशीर्वाद लेने के लिए लोग मुँह मांगी रकम भी अदा कर देते हैं। लेकिन कहीं न कहीं इस बदलते समय के साथ-साथ आधुनिक युग में उनकी वास्तविक पहचान पीछे छूटती जा रही है। आज के दौर में उपर्युक्त नामों से उनकी दिल्लगी की जाती है, हँसी-मजाक का पात्र बनाया जाता है। ‘हिजड़ा’, ‘छक्का’, ‘मामू’ जैसे आदि नाम सुनते ही मानो उन्हें ऐसा लगता है जैसे किसी ने पिगला हुआ शीशा उनकी कान में डाल दिया हो। वे अपनी संवेदनाएँ बयान नहीं कर पाते, उन पीड़ाओं को अपने सीने में ही छिपाये रखते हैं।

उपन्यास में विनीत उर्फ विनीता (महिला किन्नर), राजा उर्फ रानी और मंजू ऐसे प्रमुख पात्र हैं जो जीवन में कठिन सेकठिन परिस्थितियाँ आने पर भी नहीं डगमगाते, बल्कि किन्नर समाज के लिए एक नई प्रेरणा बनते हैं। विनीत के किन्नर होने से उसके घर-परिवारवाले उससे नाता तोड़ देते हैं और फिर उसे अपनी एक अलग-सी दुनिया बनाने के लिए मजबूर कर देते हैं। परंपरा के अनुसार वह किन्नर समुदाय में शामिल होने की बजाय विनीत से विनीता बनकर ब्यूटीशियन बनता है और स्वयं पूरी दुनिया में अपना नाम रोशन करता है। वहीं राजा एक पुरुष और मंजू एक पूर्ण स्त्री होने के बावजूद भी किन्नर समाज के बन्धनों में जकड़कर रह जाते हैं। गरीबी के चलते अपने पेट की आग को मिटाने के लिए राजा किन्नर समुदाय में शामिल हो जाता है तो वहीं मंजू के माता-पिता भी गरीबी के चलते उसे डिंपल नामक किन्नर को बेच देते हैं। लालन-पालन और अपनी पूरी जिंदगी इसी समाज में गुजारने की वजह से वह अपनी स्त्री की वास्तविक पहचान को पूर्णरूप से भूल जाती है। वह अपने आप को अन्य किन्नरों के समान समझने लगती है, लेकिन जब वह राजा से गर्भवती हो जाती है तो समुदाय में खलबली मच जाती है। जिसके तुरंत बाद ही डिंपल नामक किन्नर राजा का पुरुषांग काटकर उसे राजा से रानी बनने के लिए मजबूर कर देता है तो वहीं मंजू का गर्भांत करवा कर उसे आजीवन माँ बनने से वंचित कर देती है। आगे चलकर डिंपल को इस कुकृत्य पर आत्म-ग्लानि भी होती है। यह भी एक किन्नर समाज की वास्तविक सच्चाई है जिसे अधिकतर परदे की आड़ में छिपाया जाता है।

विजय कृष्णा जो एक पुरुष किन्नर है, समाज के दुर्व्यवहार से अपनी पहचान छुपाकर फोटोग्राफर का काम करता है, जबकि विनीत उर्फ विनीता और मंजू उसे पुरुष समझकर प्यारकर बैठती है। सुविमल भाई ‘गे’ और अनिल ‘बाँयो सेक्सुअल’ हैं तो वहीं यास्मीन-जुलेखा ‘लेस्बियन’। यानि कि पूरे एल.जी.बी.टी. समुदाय के माध्यम से लेखक ने ‘तीसरी ताली’ में उनके जीवन संघर्ष को बारीकी से चित्रित करने का प्रयास किया है। उपन्यास की कथावस्तु इन्हीं पात्रों के इर्द-गिर्द घूमते-दिखाई देती है। जिसमें से एक कथानक मंगलमुखियों के जीवन को लेकर आगे बढ़ता है तो दूसरी ओर सामानांतर ही लेस्बियनों लौंडेबाजों और कालगर्ल्स के धंधे की कहानियाँ भी इससे जुड़ी हुई हैं। यहाँ यह कतई नहीं भूलना चाहिए कि मंगलमुखी समाज जिन्हें हम किन्नर या हिजड़ा कहते हैं उनसे ‘गे-लेस्बियन-बाँयो सेक्सुअल’ की श्रेणी भिन्न है एवं उनके जीवन शैली में भी काफी अंतर है, उनकी समस्याएँ भी कुछ मात्रा में अलग हैं, अर्थात् कई लोगों को यह भ्रम रहता है कि ये दोनों एक ही समुदाय के हैं और वे दोनों समुदाय के लोगों को एक ही दृष्टिकोण से देखने के आदि हो जाते हैं।

उपन्यास की कथावस्तु दिल्ली के हाउसिंग सोसाइटी सिद्धार्थ एन्क्लेव से शुरू होती है और छोटीमोटी कथाओं से अनेक मोड़ लेते हुए मंगलमुखियों का पवित्र स्थल कुवागम तमिलनाडु में जाकर समाप्त होती है। लेखक ने आज की बहु-संस्कृति व्यवस्था के कारण बनते नए

रिस्ते-लेस्बियन क्लब, पॉप-कल्चर आदि की हकीकत को भी उजागर किया है। 21^{वीं} सदी में अपने आपको आधुनिक कहे जाने के बावजूद समाज ने उन्हें शिक्षा, राजनीति एवं आजीविका आदिसे वंचित रखा, समाज भौतिक रूप से तो आगे बढ़ा, किन्तु मूल्यों में निरंतर गिरावट आती गई। जिसके कारण इनको अकेलेपन और अलगाव का शिकार होना पड़ा एवं आज भी उन्हें लिंग के आधार पर होनेवाले भेदभाव को झेलना पड़ता है।

आज भी हम देखते हैं कि जिस किसी के घर भी किन्नर बच्चे का जन्म होता है तो उसके माता-पिता समाज में अपनी मान-मर्यादा बचाए रखने के लिए उसे किन्नरों के हवाले कर देते हैं, क्योंकि उसके माँ-बाप और परिवार वाले उसे स्वीकार नहीं कर पाते। पैदा होते ही उन्हीं के समुदाय को सौंप देते हैं या फिर किसी कूड़ेकचरेकेड़े पर छोड़ आते हैं या फिर लोक-लाज से बचने के लिए किसी गटर में फेंककर मार देते हैं, क्योंकि जिस समाज में किन्नर को दया, उपेक्षा और घृणा का पात्र समझा जाता हो उस समाज में माता-पिता ऐसे बच्चे को मार देना ही उचित समझते हैं। ऐसी निर्मम हत्या करने के पीछे की वजह हम और अपना यह सभ्य समाज ही है जो उन्हें देखकर हंसी-मजाक और उपहास का पात्र बनाता है, उन्हें हमारे समाज में स्थिर होने ही नहीं देता। हमसे अलग दुनिया बनाने के लिए मजबूर कर दिया जाता है। तब इनका न कोई रिस्ते-नाते वाला होता है और न ही अपना कहने वाले माता-पिता। तब वे किन्नर समुदाय में ही किसी को माँ का दर्जा देते हैं तो किसी को बहन का और वे बड़ी ही सहजता से किसी से कोई न कोई रिश्ता बना लेते हैं। उनकी यह दुनिया उन्होंने स्वयं नहीं बनायी बल्कि समाज ने उन्हें बनाने के लिए मजबूर किया।

एक निश्चित उम्र के बाद उसकी भाव-भंगिमाओं में परिवर्तन होता है तो सब उससे दूर भागते हैं। न उसका कोई हमदर्द बनना चाहता है न ही कोई मित्र। इस समय वह खुद को असामान्य समझ कर अन्दर ही अन्दर अकेलेपन की त्रासदी को झेलता है- **“समय बीतने के साथ गौतम साहब के बेटे में लड़कियों जैसे गुण पैदा होने लगे। शारीरिक बदलाव भी प्रखर हो गये। गौतम साहब यह सब देखकर चिंतित थे विनीत गौतम नाम रखा था उन्होंने अपने बेटे का। विनीत घर से बाहर निकलने में कतराने लगा था। बाहर निकलता तो उसके साथ खेलने वाले बच्चे भी उससे किनारा कर लेते। वह अजीब मानसिकता से गुजर रहा था। कई-कई हफ्ते घर के अन्दर बंद रहता था।”**¹ विनीत इस परेशानी से छुटकारा पाने के लिए एक दिन जब स्वेच्छा से घर त्याग देता है तो कोई भी उसको ढूँढने की कोशिश नहीं करता। उसकी गुमशुदगी की भी कोई रिपोर्ट पुलिस में नहीं दर्ज करवायी जाती। सभी विनीत के घर न लौटने की मनकामन करते हैं और अंदर ही अन्दर ही अन्दर खुश भी होते हैं- **“घर के और सदस्यों को उसकी अनुपस्थिति से कोई फर्क नहीं पड़ रहा था। शायद मन ही मन यह मना रहे थे कि विनीत घर न लौटे तो अच्छा हो। गौतम साहब विनीत को घर में रखने और समाज में जूझने के अपने फैसले पर अफ़सोस जता रहे थे। इसी के चलते उसकी खोज-खबर भी नहीं ली गई। मोहल्ले वालों कोक यह कहकर शान्त कर दिया गया कि वह अपनी बुआ के घर कानपुर गया है और अब वहीं पड़ेगा।”**²

घर-परिवार तथा समाज की लापरवाही की वजह से ही इन मंगलमुखियों की स्थिति निरंतर बदलती जा रही है। जिसकी वजह से वे अपने होने न होने को लेकर समाज में सर झुकाकर संघर्षभरा जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। क्या इनका किन्नर होना या गे, लेस्बियन होना गुनाह है? नहीं न ! फिर इस सभ्य कहे जाने वाले समाज में उनके साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया जाता है? गे, लेस्बियन या हिजड़ा होना पाप नहीं है, उन्हें मनुष्य के रूप में न देखना पाप है, किन्नर, गे या लेस्बियन से पहले वे एक इंसान है समाज को पहले उन्हें इंसानियत की नज़र से देखना चाहिए और आम जनमानस की तरह उन्हें भी समाज में उचित स्थान देना चाहिए।

उपन्यास के माध्यम से यह भी देखने को मिलता है कि किन्नर समाज 'धारा 377' का होना जरूरी मानता है, क्योंकि उनका मानना था कि किन्नर समाज और इतर वर्ग यानी गे, लेस्बियन, बॉयोसेक्सुअल कभी एक छत के नीचे नहीं आ सकते। हिजड़ा समुदाय शुरुआत से ही समाज से बहिष्कृत है, जबकि गे और लेस्बियन का होना केवल उसी व्यक्ति पर निर्भर करता है। जब तक वे अपनी असली पहचान नहीं बताते, तब तक उनके लिए कोई समस्या नहीं होती और न ही उन्हें घर से बेदखल किया जाता है इसके विपरीत किन्नर को उसके जन्म से ही घर-परिवार और समाज से दूर कर दिया जाता है और उसका पैदा होना कुदृष्टि से देखा जाता है। दोनों की समस्याएँ कुछ मात्रा में अलग है। इसीलिए हिजड़ा समुदाय उन्हें अपनों से अलग ही मानता है।

इन किन्नरों के रोजी-रोटी के लिए सरकार ने कोई योजना नहीं बनाई, न ही उन्हें रोजगार, नौकरी दी। बरसों से आज तक सरकार ने देश की गरीबी मिटाने में सफल नहीं हो पायी तो इन अभागों का क्या उद्धार करेगी। इस सच्चाई से मंगलमुखी अच्छी तरह से वाकिफ है, उन्हें सब पता है कि मंगलमुखियों को मुख्यधारा में लाने के लिए 'हिजड़ा' मानसिकता वाले राजनेताओं ने भाषण और आश्वासन के जरिये केवल अपनी रोटी सेकने का ही काम किया है। उन्हें मौलिक अधिकार और न्याय दिलाने की बजाय केवल वोट बैंक के रूप में इस्तमाल करते हुए गुमराह करने की कोशिश की है। समुदाय को विकास की ओर उन्नति करने के लिए जो अधिकार नियम बनाये गये वे केवल कागजों पर ही धरे के धरे रह गये। इसीलिए किन्नर समुदाय भी राजनेता और उनकी सरकार को भी हिजड़ा कहती है, **“सांप्रदायिकता की आड़ में सत्ता पर कब्ज़ा किया जाता है। एक हमारी बिरादरी है, जिसमें सभी धर्मों को माननेवाले एक साथ रहते हैं। होली-दीवाली, ईद-बकरीद एक साथ मानते हैं। हज करने जाते हैं तो चारों धाम की यात्रा भी करते हैं। चर्च में भी हमें सिर झुकाने में शर्म नहीं आती। राजनेताओं पर बरसते हुए उन्होंने कहा कि हममें और उनमें कोई फर्क नहीं है। वे पर्दे की पीछे के हिजड़े हैं और हम सामने के।”**³ वर्तमान स्थिति की

बात करें तो सरकार ने सरकार ने उनके मूलभूत अधिकारों को लिए जो नियम-कानून बनाये थे उसे अब धीरे-धीरे लागू किया जा रहा है। जैसा कि आज हम देख सकते हैं, एक किन्नर माँ नहीं बन सकती लेकिन उसे बच्चा गोद लेने का अधिकार दिया गया है, मतदान देने लिए पहचान पत्र दिया गया है, सरकारी कागजों में स्त्री-पुरुष की श्रेणी के अलावा अन्य श्रेणी को जोड़ा गया है, शिक्षा और नौकरी में उनके लिए आरक्षण की सुविधा दी गयी है। कुछ ही दिनों पहले किन्नरों के साथ अभद्र गाली या बतमीजी करने वालों के लिए दण्डित करने का कानून बनाया गया। धीरे-धीरे ही सही यह समाज विकास के मार्ग पर उन्नत होते दिखाई दे रहा है।

निष्कर्ष रूप में अगर कहा जाए तो प्रदीप सौरभ ने 'तीसरी ताली' उपन्यास के माध्यम से न केवल मंगलमुखी समुदाय बल्कि उनसे जुड़े अन्य समुदायों पर भी कलम चलायी है। जैसे की आनंदी आंटी और गौतम साहब के लिए संतान का दुःखराजा और मंजू की प्रेम पीड़ा डिम्पल का अपने किए पर पश्चाताप, शक्तिशाली राजनेताओं द्वारा जनता का शोषण पुलिस का अमानवीय व्यवहार आदि संबंधी गहन मानवीय मूल्यों की पड़ताल की गई है ऐसे अनेक छोटी-मोटी कथाओं के माध्यम से लेखक ने मंगलमुखी समाज के उन पहलुओं को भी उजागर किया है जो वास्तव में लोग आज भी उनसे अनभिज्ञ हैं। किस तरह सभ्य, सुसंस्कृत लिंगवादी समाज इनको तिरस्कृत करके अपने से अलग होने पर एक विशिष्ट जाति का दर्जा दे देता है, लेखक ने उन सभी पहलुओं को उपन्यास के माध्यम से सबके सामने लाने का प्रयास किया है।

समाजसेवी, साहित्यकार तथा शोध-अध्येताओं के कारण समाज में आज एक नई चेतना विकसित हो रही है जनजागृति हो रही है। जिसके चलते मंगलमुखियों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने में मदद मिल रही है।

आधार ग्रंथ

1. प्रदीप सौरभ, 'तीसरी ताली' (2011), वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, पृष्ठ सं. 82
2. वही, पृष्ठ सं. 83
3. वही, पृष्ठ सं. 137



इक्कीसवीं सदी का हिंदी उपन्यास 'मैं पायल' में किन्नर विमर्श

डॉ. जयलक्ष्मी एफ. पाटील

सहायक प्रोफेसर

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास

चेन्नई ६०००१७

प्रस्तावना :

मानव समाज में दो प्रकार के प्रमुख लिंग देखे जा सकते हैं। एक तो पुरुष और दूसरा स्त्री। पर इससे भिन्न और एक वर्ग का अस्तित्व भी हमारे समाज में प्राचीन काल से विद्यमान है जो ट्रांसजेंडर नाम से आज माना जाता है। किन्नर विमर्श समकालीन साहित्य को और एक दिशा की ओर ले जाता है। समकालीन साहित्यकार किन्नरों की दयनीय हालत के खिलाफ आवाज उठाते हैं और समाज में किन्नरों के अस्तित्व को बनाने की कोशिश करते हैं। ऐसे ही समकालीन उपन्यासकारों में एक प्रतिभावान साहित्यकार हैं श्री महेन्द्र भीष्म।

'मैं पायल' महेन्द्र भीष्म जी का जीवनीपरक उपन्यास है। यह उपन्यास वस्तुपरक ढंग से बेहद गहराई से और पूरी पारदर्शिता के साथ किन्नरों के जीवन की दुखमय, त्रासद, पीडादायक और अमानवीय यातनाओं को बेबाक ढंग से हमारे सामने प्रस्तुत करता है। चूंकि यह जीवनीपरक उपन्यास है, अतएव कल्पना के इंद्रजाल इसके कथ्य में नहीं है, वहाँ तो एक किन्नर का भोगा हुआ कटु यथार्थ ही वर्णित है। हिंदी साहित्य में सन् २००२ में प्रकाशित नीरजा माधव का उपन्यास 'यमदीप' हिजडों पर रचित पहला स्वतंत्र उपन्यास माना जा सकता है। २०१० में प्रकाशित महेन्द्र भीष्म का 'किन्नर कथा' में हिजडों की विविध समस्याओं को उठाया गया है। इसके अलावा २०१६ में 'मैं पायल' उपन्यास उनके जीवन के विविध अनछुए पहलुओं की ओर भी संकेत करता है। किन्नर बच्चों की त्रासदी जन्म से ही आरंभ हो जाती है। परिवार उनका त्याग कर देता है। ऐसे बच्चों को विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। परंतु परिवार इन्हें कलंक मानता है। माँ की ममता पर तो किसी ने प्रश्न चिह्न नहीं लगाया है परंतु ऐसे व्यक्तियों से माँ भी लोकलाज के भय से अपना संबंध उजागर नहीं करती है। जब संपूर्ण समाज लगभग सांप्रदायिकता की चपेट में हो और धार्मिक उन्माद का नशा अपने चरम पर हो तब भी किन्नर समाज पर उसका कोई प्रभाव नहीं रहता। किसी भी प्रकार के जाति या धर्म के बंधन से मुक्त किन्नर समाज सामाजिक समरसता का मार्ग प्रस्तुत करता है। आमतौर पर देखें तो किन्नर वर्ग का जीवन आज भी त्रासदीपूर्ण है। यह समुदाय कई प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहा है। इनकी सबसे बड़ी समस्या आजीविका है जो इन्हें अंततः इनके समुदाय में ले जाती है। अकेले बहिष्कृत किन्नर आर्थिक रूप से भी हाशिए पर डाल जाते हैं। वैसे तो ये लोग समाज के हर कोने से तरह तरह की पीडाओं को सहन करते हैं।

मैं पायल

महेन्द्र भीष्म का यह उपन्यास लखनऊ की किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन संघर्ष पर आधारित है, जिसका प्रकाशन अमन प्रकाशन कानपुर ने वर्ष २०१६ में किया। यह आत्मकथात्मक उपन्यास है। उपन्यासकार के ही शब्दों में :— "मैं पायल..... का आधार किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन संघर्ष की गाथा है, जिसमें प्रत्येक किन्नर के अतीत के संघर्ष की झलक परिलक्षित होती है। विस्थापन का दंश कष्टकारी होता है, फिर वह चाहे परिवार, समाज या अपनी मिट्टी से किया हो।"

प्रस्तुत उपन्यास का प्रधान पात्र है गुरु पायल सिंह। इसमें इनको कई नामों से जाना जाता है जैसे जुगुनु, जुगुनी, पायल आदि। पायल अपने परिवार की पांचवी संतान है। समाज एवं परिवार के यातनाओं का शिकार है यह किन्नर पायल। अपने घर से पलायन के बाद किन्नर पायल को समाज की भी वास्तविक छवि समझ में आता है। हमारे भारतीय समाज के किन्नर वर्गों का सच्चा नमूना है 'पायल'। परिस्थितियाँ बदलने पर, आत्मसंघर्ष के द्वारा, अनुभवों को सच्चे मोड़ पर लिए एक किन्नर गुरु के रूप में उपन्यासकार पायल को पाठकों के सामने रखते हैं। किन्नरों के लिए अपना जीवन बितानेवाले पायल इस उपन्यास का केन्द्रबिंदु है। जब पायल अपने दुखी जीवन से तंग आकर घर से चली जाती है तो अपने गृहनगर के रेलवे स्टेशन से रेलगाड़ी के कम यात्रियोंवाले डिब्बे में बैठ जाती है। एक तो घर से विस्थापित होने की मानसिक पीडा साथ ही पैर में कांटा चुभ जाने के कारण शारीरिक पीडा से व्यथित अकेली युवती को डिब्बे में ही यात्रा कर रहा मोटा, ठिगना, धोती कुर्तेवाला व्यक्ति पहले तो हमदर्दी दिखाता है और बाद में यौन शोषण का प्रयास करता है। उन्नव स्टेशन के फ्लैटफार्म पर मुच्छड पुलिसवाला भी उसका यौन शोषण करने का प्रयास करता है। उपर्युक्त घटनाओं से यह स्पष्ट होता है कि पुरुष की मानसिकता जिस स्तर पर आ पहुँची है तो स्त्री को स्त्री हिजडों को भी अपनी हवस का शिकार बनाने के लिए नित प्रयासरत रहते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में दूसरी ओर किन्नर वर्ग देह व्यापार से जुड़े रहते दिखाई देते हैं। किन्नरों का डेरा व्यभिचार का केन्द्र सा इसमें हम देखते हैं। इसका स्पष्ट कारण गरीबी है।

पायल को अपने हिजड़ा होने का अहसास पिता की गाली गलौज, मार पिटाई से अधिक हुआ। पायल का पिता उसे लडकी के कपड़ों में देख उसे मर जाने की हद तक मारता है। घायल अवस्था में जब उसकी चेतना वापस आती है तो वह सोचती है — देर सवेर पिताजी जागेंगे ही और मुझे जिंदा देख फिर मारेंगे, पीटेंगे.....कल्पना मात्र से उसकी रूह कांप जाती है। कई दिनों के बिखराव के बाद वह आत्महत्या करने की भी सोचती है — 'ट्रेन गंगा पुल पर चल रही थी, मन में इच्छा जागृत हुई कि गंगा में कूद जाऊँ और ओ आनेवाली अनिश्चितता भरी यातनाओं से मुक्ति पा लूँ पर मैं भयवश या कोई शक्ति जो समानान्तर विचार बन चल रही थी, जो भी कारण हो मैं गंगा की गोद में नहीं समायी और गंगा पुल पार हो गया।' उपर्युक्त पंक्तियाँ पायल के एक किन्नर होने की विवशता को दर्शाते हैं।

उपन्यास के केन्द्र में पायल और किन्नर समुदाय की व्यथा कथा है, यह पूरी समाज, सामाजिक व्यवस्था, मनुष्य के भीतर के कलुषित मन, गरीबी —भूख जैसे विषयों पर एक सवाल खड़ा करता है। इस उपन्यास के द्वारा श्री महेन्द्र भीष्म जी ने पूरे किन्नर समाज के संघर्ष की बारीकियों को इसमें उकेरा है।

निष्कर्ष :

मैं पायल एक नया विषय, समाज का उपेक्षित वर्ग किन्नरों की वेदना, हताशा, जीवन जीने के लिए उनका संघर्ष और समाज में उनके प्रति नजरिए को दिखानेवाली कथा है। किन्नरों को अपनी निजी जिंदगी में कभी खुशियाँ नहीं मिली हैं, परंतु वे दूसरों के घर नवजात शिशु आने पर उसे आशीर्वाद देते हैं। लाख दुआएँ वे उन्हें देते हैं। उक्त उपन्यास किन्नर पात्र पायल को अपने अस्तित्व के लिए लड़ाई लड़ते और समाज में संघर्ष को झेलते और सामना करते दिखाया है। महेन्द्र भीष्म जी ने पायल के माध्यम से किन्नर जीवन की संघर्ष गाथा को आवाज दी है।

सहायक ग्रंथ

१. महेन्द्र भीष्म मैं पायल
२. डॉ. जालिंदर इंगले समकालीन हिंदी उपन्यास : वर्ग संघर्ष और वर्ण संघर्ष
३. डॉ. इकराश अहमद किन्नर विमर्श साहित्य के आईने में



‘किन्नर कथा’ में संघर्ष और सफलता

मिलन विश्रोई

शोधार्थी/स्वतंत्र लेखन

तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय तिरुवारूर 610005

हिंदी कथासाहित्यकारमहेन्द्र भीष्म द्वारा लिखित ‘किन्नर कथा’ उपन्यास बेहद चर्चित और प्रासंगिक माना जाता है। इस उपन्यास ने आधुनिक समाज में सकारात्मक सोच को बढ़ावा देने में सफलता हासिल की इसमें कोई दोहराव नहीं है, लेखक ने पूरी शिद्दत के साथ किन्नर समाज के संघर्ष को कथा के अंत में मानवीयता का दर्जा दिलाने में सफलता प्राप्त की है। कथा की शुरुआत राजघराने में जन्मोत्सवसे और अंत विवाह उत्सवके साथ होता है, लेकिन कथा के बीच में कई ऐसे मोड़ आते हैं, जो पाठकों को झंकझोर देने वाली जिज्ञासा पैदा करते हैं। जगतराजसिंह जैतपुर के राजा रह चुके हैं उनके घर किलकारी गूँजने का वक्त करीब है फिर भी वह चित्रकूट चले जाते हैं। जैतपुर की सिध्दहस्त दाई निरंजना को रानी की देखभाल के लिए रखा जाता है, जो पल-प्रतिपल रानी साहिबा का ध्यान रख रही थी। रानी आभासिंह का स्वभाव राजा जगतसिंह से बिल्कुल अलग था। रानी साहिबा रूप के अनुरूप गुणवती और दया की प्रतिमूर्ति तथा ईश्वर पर अगाध विश्वास रखने वाली रानी साहिबा लोगों में प्रशंसनीय थी। ईश्वर भक्ति और उनके सुकर्मों कारण ही दुष्ट और दम्भी स्वभाव के राजा जगतसिंह पर ईश्वर की कृपा रहती है। उसके सारे काम चुटकियों में बनते जाते हैं। शत्रु पक्ष कभी उस पर हावी नहीं हो पाता। रानी आभासिंह की ईश्वरीय आध्यात्मिकता और जगतराजसिंह मनौती के लिए प्रत्येक अमावस को कादमगिरि जाकर परिक्रमा करना व निरंजना की निश्छल अंतर्मुखता की पुकार से वर्षों बाद रानी साहिबा की गोद भर गई। उन्होंने दो जुड़वाँ स्वस्थ कन्याओं को जन्म दिया। लेकिन ईश्वर ने यह लीला कुछ अलग तरीके से रची थी। यह बात निरंजना के अलावा किसी को पता नहीं था, लेकिन निरंजना के चालीस साल के अनुभव में यह पहली चौकाने वाली घटना थी। निरंजना को समझ नहीं आ रहा है कि वह रानी को किस तरह बताये। यह सब देखकर अवाक् रह गई उसके मुँह से कोई लफ्ज नहीं निकल रहा था, “कैसे कहे वह कि इन दोनों में से एक बच्चा न लड़की है और न ही लड़का है। वह हिजड़ा है, हिजड़ा...” रानी जब निन्द्रा से जागती है तब निरंजना को ईनाम/भेंट लेने का आग्रह करती है तो निरंजना विनम्रता के साथ हाथ जोड़ती हुई रोने लगती है, तब निरंजना से रोने कारण पूछने पर दिल पर पत्थर रखकर कहती है, “मालकिन, देखो ई...के ...मोय लगत जो हिजड़ा भओ है।... “क्या?” (किन्नर कथा 16) एक साथ सैकड़ों बिजलियाँ आभा की आंखों के सामने कौंध गईं। कभी वह अपने हिजड़े बच्चे को देखती तो कभी सामने खड़ी निरंजना का मुँह ताकती। क्या करें क्या न करे? आभा की कुछ समझ में नहीं आ रहा था ...बाद भरे गले वह निरंजना से बोली, “काकी अब हमारी सबकी लाज तुमाए हाथन है। तुम तो दायजू को सुभाव जानती हो कि तेक गुस्सैल हैं वेजा खबर तो वे बरदाश्त न कर पेहें, दायजू भी...उने पतो परे तो वे ई नन्हीं-सी जान खां मरवा डारे, काकी तुमे हमारी सौगंध...तुमे जो रुपइय्या पईसा चाऊने हो, मैं मौ मांगी करों, पर तुमें ई बात हां एकदम गुप्त रखने।” (किन्नर कथा 16) आभा को आंगिक विकृति वाली संतान देखकर घबराहट जरूर हुई लेकिन जिस रूप में है उसे स्वीकार्य करती है परन्तु पति के क्रूर स्वभाव के कारण डर रही है कि कहीं जगतराजसिंह को पता चलेगा कि उसकी बेटी हिजड़ा है तो वह अवश्य उसे मार देगा इसलिए निरंजना से प्रार्थना करती है कि सोना के अधूरेपन की भनक किसी को ना लगने दे। अगर यहां आभा की जगह आम स्त्री को भी जन्मदात्री के रूप देखें तो वह मां भी अपने पति से आंगिक रूप से विकलांग बच्चे को छुपाने की कोशिश करती क्योंकि मां समाज के ताने सहन करके भी अपनी संतान को किसी भी रूप को स्वीकार कर लेती है, लेकिन पिता को समाज में इज्जत, सम्मान और संतान प्यारी लगती है परन्तु जिस संतान पर लोग अंगुली उठाए, खानदान को कलंकित करें, उस संतान को कभी स्वीकार करने कोशिश तक नहीं करते। इसी तरह जगतराजसिंह भी अपनी बुंदेला खानदान में सोना के हिजड़ापन को कभी नहीं अपनाएंगे इस बात का भय रानी आभासिंह को था, वह डर के कारण निरंजना से अनुनय विनय कर रही थी।

रानी आभा और निरंजना कई दिनों तक बच्ची के अधूरेपन की भनक तक जगतराजसिंह को लगने नहीं दी परन्तु एक दिन सारा राज जगतराजसिंह की आंखों के सामने खुल ही जाता है। जिस बात का आभा को डर रहता था, वैसा ही कुछ हुआ। क्योंकि विपरीत लिंगी संतान को स्वीकार करने की पहल राजघरानों में भी नहीं की गई इस बात को लेखक सांकेतिक भाषा में उपन्यास के माध्यम से बताने की कोशिश कर रहे हैं।

जगतराजसिंह रूपा और सोना को बारिश में क्रीड़ा करते हुए देखकर अतिप्रसन्न हो रहे थे, कुछ समय पश्चात जब जगतराजसिंह बेटीयों को सीढ़ियों से नीचे ले आ रहे थे, तब सोना निरंजना को देखकर उनके पास जाने के लिए मचल रही थी और जगतराजसिंह उसे नीचे उतारने लगे उसी क्रम में सोना के अंगवस्त्र नीचे उतर गया उसी क्षण पिता की अकस्मात् नजर सोना के जननांग पर पड़ गयी। तब जगतराजसिंह की आंखों के सामने मानों बिजली गिर गई हो, निरंजना को क्रोधित लाल आंखों से घूरकर दहाड़कर बोला, “विश्वासघातिनी! फिर दो कदम आगे बढ़ाकर

निरंजना के चेहरे पर भरपूर झापड़ जड़ दिया। कृशकाय वृद्ध निरंजना कटे वृक्षसी गई। आभा की दाईं हथेली स्वतः अपने गाल पर जा पहुंची। निरंजना को पड़ा तमचा उसे अपने गाल पर महसूस हुआ। उसे अपनी हृदयगति रूकती-सी महसूस हुई। तेज चक्कर आया और मूर्च्छा हो वहां गिर पड़ी, दोनों बच्चे एकाएक बदले दृश्य से घबरा उठे और रुदन करने लगे। पिता के रौद्र रूप उन्होंने अपने अल्प जीवन में पहली बार देखा... "(किन्नर कथा 24) लेखक यहां उपन्यास में पात्रों के माध्यम से समाज के राजशाही वर्ग का पर्दाफाश करने की जद्दोदह कोशिश कर रहे हैं जैसा कि सोना के अविकसित जननांग देखकर गीदड़ की तरह फड़फड़ाकर निरंजना पर जगतराजसिंह झड़प पड़ते हैं। निर्दोष स्वामिभक्ति निरंजना को अपने विश्वासपात्र पंचमसिंह से गोली मरवाकर मगरमच्छ का भोजन बनवाने में देर नहीं करता। वैसे तो भारतदेश भले ही लोकतांत्रिक देश है, लेकिन सत्ता में आए कुछ नाममात्र के शासकों ने सेवाभावी रक्षकों, मजदूरों का सदैव शोषण किया है। जगतराजसिंह के आदेश को पुरा करते हुए उनके स्वामिभक्त पंचमसिंह ने ना जाने निरंजना जैसे कितने गरीब स्वामिभक्तों को मौत के षट उतारा होगा। "ददा हम तुम्हें अपनी बड़ों भैया मानत हैं। तुमए पुरखा जैतपुर रियासत के दीवान रहे.... बुंदेला खानदान को नाम डुबा दक्षत्रियवंश में हिजड़ा, का ऊ हिजड़ा हां पाले-पोसे अरे आज नहीं तो कल, जब सबके सामने जा बात आ जेहे कि हमारी संतान हिजड़ा है बुंदेला खून हिजड़ा पैदा करत तो का गत हुई हमारी, समझत काय नईया तुम इती सी बात" (किन्नर कथा 27) लेखक पात्र के माध्यम से समाज में पौरुषात्मक की अकड़, झूठी शान-इज्जत, पर्दे के पीछे छुपे क्रूर निर्दयी जो समाज में स्वयं को रक्षक मानने वालों का कलम के माध्यम से दोगलेपन को बताना चाहते हैं। जैसा कि जगतराजसिंह सोना को बुंदेला खानदान का कलक मानते हुए अपने विश्वासपात्र पंचमसिंह द्वारा अपनी हिजड़ा औलाद को मारने का आदेश देते हैं खैर पंचमसिंह ने राजा का आदेश शिरोधार्य मानते हुए निरंजना को मौत के घाट उतार दिया किन्तु सोना को जंगल में मारने के लिए चाकू निकालते हैं उसी समय उनकी अंगुली कट गई तब सोना ने "अरे कक्काजू तुमारी उंगली पे खून." (किन्नर कथा 35) ऐसा कहते हुए पंचमसिंह की घायल अंगुली पर अपने बालों के सफेद फीते से पट्टी बाँधी दी। सोना के इस प्यार ने पंचमसिंह का पत्थर जैसा दिल पिघाल दिया। उसी क्षण सोना के प्रति मन बदल लिया और सारे किए गए पापों का पाश्चात्ताप करने लगे। वहां से कुछ ही दूरी पर आश्रम था पंचमसिंह अविचलित मन से सोना लेकर वहां पहुंच गये। मरहंतजी के पास कुछ समय तक बैठे और सोना भी चबूतरे के पास खरगोश के साथ खेलने लग गई। कुछ समय पश्चात पंचमसिंह ने मरहंतजी से सारी व्यथा बताते हुए सोना के आंगिक विकृति के बारे में बताया और जगतराजसिंह द्वारा सोना की हत्या करवाने के लिए भेजा गया लेकिन अब वह हत्या न करके निर्दोष सोना को बचाने के लिए मरहंतजी से मार्गदर्शन चाहता है।

मरहंतजी अपने आश्रम आई किन्नर गुरु तारा का परिचय पंचमसिंह को करवाते हुए उसे सोना को सौंपने का आग्रह करते हैं और पंचमसिंह तारा को सोना सौंपते हुए चेतावनी देते हैं कि बुंदेला राजा ने हिजड़ा बच्चा समाप्त करने का आदेश सुनाया था, परन्तु काम तमाम करने से पहले हाथ थम गये थे। "पर एक बात पक्की सुन लो तारा, मरहंतजी आप गवाह हैं इस बात का पता किसी को नहीं चलना चाहिए कि ये मोड़ी दायजू सरकार की या उनके वंश की है। दूसरी बात मैं कुछ देर में इतना धन दे जाता हूँ कि जिंदगीभर बिटिया के लालन-पालन के बाद भी कमी न हुए और आखिरी बात, जैतपुर से पच्चीस मील की दूरी बनाए रखिये नहीं तो काल को मौ देखो।" (किन्नर कथा 41) पंचमसिंह तारा को सोना सौंप देते हैं उधर आभासिंह का सेरोकर बेहाल हो गया है। उसे निर्दोष निरंजना और सोना के प्रति चिंता काटे जा रही है उसे लग रहा है कि पंचमसिंह और जगतसिंह ने कुछ जालसाजिश की होगी। लेकिन रानी के कष्टों को कोई समझ नहीं सका। अब तारा सोना को अपने साथ किन्नर डेरे में ले जाने के बाद मातिन को सौंपते हुए उसका अच्छे से पालन-पोषण करने की सलाह देती हैं। लेकिन रातभर सोना के भविष्य को लेकर चिंतित और परेशान होती रही कि लोग हिजड़ों को क्यों अपनी संतान के रूप नहीं अपनाते हैं बच्चों का क्या दोष उन्हें द्विलिंगीय समाज के लोग मौत के मुंह पहुंचाने में देर नहीं करते। या फिर मंदिर की सीढ़ियों के डेदान इत्यादि जगहों पर फेंक देते हैं। कुछ माता-पिता ऐसे बच्चों को अपना भी लेते हैं। परन्तु समाज के लोग हिजड़े बच्चे के बड़े होने के साथ-साथ स्त्रेण भावनाओं का भद्दा मजाक उड़ाते हैं। उन बच्चों के साथ असंवेदनशील व्यवहार करते हैं जैसा कि तारा के साथ हुआ होता रहा है।

तारा उपन्यास की सबसे अधिक संघर्षशील पात्र रही है। तारा का संघर्ष केवल द्विलिंगीय समाज साथ ही नहीं बल्कि नकली किन्नरों के साथ अपने हक के लिए संघर्ष करते हुए प्राण गवाने पड़े। तारा कभी व्यसायिक परिवार तारा चन्द्र अग्रवाल के रूप में जाने जाते थे, स्त्रेण भावनाओं के कारण उसके बड़े भाई को कतई पसंद नहीं था फिर 17-18 वर्ष की उम्र में भाई के कारण घर छोड़ दिया। जीवनभर संघर्ष किया और किन्नरों के साथ रहते हुए तारा गुरु के रूप अपने आप को स्थापित किया। धीरे-धीरे अतीत को भुलाते चली लेकिन मां-बाप की याद हमेशा सताती थी, परन्तु कर भी क्या सकती घर के सारे द्वार उसके लिए सदा के लिए बंद थे। लेकिन एक दिन मां की मौत का समाचार मिले पर वह श्मशान घाट पर जाती हैं, अंतिम संस्कार करवाने के लिए। वहां तारा को अपनी मां का मुंह तक नहीं देखने देते। वहां उसके भाई भी जाते हैं फटकार लगाकर भगा देते हैं, अगर दो-तीन हिजड़े साथ नहीं होते तो मार-पिट्टाई भी कर देते। तारा ईश्वर को कोसते हुए रो-धोकर वापस अपने चेलों के साथ डेरे में आ गई।

अब सोना को किन्नर समाज में सम्मिलित कर लिया और सोना को अब सभी चंदा के नाम से जानने लगे हैं। तारा चंदा को बधाई के लिए कहीं नहीं भेजती है, वह घर में मातिन के साथ रसोईघर में ही सहयोग करती। तारा ने चंदा के लिए घर में पढ़ाई-लिखाई और गायन कलाओं को सिखाने की व्यवस्था की और चंदा भी पूरी तरह इन सब में डूब चुकी है। कथा में आधुनिक और बदलाव का मॉड आता है जब

तारा का भतीज मनीष चंदा से प्यार करने लगता है और दु सरी तरफ मनीष के घरवालों ने तारा को घर बुलाकर चंदा को मनीष से दुर रखने की हिदायत देते हैं। तारा जब मनीष को सारी बात बताती हैं उसके घर वालों के बारे में तब मनीष तारा से कहता है। यह प्यार शारीरिक प्यार नहीं है मैं चंदा के साथ अपना जीवन शादी करके बिताना चाहता हूं। उपन्यास में लेखक मनीष के माध्यम से पढ़ेलिखे युवाओं परिवर्तित सोच को बताना चाह रहे हैं।

उपन्यास के अंत में नकली किन्नर लंबू और उनके मित्र तारा की हत्या कर देते हैं। लेकिन प्रशासन के लोग इस हत्याकांड के आरोपियों का गिरफ्तार कर लेते हैं। मनीष तारा की अन्तिम क्रिया सामान्य विधि- विधान से संपन्न करवाता है। उधर जगतरासिंह के घर में रूपा की शादी की तैयारी धूमधाम से चलती उसी शादी में चंदा को नर्तकी के रूप में बुलाते हैं चंदा को सारा अपना अतीत याद आ जाता और वह बहुत अन्दर ही अंदर रोती हैं और उसी अपने घर के आंगन पिता के चरणों में जान अर्पित करने का मन बनाती है। वहां चंदा को पहचान लिया जाता है जगतरासिंह फिर सोना को मारने का सोच रहे हैं और पंचमसिंह को विश्वासघाती समझकर उस पर क्रोधित हो जाते हैं लेकिन अंत में चंदा को अपना लिया जाता है। सोना का ऑपरेशन करवाने के लिए रूपा की सास अपने साथ कनाडा ले जाती हैं। मनीष भी सोना के साथ जाता हैं अर्थात् प्रेमी बनकर निस्वार्थ प्रेम करके चंदा का जीवन सफल बनाता हैं। चंदा को पाने के लिए मनीष ने अपने घरवालों का विरोध करके चंदा के साथ खड़ा रहा। उपन्यास का अंत लेखक बेहद सुखद अनुभूति के साथ करते हैं। तारा के कठिन संघर्ष चंदा और मातिन दोनों की जिंदगी को सफल बनाया और मानवीयता का हक दिलाते हुए पाठकों को रूढ़िवादिता से पूरी तरह उभारा हैं। उपन्यास पढ़ने के पश्चात बदलाव के भाव अवश्य उभर रहे हैं।



समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श

प्रा. डॉ.एम. ए. येल्लुरे
सहयोगी प्राध्यपक एवं शोध-निर्देशक
अध्यक्ष. हिंदी विभाग
बी.एस.एस.कला विज्ञान एवंम
वाणिज्य महाविद्यालय, माकणी-४१३६०४
तहसिल:-लोहारा जि.उस्मानाबाद

प्रस्तावना -

आज पूरे समाज में वर्तमान हिंदी साहित्य में अलग-अलग विमर्श का दौर चल रहा है ! स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किसान विमर्श, वृद्ध विमर्श विकलांग विमर्श आदि में उन सामाजिक समूहों के अस्तित्व और अधिकारों को लेकर विस्तृत चर्चाएँ कीये जा रहे हैं, और इन्हीं के साथ आज-कल एक ऐसे मानवी समूह को भी जगह दिलाई गई है, और है थर्ड जेंडर याने तृतीय लिंग, किन्नर हिजडों से अभिप्राय रखता है ।

आज या अबतक आम तौर पर यही माना गया है कि मानवी समाज केवल स्त्री और पुरुष की सहभागिता का ही नाम है । अर्थात् मनुष्य ने सदियों से अपनी सुविधा के लिए और विछले कुछ सालोंतक समाज में रहे किसी तीसरे हिस्से की कल्पना ही नहीं की गयी थी । समाज का एक अनदेखा किया गया हिस्सा है थर्ड जेंडर जिसे हिजडा, किन्नर, नपुंसक, रवाजा, जोगव्या, जोगता, छक्का, अलिंगी, अपूर्ण लिंगी सहित विविध प्रदेशों में विविध शब्दिक संकेतों द्वारा संबोधित किया जाता है ।

थर्ड जेंडर का सामान्य परिचय :-

थर्ड जेंडर अर्थात् तृतीय लिंगी मनुष्य रूप का उल्लेख भारतीय इतिहास में पौराणिक कालसे ही हिजडा, किन्नर, मौसी, जैसे संबोधनसे हुआ दिखाई देता है । महाभारत में इसका उल्लेख शिखंडी, बुहन्नला, नाम से मिलना है, तो रामायण में श्रीराम ने इन्हे दुसरों के आनंद में आनंदित होकर अशीर्वचन देने के लिए वरदान दिया था । उसके अतिरिक्त हमारे यहाँ के अनेक ऐतिहासिक राजा-महाराजाओं के दरबारों में इन कीन्नरों को राणियों के पहरेदार के रूप में रखा गया था इस बात का संदर्भ मिलते हैं । मुस्लिम शासकों के दरबार में भी यही हिजडे खाजासरा के नाम से सुरक्षाकर्मी के रूप में तैनात किये जाते थे । कहा जाता है कि आज हमारे देश में इनकी संख्या लाखों में है । सन् २०११ की जनगणना के अनुसार पूरे भारत में लगभग ४.६ लाख थर्ड जेंडर हैं, जिनमें से एक लाख ३४ हजार उत्तर प्रदेश में है । इसी जनगणना के अनुसार सामान्य जनसंख्या में शिक्षित लोगों की संख्या ७४ प्रतिशत है जबकी यही संख्या किन्नरों में कुल ४६ प्रतिशत ही है ।

हिजडों को चार वर्गों में विभाजित किया जाता है:-

बूचरा, नीलिमा, मनसा, और हंसा । बूचरा यानि जन्मजात हिजडा । नीलिमा, मनसा और हंसा । बूचरा यानि जन्मजात हिजडा । नीलिमा कोटी के हिजडें किसी कारण वश स्वयं को हिजडों के निकट समझते हैं । हंसा प्रकार के किन्नर किसी यौन अक्षमता के कारण स्वयं को हिजडों के साथ जोड़ लेते हैं । अबुआ वास्तव में नकली किन्नर होते हैं जो धन के लोभ में किन्नर बनने का नाटक कर पैसे वसूल करते हैं । और सबसे दुर्भाग्यपूर्ण और भयावह यंत्रणा से गुजरते हैं छीबरा जिन्हे जबरदस्ती किन्नर बना दिया जाता है ।

किन्नरों की मानसीक व्यथा :-

उनकी मानसिक व्यथा कथा को साहित्य के द्वारा उजागर किया जा सकता है । हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श अभी आरंभ ही हुआ है । आधुनिक समय के विमर्श और आस्मिता आंदोलन का प्रभाव किन्नरों की स्थिति पर भी पड़ा है । मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एन.शेषन १९९४ में किन्नरों को मताधिकार दिया, इसके पश्चात् १५ अप्रैल, २०१५ सर्वोच्च न्यायलयने किन्नरोंको तृतीय लिंग के रूप में मान्यता है । उनको बच्चा गोद लेनेका अधिकार दिया। चिकित्सा के माध्यम से स्त्री या पुरुष बननेका अधिकार है ।

लैंगिक दृष्टि से विवादित समाज के जो लोक प्रायः 'हिजडे' कहकर बुलाये जाते हैं वे जीवन जीने की कशमकश और ऊहापोह के बीच दर्दनाक जीवन गुजारने पर विवश हो जाते हैं । इनको समाज द्वारा परित्यक्त हिस्सा माना जाता है और उपहास किया जाता है जब की उनके इस प्रकार जन्म लेने में उनका कदाचित् दोष नहीं होता है । हिंदी कथा साहित्य में इनपर अधिक मात्रा में लेखन कार्य नहीं हुआ है लेकिन जितना भी हुआ है उन सभी से इनको सम्मान की दरकार रही है । यह लोग भी अपनी मूलभूत अवाश्यकताओं, अधिकारों और आम आदमी की तरह जीवन यापन करने की आकांक्षा रखते हैं । इनके जीवन संघर्षरत रहने की व्यथा-कथा चित्रण करनेवाले कुछ महत्वपूर्ण उपन्यासों की चर्चा मैं यहाँ करना चाहता हूँ । जिनके माध्यम से लेखकों ने जो विषय अबतक शर्म का विषय समझा जाता था उसको प्रकाश में लानेका सहासिक कदम उठाया इसिक्रम में भिष्म महेंद्र द्वारा लिखित

‘ किन्नर कथा ’ नीरजा माधव का ‘ यमदीप ’ प्रदीप सौरभ का ‘ तीसरी ताली ’ निर्मला भुराडिया का ‘ गुलाम मंडी ’ चित्रा मुद्गल का ‘ पोस्ट बॉक्स नं २०३ नालासोपारा ’ आदी का नाम लिया जा सकता है ।

इसी कड़ी में ‘ किन्नर कथा ’ किन्नर समाज की पिडाकी पैरवी में लिखा गया उपन्यास प्रबुद्ध पाठक वर्ग ध्यान आकर्षित करता है और किन्नरोंको अपने सम्मान और अधिकारों के प्रति जागरूक करता है । इसमें समाज, परंपरा और खोकेले मुल्योंपर एकसाथ चोट करते हुए नविन जीवन मुल्योंको अभिव्यक्ती प्रदान की गयी है । ‘ किन्नर कथा के माध्यम से किन्नर की आह और वेदनाकी उपस्थिति दर्ज कि गयी है जो आपनेही परिवार और समाजसे निरंतर दुःखोकी पीडा झेलते रहते है ।’ मानव समाज आपने चरम विकास के युग में प्रवेश करके स्वयं को गौरवित अनुभव कर रहा है किंतु समाज का यह वर्ग अभी भी इस मुख्य धारासे जुड नहीं पा रहा है इसे के मुल मे अनेक कारण विदयमान है किंतु मुल कारण है जन सामान्य की इस वर्ग के प्रती हेय मानसिक अवधारणा है । इस उपन्यास में राजघराणे में जन्मी चंदा की कहानी है जिसके किन्नर होने का पता चलने पर ही पीता के द्वारा मरवाने का प्रयास किया जाता है । ‘ उसके खानदान की साख को बट्टा न लगे, वंश में हिजडा बच्चा होने के कलंक से बच जाए ।’ कुल की मर्यादा सुरक्षित रहै वह सौप दे अपनी बेटी को मृत्यु का ग्रास बनने के लिये ।’ उपन्यास के कथानक मे अधुरी देह की पीडा सामाजिक उपेक्षा, पारस्परिक संघर्ष, अस्वाद एवं विद्वेष जैसे नकारात्मक भावोंको दर्शाते हुऐ लेखकने किन्नर समाज के कारुणिक कथाको अभिव्यक्ती देने का प्रयास किया है ।

चित्रा मुद्गल का उपन्यास ‘ पोस्ट बॉक्स नंबर २०३ नालासोपारा ’ प्रकाशित हुआ है इसमें लेखिका ने किन्नर समाज की दर्दनाक पीडाको अभिव्यक्ती देने का प्रयास किया है । यह उपन्यास किन्नर समाज की दशा और दिशा से हमारा परिचय कराने में अपना महत्ती भूमिका अदा करता है । उनकी जिंदगी का हर पाठ यातना, क्रूरता और चिर उपेक्षा का पाठ है । जेन्डर के अकेलेपन और समाज में सम्मान से जीने की ललकसे भरपूर दूनियों के मार्मिक पहलू कों मैनें यहा उजागर किया है ।

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त अध्ययन मनन और चिंतन के बाद हम कह सकते हैं कि हमारे समाज के एक अभिन्न अंग किन्नर समुदाय पर लिखे गये यह उपन्यास कहीं न कहीं हमारे समाज को किन्नरों की पीडा, दुःख दर्द, जीवन जीने की विभिषिका और त्रासद स्थिती से अवगत करते हैं - जैसे किन्नर कथा यमदिप, तीसरी ताली, गुलमंडी, पोस्ट बॉक्स नंबर २०३ आदि उपन्यासों में एक किन्नर होने का दर्द, घृणा, अपमान, घुटन इत्यादी का चित्रण किया है । और सब से मुक्ति कि कामना करता यह थर्ड जेन्डर आपने सम्मान और अधिकारों की मांग के लिये प्रार्थना करता खडा है इसे समर्थन देणा हमे अवश्यक है । किन्नर का दुःख दर्द उनकी पीडा को समजकर हम उनके अधिकारों और सम्मान हेतु समूचित प्रयास कर सके यही इस मुख्य आलेख का उद्देश्य है ।

संदर्भग्रंथ :-

- १) निरजा माधव, ‘ यमदिप ’ सुनिल साहित्य सदन प्रकाशन, नई दिल्ली
- २) निर्मला भुराडिया, ‘ गुलमंडी ’ सामाजिक प्रकाशन नई दिल्ली
- ३) प्रदीप सौरभ-‘ तीसरी ताली ’ वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
- ४) लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी-‘ मी हिजडा मी लक्ष्मी ’ मनोविकास प्रकाशन, २०१३

किन्नर विमर्श

D. Manivel

HOD, Dept. of Hindi
PSG College of Arts & Science
Civil Aerodrome Post, Coimbatore -14
Tamilnadu.

आज का समय विमर्शों का समय है। स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक, वृद्ध और आदिवासी समुदाय परिधि को छोड़कर केंद्र में आ चुके हैं और अपने मूलभूत मानवाधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। उनमें किन्नर समुदाय भी एक है।

यह एक ऐसा समुदाय है जो समाज के बीचों बीच उपस्थित है लेकिन उसका कोई अस्तित्व नहीं। उनका नाम सुनते ही सबके मन में एक अजीब सी भावना पैदा होती है।

क्या है थर्ड जेंडर

जिस समाज में स्त्री और पुरुष हैं उसी समाज में एक वर्ग और है, जो पारिवारिक अनुष्ठानों में नाच गा कर आशीष देने का कार्य करता है। माना जाता है इन वर्ग का आशीर्वाद आनुवंशिक समृद्धि लाती है। पर समाज का कोई भी व्यक्ति उनके जैसे जीवन की स्वप्न में भी आकांक्षा नहीं करता। इन्हें कई और नामों से पुकारा जाता है। जैसे हिजड़ा, किन्नर, खाजासरा, खोजा, नपुंसक, उभयलिंगी, शिखण्डी, छक्का आदि नामों से पुकारा जाता है।

संविधान में इन्हें इंटरसेक्स, ट्रांससेक्सुअल और ट्रांसजेंडर के रूप में पहचाना गया और इनकी पहचान को थर्ड जेंडर में ट्रांसजेंडर श्रेणी में रखा गया।

निर्मला भुराड़िया सहित अनेक साहित्यकारों ने यह प्रश्न उठाया है कि यदि प्रकृति ने उन लोगों को तयशुदा जेंडर नहीं दिया है तो इसमें उनका क्या दोष है। इसलिए इस समुदाय ने भी संवैधानिक रूप से अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष शुरू कर दिया है और साहित्यकार भी इन समुदाय की समस्याओं को उजागर करने का प्रयास कर रहे हैं।

लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी ने अपनी आत्मकथा में 'मैं हिजड़ा में' लक्ष्मी (२०१५) में स्वानुभूति के माध्यम से किन्नर समुदाय के सत्य को उजागर किया है।

शारीरिक रूप से विकलांगों को परिवार अपनाता है और समाज में भी उनके लिए तरह-तरह की सुविधाएँ उपलब्ध है लेकिन आनुवंशिक रूप से विकलांगों को-किन्नरों को परिवार भी नहीं अपनाता। सामाजिक अवहेलना से बचने के लिए उस बच्चे को त्याग दिया जाता है। इसलिए निवेदिता झा 'किन्नर' शीर्षक अपनी कविता में कहती हैं -

कोख तो तुम्हें भी जन्म देती है
अधीर प्रसव पीड़ा के बाद
पहली ही गोद तिरस्कार से फेर लेती है मुँह
माँ गले से फिर भी लगाती है
सबसे राजदुलारे।

महेन्द्र भीष्म के उपन्यास 'किन्नर कथा' (२०११) का प्रसंग इस प्रकार है -

राजघराने में जन्मे किन्नर जाना उर्फ चंदा के राज को माँ अपनी ममता के कारण बहुत दिनों तक प्रकट नहीं होने देती। लेकिन जब यह पता चल जाता है कि सोना किन्नर है तो राजा जगतराज सिंह उसे मारने का आदेश देता है। महेन्द्र भीष्म ने जगह जगह उस माँ की ममता और पीड़ा को उजागर किया है जिसकी संतान को किन्नर होने के कारण उससे दूर कर दिया जाता है। साथी ही उन्होंने यथार्थ स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया है - "संतान कैसे भी हो, उसमें शारीरिक, मानसिक कमी क्यों न हो, माता-पिता को अपनी संतान हर हाल में भली लगती है, प्यारी होती है, फिर भले ही वह संतान हिजड़ा ही क्यों न हो। फिर भी सामाजिक परिस्थितियों, खानदान की इज्जत-मर्यादा, झूठी शान के सामने अपने हिजड़े बच्चे से उसके जन्मदाता हर हाल में छुटकारा पा लेना चाहता है। यह एक कटु सत्य है।" (भीष्म अ: ४५) महेन्द्र भीष्म का उपन्यास 'मैं पायल' (२०१६) किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन संघर्ष पर आधारित है।

प्रदीप सौरभ की कृति है 'तीसरी ताली' (२०१४) में गौतम अपने बेटे विनीत को कुछ दिनों तक लोगों की दृष्टि से बचाता है लेकिन अंततः सामाजिक अवहेलना के कारण उसे बच्चे को त्यागना पड़ता है। इस उपन्यास में रिपोर्टार्ज शैली में समलैंगिकता, लिंग परिवर्तन, अप्राकृतिक यौनात्मक जीवन शैली और असली नकली किन्नरों की समस्याओं को व्यक्त किया गया है।

चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नंबर २०३ नाला सोपारा' (२०१६) में एक माँ अपनी संतान को किन्नरों से दूर रखने की भरसक प्रयत्न करती दिखाई देती है और मजबूरी में विनोद को बिन्नी बनना पड़ता है। वह अपनी माँ के सपने को साकार बनाने की कोशिश करता है और अधूरेपन तथा कश्मकश के बावजूद यह संकल्प लेता है कि जिंदगी में वह कुछ बनेगा और अपनी विरादरी के लोगों को समाज में इज्जत दिलाने का प्रयास करेगा।

कुसुम अंसल की कहानी 'ई मुर्दन का गाँव' में भी लैंगिक विकृति से पीड़ित लोगों की व्यथा को उजागर किया गया है।

भगवान अनमोल का उपन्यास 'जिंदगी ५०-५०' (२०१७) भी किन्नर विमर्श की दृष्टि से उल्लेखनीय है। उपन्यास के नायक अनमोल के भाई हर्ष को किन्नर होने का दंश झेलना पड़ता है।

'मोनिका देवी' के दो उपन्यास अस्तित्व की तलाश में 'सिमरन' (२०१८) और 'हाँ मैं किन्नर हूँ : कांता भुआ' (२०१८) किन्नरों की जीवन शैली पर आधारित है।

विजेंद्र कुमार सिंह और रवि कुमार गोंड द्वारा संपादित 'कथा और किन्नर' (२०१८) की २५ कहानियों में किन्नर समाज की व्यथा कथा को उजागर करने के साथ-साथ किन्नरों के उत्थान के लिए भी मार्ग सुझाया गया है।

दलित, आदिवासी, स्त्री आदि के अधिकारों के लिए जो प्रयास हुए हैं उसके परिणाम आज दिखाई दे रहे हैं। नाम लेने के लिए भी लज्जित होने वाले समाज में आज किन्नर या थर्ड जेंडर पर चर्चाएँ हो रही हैं।

सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र और सभी राज्य सरकारों को सभी ट्रांस पीपल को कानूनी पहचान देने का आदेश दिया है। देश में लगभग किन्नरों की पहचान लाख संख्या है। इतनी संख्या होने के बावजूद उन्हें सभ्य कहनेवाले समाज में हाशिए पर रखा है। लेकिन अब इस हाशिए को मुख्य धारा में लाने के प्रयास तेज हुए हैं। चिकित्सा के माध्यम से पुरुष या स्त्री बनने का और बच्चे को गोद लेने का अधिकार भी उन्हें दिया है। किंतु सभ्य कहलानेवाला समाज आज भी उसके अधिकारों और अस्तित्व को अनदेखा कर रहा है। थर्ड जेंडर के साथ मानव होते हुए भी जानवरों सा व्यवहार हो रहा है।

माँ-बाप के साथ ही साथ समाज भी उन्हें नकरा रहा है। सरकार द्वारा सुविधाएँ दी हैं परंतु अज्ञानतावश वे अपने अधिकारों का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। नौकरी का न मिलना, बेरोजगारी, शिक्षा का अभाव, समाज का नकार जैसे अनेक समस्याएँ थर्ड जेंडर के सामने हैं। सामाजिक व्यवस्था के कारण वे अंदर से टूट रहे हैं। ऐसे में उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाना और उनके प्रति समाज में सद्भावना लाना एक चुनौती है।

भारत के विभिन्न राज्यों में थर्ड जेंडर या किन्नरों की स्थिति, संस्कृति और उनसे जुड़ी परंपराएँ अलग-अलग हैं। स्त्री और पुरुषों के हमेशा के समाज से बाहर रहने वाले इस समुदाय के लिए हमारे प्राचीन ग्रंथों में 'किन्नर' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

उर्दू और हिन्दी में इनके लिए 'हिजड़ा' शब्द का प्रयुक्त होता है।

मराठी में 'हिजड़ा' और 'छक्का'

गुजराती में 'पावैया'

पंजाबी में 'खुन्ना' या 'जनखा'

तेलुगु में 'कीज्जा', 'मादा' और 'नपुंसकुडु', तमिल में 'तिरुनंगै' शब्दों का प्रयोग मिलता है। भारतीय भाषाओं में शब्द कोई भी हो लेकिन संकल्पना वही है।

हिन्दी में नई सदी के आरंभ से यह विमर्श प्रभावी रूप से दिखाई दे रहा है। इसके परिणामस्वरूप नीरजा माधव का उपन्यास 'यमदीप', निर्मला भुराड़िया का 'गुलाम मंडी', प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली', महेन्द्र भीष्म का 'किन्नर कथा', चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बाक्स नं. २००३ नालापोपरा' आदि उपन्यासों के साथ-साथ कहानियों में 'बिन्दा महाराज किन्नर, इज्जत के रहबट नेग, त्रासदी, ई मुर्दन का गाँव, हिजड़ा' आदि में किन्नर व्यथा का यथार्थ परिलक्षित होता है।

विमर्श की नई पहल थर्ड जेंडर

हिन्दी भवन, भोपाल में आयोजित २३-२४ जुलाई २०१६ दो दिवसीय व्याख्यानमाला में 'समकालीन भावनाओं में थर्ड जेंडर की सामाजिक उपस्थिति' विषय पर अपने वक्तव्य में डॉ. श्रीमती शरद सिंह ने ऐलान कर कहा कि "इस मंच से थर्ड जेंडर विमर्श को आरंभ किये जाने की मैं घोषणा करती हूँ।" वहाँ उपस्थित बुद्धिजीवियों ने इस घोषणा का स्वागत करते हुए समर्थन किया। थर्ड जेंडर पर आधारित अन्य उपन्यास ये हैं - 'समूचे देह का अनुभव' (२०१०), ए रेवती का तमिल से अनूदित 'अनारवुम उरुवानुम'। प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली' (२०११), महेन्द्र भीष्म का किन्नर कथा (२०११), निर्मला भुराड़िया का 'गुलाम मंडी' (२०१४), महेन्द्र भीष्म का 'मैं पायल' (२०१६)। 'मैं पायल' उपन्यास को मद्रास विश्वविद्यालय की प्राध्यापिका डॉ. सरस्वती मेडम ने तमिल भाषा में अनूदित किया है।

२०१६ में लखनऊ पुस्तक मेले में अमन प्रकाशन द्वारा प्रकाशित वह पुस्तक 'मैं पायल' लोकार्पित हुई। पुस्तक को लेकर लोगों में उत्साह देखते ही बनता था, महज ५ दिनों में इसका पहला संस्करण खतम हो गया। फिर यह सिलसिला कभी रुका ही नहीं। पायल सिंह के जीवन संघर्षों को महेन्द्र भीष्म की बहुत ही सहजता और कलमबद्ध किया और उनकी लेखनी से यह लगता है कि उन्होंने सिर्फ लिखा ही नहीं बल्कि जैसे पायल के साथ उसका जीवन खुद भी जिया हो।

समकालीन साहित्य में थर्ड जेंडर

'यमदीप' उपन्यास की लेखिका इस समाज में इनकी उपयोगी भूमिका की तरफ ध्यान केन्द्रित करती है। 'जैसे मुंबई में एक कंपनी में बकाया धन की वसूली के लिए इनकी नियुक्ति हुई और परिणाम यह हुआ है कि जिस ऋण की वसूली वर्षों से नहीं हो पा रही थी, उसे चुटकी बजाकर ये लोग वसूल कर लेते हैं।

समाज से निष्कासित थर्ड जेंडर

यह समुदाय समाज की मुख्यधारा से बाहर ही नहीं किया गया। बल्कि समाज में इनके प्रति डर और अफवाहों को भी लोगों में भरा गया।

जैविक असमानता में थर्ड जेंडर

हिजड़ा समाज में कुछ लोग ही जैविक रूप से इस समाज के हिस्सा होते हैं, अधिकांश अपनी यौनिक पहचान की अस्पष्टता के कारण इस समाज में शामिल हो जाते हैं।

थर्ड जेंडर के अपने नियम

इस समाज के अपने कुछ नियम-कायदे होते हैं। पहला इस समाज में पूर्ण स्त्री और पुरुष के साथ संबंध रखना व उन्हें अपने समाज में शामिल करना। दूसरा समलैंगिक संबंधों को विषयलिंगी विवाह की मान्यताओं से बाहर स्थापित करना। तीसरा इस समुदाय के लोगों का सिग्नल, रेल्वे स्टेशन अन्य सार्वजनिक स्थानों पर भीख माँगना और चौथा वेश्यावृत्ति में सक्रिय होना पाँचवा हिस्सा और चोरी करना।

आर्थिक स्थिति में थर्ड जेंडर

यह समुदाय आर्थिक असमर्थता बेरोजगारी, शिक्षा का अभाव, तकनीकी अकुशलता और सबसे बड़ी समस्या परंपरागत पेशे का अज्ञान इन्हें वेश्यावृत्ति को पेशा बनाने पर मजबूर करता है।

सक्षम है आज का थर्ड जेंडर

आज थर्ड जेंडर ने अपने आपको मजबूत कर लिया है। देश की पहली ट्रांसजेंडर प्राचार्य बनकर मानवी बंदोपाध्याय ने सिद्ध कर दिया कि किन्नर अथवा थर्ड जेंडर किसी भी विदूत स्त्री-पुरुष की भाँति शिक्षा जगत के उच्च पद तक पहुँच सकते हैं।

समाज में थर्ड जेंडर का स्थान

एक सर्वेक्षण के अनुसार हाल ही में ब्रिटेन में आवासीय स्कूलों के लिए आदेश जारी किया गया कि उन्हें 'ही' अथवा 'शी' के बजाए 'जी' सम्बोधन दिया जाए। यह स्वयं थर्ड जेंडर बच्चों की माँग थी। कई ऐसी बुनियादी बातें हैं जो थर्ड जेंडर को परेशान करती हैं जैसे-विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं सार्वजनिक स्थानों में पृथक सुलभ शौचालय का न होना, शिक्षा का समान अवसर न मिलना, उनके विरुद्ध अपमानजनक स्थितियों तथा अपराधों को रोकने के लिए उलग पुलिस थाना न होना, नौकरी का समान अवसर न मिलना आदि। इनसे भी बड़ी बुनियादी समस्या है समाज का इनके प्रति दृष्टिकोण।

स्मकालीन उपन्यासों में थर्ड जेंडर के कथानकों को मिलना उनकी सामाजिक दृष्टि की सम्पन्नता एवं जागरूकता को रेखांकित करता है।

उपसंहार

आज समाज को आवश्यकता है तो किन्नरों की पीड़ा से रूबरू होने की। या तो किन्नरों को मुख्यधारा में लाने के प्रयास करने होंगे अथवा स्वयं हाशिये पर उतर के उस अदेखी, अजानी पीड़ा को आत्मसात करना होगा।

आज बहुत से साहित्यकार व बुद्धिजीवि इनके अस्तित्व के संघर्ष में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। ज़रूरत है कि इस वंचित समाज से निष्कासित किये गए थर्ड जेंडर को भी हम सभी को अपनाना होगा इनका सम्मान करना होगा, आगे बढ़ाना होगा तभी इनका विकास संभव हो सकेगा और हेयता का दृष्टि से ऊबर पाएँगे। इनका विकास ही हमारा विकास और हमारा विकास ही देश का विकास होगा।

संदर्भ ग्रंथ :

- अंसल, कुसुम (२०१८), मेरी दृष्टि तो मेरी है, नई दिल्ली, वाणी।
- देवी, मोनिका (२०१८), अस्तित्व की तलाश में सिमरन, कानपुर, माया।
- देवी, मोनिका (२०१८) हाँ मैं किन्नर हूँ : कांता भुआ कानपुर, माया।
- भीष्म, महेन्द्र (अ. २०११) किन्नर कथा, नई दिल्ली, सामयिक।
- भीष्म, महेन्द्र (२०१६) 'मैं पायल' कानपुर, अमन।
- मुद्गल, चित्रा, (२०१६) पोस्ट बॉक्स नंबर २०३ माला सोपारा, नई दिल्ली, वाणी।
- सिंह, विजेंद्र, प्रताप (२०१७), हिन्दी उपन्यासों के आइने में थर्ड जेंडर, कानपुर, अमन।
- सौरभ, प्रदीप (२०१४), तीसरी ताली, नई दिल्ली, वाणी।
- 'वर्तमान साहित्य में थर्ड जेंडर की प्रासंगिकता'-डॉ. दिग्विजय कुमार शर्मा की कलम से।इंडिया समाचार २४ में (indiasamachar 24.com)
- समकालीन हिन्दी साहित्य : किन्नर विमर्श सागरिका। (saagarika.blogspot.com)
- २१वीं सदी की कहानियों में किन्नर विमर्श। (www.researchgate.net)

२१ वीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित 'थर्ड जेंडर' विमर्श (सन २०१० से २०१९ तक)

प्रा. पी. आर. रगडे

(हिंदी विभागाध्यक्ष)

शंकरराव जगताप महाविद्यालय वाघोली,

ता. कोरेगाव, जि. सातारा

साहित्य उसे कहा जाता है, जिसमें युगबोध के साथ समाज जीवन का यथार्थ चित्रण होता है। इक्कीसवीं शताब्दी तो अपने-अपने बहुत महत्वपूर्ण है। इक्कीसवीं शताब्दी की बदौलत ही साहित्यकार ऐसे विषयों की चर्चा करने लगे हैं, जिन के संदर्भ में कभी सोचा और समझा नहीं गया था। इक्कीसवीं शताब्दी के कारण ही साहित्य में अनेक विमर्शों की चर्चा हो ने लगी है। इक्कीसवीं शताब्दी ने वैश्विक विमर्श में महाआख्यानों के अंत की घोषणा की गई हजारों वर्षों से साहित्य के केंद्र की महानताएँ अपनी आभा खोने लगी। उनकी जगह लघुताओं की प्रतिष्ठा होने लगी। हाशिय के लोगों को विचार और भावनाओं को जगह मिलने लगी। भारत में बीसवीं सदी के अंतिम दशक में, जब भूमंडली घटकों यथा उदारीकरण, मुक्तबाजार व्यवस्था और वैयक्तिकरण को स्वीकार किया गया, तो दलितों, अल्पसंख्याकों, नारियों, आदिवासियों, वृद्धों, पुरुषों, प्रवासियों के हक्क के लिए आवाजे उठने लगी। साहित्य में यह विचार प्रस्तावक के रूप में पहले भी विद्यमान थे, पर आब इनका प्रभाव दिखाई पड़ने लगा है। दलित विमर्श, नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्याक विमर्श आदि की बड़े जोंरों से चर्चाएँ होने लगी हैं। इक्कीसवीं शताब्दी के दौर में हर कोई आपनी जड़ों को तलाश नें लगा, सामाजिक अस्तित्व को ढूँढने का प्रयास किया जाने लगा। ऐसे समय में हाशिय से दूर 'थर्ड जेंडर' भी भला कैसे पिछे रह सकता है। साहित्यकारों का ध्यान इस समुदाय ने अपनी ओर खींच लिया और थोड़ी बहुत मात्राओं में इनका चित्रण साहित्य के द्वारा होने लगा है।

इक्कीसवीं शताब्दी के संदर्भ में डॉ. रजना राजदान कहती है कि - “ हादसों भरे हालात ही जैसे इक्कीसवीं सदी की पहचान हो गई है। आम आदमी पुलिस, पुलिस के डंडों की वजह से होती टूट-फूट और लहुलुहान होती भीड़ भाड़ को देखता है, और भगदड़ मच जानेपर बेतरतीब गिरते-पड़ते, दौड़ते-भागते, चिल्लाते हुए लोगों की सुनता है, आत्मीयजन के छूट गए हाथों के साथ ही चहल-पहल भी जगह की रौनक को एकदम खिन्न अवसाद में डूबे जाते देखता है।”^१ इक्कीसवीं शताब्दी के कारण परिवेश में बदलाव आने लगा है, जिस के कारण अनेक समुदायों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा है। एक ओर कई लाखों मनुष्य का समुदाय, जिसे हम हिजड़ा, (आज गालिके रूप में समजा जाता है।) या किन्नर (यह एक आदिवासी समूह है।) कहते हैं, चुपचाप समाज के अनपराधिक दंड को झेलता हुआ, हाशियपर पड़ा था। भूमंडलीकरण ने जो भौतिकता या कहें धनलिप्सा की आपा-धापी पैदा की उससे भारतीय राजनीति भ्रष्टाचार के दलदल में धँस गई सत्ता तक पहुँचे राजनेताओं के प्रति घृणा और नफरत का भाव जगा। प्रतिक्रिया स्वरूप लोगों ने भोपाल और गोरखपुर जैसे महानगरों की पालिकाओं में शबनम मौसी, कमल जान या अन्य किसी किन्नर को अपना किमती वोट देकर चूना। राजनीतिक क्षेत्र में इन धमाकों का असर हुआ ही, इन किन्नरों ने अपनी प्रशासनिक क्षमता, प्रतिभा और संवेदना से लोगों के दिलों को प्रभावित किया। वे किन्नर अपने समाज को रहस्यात्मक से निकालकर मुख्यधारा में प्रविष्ट हुए। लोगों ने उनका नया रूप देखा। उनके समाज की बदहाली की ओर भी लोगों का ध्यान गया बाद में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने उन्हें 'अन्य पिछड़ा वर्ग' श्रेणी में आरक्षित तमाम सुविधाएँ दिलाने में मदद की।

हिजड़ा या किन्नर :-

हिजड़ा उर्दू शब्द है जो अरबी का हिज्र शब्द से लिया गया है। जिसका आशय अपने कबीले को छोड़ना है। अर्थात् घर-परिवार एवं समाज से अलग होना। उर्दू अथवा हिन्दी में प्रयुक्त हिजड़ा शब्द को अन्य शब्दों जैसे-हिजिरा, हिजदा, हिजादा, हिजारा और हिजराह शब्द से भी संबोधित किया जाता है। उर्दू का ख्वाजा सरा शब्द हिजड़ा का समानार्थी है। दूसरे अन्य शब्द खसुआ ओर खुसरा है। अंग्रेजी में इसे 'यनक' अथवा 'हर्मा फ्रोडाइट' से जोड़ा जाता है। बंगाली में इन्हें हिजरा, हिजला, हिजरी से संबोधित किया जाता है। तेलगु में उन्हें नपुंसकुडू, कोज्जा अथवा मादा, तमिल में अली, अरावनी, अरवन्नी, अरुवनी। पंजाबी में खुसरा, जंखा, सिंधी में खदरा, गुजराती में पवैया, मराठी में हिजड़ा, छक्का आदि नामों से जाना जाता है।

किन्नरों की आराध्य देवता- देवी बुचरा माता (मंदिर गुजरात में है) क्या अजीब दास्ता है कि जिन्हें संतान पैदा करने का जननंग नहीं है उनके पास लोग संतान माँगने के लिए आते हैं। बुचरामाता के मंदिर में निस्संतान दंपति संतान माँगने के लिए आते हैं। आज देश में किन्नरों के लगभग ५०० धाम है। जहाँ उनके नायक/गुरु बसते हैं। बुचरा और उनकी तीन बहनों के आधार पर इनकी चार शाखाएँ हैं- बुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा। बुचरा के शाखा में पैदाइशी, नीलिमा कि शाखा में जबरन बनाए गए, मनसा शाखा में इच्छा से बने और हंसा में इन्हें जगह दी जाती है जो शारीरिक कमी के कारण किन्नर बनते हैं। किन्नरों का भी अपना पारिवारिक जीवन होता है। किन्नरों का समाज भी आम परिवार के समान होता है। किन्नरों के जीवन गुरु का अनन्य साधारण महत्व रहा है, गुरु को अपने माँ-बाप के समान किन्नर समाज में स्थान होता है। प्रत्येक किन्नर को अपने कमाई का दसवाँ हिस्सा देना होता है।

अभी कुछ वर्षों से माननीय उच्चन्यायालय के फैसले के कारण किन्नर शब्द की अपेक्षा इन्हें 'थर्ड जेन्डर' के नाम से संबोधित करना हो अतः तब से आज इस समुदाय को थर्ड जेन्डर के नाम से जाना जाता है।

'किन्नर' समुदाय अपने पूर्वधर्म का त्याग करके आराध्यदेवी बुचरा माता के भक्त बन जाते हैं। उन्हीं की पूजा-पाठ में लिन हो जाते हैं। इस देवी का मंदिर गुजरात में है। एक किंवदंती के अनुसार बुचरा माता की तीन अन्य बहनें- नीलिमा, मनसा और हंसा थी। सबसे बड़ी बुचरा हिजड़ा बन गई तो, बची बहनों को भी उन्होंने अपने जैसा बना दिया। इनकी संतानें नहीं थी उन्होंने, लडकों को गोद ले लिया। लेकिन बुचरामाता के मंदिर में आज निसंतान दंपति संतान मॉगने के लिए आते हैं। माननीय उच्चन्यायालय के फैसले के कारण किन्नरों के जीवन में बदलाव आने लगा है- एक तरह से वैधानिक पहचान इन्हे मिल गई है। ओबीसी के अंतर्गत आरक्षण एवं सारी सुविधाएँ दी जाने लगी हैं।

'बिंदा महाराज' कहानी के माध्यम से शिवप्रसाद सिंहजी ने मानवीय रिश्ते नाते, सहज प्रेम की भावना, हृदय में उठनेवाली भाव-भावनाओं का चित्रण किया है। भले ही 'बिंदा महाराज' किन्नर के रूप में जीवन यापन करता हो परंतु, ईश्वर ने उसे भी हृदय दिया है, निसंतान होने के कारण अपने भाई के बच्चे को दिल लगता है, अपनी खुशी उसकी खुशी में देखने लगता है, परंतु एक दिन करिमा बिंदा महाराज का अपमान करते हुए कहता है-“प्यार उसकी आत्मा की प्यास थी किन्तु परिणामहीन प्रेम की क्रूरता वह समझ नहीं पाता। जरा-से आकर्षण से चित चंचल हो जाता। मनोरंजन को प्रेम समझा तो नशा छा गया, हाथ फैलाकर बटोरना चाहा तो हथेलियों टकरा गयी। प्रेम शब्द उसके लिए केवल शब्द था, निर्जीव शब्द,रूढ अर्थ। “हिजड़ा!” उस दिन बाप के कहे शब्दों को करिमा दोहराने लगा, “मैं तेरे साथ शोहदा नहीं बनूंगा।” बिंदा महाराज आहत अभिमान का बोझ उठाये खड़ा था। उसकी अपलक आँखें जड़ित षीषे की तरह गतिहीन, धूमिल। उसे विश्वास कैसे होता कि ये शब्द करिमा के हैं। बड़ा स्नेह वंचित था मन में, जो आँखों में उतर आया।”² (पृष्ठ-२६) अगर अपने ही ठुकराने लगे तो समाज से क्या अपेक्षा की जा सकती है। बिंदा महाराज के इस अपमान के कारण घर छोड़कर दूसरे गाँव में जीवन यापन करता है, अपनी कला के प्रति भी पूर्ण समर्पण बिंदा महाराज में दिखाई देता है। ममत्व के भाव का अंकुर फिर से उन्हें उस समय निकलता है जब दीपू मिसिर का लडका उसे बुआ कहकर पुकारता है। 'बुआ' शब्द से ही दीपू मिसिर के लडके के लिए वो बतासे, रेवडियों, मिठाई कुछ-न-कुछ जरूर लेकर आता। परंतु यह प्रेम भी उसे अधिक नहीं मिल पाया। बिमारी के कारण बच्चे की मृत्यु हो जाती है जिस के लिए मिसिरिन बिंदा महाराज को ही जिम्मेदार ठहराती है। अलिंगी होने के कारण नाच-गाकर जीवन यापन करना पड़ता है। एक तरह से देखा जाए तो हताशा, निराशा, अपनो से दूर, ममत्व, प्रेम, अपनापन, सामाजिक प्रतड़ना आदि कई कारणों से बिंदा महाराज में नकारात्मक प्रवृत्ति निर्माण हो जाती है। 'किन्नर' एस. आर हरनोह की महत्वपूर्ण कहानी हैं। बेलाराम किन्नर के माध्यम से 'किन्नौर' जाति का आलेख हमारे सामने रखने का प्रयास किया गया है। किन्नौर या किन्नर आज जिस अर्थ में स्वीकार किया जाता है, वो वास्तविक अर्थ नहीं है, बल्कि हिमाचल के जनजातिय जिला किन्नौर को कालांतर में 'किन्नर देश' के नाम से जाना जाता था। इसी 'किन्नर देश' से बेलाराम किन्नर जिला परिषद का सदस्य बन जाता है। अपनी जातिपर लगे इस धब्बे को मिटाने का भरकस प्रयास करता है। जिला परिषद सदस्य बनने के लिए 'हिजडे' भी उसकी साहयता करते हैं। बेलाराम किन्नर पहाड़ी इलाखे में सुधारणा करना चाहता है, हिजड़ों को भी न्याय दिलाने का प्रयास बेलाराम करता है। भारतीय संविधान ने किन्नर जाति को अनुसूचित जाति में रखा है। इस संदर्भ में कहानीकार कहते हैं कि - आजादी के बाद हिमाचल प्रदेश का जब पुनर्गठन हुआ तो इस प्रदेश का स्वतंत्र जिला बना और इसी आधार पर इसका नामकरण हुआ "किन्नौर"। यहाँ रहनेवाली जनजाति आज भी 'किन्नर' और 'किन्नौरा' से जाना जाता है, जिसे १९५६ में भारतीय संविधान की अनुसूची में शामिल किया गया था।³ बेलाराम किन्नर अपनी जातिपर लगे इस धब्बे को कतही बदार्श नहीं करता। इस के विरोध में विधानसभा, संसद आदि में आवाज उठाने का प्रयास करता है। वो अच्छी तरह से जानता है, कि वेदों एवं भारतीय संविधान में किन्नौर या किन्नर जाति का बड़ा आदर रहा है। परंतु मिडियों के अज्ञान के कारण किन्नर जाति आज संकट में आ गयी हैं। बेलाराम किन्नर हर जगह से भरकस प्रयास करता है, कि अपने जातिपर लगे इस धब्बे को मिटा दे, परंतु राजनेताओं की उदासीनता, भेदभावपूर्ण नीति, जातियता का दंश, अपने ही लोगों के द्वारा प्रताड़ित होना, मिटता अस्तित्व आदि के कारण बेलाराम किन्नर भौ-चौका हो जाता है और उसे लगने लगता है कि-“दूसरे पल उसे लगा कि हिजड़ों की पूरी बारात उसके पीछे चिमटे, ढोलकियाँ लेकर कमर मटकाते आ रही हो। उसके कदम तेज हो गए। कुछ देर बाद उसे महसूस होने लगा कि उसके पीछे हिजडे नहीं बल्कि तमाम किन्नर, किरात गंधर्व और यक्षों के समुह भाग रहें हों और उससे पूछ रहे हों कि तुम हमसे भाग कर कहाँ जा सकते हो---?”⁴ इन परिस्थितियों से बेलाराम किन्नर की बैचेनी हमारे सामने आने लगती है। बेलाराम किन्नर पढ़ा लिखा होने के कारण अपने समुदाय को पिछे नहीं छोड़ सकता।

शिक्षा-दीक्षा के कारण व्यक्ति के जीवन में परिवर्तन आ जाता है, वो अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है, किसी के सामने हाथ पसारने की आवश्यकता नहीं रहती, अपनी बुद्धि के बलपर शारिरीक विक्रितियों को हटाया जा सकता है, समाज के सम्मुख बड़े मान-सम्मान के साथ जीवन यापन किया जा सकता है, इस बात का ज्ञान हमें कुसुम अंसल की 'ई मुर्दन का गाँव' कहानी के द्वारा पता चलता है। कुसुम अंसल जी ने सिध्दार्थ के माध्यम से बिला (बिल्लू) वर्मा के दर्दनाक जीवन को उजागर किया है। सिध्दार्थ और बिल्लू बचपन में दोस्त रहे, परंतु बिल्लू की शारिरीक कमी के कारण मों-बाप कालांतर में उसकी मौसी के पास लंदन भेज दिया जाता है। बिल्लू पढ़ाई लिखाई करके अपने अलिंगपर मात करता हुआ दुनिया का सबसे बड़ा फैशन डिजाइनर बन जाता

है। दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में शो का आयोजन किया जाता है। बिल्ली वर्मा को बचपन में अनेक मानसिक यातनाओं से गुजरना पड़ा है। परंतु इन यातनाओं होते हुए आज एक कामयाब फैशन डिजाइनर बन गया है। इस कहानी के जया और सलीमा के द्वारा हिजडों के जीवन के वास्तविकता का भी पता चलता है, सलीमा कहती है कि हमारा व्यवहार लोगों के सामने जो होता है वो जानबुझकर होता है-“ये सब नाटक है, मसखरापन पैसों की खातिर रचा हुआ स्वोंग। पेट की खातिर महज एक धंधा। ये वही है जो हमें सिखाया गया है--- हम तो इसमें कहीं नहीं हैं।”^५ हिजडे जानबुझकर भयाडान्स करते हैं, अश्लिल हरकतें करते हैं, लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए गुरू के द्वारा उन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है। न चाहते हुए भी अलग-अलग हावभाव करने की मजबूरी को सलीमा उजागर करती है। संपूर्ण कहानी के माध्यम से अलिंगियों के साथ किये जानेवाली भेदभाव, सामाजिक असमानता, अपमान, घर के लोगों के द्वारा की जानेवाली उपेक्षा, अंधश्रद्धा, पारिवारिक बिछड़न आदि का वर्णन किया गया है। अपने ही देश में अपने लोगों को परिचय करता हुए कहानीकार कहता है-“उनकी रूट्स तो इंडिया में हैं--- तभी इतने साल बाद पेरिस से लौटकर--- ये भव्य शो दिल्ली में ऑर्गनाइज किया है- ही इज वेरी शाई--- वह अपने बचपन के बारे में कुछ नहीं बताना चाहते, X X X मिलिए बिली से, मिस्टर बिली वर्मा से--- द ग्रेट डिजाइनर।”^६

मानवीय संबंध के अटूट रिश्ते नातों का एहसास हमें ‘कौन तार से बीनी चदरिया’ कहानी के द्वारा अंजना वर्मा कराती हैं। कहानी में दो थर्ड जेन्डर हैं सुन्दरी और कुसुमा। यह दोनों भी थर्ड जेन्डर होने के कारण अपने परिवार से तूटकर अलग हो जाते हैं, वास्तविक रूप में सुन्दरी नाम के अनुसार बहुत सुंदर है। सुंदरी का जन्म एक संपन्न परिवार में होता है। माँ को वही तकलीफ सहनी पड़ी है जो अन्य बच्चों को जन्म देते समय सहनी पड़ी है। इसी कारण सुंदरी के प्रति माँ का उतना ही आकर्षण है जितना की अन्य बच्चों के प्रति रहा है इस बिछड़न को सुंदरी की माँ हर दम याद करती हैं। सुंदरी भी अपने माँ से मिलने के लिए भरकस प्रयास करती है, परंतु ध्यान रखती है कि उसे कोई पहचाने नहीं। नहीं तो घरवालों की इज्जत समाज में उछाली जाएगी। सुंदरी अपनी सहेली कुसुम के साथ अपनी बहन (रेणू) और माँ को एक ऐसी जगह मिलती है जो की बियाबान है। उस समय सहज मानविय संवेदनाओं का हमें परिचय हो जाता है। माँ की पीड़ा, बैचेनी, विवह?लना, वेदना का एहसास होने लगता है। कहानीकार कहती है-“उसकी माँ भी उठी। स्नेहछातर होकर अपने कमजोर हाथों से सुंदरी का गाल छुती हुई टुट्टी पकड़कर उसे कई पलों तक देखती रही। X X X सुंदरी ने माँ को पकड़ लिया और उसके गाल से अपना सटा लिया। X X X। सीने से चिपकी उसकी सुनी साडी का मुलायम एहसास वह अपने कलेजे में संजोती रही। अलग हुई तो देखा माँ रो रही थी।”^७

प्रसिद्ध कहानीकार महेन्द्र भीष्म की कहानी ‘त्रासदी’ सामाजिक हिजडे पन को उजागर करती हैं। पति के मृत्यु के बाद रतीपर समाज कंटको के द्वारा बलात्कार होते देख सुंदरी नाम हिजडा उसकी इज्जत बचाती है। परंतु इसी दौरान सुंदरी (हिजडा) घायल हो जाती है। उसका इलाज रती करती है। परंतु इस दुर्घटना के कारण सुंदरी का चेहरा फट जाता है, जिससे उसे भिक मोंगना पड़ता है। इस स्थिति को रती जान जाती है और उसको अपने पास रखती है। परंतु बेटे दीपक के कारण रती को सुंदरी से हाथ धोने पड़ते हैं। प्रस्तुत कहानी के द्वारा कहानीकार महेन्द्र भीष्म ने सामाजिक हिजडे पन को उजागर किया है। अकेली महिला को हिंस्र पशु के समान नोचनेवाले मनुष्यों से हिजडा(सुंदरी) बचाती है, परंतु रती का बेटा स्वयं व्याभिचारी होकर अपनी माँ पर लौछन लगाता है। एक लड़की को गर्भवती बनाकर उससे शादी करने से मुकरना चाहता है। सामाजिक दबाव के कारण उसे शादी तो करनी पड़ती है। इस बात का घुस्सा वो सुंदरीपर निकालते हुए उसे रेल के निचे फेंक देता है-“ वर्षों की नफरत से भरे दीपक ने आव देखा न ताव, सुंदरी को गठरी-सा अठा लिया और प्लेटफार्म के नीचे फेंक दिया। तभी वहाँ धड़धड़ करता हुआ मेमू ट्रेन का इंजन आ गया और सुंदरी की चीख घुटकर रह गयी।”^८ कहानीकार ने प्रश्न निर्माण किया है कि हिजडा कौन हैं? सुंदरी, दीपक या समाज के हिंस्र पशुवत व्यवहार करनेवाले मनुष्य !

‘रतियावन की चेली’ ललित शर्मा की आत्मकथात्मक शैली में लिखी हुई कहानी है। पार्वती नामक हिजडे के द्वारा सकारात्मक वृत्ति के दर्शन कराये गये हैं। अपना व्यवहार अगर अच्छा रहा तो निश्चित रूप से समाज की मानसिक अवस्था बदल जाती है। अपने सकारात्मक व्यवहार के कारण ही ‘पार्वती’ हिजडा होते हुए भी लोगों के मन में अपना स्थान बनाती है। कहानीकार पार्वती के बचपन के संदर्भ में कहते, कि उसका बचपन तो बहुत खुशहाली के साथ बितता है, परंतु माँ-बाप के पास से हिजडे उसे छिनकर चले जाते हैं, जिसके कारण उसे अनेक विपदाओं का सामना करना पड़ता है। अन्य हिजडों से मारपीट, हिंसा, परतांडना को पार्वती सहती है। बड़ी होनेपर पार्वती अपने गाँव लौटकर आ जाती है। घरवाले उसका स्वीकार करते हैं। समाज के द्वारा भी उसका स्वीकार इसलिए किया जाता है कि उसका व्यवहार अच्छा है। समाज भी जान जाता है कि वो भी इंसान की औलाद है कोई एक अंग न होने से किसी को सामाजिक बहिष्कार नहीं डाला जा सकता। कहानीकार ने परिर्वीत सोच को सामने लेकर आये हैं, “हिजडा होने पर समाज का तिरस्कार झेलना पड़ता है तो वही समाज सम्मान भी करता है।”^९ ‘पन्ना बा’ कहानी के माध्यम से कहानीकार संजय दुबे किन्नरो के जीवन पैहलुओं को सामने लेकर आये हैं। उनकी वेशभूषा, बरताव, रहना, खाना-पीना और मानवीय संवेदनाओं को चित्रित करने का काम किया है। गोटी (लड़की) के द्वारा बचपन की यादों के साथ बड़ेपन को भी चित्रित किया गया है। कहानी में गोटी पन्ना बा के बारे में जानना चाहती है, परंतु उम्र कम होने के कारण उसे समझ में नहीं आता परंतु उम्र के साथ ही उसकी शादी हो जाने के बाद अपने गोद में संतान को लेकर आते समय ‘पन्ना बा’ उसे कुछ पैसे देता है तो अनास रूप से गोटी के मन में पन्ना बा के प्रति प्रेम का भाव निर्माण हो जाता है। पन्ना बा किन्नरों का जीवन व्यापन करते हुए भी मानवीय

संबंधों को नहीं भूलता। पन्ना बा कहानी में हिजडों के लाषों के साथ किये जानेवाले बर्ताव को उजागर किया है। परंपरा के अनुसार यह माना जाता है कि किसी हिजडे की मृत्यु हो जानेपर उसकी लाश को जुतों से पिटा जाता है क्योंकि अगले जनम् में वह हिजडा बनकर न पैदा हो, इस जनम् उसे अनेक मानसिक यातना, पीडा, दुख, अपमान, एकाकीपन, जीवन बीताना पडा है, जननंग न होने के कारण उसे यह सब सहना पडा है - 'मैं भी चाहती थी कि उसकी लाश पर जुते बरसा कर मैं भी उसे इस किन्नर के जन्म पर धिक्कारूँ और पायद वह मेरे जुतों की बौछार से डर कर अगले जनम् में किन्नर के रूप में पैदा होने की हिम्मत ना करें।' १०

मानवीय रिश्ते नातों को उजागर करने का काम 'हिजडा' कहानी के द्वारा श्रीकृष्ण सैनी करते है। राघव व निर्मला की मौत एक दुर्घटना में हो जाती है। उनका बेटा सुनील की परवरीष रजिया नामक हिजडे के द्वारा होती है। रजिया त्याग वृत्ति को अपनाते हुए सुनील को चोरी-छुपे हेड मास्टर के माध्यम से लालन-पालन करने लगते है। वो नहीं चाहती थी की उसका पालन एक हिजडे के द्वारा किया जा रहा है जिससे सुनील को शर्मोदगी महसूस हो। सुनील के मन में हिजडों के प्रति घृणा का भाव इस कारण निर्माण हो जाता है कि कुछ हिजडे अपने अडियल रवैय के कारण समाज में बदनाम हो जाते है। सदाराम के घर में हुए वाकिया के कारण सुनील के मन में हिजडों के प्रति नफरत का भाव निर्माण हो जाता है, परंतु सुनील को घायल अवस्था में अस्पताल में भरती करने का काम हिजडे ही करते है। सुनील की शादी में रजियाजी खुलकर नाचती है, उसी समय अपना लालन-पालन करनेवाली रजिया की मुलाकात सुनील के साथ हो जाती है। - "X X X अरे जान जाओगे तो यह अकडी हुई गर्दन जिन्दगी में फिर कभी नहीं उठेगी। तुम्हें पालनेवाली रजिया थी जो खुद एक हिजडा थी।" २१ वी शताब्दी यह वैज्ञान युग के नाम से भी जानी जाती है। मनुष्य ने अपनी बुद्धी के बलपर ऐसे कारनामों हासिल किए है जो कभी सोचे भी नहीं गए थे। इसी बात को उजागर करनेवाली संकल्प यह कहानी है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति के कारण यह पता चलता है कि बुचार हिजडों में पूर्ण स्त्रीत्व की संभावना हो सकती है। इसी का उदाहरण माधुरी के द्वारा देखा जा सकता है। बचपन से ही हिजडे का जीवन जो हि माधुरी डॉक्टरी जॉच पडताल के बाद पूर्ण रूप से स्त्री का जीवन यापन करने लगती है। प्लॉस्टीक सर्जरी के कारण यौवन अंगों में सुधार किया जा सकता है, जिससे वह स्त्री का जीवन यापन करती है। प्रारंभ में दैन्यपूर्ण जीवन यापन करनेवाली, परिवार के लिए त्यागपूर्ण जीवन अपनानेवाली, पिता एवं बहन का खयाल रखनेवाली, साहसी, हिम्मती खुद्दारी जीवन को अपनानेवाली माधुरी दिखाई देती है। - "गुरुभाई माधुरी के जज्बे और हिम्मत की तारीफ करते-करते निहाल हो उठी और दिल से सुखी जीवन जीने का आशीष दिया। घर आने पर पिता को सारी बात बताई दोनों लिपट कर रोने लगे, हिजडा शब्द उसकी जिंदगी को अभिशप्त बनाने के लिए अब उसके साथ नहीं था।" २२

निष्कर्ष :- अतः कहा जा सकता है कि जीन लोगों के बारे में कभी सोचा और समझा नहीं जाता था, कम से कम अब उन कि ओर मानवता की दृष्टि से देखा तो जा रहा है। एक समय ऐसा था की अछूतों की बसतियाँ तो गाँवों से बहार रहा करती थी, समाज में उनका अपना एक स्थान था। परंतु थर्ड जेन्डर तो समाज से पूर्णतः उपेक्षित ही रहे है, मानवीय अवेहलाओ का सामना उन्हें करना पडा है। २१ वीं शताब्दी में भी विद्वान लोग खुल कर चर्चा करने में झीझक महसूस करते है। प्रकृतिक रूपसे अलिंगी होने के कारण समाज उनकी ओर हेय दृष्टि से देखने लगता है। जिस प्रकार से सामान्य व्यक्ति के अंतर्गत भाव-भावनाएँ होती है वही भाव-भावनाएँ उनमें भी होती है, वे भी मानवीय प्रेम, दया, सहानुभूति, मान-सम्मान, अपमान, सामाजिकता के साथ रहना चाहते है। परंतु समाज के द्वारा उनकी उपेक्षा ही की जाती है। कहानी का बिंदा महाराज मानवीय भावनाओ से परिपूर्ण होने के बावजूद भी सामाजिक उपेक्षा झेलता है। वर्तमान परिस्थितियों में हिजडा (एक गाली) कौन है? हिजडा कहानी के द्वारा लेखक ने बतलाया है कि अपने कर्तव्य से जो मुखर जाता है, उचि एवं अनुचित का फर्क जानता नहीं है वही वास्तव में हिजडा है। हिन्दी कहानियों के माध्यम से थडे जेन्डर के कई सारे पहलूओं को उजागर करने का काम हुआ है।

संदर्भ सूची :-

- १) सच से टकराता यथार्थ और इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता - डॉ रजना राजदान
- २) वाङ्मय : जुलाई -दिसम्बर २०१७ सं. एम. फिरोज अहमद पृष्ठ-२६,
- ३) वाङ्मय : जनवरी-मार्च २०१७ सं.एम. फिरोज अहमद पृष्ठ -४१
- ४) वाङ्मय : जनवरी-मार्च २०१७ सं.एम. फिरोज अहमद पृष्ठ -५१
- ५) वाङ्मय : जनवरी-मार्च २०१७ सं.एम. फिरोज अहमद पृष्ठ -५७
- ६) वाङ्मय : जनवरी-मार्च २०१७ सं.एम. फिरोज अहमद पृष्ठ -५२
- ७) वाङ्मय : जनवरी-मार्च २०१७ सं.एम. फिरोज अहमद पृष्ठ -१०६
- ८) वाङ्मय : जनवरी-मार्च २०१७ सं.एम. फिरोज अहमद पृष्ठ -१०८
- ९) वाङ्मय : जनवरी-मार्च २०१७ सं.एम. फिरोज अहमद पृष्ठ -११२
- १०) वाङ्मय : जनवरी-मार्च २०१७ सं.एम. फिरोज अहमद पृष्ठ -१२१
- ११) वाङ्मय : जनवरी-मार्च २०१७ सं.एम. फिरोज अहमद पृष्ठ -१२६
- १२) वाङ्मय : जनवरी-मार्च २०१७ सं.एम. फिरोज अहमद पृष्ठ -१३३
- १३) मेरी कथा : दलित यातना , संघर्ष और भविष्य - मार्टिन मेकवान
- १४) इक्कीसवीं सदी का दलित साहित्य - डॉ. भरत सगरे

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर विमर्श

प्रोफेसर डॉ. प्रकाश शंकरराव चिकुर्डेकर

हिंदी विभाग,

(सदस्य हिंदी अध्ययन मंडल)

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, संलग्न,

यशवंतराव चव्हाण वारणा महाविद्यालय,

वारणानगर-416113, जिला- कोल्हापुर, (महाराष्ट्र),

भूमिका :-

21वीं शताब्दी में हिंदी साहित्य अनेक उपेक्षितों के पास पहुंच चुका है। जैसे कि स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, मुस्लिम विमर्श, सांस्कृतिक विमर्श, किन्नर विमर्श, किसान विमर्श, आदि कई नई-नई विचारधाराओं को समस्याओं को और समस्याओं के समाधान को खोजने में हिंदी के लेखक जुड़े हैं। विज्ञान तंत्रज्ञान के कारण मनुष्य के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन तो आ गया लेकिन विचारधाराओं में बदलाव लाने के लिए आम मानसिकता आज भी तैयार नहीं है। सभी कहते हैं कि पिछड़े दलित, आदिवासी, किन्नर, किसान आदि की उन्नति होनी चाहिए लेकिन जहां तक कृति कार्यक्रम सामने आता है तो सभी पीछे हट जाते हैं परिणाम स्वरूप 21 वीं शताब्दी में यह सब उपेक्षित रहे हैं।

‘किन्नर’, शब्द का अर्थ जब देखा तब पता चला कि ‘किन्नर स्वर्ग के गायक या गाना बजानेवाली एक जाती है।’ ‘किन्नर’, मनुष्य, मानव जाति का ही अंश है। जैसे स्त्री पुरुष का जन्म होता है वैसे ही किन्नरों का जन्म होता है। किन्नरों के भी मां-बाप होते हैं। किन्नरों के बारे में लिखना और देखना बहुत आसान है लेकिन वास्तविक जिंदगी में यह लोग जानवरों से भी बदतर जीवन जी रहे हैं। भारतीय समाज व्यवस्था में मात्र दो ही लिंग महत्वपूर्ण माने गए हैं स्त्री और पुरुष। और एक लिंग है जिसे तृतीयपंथी नाम से जाना जाता है। अंग्रेजी में उसे ‘थर्ड जेंडर’ कहते हैं। किन्नरों के लिए तृतीय लिंगी, उभय लिंगी, हिजड़ा, छक्का, बिचका, नाच्चा, मावशी, दरमियान, शिखंडी जैसे कई नाम दिए गए हैं। ‘किन्नर’, तृतीयपंथी समाज माना गया है। हिंदी फिल्मों के साथसाथ प्रादेशिक फिल्मों में भी मनोरंजन के तौर पर इन्हें स्थान दिया गया है। मनोरंजन के बाहर इनके प्रति कोई मौलिक विचार नहीं हुआ है। कितना दुर्भाग्य है कि शारीरिक रूप से विकलांग होने के बाद परिजन अपनी संतान को अपनाती है उनके लिए तरह-तरह की सुविधा उपलब्ध है लेकिन किन्नरों को परिवारजन भी अपनाते नहीं हैं और जीवन भर सामाजिक अवहेलना से बचने के लिए परिवार के सदस्य ही, जिनमें माता-पिता भी होते हैं वह अपने ही किन्नर संतान को त्याग देते हैं।

देश आजाद हुआ लेकिन इस जाति के लोग मानो तो आजाद ही नहीं हुए। आधार कार्ड की कल्पना भारत सरकार ने स्थापित की तब कार्ड में उनकी उपस्थिति दर्ज करने का ऐतिहासिक फैसला कुछ ही दिन पहले सरकार ने लिया है। मानो उनका अब तक तो कोई अस्तित्व ही नहीं था। इससे यह साबित होता है, किन्नर जाति का भारतीय समाज व्यवस्था में कोई स्थान नहीं। यह जाति पूरी तरह से उपेक्षित ही है। मानों भारतीय समाज व्यवस्था में किन्नर दबे, कुचले, लोगों की तरह की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक राजनीतिक, आर्थिक, औद्योगिक, राजनीतिक, और शैक्षिक क्षेत्र में भी साथ-साथ दैनिक व्यवहार में भी अनेक यातनाओं का तथा पीड़ा का शिकार होते नजर आए। परिणामतः मुड़ कर देखने के बाद पता चला कि ‘रामायण’ और ‘महाभारत’ कालखंड में भी ‘किन्नर’ जाति के होने का, उनके अस्तित्व के संदर्भ प्राप्त होते हैं। जहां तक आजादी के अनुभव भारतवासी लेने लगे तब डॉक्टर बाबासाहब आंबेडकर जी द्वारा संविधान में दिए स्वतंत्रता, समानता और बंधुता के आधार पर सभी वर्ग के लोगों में जागृति आने लगी। संविधान द्वारा प्राप्त अधिकारों के बल पर किन्नर भी अपने अस्तित्व की लड़ाई के लिए सामने आ रहे हैं। वह भी हर क्षेत्र में अपना अधिकार मांगने लगे। कानूनी तौर पर भी आज उन्हें अधिकार मात्र प्राप्त हो रहे हैं।

21 वीं सदी में हिंदी साहित्य ने नित्य नए-नए विषयों को खंगालने की कोशिश की है। भारतीय लेखक संवेदनशील होने के कारण उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास आदि कई माध्यमों से किन्नरों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है और कर रहे हैं। साथसाथ किन्नर समुदाय भी संवैधानिक रूप से अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्षरत हो रहा है और साहित्यकार भी इस समुदाय की समस्याओं को उजागर करने के लिए निरंतर लेखनी चला रहा है। नीरजा माधव द्वारा लिखित ‘यमदीप’ (2002) ‘किन्नर’ विषय को लेकर लिखा सच्चे अर्थों में पहला उपन्यास है। उसके बाद महेंद्र भीष्म का ‘किन्नर कथा’ (2011) और ‘मैं पायल’ (2016), प्रदीप सौरभ का ‘तीसरी ताली’ (2014), निर्मला भुगड़िया का ‘गुलाममंडी’ (2014), चित्रा मुद्गल का ‘पोस्ट बॉक्स नं. 203: नालासोपारा’ (2016), भगवंत अनमोल का ‘जिंदगी 50-50’, (2018) और मोनिका देवी के दो उपन्यास ‘हां मैं किन्नर हूं: कांता भुआ और ‘अस्तित्व की तलाश में सिमरन’ (2018), प्रतिनिधि उपन्यास रहे हैं।

उप-विषय विवेचन :-

चित्रा मुद्गल स्त्री जीवन को बयान करने वाली एक महान लेखिका है। उन्होंने हाल ही में एक किन्नर विषय पर 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 : नालासोपारा' उपन्यास लिखा। प्रस्तुत उपन्यास ने 2018 का प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त कर लिया। जिसका शीर्षक 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 : नालासोपारा' है। शीर्षक से ही पता चलता है कि कोई पत्राचार इस उपन्यास में होता हुआ होगा। सही है कि उन्होंने सच्चे अर्थों में लिंग दोषी समाज की समस्या को अत्यंत मानवतावादी दृष्टि से प्रस्तुत किया है। लिंग दोषी के लिए प्रकृत शब्द 'किन्नर' है। इस उपन्यास के बारे में चित्रा जी ने एक साक्षात्कार में कहा था कि " मैं मुंबई के नालासोपारा में रहती थी तब मेरा साबका एक ऐसे युवक हुआ जैसे किन्नर होने की वजह से जबरिया घर से निकाल दिया गया था। यह उपन्यास उसी युवक के विद्रोह की कहानी है यह युवक अपने परिवार, खासकर अपनी मां से सवाल करता है कि लंगड़ा, लूला, बहरा, मानसिक रूप से विकलांग बच्चे को तो आप घर से बाहर नहीं निकाल देती लेकिन अगर मैं लिंग से विकलांग पैदा हुआ जिसमें मेरा कोई दोष भी नहीं है तो मुझे घर से बाहर क्यों निकाल दिया गया।"¹

मुंबई नालासोपारा से यह कहानी शुरू होती है। उपन्यास में किन्नर विनोद नामक पात्र नायक है। उस किन्नर के विनोद, बिन्नी, विमली, दीकरा आदि चार नाम, एक ही किन्नर के हैं। वह अंग्रेजी तक पढ़ा लिखा और योग्यता प्राप्त कर चुका है। वह बचपन से ही पढ़ाई लिखाई, खेलकूद आदि में अव्वल है। धीरे-धीरे वह समझ जाता है कि, अन्य बच्चों से वह अलग है। हिजड़ा समुदाय को उसकी खबर लग जाती है तब उसे लेने चंपाबाई आ जाती हैं। मां उस समय उसके छोटे भाइयों को दिखा देती है और बता देती है देखलो एक नॉर्मल बालक है-यह। तब हिजड़े की टोली ताली पीटते वापस गई। यह खबर गलत हुई तो फिर आएंगे माने तब से विनोद को हॉस्टल भिजवाना चाहा। पर पिता ने तर्क दिया कि 14 साल बाद अगर हिजड़े नालासोपारा में प्रकट हो सकते हैं तो हॉस्टल क्यों नहीं आ सकते। विनोद का स्कूल जाना भी छूट जाता है और अंततः विनोद हिजड़ों की टोली की पकड़ में आ जाता है। उसका परिवार भी बदनामी के डर से घर बदल लेता है और यह भी घोषित कर देता है कि एक यात्रा के दौरान दुर्घटना में विनोद की मृत्यु हो गई है। यहां तक कि उसके अवशेष तक नहीं मिले। कितना दुर्भाग्य है कि, अपनी ही संतान को समाज की पुरानपंथी नीतियों के कारण मृत घोषित करना पड़ता है।

प्रस्तुत उपन्यास में विनोद किन्नर अपनी मां का पता लगाकर उसके साथ पत्र व्यवहार करता है। मां भी चुपके से बच्चों को पत्र लिखती हैं लेकिन वह चाहती है, इसके बारे में किसी को पता नहीं चले क्योंकि इससे उनके परिवार की बदनामी होगी। बाकी बच्चों के शादियों में अड़चन आएगी। उपन्यास का नाम उसी पत्र व्यवहार के पते के ऊपर रखा गया है। यहां से विनोद और उसकी मां के बीच एक तरफा ही चिट्ठियों का सिलसिला शुरू होता है। जिसके माध्यम से लेखिका, समस्त पीढ़ा के अलावा विनोद के भीतर उत्पन्न अनेक प्रश्न मां को पूछता रहता है। वह अपनी मां से पत्राचार के दरमियान लिखता है कि, "मेरे जीते जी मौत की खबर क्यों फैलाई जा रही है।"² इस पर एक मां ने दिया उत्तर मन को हिला कर रख देता है। उपन्यास में विनोद की मां स्वीकार करती है कि सामाजिक बंधन कुछ इस तरह के हैं जो अपने किन्नर बच्चे को स्वीकार करने नहीं देते। "क्या मैं सचमुच दुनिया की सबसे खूबसूरत मां हूं। कैसे हो सकती हूं बिन्नीरे बच्चे। तुझे दुख है ना कि मैंने और तेरे पापा ने तुझे उस नर्क में क्यों धकेल दिया इसके बावजूद.. सच तो यह है बिखरा बच्चों जैसा मन कहां होता है मां नाम की स्त्री के पास दुनियादारी में बटी हुई स्त्री टुकड़ा टुकड़ा..."³ स्पष्ट होता है कि, चाहे मां कितना कुछ भी इच्छा रखें समाज की मान्यताओं के बल पर ही उसे चलना पड़ता है। अपना परिवार समाज से बहिष्कृत ना हो, समाज द्वारा बार-बार अपमानित ना हो और अपने एक किन्नर संतान के कारण परिवार के अन्य बेटा- बेटियों पर विपरीत परिणाम ना हो, इसलिए मां को, परिवारजनों को, किन्नर संतान को घर से बाहर भेजने का फैसला लेना पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास में गुजरात की पृष्ठभूमि दर्शाई है। परिणामतः गुजराती शब्द और लोकाचार की झलकियां जगह जगह दिखाई देती हैं।

उपन्यास में लेखिका ने किन्नर समाज के साथ होने वाले शोषण को भी दर्शाया है। राजनीतिक नेता अपने वोट बैंक बढ़ाने के लिए किन्नरों का एक मोहरे की तरह इस्तेमाल करते हैं। मनोरंजन के रूप में किन्नर को अपनाते हैं। किन्नर बस्ती में सरदार, सायरा, चंद्र पूनम जोशी है। जिनमें पूनम के मन में विनोद के लिए स्त्री सुलभ आकर्षण है। पूनम एक किन्नर है। वह विनोद अर्थात् बिन्नी के लिए पैसे इकट्ठे कर उसे पढ़ाना चाहती है। विधायक जी से साक्षात्कार करवाती है और रिश्ते से कुछ भी नहीं लगती फिर भी दूसरों की मदद से उसे पढ़ाना चाहती है। पूनम, बिन्नी पर एक सखी और मां के रूप में प्रेम जताती है। यहां तक कि इकट्ठा किए पैसे तक उसे दे देती है। ताकि वह अपनी मां से मुंबई जाकर मिल सके। विधायक के नालायक भतीजे बिल्लू और उसके दोस्तों की कामुकता के कारण पूनम जोशी के अंग को अस्मिता को वे तोड़ देते हैं वह बेहाल स्थिति में अस्पताल में होती है। विनोद, पूनम जोशी की स्थिति पर चिंतित है। वह अपनी बीमार 'बा', मां की अवस्था की खबर पाकर भी व्यथित है उसी दरमियान वह हवाई जहाज से फिर मिलने जाना चाहता है लेकिन विधायक के चमचों द्वारा उसकी हत्या कर दी जाती है।

विनोद, किन्नर समाज की विसंगतियों और जीवन के क्रियाकलापों से परिचित होता है। तब वो ठान लेता है कि, उनकी स्थितियों में परिवर्तन लाना होगा। उपन्यास में विधायक जी उसे अपनी तरह से इस्तेमाल कर लेते हैं। लेखिका ने विनोद की प्रबलता को दिखाने की कोशिश की है। वह सोचता है कि किन्नर, समाज के अन्य लोगों की तरह पढ़े- लिखे और समाज के मुख्य प्रवाह में सम्मिलित हो। उन्हें भी जीने का हक, पढ़ने का हक प्राप्त हो। उन्हें भी आरक्षण प्राप्त हो और जो आरक्षण सामान्य जनों को दिया जाता है उसी हिसाब से उन्हें मिलना चाहिए।

उसे लिंग दोषी समुदाय का ताली पीटपीटकर भीख मांगना अच्छा नहीं लगता। वह किन्नरों को अपने हक और अधिकार देना चाहता है। आखिर विनोद को राजनीतिक तिकड़मबाजी का शिकार होना पड़ा। राजनीतिक ताकतें किन्नरों का विकास नहीं चाहती है। तो उन्हें सिर्फ 'वोट बैंक' मानकर उसका खेल खेलते रहते हैं। "पूनम, विधायक का दलाल तिवारी, चंदर, विधायक आदि सब ने मिलकर विनोद को इतना महत्वपूर्ण क्यों बनाया?"⁴ यह भी एक चिंतनीय प्रश्न है। शायद लेखिका ने यह सोचा होगा कि, विधायक गण राजनीति में स्त्री- पुरुष किन्नर में कोई भेद नहीं रखते। वे सब उसके लिए वोट हैं और वोट का कोई लिंग या जेंडर नहीं होता। सत्य यह है कि विनोद उनके लिए एक चुनौती बनने लगा। वह अंत तक अपनी मानवीय निष्ठा से जब डगमगाता नहीं तब क्रूर राजनीति के ठेकेदार विनोद को अपने रास्ते से ही हटा देते हैं।

"यह उपन्यास किन्नर कथा ही नहीं बल्कि सामान्य मनुष्य के मनुष्य और राजनीति में भी एक किन्नर मनुष्य के मनुष्य हो जाने का यथार्थ परक तथ्य भी है।"⁵ विनोद अपने जीवन भर मां को पत्र लिखता है और मां भी उसे पत्र लिखकर अपनी मातृ संवेदनाओं को बयां करती है। लेखिका ने मां का अस्तित्व बनाए रखने के लिए ही पत्राचार का आधार लिया है। नहीं तो परिवार के अन्य सदस्य मोटा भाई, पप्पा से उन्होंने पत्राचार नहीं लिखा है।

इस सदी के लेखकों ने किन्नर विषय को लेकर अन्य कुछ उपन्यास लिखे जो किन्नर जाति का पक्ष लेकर उनके दुखदर्द यातना को बयां करते हैं। 2011 में प्रकाशित 'किन्नर कथा' लेखक महेन्द्र भीष्म की एक चर्चित कृति है। उन्होंने इसी विषय को पकड़कर और एक उपन्यास लिखा है 'मैं पायल'। दोनों उपन्यासों के बीच किन्नर कथा दर्ज है। विषय एक ही है लेकिन घटना प्रसंग अलग-अलग है। 'किन्नर कथा', में लेखक ने समाज के सामने प्रश्न उपस्थित किया है कि क्यों परिवार वाले और समाज उन्हें सहारा नहीं देते। यहां तक कि किन्नरों को आम जनता के साथ-साथ राजा महाराजा के घरानों में भी स्थान नहीं दिया जाता। राजा महाराजा के घराने और किन्नर गुरु के डेरे की यह कथा उपन्यास में अंकित है। महाराज जगत सिंह के घर दो बिटिया सोना और रूपा राजकुमारियों का जन्म होता है और बाद में पता चलता है कि सोना किन्नर है। तब दीवान जी के हाथों उसे मारने के लिए सौंप दिया जाता है। दीवान जी यह कार्य नहीं करता। वह किन्नर गुरु तारा के हाथ बिटिया को सौंप देता है। तब दीवान जी जो कहता है वह एक भयानक सत्य सामने आता है, "तो सुनो तारा बुंदेला राजा ने इन्हें इस हिजड़ा बच्चा को समाप्त करने का फरमान सुनाया है... दीवान जी नन्ही बच्ची के प्राण ले नहीं पाए और यहां लेकर चले आए अब बच्ची तुम्हारे हवाले हैं। अब आगे अपने डेरे में रखो इसका लालन-पालन करो। ईश्वर तुम्हें अच्छा फल देगा। हमारा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।"⁶ लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास के दो पक्ष सामने रखे हैं। अपने ही परिवार के लोग तारा और चंदा जैसे किन्नरों को घर से निकाल देते हैं। उनके साथ असमान व्यवहार करते हैं। वहीं दूसरी तरफ समाज के कुछ युवा लोग वर्तमान स्थिति को किन्नर समाज की समस्याओं से स्ख-रू होना चाहते हैं। वह इस समाज को अधिकार देने के लिए कोशिश भी करते हैं और समाज के भीतर नकली हिजड़ों का पर्दाफाश भी करते हैं।

महेन्द्र भीष्म जी द्वारा लिखा और एक उपन्यास है- "मैं पायल।"⁷ उपन्यास किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन्मंघर्ष पर आधारित है। उपन्यास में पायल किन्नर है। वह क्षत्रिय परिवार से है। उनके पिता को जब यह पता चलता है, तो पिता जुगनू का मुंह तक देखना पसंद नहीं करते। अपनी खानदानी इज्जत इन्हें सबसे ज्यादा प्रिय है। एक पिता होकर भी उसके साथ अकल्पनीय दुर्व्यवहार करते हैं। अपनी बेटी किन्नर है। इसे भूलने के लिए नशा पान करते हैं। यहां तक कि पायल को पिता फांसी तक देने की कोशिश करते हैं। वह यहां से भाग निकलती है। असली जिंदगी में कदम रखते ही एक अंधेड़ उग्र का आदमी पायल का शारीरिक शोषण करता है। चलती ट्रेन में वह अश्लील हरकतें करता है और ट्रेन के बाथरूम आने के लिए कहता है। पायल रोजगार, कोई कामकाज कर अपना जीवन व्यतीत करना चाहती है। लेकिन वहां भी उसका शोषण होता है और इससे जुड़े अपने स्वार्थ के लिए डेरे में ले चले जाते हैं। वहां उन्हें मजबूरन नाच गाना करना पड़ता है।

युवा कथाकार भगवंत अनमोल का हाल ही में प्रकाशित उपन्यास "जिंदगी: 50-50"⁸, आजकल बहुत ही चर्चा में रहा है उन्होंने प्रस्तुत उपन्यास में किन्नरों की जिंदगी पर एक नए सिरे से विचार किया है। उपन्यासकार ने दर्शाया है कि, "किसी भी व्यक्ति की जिंदगी खत्म नहीं होती। सबकी जिंदगी फिफ्टी फिफ्टी होती है। तो फिर किन्नरों को हेय दृष्टि से क्यों देखा जाता है? उन्हें भी एक सामान्य व्यक्ति की तरह जीवन जीने का अधिकार देकर तो देखिए होता क्या है!"⁹ उपन्यास में ग्रामीण परिवेश है। जिसे लेखक का ग्राम्य जीवन के प्रति प्रेम, सोच उजागर होता दिखाई देता है और अंत तक किसी न किसी रूप में हमें पढ़ने को मिलता है। जिंदगी फिफ्टी फिफ्टी का ताना-बाना दो किन्नर पात्र- हर्षा और सूर्या के इर्द-गिर्द बुनाया है। हर्षा, अनमोल नामक एक पात्र का भाई है। जहां अनमोल सामान्य है। वहीं हर्षा किन्नर है। दोनों समय अंतराल बड़े होते हैं। लेकिन दोनों के साथ जो व्यवहार अलग अलग होता है उससे अनमोल नाराज है। क्योंकि हर्षा के साथ हर पल सजा के सिवाय कुछ नहीं होता। हर्षा को किन्नर होने की सजा हमेशा भुगतनी पड़ती है। अनमोल अपने भाई से हमदर्दी रखता है। वह अपने पिता से खासा नाराज रहते हैं। जो हमेशा अपने भाई हर्षा को बिना वजह प्रताड़ित कर देना उसे अच्छा नहीं लगता। उपन्यास का कथानक अनेक नए मोड़ लेकर करवट बदल कर आगे निकल जाता है और अनमोल भी एक किन्नर संतान को जन्म देते हैं। जिसका नाम सूर्या रखता है। उन्होंने बचपन से देखा था कि हर्षा के साथ हुआ अन्याय और दुर्व्यवहार उसके बच्चे के हिस्से में ना आए। उस समय वह सूर्या के लिए ही घर बनाता है। वह अपने भाई के लिए तो कुछ नहीं कर सका था लेकिन "अपने बेटे के लिए फैसला करता है कि उसके लिए हर कदम पर समाज से टकराएगा और अपने बेटे को अधूरी नहीं बल्कि एक पूरी जिंदगी जीने के काबिल बनाएगा।"¹⁰ प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा लेखक ने नए

सिरे से एक मजबूत संदेश दिया है कि अगर हम चाहे तो किन्नरों को भी उचित शिक्षा और सुविधाएं दे देंगे तो वह भी एक सामान्य व्यक्ति की तरह घर परिवार और समाज के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह बखूबी कर सकते हैं।

बहुचर्चित उपन्यासकार प्रदीप सौरभ का “तीसरी ताली”¹¹ भी किन्नरों के जीवन पर आधारित उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास को सन 2012 का 18 वां अंतरराष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान युके. द्वारा प्राप्त हुआ है। “तीसरी ताली की यानी ऐसी ताली जिसे समाज में कभी मान्यता नहीं मिली जिन की दुआएं पाने के लिए लोगों में इच्छा जरूर है लेकिन उन्हें देखकर दूर हट जाने वाले लोगें की लंबी जमात भी हमारे समाज में मौजूद है।”¹² प्रस्तुत उपन्यास में लेखक प्रदीप सौरभ ने वह बोलेंगे हिजड़ों अर्थात किन्नर की जिंदगी को बयां कर दिया है। जो समाज के हाशिए पर रहे हैं। किन्नरों के प्रति समाज में जो अलगाव की स्थिति है उसे दर्शाने का लेखक ने प्रयास किया है। किताब के प्लैप पर लिखी पंक्ति पचौरी की टिप्पणी बहुत सटीक है। वह कहते हैं, “यह उभयलिंगी सामाजिक दुनिया के बीच और बरक्स हिजड़ों, लौंडे, लौंडेबाजो, लेस्बियनों और विकृत-प्रकृति की ऐसी दुनिया है जो हर शहर में मौजूद है और समाज के हाशिए पर जिंदगी जीती रही है।”¹³ लेखक ने किन्नरों के जीवन में एक दिन की सुहागन और दूसरे दिन विधवा बनने की प्रथा को दर्शाया है। तमिलनाडु के विल्लुपुरम के कुवागम मेले से यह प्रथा शुरू होती है। इस मेले में तीसरी योनि के यह लोगों को यहां एक दिन के लिए सुहागन बनने का मौका मिलता है। इस्तरह उनकी शादी करने की मुराद भी पूरी हो जाती है। यू रस्म यहां खत्म नहीं होती इसके बाद मंगलसूत्र तोड़ने की रस्म होती है। और सारे किन्नर विधवा होने के विलाप में लग जाते हैं। इस रस्म में सभी बड़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। अगर किसी ने इस परंपरा को तोड़ने की कोशिश भी की तो परिणाम बेहद गंभीर होते हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से एक विरला उपन्यास है विनीत अर्थात विनीता किन्नर के जीवन की दर्दनाक कथा है। जीवन का उच्च आदर्श और जीवन में कामयाब होने के बाद भी आने वाला खालीपन लेखक ने बखूबी से दर्शाया है। इतना ही नहीं लेखक ने विनीता के मां- बाप का दर्द भी अंकित किया है। जिन्हें बच्चा होने पर खुशी मनाने का हक है? लेकिन बच्चा उभयलिंगी है। तो यह एक महापाप है। जिसे दुनिया से बचाते, छुपाते, गौतम साहब और मां आनंदी आंटी अपनी जिंदगी के कई सालों को काटते हैं। लेकिन समाज के अनेक दर्द को समय के साथ नासूर बना देते हैं जिसका अंत आत्महत्या जैसा कृत्य कर बैठत है। लेखक ने एक विशेष बात इस उपन्यास के जरिए सामने रखी है कि समाज में किन्नरों की कोई अहमियत नहीं है। लेकिन किन्नर उनकी अपनी समस्याएं जरूर है। जैसे कि- किन्नर के बूढ़े हो जाने पर उसके उत्तराधिकारी की समस्या। आधुनिक समाज व्यवस्था के चलते किन्नरों का सेक्स रैकेट में जुड़ना। यह हिंदी का ऐसा उपन्यास है जो किन्नरों के अकेलेपन और अलगाव के बावजूद समाज से जीने के लिए लालायित भी है और जीवन के तमाम सच को उजागर भी करते हैं।

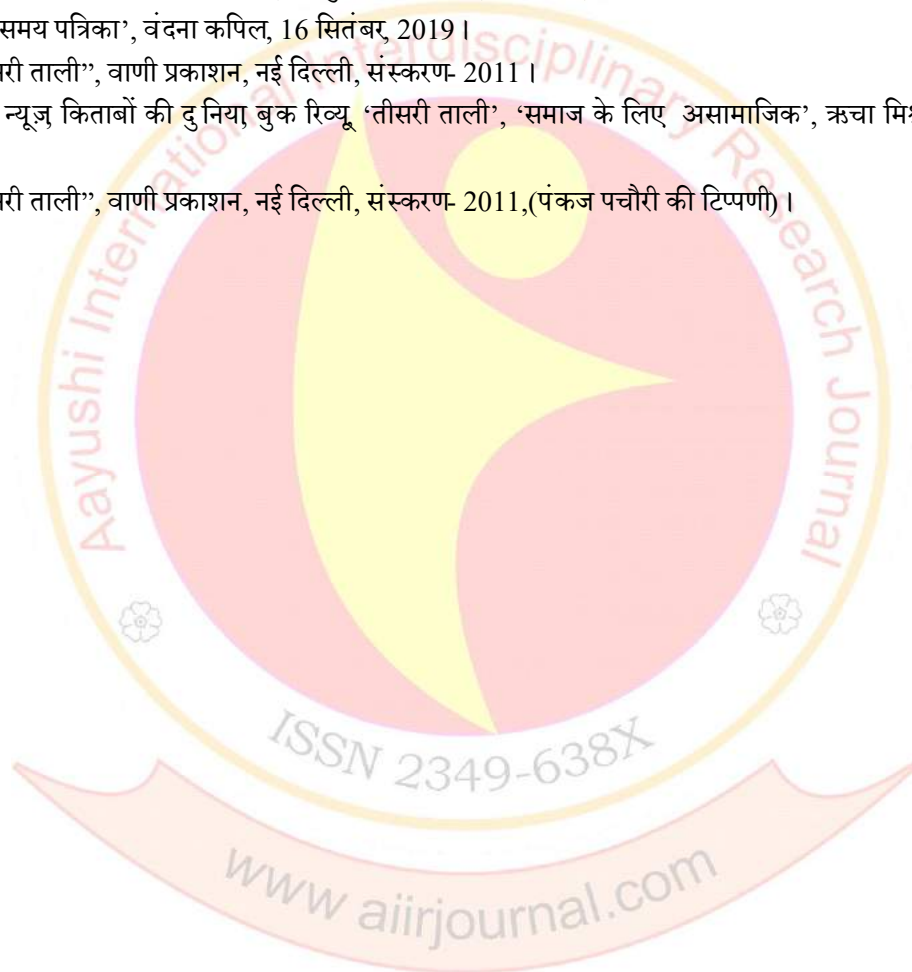
निष्कर्ष :-

कहां जा सकता है कि किन्नर, समाज द्वारा परित्यक्त किया गया एक वर्ग है। समाज द्वारा किन्नरों को आज भी हाशिए पर रखा गया है। उनका जीवन संवेदनाओं से ज्यादा उपहास और तिरस्कार का विषय बन गया है जिसमें आज भी बदलाव नहीं दिखाई देता। मजबूरन यह वर्ग अपने लिए स्वयं ही आवाज उठाने को बाध्य हो रहा है। विशेषकर साहित्यकार, समाज सेवक, आलोचक, मीडिया कर्मी, किन्नर समाज जीवन पर प्रकाश डालने की कोशिश कर रहे हैं। 21 वीं शताब्दी के दूसरे दशक में किन्नर समाज को लेकर बहुत कुछ लिखा जा रहा है। किन्नर आज भी अपमान, पीड़ा, शोषण, त्रासदी, अवहेलना का सामना दिन-ब-दिन कर रहे हैं। उनके सामने जीवन यापन के लिए कोई साधन नहीं है। परिवार वाले मजबूरन समाज के डर से किन्नर बच्चे को त्याग देते हैं। वह अन्य बच्चों की तरह अपने किन्नर बच्चों को मजबूत नहीं बनाते। तो मजबूरन किन्नरों की टोली में एक तो छोड़ आते हैं या किन्नर टोली के लोग उन्हें ले जाते हैं। सरकार या समाज द्वारा इनके प्रति दिखाई सहानुभूति कोई काम की नजर नहीं आती। यह सच है कि परिवार के कुछ लोग अपने ही हाड- मांस के किन्नरों को त्याग ने के लिए राजी नहीं होते। आधुनिक विचारधारा से जुड़े कुछ परिवार के जन कोशिश करना चाहते हैं कि अपने किन्नर बच्चे को अन्य बच्चों की तरह जिंदगी मिले। लेकिन समाज के ठेकेदार किन्नरों का घर, परिवार है- समझ कर परिवारजनों को सही ढंग से जीने नहीं देते। पश्चिम महाराष्ट्र के किन्नर, देवी मां रेणुका के गीत गाकर और शादी ब्याह के मौके पर परंपरागत गोंधल समारोह में गीत कथा प्रस्तुत कर मिले पैसों के बल पर अपना जीवन यापन करते हैं। यहां किन्नरों को आजकल निम्न वर्ग और मध्य वर्ग के कुछ व्यापारी सब्जी मंडी में सामान्य किसान, उनके दुकान पर पहुंचने के बाद कुछ रुपए नाम मात्र उनके हाथ पर थमा देते हैं। लेकिन किन्नरों को मांग कर खाना उन्हें भी अच्छा नहीं लगता। विधवा, विकलांग, परिपक्व, जन्मे बच्चों का जिस प्रकार पुनर्वसन किया जाता है उसी प्रकार किन्नरों को भी उन्हें उनका हक मिलना चाहिए। वह भी लिखे, पढ़े, समाज के विकास में उनका भी योगदान मिले। इस प्रकार की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, शैक्षिक, आर्थिक, औद्योगिक जैसे हर क्षेत्र में उनकी उन्नति के लिए विशेष अभियान का आयोजन होना जरूरी है। कई सामाजिक और शैक्षिक सेवाभावी संस्थाओं द्वारा तथा सरकारी कार्यालयों द्वारा उपक्रमों का आयोजन तो किया जाता है लेकिन वे निरंतर नहीं हैं। किन्नरों को समाज की धारा में लाना होगा। उन्हें स्वावलंबी बनाने के लिए विशेष अभियान चलाना जरूरी है। किन्नर और समाज की मानसिकता को बदलने के लिए सरकारी विज्ञापनों के माध्यम से प्रचार- प्रसार करना होगा। एक मात्र सत्य यह है 21 वीं सदी के आरंभिक दशकों में किन्नर विमर्श जैसे विषय को लेकर के हिंदी के लेखक जागृत होकर जो साहित्यिक रचनाएं प्रस्तुत कर रहे हैं वह तो नजदीक से देखे भोगे हुए देखे हुए यथार्थ को वाणी दे रहे हैं। किन्नरों की करुण गाथा को प्रस्तुत कर रहे हैं। उन्हें गांधीवादी समाजवादी, वामपंथी, दक्षिणपंथी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, आधुनिकवादी आदि कई वाद , पंथ के दायरे में न रखकर भारतरत्न डॉक्टर बाबासाहब आंबेडकर जी द्वारा संविधान में दिए अधिकारों के प्रति जागृत होते दर्शाया है। साथ-

साथ किन्नरों के प्रति न्यायिक भावना लेकर उन्हें और हमें “मानववादी” होने के लिए प्रेरित करते हैं, यही ‘किन्नर विमर्श’ का करुण क्रंदन है। प्रस्तुत अनुभव उपर्युक्त उपन्यासों का अध्ययन और अनुशीलन करने के बाद परिलक्षित होता है।

संदर्भ :-

1. ‘तहलका’, समाज और संस्कृति, अमित सिंह, 20 मई, 2016।
2. चित्रा मुद्गल, ‘पोस्ट बॉक्स नंबर 203: नालासोपारा’, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2016।
3. वही।
4. समकालीन भारतीय साहित्य, अंक: जुलाई-अगस्त-2016, ले.रमेश दवे, ‘किन्नर करुण कथा’, पृ.208।
5. वही।
6. महेंद्र भीष्म, ‘किन्नर कथा’, पृ.41 सामूहिक बुक्स नई दिल्ली संस्करण- 2011।
7. महेंद्र भीष्म, ‘मैं पायल’, अमन प्रकाशन कानपुर, संस्करण- 2016।
8. भगवंत अनमोल, ‘जिंदगी: 50-50’ राजपाल एन्ड सन्स, नई दिल्ली, संस्करण- 2018।
9. ‘सागरिका’, ब्लॉग, ‘समसामयिक हिंदी साहित्य’, डॉ.गुरेमकोंडा नीरजा, 3 जनवरी, 2019।
10. ‘किताब’, ब्लॉग, ‘समय पत्रिका’, वंदना कपिल, 16 सितंबर, 2019।
11. प्रदीप सौरभ, ‘तीसरी ताली’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2011।
12. ‘आज तक’ हिंदी न्यूज़ किताबों की दुनिया बुक रिव्यू ‘तीसरी ताली’, ‘समाज के लिए असामाजिक’, ऋचा मिश्रा, नई दिल्ली, 9 मार्च, 2015।
13. प्रदीप सौरभ, ‘तीसरी ताली’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2011, (पंकज पचौरी की टिप्पणी)।



मैं लक्ष्मी मैं हिजड़ा : एक उध्वगामी किन्नर की आत्मकथा

प्रदीप कुमार ठाकुर

वैविध्य प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करता है। पशु-पक्षी, पेड़, फल-फूल, पर्वत-पहाड़ इन सबके अलग-अलग रूप रंग हमें लुभाते हैं। प्राकृतिक सौंदर्य के अलावा मानवनिर्मित कलाकृतियाँ तथा उनके सांस्कृतिक प्रतीक यथा वेशभूषा, परिधान, खानपान तथा जीवनशैली भी हमारा मन मोह लेती है। किंतु जिस आत्मीयता के साथ हम इन चीजों को अपना लेते हैं उसी आग्रह के साथ स्त्री-पुरुष के बीच के उन तृतीयलिंगी लोगों को नहीं अपना पाते, जिन्हें आम बोलचाल की भाषा में हिजड़ा या किन्नर कहा जाता है। प्रकृति प्रदत्त उनके इस विभेद को कभी सामाजिक स्वीकृति नहीं मिलती। फलस्वरूप इस वर्ग को अपराध बोध के साथ नारकीय जीवन जीने की अभिशप्त होना पड़ता है। अंधेरे-कोने में दुबकी सिसकी उनकी जिंदगी तथाकथित सभ्यसमाज के लिए रहस्य मात्र बनकर रह जाती है। वे सदा अपने होने के बावजूद स्वयं के न होने की पीड़ा झेलने को विवश होते हैं। विजेंद्र प्रताप सिंह के शब्दों में "समाज में मानव प्रजाति के इन दो लिंगों के अलावा भी एक और प्रजाति का अस्तित्व है जो न पुरुष होता है न स्त्री, जो न संभोग कर सकता है, न ही गर्भधारण कर सकता है। जिसे किन्नर-हिजड़ा या छक्का कहा जाता है।" इसी तिरस्कृत और अपमानित वर्ग के 'निजमन की व्यथा को भुक्तभोगी लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी उर्फ राजू उर्फ लक्ष्मी ने पूरी निर्भीकता के साथ अपनी आत्मकथा "मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी" (2015 में प्रकाशित) में लाने की कोशिश की है।

प्रायः सेक्स, लैंगिक भावना, लिंगभाव जैसी बातें हमें डराती हैं तथा अस्थिर कर देती हैं। यही कारण है कि हम इन मुद्दों से किनारा करने लगते हैं तथा व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में इनका सम्यक मूल्यांकन करने तथा इससे जुड़ी भ्रांतियों का निवारण कर नए विचारों का बीजारोपण करने की जहमत नहीं उठाते। लिंग शरीर रचना का एक हिस्सा है, इसलिए लिंगभाव एक मानसिक प्रक्रिया है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए लिंग के एहसास और उसके संदर्भ का समझ जानना भी जरूरी है। वास्तव में शारीरिक, मानसिक संरचना से लेकर सामाजिक संरचना के बारे में बहुत ही कम लोगों को पता है। जन्म के बाद जैविक सेक्स के साथ जेंडर भी निर्धारित कर दिया जाता है। लेकिन थर्ड जेंडर बच्चे समाज द्वारा निर्धारित जेंडर को स्वीकार नहीं कर पाते। ऐसे में थर्ड जेंडर व्यक्ति बहुसंख्यक समाज (द्विलिंगी समाज) में अपने व्यवहार को घृणित तथा असामान्य मानने लगते हैं। इसके बावजूद वे समाज में स्वयं को प्रचलित मानकों के अनुरूप ढालने का प्रयत्न भी करते हैं, जिस प्रक्रिया में उन्हें प्रचंड तनाव से गुजरना पड़ता है फिर भी उन्हें अपेक्षित स्पेस प्राप्त नहीं होता फलस्वरूप उन्हें अजनबीयत की जिंदगी झेलनी पड़ती है। अपने अस्तित्व की रक्षा करने के क्रम में उन्हें अनेक विषम परिस्थितियों से टकराना पड़ता है। इस संदर्भ में लेखिका भारती अग्रवाल का मत समीचीन प्रतीत होता है, जहाँ वह कहती हैं कि "आज का दौर, अस्तित्व की पड़ताल का दौर है। हाशिए पर धकेले गए स्त्री और पुरुष अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत हैं। ऐसे समय में समाज के एक वर्ग को निरंतर अनदेखा किया गया है वह है थर्ड जेंडर।" यह पुस्तक तथाकथित सुसंस्कृत समाज की संकीर्ण मानसिकता तथा किन्नर समाज के अनुछुए पहलुओं का रहस्योद्घाटन कर थर्ड जेंडर के लिए समाज में मानवीय गरिमा की माँग करता है।

नारीवादी विमर्श ने पितृसत्ता का आधार स्त्री की प्रजनन क्षमता पर नियंत्रण को माना। यही कारण है कि समाज में विवाहित स्त्री-पुरुष (स्वजाति - स्वधर्म में) जो प्रजनन कर सकें, ऐसे जोड़े पितृसत्तात्मक व्यवस्था के केंद्र में होते हैं। जबकि इस व्यवस्था को चुनौती देने वाले लोगों को हाशिए पर ढकेल दिया जाता है। इस दृष्टिकोण से विचार करें तो तीसरे लिंग का व्यक्ति जेंडर आइडेंटिटी तथा सेक्सुअलिटी दोनों ही स्तर पर पितृसत्ता के सामने चुनौती पेश करता है। किंतु हमारा भद्र समाज इनक रचमात्र भी परवाह नहीं करता, बल्कि मानसिक रूप से बीमारग्रस्त घोषित कर इन्हें सामाजिक रूप से बहिष्कृत घोषित कर देता है। जबकि यह डिसऑर्डर न होकर उसके अलगाव की वजह से और उसके प्रति समाज की प्रतिकूल प्रतिक्रिया और अवहेलना की वजह से आनेवाली कटुता (Gender dysphori) है। यदा-कदा उनका उल्लेख आता भी है तो ऐसे प्रसंगों में जिसमें हास्यका पुट विद्यमान रहता है। प्रो. मेराज अहमद के शब्दों में इसे देखा जा सकता है जहाँ वे कहते हैं, "चलचित्रों में किन्नरों के प्रसंग अवश्य आते हैं परंतु किसी संजीदा किस्म के चरित्र के बजाय कतिपय अपवादों को छोड़ दिया जाए तो हास्य-व्यंग्य के लिए ही उनका चित्रण होता है। साहित्य की स्थिति तो और भी निराशाजनक है स्थिति अधिकांश भाषाओं की एक ही जैसी है। आंदोलनों को हथियार बनाकर सृजक और आलोचक दोनों ही अपनी लेखनी को धार दे रहे हैं लेकिन किन्नर समाज आज भी लगभग अनछुआ है।" चिंता, मानसिक अशांति संज्ञाहीनता, नैराश्य, स्वयं के अस्वीकार जैसे लक्षणों से ग्रस्त किन्नर कम्यूनिटी को रोजाना दैनंदिन व्यवहारों से जूझना पड़ता है तथा मन ही मन घुटते हुए समाज के सामने अपनी जिंदगी को रहस्यबनाकर रखना पड़ता है। उनकी इस अवस्था पर प्रकाश डालते हुए लेखक सुशील कुमार कहते हैं "किन्नर समाज के लोग अपनी अलिंगी देह को लेकर जन्म से मृत्यु तक अपमानित तिरस्कृत और संघर्षमयी जीवन व्यतीत करते हैं तथा आजीवन अपनी अस्मिता की तलाश में ठोकरे खाते हैं।" इन सबके बावजूद किन्नर समाज अपनी अस्मिता के साथ खड़ा है तथा तमाम वर्जनाओं को सहते हुए आत्मविश्वास के साथ हमारे बीच मौजूद है। इस आत्मकथा की लेखिका का चरित्र भी ऐसा ही है। वास्तव में लक्ष्मी की आत्मकथा इस देश में रहने वाले लाखों थर्ड जेंडर के दिन प्रतिदिन के अनुभव का प्रतिनिधित्व करती है।

आज का समय विमर्शों का समय है। बहुकेंद्रीयता का समय है। स्त्री दलित अल्पसंख्यक वृद्ध और आदिवासी समुदाय परिधि से केंद्र में आ चुके हैं और अपने मूलभूत मानवाधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। अपनी आत्मकथा में लक्ष्मी इसी भूमिका का निर्वाह कर रही है। अपने अकेलेपन की पीड़ा को प्रकट करती हुई वह एक जगह कहती है, "इस ऊंचे पेड़ का अकेलापन इसीलिए आँखों में खलता है, बहुत बार कलेजे में टीस उठती है। इस पेड़ की तरह देखते रहने पर मुझे लगता है, मेरी जिंदगी भी तो ऐसी ही है..... सभी के साथ हूँ, पर फिर भी अकेली..."⁵। किसी भी अपराध का गुनहगार न होने के बावजूद लक्ष्मी जैसे कितने किन्नर इस तरह के एकाकी जीवन जीने को मजबूर है। अपने बचपन के वीभत्स लम्हों को याद करके वह सिहर उठती है। उसका दोष मात्र इतना है कि उसमें पुरुषों की लैंगिकता तो है पर लिंगभावना स्त्री की है। इसमें लक्ष्मी का कोई दोष नहीं है। टेस्टोस्टेरोन के प्रभाव की न्यूनता के कारण लिंग पुरुषों का और लिंगभाव स्त्रीका होने पर भ्रूण 'हिजड़े के रूप में जन्म लेता है।

ये ज्यादातर जन्मतः लैंगिक अवयवों की वजह से निश्चित किया जाता है। शरीर पुरुषों का भावनाएँ स्त्री की ऐसी स्थिति ट्रांसजेडर्स की होती है। इसलिए स्त्री और पुरुष दोनों संकल्पनाओं में वो नहीं बैठते उनके आगे जाने वाले ही होते हैं। इन दोनों जेडर्स के आगे थर्ड जेंडर होता है। हिजड़े इसमें आते हैं। मूल रूप से कहा जा सकता है कि इसमें जन्म लेने वाले व्यक्ति की कोई भूमिका नहीं होती। बावजूद इसके उसे हर यंत्रणा का दंश सहना पड़ता है। समाज उसे इंसानियत के तकाजे में नहीं तौलता बल्कि उसे कदमकदम पर जलील करता है तथा धिक्कारता है। इस संदर्भ में सपना मांगलिक की कविता 'हिजड़े की व्यथा' को देखा जा सकता है, जिसमें किन्नर जीवन की विडंबना का मार्मिक अंकन है:-

लिंग नुटि क्यादोष माँ मेरा, काहे फिर तू रूठी
फेंक दिया दलदल में लाकर ममता तेरी झूठी।
मेरे हक, खुशियाँ, सब सपने, माँग रहा हूँ कबसे
छीन लिया इंसान का दर्जा, दु आ मांगते मुझे।⁶

वास्तव में ट्रांसजेडर्स व्यक्ति में लैंगिक अवयव संबंधी न्यूनताएँ जन्मजात होती है।

इन जैविक क्रियाओं पर किसी का वश नहीं चलता तो ऐसे में लक्ष्मी क्या करती? नियति द्वारा प्रकृति-प्रदत्त इन गुणों को समाज नहीं समझ पाता और अपने समान एक जीव को दर-दर की ठोकरे खाने के लिए छोड़ देता है। गुणसूत्र और संप्रेरक की वजह से हुए लिंगभाव को बदलना मुश्किल होता है। उसमें भी लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को अपना स्त्री लिंगभाव अपनाने और समाज में उसे व्यक्त करने में तकलीफ होती है। लेकिन लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी से लक्ष्मी बनने वाली किन्नर की कथा कई मायने में भिन्न है। लैंगिक रूप से पुरुष दिखने वाली लक्ष्मी ने स्वयं के अंदर विकसित हो रहे स्त्रीघोचित गुणों को अंधेरी कालकोठरी में कैद नहीं किया वरन् पुरी निर्भीकता और आत्मविश्वास के साथ समाज के सामने प्रगट किया। उसकी आत्मकथा के दूसरे संस्करण की भूमिका लिखने वाले लेखक डॉ. प्रदीप प. पाटकर इस संदर्भ में कहते हैं, "लक्ष्मी ऐसा कर सकी इसके पीछे काफी सारी बातें थीं। उसके अंदर की कला को स्कूल में ही स्टेज मिला और उसके नृत्य को लोगों ने सराहा। मन को घायल करने, लेकिन निडर बनाने वाले यौन - हमले भी बचपन से ही उसे अनुभव करने पड़े। अंग्रेजी सीखने की वजह से स्नेही अध्यापकों ने लक्ष्मी को सभाओं में निडरता से खड़े रहने तथा उसको आत्मविश्वास और आत्मसम्मान दिलाने में मदद की। परिवार ने भी लक्ष्मी की लैंगिकता की कदर की और उसे सस्नेह अपने पास रखा। दोस्ती करने का लक्ष्मी का अपना हुनर भी काम आया। लक्ष्मी की इन्हीं तमाम खूबियों ने हिजड़ों के प्रश्न को वैश्विक स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया।"⁷ वास्तव में लक्ष्मी इस पूरी आत्मकथा की नायिका है, जिसका जीवट व्यक्तित्व जुझारू आचरण तथा अपने परिवार और हिजड़ा समाज के प्रति उसकी कर्तव्यनिष्ठा उसे सामान्य से विशिष्ट बना देती है। 'स्व' से 'पर' तक की उसकी यात्रा केवल उसकी कहानी नहीं कहती बल्कि वंचित तथा निकृष्ट मान लिए गए किन्नर समाज की आपबीती का दुःखद व्याख्यान भी प्रस्तुत करती है।

ब्राह्मण परिवार में जन्मी पं. चंडीनाथ त्रिपाठी और माता विद्यावती की ज्येष्ठ संतान होने के नाते लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी उर्फ लक्ष्मी का आरंभिक जीवन बहुत संघर्षमय रहा। नृत्यकला में प्रवीण होने के बावजूद केवलमात्र स्त्रीसुलभ आचरण की वजह से उसे बायल्या कहकर अपमानित किया जाता था। कई बार उसका यौन-शोषण भी किया गया। फिर भी उसमें अपने जीवन को लेकर वितृष्णा पैदा नहीं हुई। अपनी आत्मकथा में एक जगह वह कहती भी है कि "जो मुझे पसंद था चाहिए था, वहीं मैं कर रहा हूँ, इसका संतोष भी था। ग्लैमर के इस क्षेत्र में कोई मेरी तरफ गलत नजर से भी नहीं देख रहा था और इस आत्मविश्वास के कारण ही मैं जेंडर के विषय में और बोल्ड और निश्चयी होने लगा था। एक तरफ आत्मविश्वास बढ़ रहा था और दूसरी तरफ मेरे मन में पूरे समाज के संबंध में सवाल खड़े होने लगे थे।"⁸ अपनी यथास्थिति को आत्मीयता से स्वीकार करते हुए 1999 में लक्ष्मी ने हिजड़ा बनने का निश्चय किया था। उसे इसका कोई अफसोस नहीं था। बल्कि उसने अपना दृष्टिकोण व्यापक कर अपने जैसे लोगों (हिजड़ों) की समस्याओं, मुसीबतों तथा उनके प्रति हो रहे अमानवीय अत्याचारों से उन्हें उबारने का संकल्प लिया। उसने हिजड़ा समाज की अंतरात्मा में झाँका और महसूस किया कि "ये हिजड़ा समाज अपनी संस्कृति से काफी समृद्ध है। जान-बूझकर कोई हिजड़ा नहीं बनता..... वो इतना आसान नहीं है। 'हिज' मतलब आत्मा, पवित्र आत्मा। जिस शरीर में ये आत्मा रहती है वो

हिजड़ा। यहाँ व्यक्ति को महत्व नहीं है महत्व है उस आत्मा का और उसे धारण करने वाले हिजड़ा समाज का। इस समाज से भगवान प्यार करते हैं और इसीलिए उसने उनके लिए एक अलग राह अलग जगह तैयार की जो हमेशा के स्त्री पुरुष की कक्षा से बाहर है। स्त्री और पुरुष इन दो रेखाओं के बीच में हम.... बिटवीन द लाइन्स।⁹ हिजड़ा बनने की रीति का पालन कर वह हिजड़ा समाज में शामिल हुई, जहाँ उसे इस समुदाय की भीतरी पर्तों के बारे में पता चला। यहीं उसकी मुलाकात लता गुरु से हुई जिसका ह्म थामकर वह इस अंधेरी दुनिया में शामिल हुई। वहाँ के सेक्स वर्क्स की परिस्थितियों को देखकर उसको सदमा सा लगा। उसने तय कर लिया कि वह इन परिस्थितियों को बदलेगी। वह कहती है "धीरे-धीरे समझ में आया मैं अकेली क्या कर सकती हूँ समाज बदलने के लिए? पूरी व्यवस्था बदलने के लिए? कम-से-कम इन सेक्स वर्क्स की ही जिंदगी बदलने के लिए? मेरे साथ में सिर्फ एक बात थी कोशिश करते रहना उनमें से एक बनकर उनसे संवाद स्थापित करने की कोशिश करनी है अपनी परिस्थिति को हम ही बदल सकते हैं, ये उन्हें समझाते रहना और बदलने के लिए मदद करना।"¹⁰ लक्ष्मी ने जो इस किन्नर समाज की बेहतरी का बीड़ा उठाया तो तन-मन धन से उसमें लग गई। ट्रांसजेंडर कम्युनिटी को बाहरी दुनिया से जोड़ने के लिए तथा उनके प्रति समाज का नजरिया बदलने के लिए उसने हर चुनौती को स्वीकार किया। इसी क्रम में उसने शबीना तथा प्रिया (हिजड़ा) द्वारा चालित 'दाई वेलफेयर सोसायटी का अध्यक्ष पद की जिम्मेदारी लेकर समाजसेवा करने का प्रण लिया। अपनी पढ़ाई जारी रखने के साथ-साथ वह एक तरफ तो 'लकी चॅप डांस एकेडमी' में डांस क्लास लेती रही तो दूसरी तरफ घर में रहकर ही अपना मॉडल को आर्डिनेशन का काम भी जारी रखा। इन सबके बावजूद किन्नर समाज को उनके मूलभूत मानवीय अधिकार दिलाने तथा उनके प्रति समाज का नजरिया बदलने के लिए वह लगातार जद्दोहद करती रही। अब वह एक 'एक्टिविस्ट' के रूप में काम करने लगी थी। ऐसे कार्यों में उसे लगातार अच्छे लोगों को सानिध्य भी मिलता रहा। इनमें से अलका गोगटे, अथर्व नायर, किरण मोरे, अनिता खेमका, राहुल काले, बेबी जॉनी, मिस मेनन, दीपक सालवी, अशोक राव कवि, सिल्वेस्टर मर्चेट, मानवेंद्र सिंह गोहिल धनबहादुर चंद के साथ लगा गुरुलक्ष्मी गुरु एवं उसके स्वयं के चेलों का हमेशा सहयोग मिलता रहा। एक जगह वह इन सबका आभार प्रकट उसे करते हुए कहती भी है कि "इनसानों की लगन का अनुभव मैंने इसी वक्त किया। वैसे ही उनकी बेबसी परिस्थितियों के अनुरूप बदलने वाली इंसानों के रंग भी देखे वैसे ही उनकी न थमने वाली और गहरी इंसानियत भी.... और इसीलिए इनसान और इनसानियत पर मेरा भरोसा कभी नहीं टूटा मेरी जिंदगी में कितने भी बुरे प्रसंग आए कितनी भी बड़ी मुसीबतें आईं फिर भी अपनी जिंदगी में आए इनसानों को मैंने महत्पूर्ण माना। मैं हमेशा इनसानों के साथ रही और इनसान हमेशा मेरे साथ रहे....।"¹¹ ऐसे ही लोगों की प्रेरणा से लक्ष्मी को अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भी अपने किन्नर समाज का प्रतिनिधित्व करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

भारत में एच.आई.वी. एड्स की स्थिति पर मुंबई में एक राउंड टेबल कॉन्फ्रेंस में हिस्सा लेने के बाद से लक्ष्मी अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भी पुरजोर तरीके से किन्नर समाज के मुद्दे उठाने लगी। इस क्रम में टोरंटो में आयोजित सोलहवीं अंतर्राष्ट्रीय एड्स कॉन्फ्रेंस के इंडिया सेटेलाइट सेशन में 'हिजड़े और उनकी समस्याएँ' विषय पर उसने अपनी बात रखी तो नीदरलैंड में 'अॅमस्टरडम इंडिया फेस्टिवल' में भी अपने साथी किन्नरों के साथ भारत का प्रतिनिधित्व किया। ट्रांसजेंडर्स के स्वास्थ्य, कानून और सामाजिक अधिकारों के लिए काम करने वाली संस्था एशिया पैसेफिक ट्रांसजेंडर्स नेटवर्क फॉर सेक्स वर्क्स (1994) नामक संस्था में भारत की प्रतिनिधि बनकर मलेशिया गई तो न्यूयार्क में 'सिविल सोसायटी टास्क फोर्स की मीटिंग' में भी शामिल हुई। वहीं एक तरफ उसने अंतर्राष्ट्रीय ट्रांसजेंडर कांग्रेस में शिरकत की तो दूसरी तरफ वियना की अंतर्राष्ट्रीय एड्स कॉन्फ्रेंस में ही महत्वपूर्ण भागीदारी की। इस तरह उसने तमाम अंतर्राष्ट्रीय फोरम पर अपने समुदाय से संबंधित विभिन्न समस्याओं से विश्वानुस को अवगत कराया। इन मंचों तक पहुँचाने में भी उसे स्टीफन बिल जोसेफाइन हू सुजन आक्सर, कार्तिनी जैसे विदेशी विद्वानों का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। इन मंचों के अलावा भी लक्ष्मी को अनेक रियलटी शो (बुगी-बुगी) दस का दम, बिग बॉस, सच का सामना) टॉक शो (मी मराठी) फिल्मों (बिटवीन द लाइन्स) तथा डाक्यूमेंटरीज में हिस्सा लेने का मौका मिला। अपने अर्जित अनुभवों से सीख लेकर उसने मुंबई (कमाठीपुरा) के सेक्स वर्क्स के लिए विस्तृत कार्ययोजना तैयार की। अपने इन्हीं उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उसने सन 2006 में अस्तित्व नाम की संस्था का भी गठन किया जो वृद्ध स्तर पर यौनकर्मियों के स्वास्थ्य, एच.आई.वी. की रोकथाम तथा बारबालाओं की मदद के लिए उपयुक्तपरिवेश तैयार करने का बीड़ा उठाया। यहाँ तक कि किन्नर समुदाय में आत्मविश्वास पैदा करने के लिए उनके लिए ब्यूटी कान्टेस्ट का भी आयोजन किया। इस तरह लक्ष्मी ने न केवल स्वयं को अंधेरे दलदल से निकाला बल्कि अपने समुदाय के भी चतुर्मुखी विकास के लिए प्रतिबद्ध होकर अपने समूचे जीवन को किन्नर समाज के उत्थान के लिए समर्पित कर दिया।

वास्तव में लक्ष्मी की स्वानुभूत आत्मकथा उध्वमुखी चेतना से संपन्न एक व्यक्ति की कथा है जिसने उस हाशिए के समाज को आवाज दी जो समाज के एक कोने में दुबका हुआ घटनभरी जिंदगी जमी को अभिशप्त था। यह आत्मकथा न केवल किन्नर समाज की अनकही दास्ता को सामने लाने का प्रयास करती है वरन हमारे द्वारा उनके प्रति अपने व्यवहार का आत्मनिरीक्षण करने तथा अपनी मानसिकता में बदलाव लाने का भी आग्रह करती है। सह-अस्तित्व, भातृत्व भाव तथा किन्नरों के सामाजिक पुनर्वसन द्वारा उन्हें उनका वाजिब हक दिया जा सकता है। किन्नर क्या चाहते हैं यह लक्ष्मी द्वारा दिए गए साक्षात्कार से समझा जा सकता है - जहाँ वह कहती है "मेरे समाज और मेरी कौम को इंसान के तौर पर देखिए। हमारी कौम को प्यार कीजिए। मेरे जैसे हजारों लाखों किन्नर हैं जिन्हें समाज नहीं स्वीकारता। किन्नर कौम की आस औलाद नहीं होती। वे भी इसी ग्रह के आपके द्वारा पैदा किए गए प्राणी होते हैं इसीलिए उन्हें प्यार दीजिए। बदले में वे आपको दुआ

देंगे।¹² सचमुच केवल इंसानियत की भावना से ही सामाजिक समरसता का बीज बोया जा सकता है। लक्ष्मी की आत्मकथा वास्तव में मनुष्यता के लिए एक इंसान का आवाहन ही है। इसके लिए सामाजिक ढांचे का बदलना जरूरी ही नहीं अपरिहार्य भी है।

संदर्भ - ग्रंथ सूची

1. विजेंद्र प्रताप सिंह, उपन्यास के आइने में थर्ड जेंडर अमन प्रकाशन, कानपुर, वर्ष 2017, पृ.66
2. भारतीय अग्रवाल, थर्ड जेंडर - एक रहस्यलोक, किन्नर विमर्श-साहित्य के आइने में वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़- 2017, पृ. 60
3. प्रो. मेराज अहमद, भूमिका से हम भी इंसान हैं, सं. डॉ. फिरोज खान, वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़, 2018
4. सुशील कुमार, किन्नरों के जीवन का सच, सब लोग 8 जुलाई, 2019
5. लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, मैं हिजड़ा...मैं लक्ष्मी। वाणी प्रकाशन, पृ.25, 2018
6. सं. मिलन बिश्नोई, किन्नर विमर्श : समाज और साहित्य, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2018 पृ.292
7. डॉ. प्रदीप प. पाटकर, मैं लक्ष्मी के बहाने (भूमिका) लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी। वाणी प्रकाशन, 2018 पृ. 22
8. लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, मैं हिजड़ा...मैं लक्ष्मी। वाणी प्रकाशन, पृ.45, 2018
9. लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, मैं हिजड़ा...मैं लक्ष्मी। वाणी प्रकाशन, पृ.49-50, 2018
10. लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, मैं हिजड़ा...मैं लक्ष्मी। वाणी प्रकाशन, पृ.64, 2018
11. लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, मैं हिजड़ा...मैं लक्ष्मी। वाणी प्रकाशन, पृ.139, 2018
12. दबंग दुनिया न्यूज़ 23 नवंबर 2015 (रिपोर्ट)



किन्नर जीवन की विडंबना का दस्तावेज : संज्ञा

शोधकर्ता

डॉ संतोषकुमार यशवंतकर

हिंदी विभाग

महिलामहाविद्यालय, गेवराई जि.बीड

साहित्य का प्रमुख दायित्व उपेक्षित, प्रताडित, पीडित मनुष्य की मुक्त व्यथा को वाणी देना है! जिसका निर्वाहण वह भली भाँती करता हुआ समय की गति के साथ मार्गक्रमण कर रहा है! इसी कारण वर्तमान दौर में साहित्य के केंद्र में दलित, आदिवासी, स्त्री और किन्नर विमर्श क्रमशः साथ साथ आगे बढ़ते दिखाई दे रहे हैं! अर्थात् समाज का प्रस्थापित वर्ग जब जब दुर्बल वर्ग पर अन्याय, अत्याचार करते रहें तब तब सामाजिक संवेदना से अभिभूत साहित्यकारों ने अपने लेखनी द्वारा दुर्बलों का पक्ष लेकर उनके उपर होनेवाले अन्याय, अत्याचारों का विरोध करने का यत्न शतप्रतिशत किया है!

समकालीन दौर में हिंदी साहित्य के केंद्र में भूमंडलीकरण, स्त्री, दलित, आदिवासी और किन्नर यह प्रमुख पाँच बिंदू मुख्य रूप से चर्चा का विषय रहें हैं! इसमें से भूमंडलीकरण, स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्श की अपेक्षा किन्नर विमर्श अभी शिशु अवस्था में होकर साहित्य के क्षेत्र में अपने घुटनों पर रेंगने का साहस कर रहा है। अन्य विमर्श की तरह इस विमर्श की पैठ अभी तक साहित्य में नहीं बन पड़ी है। इस विमर्श की वैचारीक भूमिका भी बनना अभी शेष है, साथ ही इस के सौंदर्याशास्त्र को भी अभी आकार देना बाकी है, लेकिन इसका इतिहास मानव सभ्यता के इतिहास के साथ ही दृष्टिगत होता है। मानव समाज के दो प्रमुख अंग नर और नारी के साथ किन्नर अर्थात् हिजड़ा के संदर्भ भी हमें पुराण काल के रामायण और महाभारत काल से लेकर आज तक देखने को मिलते हैं, लेकिन मानव समाज के इस सभ्यता के इतिहास में समाज के दो अंग नर और नारी पर जितनी मात्रा में लिखा हुआ है, उतनी मात्रा में किन्नरों पर नहीं लिखा गया है। इसका सरल अर्थ यह है कि इन किन्नरों को यहाँ भी उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है। किन्नर समाज की इस उपेक्षा की पूर्ति समकालीन हिंदी साहित्य करता आज नजर आ रहा है। आज हिंदी साहित्य की अलग अलग विधाओं में हिजड़ों पर केंद्रित कविता, उपन्यास, नाटक, संस्मरण और कहानियाँ लिखी जा रही हैं। जिसके माध्यम से किन्नरों के कटू जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति समाज के सामने आ रही है।

किसी भी समाज की रचना प्रमुखता: दो लिंग स्त्री और पुरुष से होती है किन्तु समाज में तिसरा लिंग भी रहता है, जो न स्त्री होता है और नहीं पुरुष, उसे ही नपुंसक लिंग या अलिंगी कहा जाता है। जिसे ही परिष्कृत भाषा में किन्नर तथा हिजड़ा कहा जाता है। तो अलग अलग समाज और भाषा में किन्नरों को अलग-अलग संबोधन से संबोधित किया जाता है। जैसे शिखण्डी, खोजा, कीव, मौसी और हिजड़ा आदि।

जब किसी परिवार में किन्नर बालक का जन्म होता है, तब उस बालक और उसके परिवारवालों को अनेकों यातना से गुजरना पड़ता है और उसके माता-पिता को विवश होकर अपने बालक को किन्नर समुदाय के हवाले करना पड़ता है। इसका दर्दनाक चित्रण हिंदी साहित्य के अनेक कहानीकारों ने किया है। जिसमें प्रमुख कहानीकार शिवप्रसाद सिंह, पारस दासोत, पूनम पाठक, दीपिका चोद, विजेंद्र प्रताप सिंह, श्रीकृष्ण सैनी, गरिमा संजय दुबे, डॉ लवलेख दत्त, ललिता शर्मा, महेन्द्र भीष्म, अंजना शर्मा, डॉ पदमा शर्मा, कादंबरी मेहरा, कुसूम अंसल, एस.आर.हरनोट, सलाम बिन रजाक, राही मासुम रजा, और किरण सिंह आदि का समावेश है।

वर्तमान हिंदी साहित्यकारों में उदयोन्मुख कहानीकार किरण सिंह का नाम एक सिरीयस कहानीकार के रूप में लिया जाता है। उनके पात्र जीवन के संघर्ष से तथा मृत्यु के भय से भयभीत होकर पलायन नहीं करते तो सीधे समस्या तथा विपदाओं से दो हाथ करने पर उतारु होते हैं। अपने जीवन की विकटतम स्थितियों में भी जिंदगी जीने की एक ललक लेकर जीते हुए दिखाई देते हैं। किरण सिंह में 'यीशु के किलें' नाम से प्रकाशित कहानी संग्रह में हत्या, कथा सावित्री सत्यवान की, ब्रम्हाबाघ का नाच, देश-देश की चुड़ैलें, द्रौपदी पीक, बीमार आदमी की औरत, रोज और संज्ञा आदि कहानियों का समावेश है। इसमें संज्ञा यह कहानी किन्नर जीवन की विडंबना को व्यक्त करनेवाली उनकी एक चर्चित कहानी है, जो सन २०१२ में 'हंस' पत्रिका में भी प्रथम बार प्रकाशित हो चुकी है! इसी कहानी पर उन्हें रमाकांत स्मृति पुरस्कार और प्रथम हंस कथा सम्मान प्राप्त हो चुके हैं!

संज्ञा कहानी का मुल चरित्र संज्ञा ही है, जिसने किन्नर रूप में जन्म लिया है, फिर भी वह जीना चाहती है, अपने तरीके से अपनी शर्त पर लेकिन उसे पता नहीं है कि, स्वाभाविक जीवन और अस्वाभाविक जीवन होते क्या हैं। संज्ञा चौगाँव के मशहूर वैद्य जी की एकमात्र ऐसी संतान है, जो उनके शादी के आठ साल बाद पैदा हुयी है। उसके जन्म लेतेही वैद्य जी और उनकी पत्नी सामाजिक भय और डर से चिंतित हो जाते हैं, क्योंकि संज्ञा न तो पुत था न धिया याने पुत्री वह कुछ और ही जन्म ले चुका था। इस लिए प्रसव पीड़ा से कहारती पत्नी जब उनसे पूछती है की लडका है या लडकी तब वैद्यजी उसे कहते है-"पत्ता नहीं! पत्ता नहीं, पत्ता नहीं"। वैद्यजी और उनकी पत्नी के सभी सपने संज्ञा के रूप में हिजड़ा पैदा होने के कारण चकन्नाचूर हो जाते हैं। संज्ञा के भविष्य और अपने इज्जत के कारण दोनों पति-पत्नी चिंताग्रस्त हो जाते हैं। वैद्यजी पत्नी को धीरज देते हुये कहते है-"संतोख रख वैद्याईन! आठ बरस बाद कोई पानी पूछने वाला तो आया है घर में"। २

वैद्यजी चौगाँव की जानी मानी हस्ति होने के कारण उनको बेटी होने की खबर पूरे गाँव को लग जाती है। गाँव का हर व्यक्ति घर आकर खुशी प्रगटकर बेटी को देखना चाहता है तब वैद्यजी और उनकी पत्नी अनेक बहाने बनाकर संज्ञा को उनसे दूर ही रखते हैं क्योंकि गांववालों को पता चला की संज्ञा न लडका है न लडकी तो उनको अपनी एकमात्र संतान से हाथ धोना पड़ेगा, उपर से पूरे गाँव में बेइज्जती हो जायगी वह अलगा। इस तरह संज्ञा की चिंता उसके माँ-बाप को दिन-रात खा रही थी। इसी चिंता में संज्ञा की माँ चल बसती है। पत्नी का अंतिम संस्कार दिन में किया तो संज्ञा को किसी न किसी औरत के पास छोड़ना पड़ेगा, केवल इसी डर से वैद्य जी उसकी चिंता अकेले ही रात में रचकर आपनी पत्नी को अंतिम बिदाई अपने दुःख को पीते हुये देते हैं। अब वैद्य जी पर अपने इस अभागे संतान की चोरी-छिपे परवरीश करने की पूरी जिम्मेदारी आ जाती है। जिसका परिणाम वैद्य जी के व्यवसाय पर पड़ता है, वैद्य जी बिचारा क्या कर सकता है, वह न तो संज्ञा को दिन भर घर में बंदी बनाकर रख सकते हैं और न ही किसी दूसरे के घर पर रख सकते हैं परिणामतः उनका वैद्य का व्यवसाय बंद करना पड़ता है। जिससे आर्थिक कठिनाई का सामना उन्हें करना पड़ता है। -"रोगी आने बंद हो गए, वैद्य जी के घर का एक एक सामान गाँव वालों के हाथ जोन्हरी, और कोंदों के बदले बिकने लगा"।¹³ अपनी इस दुरावस्था से उबरने और संज्ञा के लालन-पालन करने के लिए वैद्य जी अपना पुराणा वही व्यवसाय आरंभ करते हैं। तरह-तरह की वनऔषधियों को घर पर लाकर उसका काढ़ा,चूर्ण बनाते हैं,जिसे प्रत्यक्ष देख छुकर संज्ञा को भी इन वनऔषधियों की अच्छी जानकारी हो जाती है किंतु मरीजों को दवा देत समय वैद्य जी संज्ञा को घर की एक कोठरी में बंद करने के लिए मजबूर हो जाते हैं क्योंकि, संज्ञा की असलियत का पता समाज को चल जाएगा तो किन्नर समुदाय के लोग उसे उनसे छिनकर हमेशा हमेशा के लिए ले जाएंगे, इस लिए वे अपने दिल पर पत्थर रखकर उसे अंधेरी कोठरी में बंद कर देने में ही आपनी और उसकी भलाई समझते हैं।

संज्ञा जब बड़ी होने लगती है वैसे वैसे वह इस अंधेरे से बाहर आकर आपने हम उम्र बच्चों के साथ खेलने की जिद पकड़ती है परंतु उसका पिता जिन्हें वह बउदी कहती हैं वे कुछ न कुछ कारन बताकर उसे घर में ही रखते हैं, संज्ञा के द्वारा जादा जिद करने पर वे अपनी घर की दीवार में एक खिडकी लगाकर और उसपर एक ऐसी जाली लगाते हैं जिसमें से बाहर का सबकुछ तो दिखता है पर बाहर से अंदर का कुछ भी दिखाई नहीं देता और संज्ञा से कहते हैं तेरे लिए बाहर की दुनिया ठिक नहीं है, तु इस खिडकी से जितना देख सकती है देख ले लेकिन घर से बाहर कभी मत निकलना। संज्ञा इस खिडकी से हँडपम्प पर पानी भरती-नहाती लडकी-लडकों को देखकर अपनी तुलना उन से करना आरंभ करती हैं कुछ ही दिनों में उसे यह एहसास होता है की वह अन्य लडके और लडकीयों जैसी नहीं तो कुछ अलग ही है। अपने पिता बउदी से वह कहती है-"ये छौड़े-छौड़ी इसी धरती के है न? फिर इनका सब कुछ मेरे जैसा क्यों नहीं! ऐसा तो नहीं की मुझ में ही गडबडी है।"¹⁴ इस प्रकार जब उसे स्वयं के असलियत का पता चलता है तब वह अपने पिता के आयुर्वेद की पोथियों पढकर अपनी समस्या को दूर करना चाहती है, परंतु उसे आपनी इस समस्या का हल नहीं मिलता वह उदास हताश होकर घोर आत्मविचिन्ता में जाती है। जैसे -"बाउदी ने तो यही बताया है कि चरक, सुश्रुत, धनवंतरी से कुछ भी छुटा नहीं है।..... लेकिन जो तकलिफ संज्ञा को है, कहीं उसका चर्चा नहीं नाम निशान कुछ नहीं।"¹⁵

संज्ञा को अपनी अंधेरी कोठरी में रहकर दाल-रोटी, सालन, सब्जी बनाते, वनऔषधी को पीसकर दवा बनाते अब चौदह बरस की हो गयी है। उसके हम उम्र लडकियों जब हँडपम्प आकर नहाने लगती है, तब उन्हें देखकर वह अनुभव करती है की उसके साथ की "लडकियों के अंग जब मुलायम और गदरारे हो रहे थे। उस समय संज्ञा का बदन तेल पीए हुए लाठी की तरह लंबाई नाप रहा था, उँचाई के नाम पर सिर्फ गोठे उभर रही थी। उसकी नसें बैंगनी और त्वचा मोटी हो रही थी। उसकी टुडडी और होठों के उपर भुरें रोंएँ उग रहें थीं। गालों की हड्डियाँ उभर थी और चेहरा तिकोन में लंबा हो रहा था। किन्तु एक अंग वैसा ही था, सुई की नोक के बराबर।"¹⁶ यही से संज्ञा के मन और मस्तिष्क में एक बवंडर उठता है, वह अपने शरीर को लेकर मानसीक और भावनीक स्तर पर हिल जाती है। अपने निचले अंग को पुर्ण करने के लिए ढिबरी की लौ पर चाकु गरम कर उसे अपने दोनों जोंघ के बिच घुसा देती है-"सॉस रोक। और चाकु की फला धँसा लिया। वह लंबान में चीर देने के लिए ताकत लगाना चाहती थी। लेकिन चाकु धँसने के साथ ही बदन निचुडे कपडे की तरह ऐँठने लगा।"¹⁷ वह दर्द से कहारते हुये अपने बाउदी को पुकारती है, वैद्य जी कई दिनों तक उसके घाव को नीम के पानी से धोते और लेप लगाते रहें। तब संज्ञा को उसकी वास्तविकता को समझाते हुये समस्त हिजडा जमात की दर्दनाक जीवन संघर्ष से आवगत कराते हैं हुये कहते हैं-"तुम बंश नहीं बढ़ा सकती।.... इस धरती के बासिन्दो ने तुम्हारी जाति के लिए हलाहल नरक की व्यवस्था की है। उस नरक के लोग पहाडी पर तुम्हारे जन्म के सात साल बाद आ कर बस गए हैं। वे लोग कपडे उपर उठा कर नाचते हैं और भीख माँगते हैं। लोग उन्हें गालियाँ देते हैं, थुकते हैं, उनके मुँह पर दरवाजा बंद कर लेते हैं, उन्हें घेर कर मारते हैं। वे जिस इलाकें में बसें हो वहाँ कोई भी अपराध हो, इन पर ही इलजाम लगता है। वे डरे और जले हुए लोग अपनी बिरादरी बढ़ाना चाहते हैं। तुम्हारे बारें में पत्ता चल गया तो वो लोग तुम्हें छीनने आ जाएंगे और चौगाँव के लोग तुम्हें घर से खींच कर उनके साथ भेज देंगे।" ¹⁸ समाज इस प्रकार हिजडों के साथ दुर्व्यवहार करता है, यह भली भाँति वैद्य जी जानते थे इसलिए वह संज्ञा को मरते दम तक आपने पास ही रखना चाहते थे। यही कारन है कि जब उसके उम्र की लडकियों की शादियाँ हो रही होती तब वे उस के लिए अपने घर के पीछे के बैरी के जंगल में एक पगडंडी बनाते हैं और गाँव वालों को डकैत का डर दिखाकर उधर न जाने कि सलाह देते हैं ताकि संज्ञा रात के समय घर से

बहार निकल कर, खेत, खलिहान, नदी तक जाकर घुम फिर सकें, अलग-अलग प्राणी, पंछियों को देख-सुनकर उसका जी बहल जाये।

संज्ञा दिनभर घर के सारे काम करके रातभर उत्साह से भरकर घुम लेती और भौर होने से पहले अपने पिता ने बताई वनऔषधी लेकर घर आ जाती। उसे आपने इस नये जीवन का आनंद आ रहा तो और अपने पिता के प्रति आदर अधिक होने लगा था। संज्ञा को खुश देखकर वैद्य जी की चिंता कम होने लगती और वे गोंव वालों द्वारा उसके शादी की बात को कोई न कोई बहाना बनाकर टाल देते हैं, लेकिन ऐसा कब तक चलेगा एक न एक दिन सत्य सबके सामने आयेगा ही इसे लेकर वे हमेशा परेशान रहते हैं।

अपनी परेशानी से मजबूर होकर वैद्य जी संज्ञा की शादी ललित महाराज ने गोंद लिये बेटे कनाई से करते हैं। यह कनाई पुरुष होकर भी किसी काम नहीं हैं क्योंकि बसुकि से चक्कर चलाने के कारन उसके भाइयों ने कनाई को मार पीट कर उसका लिंग ही काट दिया था। तो दुसरी ओर ससुर ललित महाराज स्वयं को राधा मानकर स्त्री वेश पहन कर आठों पहर श्याम सखा की भक्ति में लिन रहते हैं। इसी लिए उन्होंने ने कनाई को गोद लिया था। फिर भी कनाई और ललित महाराज को समाज में इज्जत और प्रतिष्ठा थी किंतु संज्ञा जो प्रकृतिक रूप से ही जन्म ले चुकी थी उसके लिए समाज में कोई इज्जत, प्रतिष्ठा नहीं थी। अपने पति और ससुर की वास्तविकता जानकर भी संज्ञा ससुराल में घर का सारा काम समय पर एक पतिव्रता नारी की तरह करती है। सांस-ससुर की सेवा करती है। अपने पिता को इस क्रूर समाज के आगे गर्दन न झुकानी पड़े इस लिए संज्ञा अपनी नियती और प्रताड़ना को स्वीकार कर अपने घर वालों के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करती दिन-रात परिश्रम करती है। कनाई का इलाज करवाने के लिए उसकी आमदनी बढ़ाना चाहिए यह ध्यान में आते ही वह उस के साथ खेतों में जाकर फसल के नये-नये प्रयोग कर जादा अनाज उगाती है। इतना ही नहीं तो गोंव की औरतो को भी ज्यादा से ज्यादा अनाज किस प्रकार उगाया जा सकता है इसका मार्गदर्शन करती है। अपने आर्युवेद के ज्ञान से बीमार औरतो को वनऔषधीयों देकर स्वस्थ करती है। परीणामतः उसके पति कनाई की आमदनी बढ़ने लगती है और गोंव के औरतो की वह अच्छी सहेली बन जाती है। उसकी दवा से गोंव की बीमार औरते, बच्चे, पुरुष अच्छे होने लगते हैं। वे सभी उसे अपना हर दुःख दर्द बताने लगते हैं। इस प्रकार गोंव के हर मर्ज की दवा बनी संज्ञा अनायास ही गोंव के हर एक व्यक्ति के चाल-चलन और चरित्र से वाकिफ होती है। इसी कारन गोंव में उसे थोड़ा बहुत आदर समान्न प्राप्त होने लगता है फिर भी वह अपने जीवन का सत्य हमेशा छिपाकर रखती है। अपने मुँह पर घुंघट ओढ़े रहती है, अपने शरीर का कोई भी हिस्सा वह किसी के भी नजर में आने नहीं देती। इस प्रकार संज्ञा अब केवल अपने पति कनाई की नहीं तो पूरे गोंव की अहम आवश्यकता बन जाती है।

संज्ञा के आचरण और परिश्रम पर उसका पति कनाई, सांस, ससुर सभी सुख भोग रहे हैं। गोंव के हर स्त्री-पुरुष के हर मर्ज की दवा उसके पास थी, लेकिन स्वयं के नियती को बदले की दवा उसे अभी तक नहीं मिली थी। एक दिन असलियत को बाहर आना ही था। बसुकि की पर उसके चेहरे भाई पहवारी ने जबरदस्ती कर गर्भवति किया और उसका इल्जाम कनाई पर डाल कर बसुकि के भाइयों को लेकर खुद उसे मारने के लिए कनाई के घर लाठीयों लेकर पहुंचता है। तब कनाई बसुकि के भाइयों के डर से तथा अपने को बचाने के लिए ऐसा न फरामोश होकर इक्कठा हुये सभी लोगों के सामने संज्ञा के औरत न होकर हिजडा होने के सत्य को बतलाता है। तब बसुकि के भाई और गोंव वाले भी उसे न्याय देने का भुलकर कनाई और पहवारी को छोड़कर बेचारी निर्दोष संज्ञा को ही उलटे पकड़कर गाली-गलौच करते, मारते, पीटते, घसीटते, कौटो पर रगड़ते गोंव के बाहर की पहाड़ी पर ले जाते हैं। वहाँ पर संज्ञा का ससुर उसे बचाने की अपेक्षा अपनी अध्यात्मिकता दिखाता हुआ पुरुष से स्त्री बना ललित महाराज जो उसी के श्रम पर पला वही उसे बेइज्जत करते हुये कहता है-“वह तीस साल से सबको धोका देकर हमारे बीच रही है। उसने चौगाव की माटी को बन को ...नदी को मैला किया है। उसने मेरे देवथान को अपवित्र किया है। इसको नग्न करके इसका बाल मुँडा दो। मुँह पर कालिख पोत कर पूरे चौगाव में मारते हुए घुमाओ। उसके बाद उन लोगों को खबर कर दो इसे आकर ले जाएँ”।^८

गोंव वालों के लात, घुसे की मार से संज्ञा खून, माटी और धुल से सन जाती है। उसके बदन के कपडे चिन्दी-चिन्दी हो गये थे। वह मरनासन्न अवस्था में निचेस्ट पहाड़ी पर पड़ी थी। तब अचानक उसके आंदर चेतना जागृत होती है वह स्वयं से हि कहती है-“जिस सच्चाई को छिपाने के लिए तीस साल मैं और मेरा बुढ़ा बाप, हर पल डरते रहे, उस सच्चाई के खुलने का ही डर था, अब खुल गई तो कैसा डर! अब कोई डर नहीं”।^९ फिर वह उठकर खड़ी हो जाती है और धीरे गंभीर आवाज में गोंव के सभी मर्दा की पोल खोलते हुये कहती है-“तुम सब मर्द हो? ये ललिता महाराज आदमी है और मैं हिजडा? ये कनाई जो अपनी प्रेमिका की थुंभी नहीं बन सकता? वो बसुकि का चचेरा भाई जो उसके साथ रोज जबरदस्ती करता था जिसे डर था कि बसुकि कनाई के साथ भाग न जाये, वो बड़ा मर्द है। मैं गर्भपात की औषधी लेकर रोज रात को न बैठू तो तुम मर्दों के मारे चौबासे की लडकियों को नदी में कूदने के सिवाय क्या रास्ता है? तुम सबके मर्दानगी-जनानगी के किस्से नाम लेकर सुनाउ क्या? चौगाव के एक एक आदमी की जन्म कुंडली है मेरे पास न मैं तुम्हारे जैसा मर्द हूँ। न मैं तुम्हारी जैसी औरत हूँ मैं वो हूँ जिसमें पुरुष का पौरुष है और औरत का औरतपन। तुम मुझे मारना तो दूर, अब छू भी नहीं सकते क्योंकि मैं एक जरूरत बन चुकी हूँ। सारे

चौगाँव ही नहीं आस-पास के कस्बे-शहर तक मैं ही हूँ जो तुम्हारी जिंदगी बचा सकती हूँ। अपनी औषधियों में अमरित का सिफत मैंने तप करके हासिल किया है। मैं जहाँ जाऊँगी, मेरी इज्जत होगी। तुम अपनी सौचो! "६

इस प्रकार संज्ञा के चरित्र के द्वारा किन्नर के जीवन संघर्ष को किरन सिंह जी ने प्रस्तुत कहानी में यथार्थ के आलोक में उद्घाटित करने का साहस पूर्ण काम किया है, संज्ञा की नायिका संज्ञा जीवन के आखरी क्षण तक संघर्ष करने में विश्वास रखती हैं किन्नर होने के कारण अपने संपूर्ण जीवन में उसे उपेक्षा, प्रताड़ना झेलनी पड़ती हैं तो दुसरी ओर अपने शरीर के प्राकृतिक बदलाव के कारण भी उसे समय-समय पर भावनात्मक और मानसिक स्तर पर संघर्ष करना पड़ता है। इस प्रकार किन्नर जीवन के दोहरे संघर्ष की व्यथा को सशक्त रूप से संज्ञा के चरित्र द्वारा किरन सिंह जी ने अभिव्यक्त किया है। इस कहानी का शिल्प और भाषा हमें फणिश्वरनाथ रेणू की बरबस याद दिलाती है।

संदर्भ

१ हंस पत्रिका - सितंबर २०१२



जीवित मनुष्य के अंधेरी दुनिया का काला सच : तीसरी ताली

डॉ. सुरेश तायडे
हिंदी विभागाध्यक्ष
मू. जे. महाविद्यालय (स्वशासी)
जलगाँव-425002

प्रस्तावना :

किन्नर समुदाय को देश में 'तृतीय लिंग' या 'थर्ड जेंडर' के रूप में संवैधानिक मान्यता मिले हुए भले ही कुछ वर्ष बीत गये हो लेकिन अभी भी समाज में थर्ड जेंडरों की दशा वैसी की वैसी है। वे आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक दृष्टि से आज भी पिछड़े ही हैं। आज भी समाज उनकी ओर हीन और तिरस्कृत नजरों से ही देखता है। "लैंगिक आधार पर मानव मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित है - एक स्त्री तो दूसरा पुरुष। इन दो वर्गों के साथ मानव जाति में एक अन्य लिंग भी है - अर्थात् तृतीय लिंग। तृतीय लिंगी मानव के लिए समाज में हिजड़ा अथवा किन्नर इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। ये न पूर्णतः स्त्री होते हैं और न ही पुरुष। इन के कुछ अंगों का नियत अनुपात में विकास न होने के कारण ये लोग आम स्त्री-पुरुष के समान कुछ काम नहीं कर पाते। इन्हें अन्य नामों से भी जाना जाता है, जैसे - छक्का, खोजा, हिजरा, नपुंसक, थर्ड जेंडर, ट्रान्सजेंडर, पवैया, कोज्जा आदि। डॉ. किरण ग्रोवर लिखत हैं - "इन दो विपरित लिंगों को ही सृष्टि का आधार स्तंभ माना जाता है। समाज के तृतीय लिंगी किस तरह समाज के विकास के केंद्र से हाशिए पर जीवन यापित करते हैं, समाज में हिजड़ा समुदाय की स्थिति अत्यंत दयनीय है।"¹ अस्पष्ट लैंगिक पहचान वाला यह वर्ग संसार के सभी समाजों में कहीं कम तो कहीं ज्यादा के अनुपात में शोषण और अवहेलना का शिकार बनता आया है।

---- स्त्री-पुरुष से इतर तीसरी योनि के लोगों की ऐसी दुनिया है जो समाज के हाशिए पर जिंदगी बसर करती हर शहर में मौजूद है। जेंडर स्पष्ट न होने के चलते समाज से बहिष्कृत एवं दण्डित ये लोग अपनी पहचान के लिए संघर्षरत हैं। "असामान्य (नपुंसक) लिंगी होना ही इनके लिए सबसे बड़ा अभिशाप है। अकेलापन इनकी नियति है। आजीविका इनके समक्ष एक विकराल समस्या है।"² तीन ताली की थाप पर नाच-गा कर खुशियाँ बांटने वाले किन्नरों के त्रासद जीवन का अजिबोगरीब सच यह है कि बच्चा न जन सकने वाले किन्नर, हमारे बच्चों पर पड़नेवाले काले साये से उन्हें दूर रहने का आशिर्वाद देते हैं। उनका आगमन हमारे घरों में शुभ माना जाता है मगर समाज अशुभ की तरह उपेक्षित-अपमानित जीवन जीने के लिए छोड़ देता है।

'तीसरी ताली' प्रदीप सौरभ का दूसरा उपन्यास है। यह उपन्यास वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 2010 में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास का थीम सब से अलग, अनूठा और अछूता है। समाज की संरचना स्त्री और पुरुष के बिना संभव नहीं। इन्हें सृष्टि की दो हथेलियाँ या दो तालियाँ कह सकते हैं, जो आपस में बजकर आनंद का संचार करती हैं। तालियाँ बजाकर हम अक्सर अपनी खुशी का इजहार करते हैं। याने तालियों की सिफत हमें आपस में जोड़ती है, उल्लास पैदा करती है। शायद इस कारण जब सृष्टि की 'तीसरी ताली' बजती है तो उस पर ध्यान नहीं जाता। जाता भी है तो थोड़ी देर के लिए। अक्सर उसके शोर को, उसके उल्लास को अनदेखा कर दिया जाता है या निरर्थक समझ लिया जाता है। इस बोध के कारण ही समाज में तीसरी ताली के लिए अर्थात् हिजड़ों के लिए कोई जगह नहीं बनती। "हिजड़ें अपने उपेक्षित और तिरस्कृत समय के सबसे करुण पात्र हैं। समाज अपने हिस्से की रोटी देकर इन्हें जिंदा रखना चाहता है, मगर सम्मान नहीं देना चाहता।"³

'तीसरी ताली' उपन्यास वर्जित दुनिया का एक साहसिक उपन्यास है जो जेंडर को लेकर समाज में मौजूद अलगांव को दर्शाता है, समस्याओं से जूझने के बावजूद समाज में जीन की ललक से भरपूर दुनिया का परिचय करवाता है। 'तीसरी ताली' याने ऐसी ताली जिसे समाज में कभी मान्यता नहीं मिली। "जिनकी दुआएँ पाने के लिए लोगों में इच्छाएँ जरूर हैं, लेकिन उन्हें देखकर दूर हट जाने वाले लोगों की लंबी जमात, हमारे समाज में मौजूद है।"⁴ इस सच को प्रदीप सौरभ ने

1) www.sarahadEpatrika.com, Vol.-I, Issue-IV, July-Sep. 2016

2) थर्ड जेंडर : तीसरी ताली का सच - संपा, डॉ. शगुप्ता नियाज़ (रैंपर)

3) थर्ड जेंडर : तीसरी ताली का सच - संपा, डॉ. शगुप्ता नियाज़, पृ. 25

4) m.aajtakinHindinewskitabonkiduniya-Book review

‘मुन्नी मोबाईल’ के बाद अपनी दूसरी कृति ‘तीसरी ताली’ में उजागर किया है। यह किताब उभय लिंगी-हिजड़ों और लेस्बियन की हाशिए पर बसर हो रही जिंदगी की कहानी बयां करती हैं। किन्नरों का जीवन क्या है और कैसे गुजर बसर होता है, इसी पर आधारित है - ‘तीसरी ताली’। ‘तीसरी ताली’ में अकेलापन है, जिसे सभी चरित्रों के जीवन में देखा जा सकता है। किताब के बारे में किताब के फ्लैपपर लिखी पंकज पचौरी की टिप्पणी बहुत सटिक है। वह कहते हैं - "यह उभय लिंगी सामाजिक दुनिया के बीच और बरक्स हिजड़ों, लौंडों, लौंडेबाजों, लेस्बियनों और विकृत-प्रकृति की ऐसी दुनिया है जो हर शहर में मौजूद है और समाज के हाशिए पर जिंदगी जीती रही है।"⁵ पूरे भारत में फैली यह दुनिया समान्तर जीवन जीती है। प्रदीप सौरभ ने इस दुनिया के उस तहखाने में झांका है जिसका अस्तित्व सब मानते हैं लेकिन जानते नहीं। समकालीन ‘बहुसांस्कृतिक’ दौर के ‘गे’, ‘लेस्बियन’, ट्रांसजेंडर, अप्राकृतिक यौवनात्मक जीवन शैलियों के सीमित सांस्कृतिक स्वीकार में भी यह दुनिया अप्रिय, अकाम्य, अवांछित और वर्जित दुनिया है। यहाँ जितने चरित्र आते हैं वे सब नपुंसकत्व या परलिंगी या अप्राकृत यौवन वाले ही हैं। परिवार परित्यक्त समाज बहिष्कृत-दंडित ये ‘जन’ भी किसी तरह जीते हैं। असामान्य लिंगी होने के साथ ही समाज के हाशियों पर धकेल दिये गये, इनकी सबसे बड़ी समस्या आजीविका की है जो इन्हें अंततः इनके समुदायों में ले जाती है। इनका वर्जित लिंगी होने का अकेलापन ‘एक्स्ट्रा’ है और वही इनकी जिंदगी का निणायक तत्व है। अकेले-अकेले बहिष्कृत ये किन्नर आर्थिक रूप से भी हाशिये पर डाल दिये जाते हैं। कल्चरल तरिके से ‘फिक्स’ दिये जाते हैं। यह जीवन शैली की लिंगीयता है जिसमें स्त्री लिंगी - पुलिंगी कहा कैसे जाएंगे? समाज का सहज स्वीकृत हिस्सा कब बनेंगे? "यहाँ वर्जित समाज की फुर्तीली कहानी है, जिसमें इस दुनिया का शब्दकोश जीवित हो उठा है। लेखक की गहरी हमदर्दी इस जिंदगी के अयाचित दुःखों और अकेलेपन की तरह है। इस दुनिया को पढ़कर ही समझा जा सकता है कि इस दुनिया को बाकी समाज, जिस मर्मम, क्रूरता से ‘डील’ करता है वही क्रूरता इनमें हर स्तर पर ‘इनवर्ट’ होती रहती है।"⁶ इनकी जिंदगी का हर पाठ आत्मदंड, आत्मक्रूरता, चिरयातना का पाठ है।

यह कहानी उन लोगों की है जिन्हें समाज के ज्यादातर लोग गिरी नज़र से देखकर उनका मजाक उड़ाते हैं। सामाजिक हाशिये पर रहनेवाले ऐसे लोग हैं; हिजड़ें, लौंडें, लौंडेबाज वगैरह। ऐसे लोग हर शहर में मिल जाते हैं। उनकी अपनी अलग दुनिया है। जिसपर भागम-भाग में लगे लोगों का शायद ही ध्यान जाता हो। आम लोगों के लिए यह वर्जित दुनिया है। समाज से बिल्कूल बहिष्कृत और दंडितों जैसा जीवन जीने को मजबूर ये लोग अपनी रोजी-रोटी कमाने के लिए ही ऐसे समाजों का रूप ले लेते हैं।

इस उपन्यास की कहानी की शुरुआत गौतम साहब के चरित्र से होती है। जिनके घर बेटा हुआ है, लेकिन ये हिजड़ों के लाख तीसरी ताली बजाने के बाद भी दरवाजा नहीं खोलते हैं। क्योंकि गौतम साहब आनंदी आंटी के किरदारों ने उन माँ-बाप का दर्द भी बयाँ किया है जिन्हें बच्चा होने पर खुशी मनाने का हक बच्चे के लिंग पर निर्भर करता है। बच्चा उभलिंगी है तो यह एक महापाप है। जिसे दुनिया से बचाते-छिपाते गौतम साहब, आनंदी आंटी अपनी जिंदगी के कई साल तो काटते हैं, लेकिन समाज उनके दर्द को समय के साथ नासूर बना देता है। जिसका अंत आत्महत्या जैसे कृत्य पर होता है। यूँ तो हर किरदार बहुत ही बखुबी से एक नये सच और दर्द को बयाँ करता है लेकिन सबसे अंत तक एक किरदार जीवंत होकर भी मृत होने की कहानी बयां करता है। वह है विनीत नहीं विनीता। हां यहीं है उसके जीवन का अधूरा सच जो उसे कामयाब भी बनाता है। लेकिन उसे दे जाता है जीवन का खालीपन।

लेखक ने समाज में तीसरे लिंग के रूप में पहचान रखनेवालों के जीवन को इतने करीब से छुआ है कि शायद ही कोई रेशा हो जो हाथ नहीं लगे। सब से खास बात यह है कि इस समाज में जिसे हम समाज का हिस्सा नहीं मानते उनकी अपनी समस्या है। जैसे कि हिजड़ों के बूढ़े हो जाने पर गद्दी के उत्तराधिकारी की समस्या, आधुनिक समाज की रिवायतों के चलते हिजड़ों का सेक्स रैकेट में जुड़ना। "यह उपन्यास प्रदीप सौरभ के जैव आवेगों का भाषागत विस्फोट है, जिसे उनकी आत्मा का प्रस्वेद भी कह सकते हैं।"⁷ ‘तीसरी ताली’ में हिजड़ों, समलैंगिकों के सामाजिक जीवन का मंथन खुलकर अभिव्यक्त हुआ है। प्रदीप सौरभ ने न सिर्फ खुलकर हिजड़ों या समलैंगिकों के समाज की आलोचना की है, प्रत्युत उनके सुधार अथवा किसी सामाजिक परिवर्तन को अपना ध्येय रखा है। किन्नर हमारी खुशियों में थिरकता है और अपने हाथों

5) तीसरी ताली, प्रदीप सौरभ, फ्लैप (रैपर)

6) prakashanblog.blogspot.com - Sudhis Pachouri

7) India Today, Pustak Samiksha (29 जानेवारी - 4 फरवरी, 2011), पृ. 69

को हमारी सलामती की दुआ मांगने के लिए उठाता है फिर भी उसके हिस्से अपमान एवं तीरस्कार ही आता है ।⁸ हिजड़ा शब्द सुनते ही हमारी आँखों के सामने कमर लचकाते, तालियाँ बजाते, भद्दा मजाक करते, ट्रेनों और सिग्नलों पर भीख मांगते, चमकीली साड़ियाँ व बड़े-बड़े झुमके पहने, विचित्र रंगरूप को धारण करनेवाले व्यक्ति की छवि आती है । इसे सभ्य समाज में कोई भी अपने पास नहीं बिठाना चाहता ।

उपन्यास के प्रारंभ से ही लेखक समस्याओं का चित्रण करता है । ऐसी समस्याएँ जो आज हमारी जिंदगी में पैठ बना चुकी हैं । कुछ समस्याएँ शहर और गांव में लगभग एक-सी हैं । कथा शुरू होती है सिद्धार्थ एनक्लेव से, जहाँ गौतम साहब के घर लडका होने पर हिजड़े अपना नेग मांगते हैं । किंतु अफसोस वहाँ उनको कुछ नहीं मिलता । हिजड़ों में भी संवेदनाएँ होती हैं जब नेग न मिलने के कारण सुनयना गुरु डिम्पल से कहती है कि, "चलों इसके दरवाजे पर मूत देते हैं", लेकिन डिम्पल सुनयना को इस बात की इजाजत नहीं देती, वह कहती है कि हम हिजड़े जरूर हैं पर हमारे भी कुछ उसूल हैं ।⁹ डिम्पल में खुददारी के भी लक्षण दिखाई देते हैं । प्रदीप सौरभ ने अपने उपन्यास में एक कड़वे यथार्थ का प्रस्तुतीकरण किया है । संवेदना को गहराई का बोध करते हुए तमाम समस्याओं को उजागर किया है । उपन्यास की मूल कथा की बात करे तो एक कथानक हिजड़ों के जीवन को उजागर कर रहा है तो दूसरी ओर लौंडेबाजी, गे, कॉलगार्स, समलैंगिकता, लेस्बियन आदि विकृतियों को दर्शाता है । रोजी-रोटी व बेकारी की समस्या, भूख के लिए अपनी कला के बेचने की समस्या भी दिखाई देती है । "राजा ने अपनी आँखें बंद की और अपने गुरु से क्षमा मंगी की वह आज अपने पेट की आग बुझाने के लिए कथक की उपासना से विलग हो रहा है ।"¹⁰

हिजड़ों की अमानवीयता का दृष्टांत बहुत ही विभत्स है । डिंपल, मंजू का गर्भपात करा देती है । एक सीधा-सादा मर्द राजा से 'रानी' हिजड़ा बन जाता है । साथ ही ये भी पता चलता है कि मंजू हिजड़ा नहीं अपितु पूर्ण स्त्री थी । किन्तु लड़की होने के कारण उसके गरीब माँ-बाप ने उसे डिम्पल के हाथों बेच दिया था । "जहाँ राजा को क्रूरता के साथ हिजड़ा बना दिया जाता है वहीं दूसरी ओर ज्योति नाम का लडका भी भूख और गरीबी के कारण स्वयं हिजड़ा बन जाता है । ज्योति बाबू श्यामसुंदर सिंह का 'रखा' हुआ लौंडा था । "ज्योति एक लडका था - पूरा मर्द । नाच-गाना उसे पसंद था इसलिए उसके अंदर स्त्रीभाव जागृत हो गये थे । बाबूसाहब के साथ रहते-सोते वह अपने को स्त्री समझने लगा था ।"¹¹ हमारे समाज में गरीबी सबसे बड़ा अभिशाप है और उसपर 'दलित' हो तो दोहरी मार समझो ।

'तीसरी ताली' के केंद्र में स्त्री-पुरुष से इतर तीसरी योनि के लोगों की ऐसी दुनिया है जो समाज के हाशिये पर जिंदगी बसर करती हर शहर में मौजूद है ।¹² 'तीसरी ताली' उपन्यास किन्नरों की व्यथा-कथा का गायन करता है । प्रदीप सौरभ किन्नरों की स्थिति के लिये समाज को दोषी मानते हुए मानवीय आधार पर मूल्यांकन करे तो रोज तिलतिल कर मरनेवालों का नाम है 'किन्नर' । "किन्नरों का भी अपना एक समाज है, अपनी संस्कृति है, रीतिरिवाज है । प्रदीप सौरभ जी का उपन्यास 'तीसरी ताली' एक साहित्यिक उपन्यास है, जो जेंडर को लेकर समाज में विद्यमान अलगाव को उकेरता है ।"¹³ इस उपन्यास में एक ओर हिजड़ों का समाज है जहाँ मंजू को छोटी सी भूल की सजा, राजा को अपना लिंग कटवाना पड़ता है व दूसरी ओर हम समाज में बलात्कारियों को क्या सजा देते हैं ? सिर्फ कुछ दिनों की जेल या जुर्माना ... उसके बाद बलात्कारी फिर आजाद ! "लेकिन हिजड़ों के समाज में बिरादरी, गुरु का भय तो है ।"¹⁴ हमारे समाज में हिजड़ों से हर कोई पिछा छुड़ाना चाहता है, कोई भी उनके दर्द को सुनना, समझना व महसूस करना नहीं चाहता । हम यह भी नहीं जानते कि इनकी शारीरिक संचरना क्या है, इस समुदाय के नियम क्या है । इनकी आजीविका के साधन क्या है, इनकी बिरादरी का ताना-बाना क्या है, इनके जीवन का दर्द, इनकी मृत्यु के बाद होनेवाली रस्मों से झलकता है । इनका अंतिम संस्कार आधी रात को होता है, उससे पहले शव को जूते से पीट-पीटकर दुआ मांगी जाती है कि ऐसा जन्म फिर ना मिले । राज्यसभा चैनल के लिए बनाये गये वृत्तचित्र में 'किन्नर लोक का सच' में इस समुदाय की 'अनु' कहती है - "किसी को स्वास्थ्य गत समस्या होने पर डॉक्टर के पास जाते हैं तो डॉक्टर हम से पूछता नहीं है । हमारे देश में बाल रोग, स्त्रीरोग, नाक, कान,

8) थर्ड जेंडर और साहित्य, डॉ. एम. फिरोज खान, पृ. 47 (शर्मिला सक्सेना का लेख)

9) तीसरी ताली, प्रदीप सौरभ, पृ. 11

10) तीसरी ताली, प्रदीप सौरभ, पृ. 21

11) तीसरी ताली, प्रदीप सौरभ, पृ. 54

12) थर्ड जेंडर : तीसरी ताली का सच - संपा, डॉ. शगुफ़ता नियाज़, पृ. 35

13) www.sarhadepatrika.com, Vol.I, Issue-IV, Page 574

14) http://www.tisaridunia.com

गला रोग विशेषज्ञ है, लेकिन हमारा देश हिजड़ों के रोगों को देखने के लिए विशेषज्ञ तैयार नहीं कर पाया दरअसल यह तब का समाज सरकार और नीतिनियंताओं की सोच परिधि में नहीं आती।¹⁵

इस उपन्यास में डिंपल, राजू, रानी, चितकबरी, सुनयना, मंजू, पिकी, ज्योति, सोना जैसे अनेकानेक हिजड़ों की निजी जिंदगी की त्रासदी की खबर उपन्यासकार ने ली है, लेकिन बाजारवाद की चकाचौंध में इनमें से कई हिजड़ों ने अभिजात्य समाज में भी अपनी विशिष्ट पहचान निर्मित की है। मसलन विनीता और मंजू जैसे लोग 'गे' ब्यूटिशियन बनते हैं। भोपाल के विधानसभा में विधायक बनना भी इसका सशक्त उदाहरण है। उपन्यासकार ने उपन्यास के माध्यम से अभिजात्य समाज के ऊपर फैला चमकीली चादर को भी अनावृत्त किया है।

'तीसरी ताली' वस्तुतः वर्जित समाज की फुर्तीली कहानी है, जिसके विन्यास में कथाकार ने विशेष सजगता दिखाई है। तीसरी दुनिया के लोगों को बहुविध जीवन यथार्थ कथा वस्तु का मुख्य आधार है। दूसरी दुनिया के लोगों के आवाजाही इसमें बराबर बनी रहती है। "उपन्यास की उपलब्धि यह है कि इसका कथ्य हमारी असल दुनिया का सच है जिसमें हिजड़ा समाज के यातनामय जीवन के बरअक्स देश के विभिन्न शहरों, विशेषकर राजधानी दिल्ली की वर्तमान भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संरचना पूरी नग्नता और प्रामाणिकता के साथ अंकित हुई है।"¹⁶ 15 अध्यायों में बँटा यह उपन्यास अपने हर अध्याय में लैंगिक विसंगतियों में जीते जीवन की कहानियाँ और उसका संघर्ष का कोरा चिह्न है। यह उस दर्द की शाब्दिक अभिव्यक्ति है जो लगभग हर शहर में मौजूद है। लेखक उस दुनिया से साक्षात्कार करवाते हैं जिन्हें मानते तो सभी हैं परंतु उससे मुखातिब होने पर हर किसी को पसंद नहीं या यह हर किसी के बस की बात नहीं।" दरअसल इस जीवन की प्रतिध्वनियाँ इतनी क्रूर हैं कि इसे सभ्य समाज कभी अपनाता नहीं। इस दुनिया का अपना संविधान है, अपने निर्णय और अपनी यातनाएँ भी हैं। लेखक समाज के उस अंधियारे पक्ष पर रोशनी डालते हैं, जहाँ समाज का सफेदपोश और पूंजीपति वर्ग, इस वर्ग को सेक्स विकल्प के रूप में चुनता है। यह स्याह पगडंडियाँ इस वर्ग को भी चुननी होती हैं क्योंकि समाज इनके समक्ष कोई और आर्थिक विकल्प शेष नहीं छोड़ता।"¹⁷

निष्कर्ष - 'तीसरी ताली' उपन्यास किन्नरों के जीवन पर आधारित है। इस कृति को पाठकों और मीडिया ने बड़े जोर-शोर से सहारा। लेखक ने इस उपन्यास में अप्रत्यक्षित ढंग से खोज ही नहीं, बल्कि एक नई जमीं पर औपन्यासिक ढाँचा तैयार करते हुए प्रतिकार का लोकतंत्र निर्मित किया है। यह उपन्यास इस तीक्ष्ण दृष्टि का प्रमाण भी पेश करता है, जिसे औसत मनुष्य हरगिज प्राप्त नहीं कर सकता है। एक तरह से उपन्यास में आये ठहराव के विरुद्ध 'तीसरी ताली' नया प्रस्थान है। उपन्यास के नये प्रस्थान में यह उपन्यास हमारे उत्तर समय का वृत्तांत भी रचना नजर आता है। इस उपन्यास की अंतर्वस्तु अपने आप में बिल्कुल नयी है। जिसमें जेंडरेटर डिस्कोर्स के अलावा मुख्य तौर पर हिजड़ों, गे-समाज, समलैंगिक एवं बेघरों के निजी विडंबना का अंतर्पाठ है। प्रदीप सौरभ का प्रस्तुत उपन्यास हमें भाषायी समझ और संवेदना की गहराई का बोध कराते हुए यथा आवश्यक ऐंद्रियता का स्पर्श भी देती है। उपन्यास कार की पैनी दृष्टि गे, हिजड़ों, समलैंगिकों में दैहिक या मानसिक प्रेम की इच्छा और इन इच्छाओं को नजर अंदाज कर जबरन हिजड़ा बनाना आदि घटनाओं के परत दर परत खोलने के क्रम में अल्प कथन से काम लिया है। समग्रतः प्रदीप सौरभ का यह उपन्यास अंतर्वस्तु ही नहीं, रूपगत एकाग्रता को लेकर भी पाठक का ध्यान खींचता है। यह निरुद्धेश्य उपन्यास नहीं है, बल्कि उपन्यासकार की विचार सक्रियता का प्रमाण है।

15) पंजाब स्क्रीन Indian मानवाधिकार विमर्श में कहाँ खो जाती है तीसरे लिंग की आवाज.html

16) थर्ड जेंडर : तीसरी ताली का सच - संपा, डॉ. शगुप्ता नियाज़, पृ. 42

17) थर्ड जेंडर : तीसरी ताली का सच - संपा, डॉ. शगुप्ता नियाज़, पृ. 23

किन्नर विमर्श

शक्तिवीर सिंह

राजभाषा अधिकारी

बैंक ऑफ बड़ौदा क्षेत्रीय कार्यालय , मधुरै

आज विश्व भर में चर्चाओं और विमर्शों का समय है, हाशिये पर पड़े समाज को मुख्य धारा से जोड़ने हेतु मानवाधिकारों की पेरोकार स्त्री विमर्श, मुस्लिम स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, दिव्यांग विमर्श, आदिवासी विमर्श, प्रवासी विमर्श, मजदूर विमर्श, किन्नर विमर्श के हितों और अधिकारों की लड़ाई लड़ रहे हैं। “किन्नर समाज” के बारे में हम सभी की जिज्ञासा बनी रहती अक्सर किसी मांगलिक अवसर या सड़कों और ट्रेन में मिलने वाले यह किन्नर हैं कौन क्या वाकई देश की अरबों की जनसंख्या में इनका अस्तित्व है?। पौराणिक कथाओं की माने तो प्रभु श्री राम से किन्नर समुदाय को आशीर्वाद मिला था प्रभु श्रीराम जब 14 वर्ष का वनवास काटने के लिए अयोध्या छोड़ने लगे, तब उनकी प्रजा और किन्नर समुदाय भी उनके पीछे-पीछे चलने लगे थे। तब श्रीराम ने उन्हें वापस अयोध्या लौटने को कहा। लंका विजय के पश्चात जब श्रीराम 14 वर्षों बाद वापस अयोध्या लौटे तो उन्होंने देखा बाकी लोग तो चले गए थे, लेकिन किन्नर वहीं पर उनका इंतजार कर रहे थे। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर प्रभु श्रीराम ने किन्नरों को वरदान दिया कि उनका आशीर्वाद हमेशा फलित होगा। तब से बच्चे के जन्म और विवाह आदि मांगलिक कार्यों में वे लोगों को आशीर्वाद प्रदान करते हैं। किन्नर समुदाय का नाम सुनकर लगभग सभी के मन में एक अजीब से भावना जन्म लेती है। संसार में केवल दो लिंगों को मान्यता मिली है स्त्री-पुरुष, 2014 में सुप्रीम कोर्ट ने समाज के और समाज से बहिष्कृत लिंग “किन्नर” समुदाय “थर्ड जेंडर” नाम दिया गया। जिसने सदियों से तरह तरह की समस्याओं से रूबरू होते हुए “किन्नर समुदाय” की वेदना पर थोड़ा सा मरहम जरूर लगाया। जब किसी घर में किसी “थर्ड जेंडर” के बच्चे का जन्म होता है तो परिवार वाले उसे अपनाने से भी मना कर देते हैं, सामाजिक अवहेलना से न हो तो परिवार उस नवजात का ही त्याग कर देने में अपनी मुक्ति समझता है। निवेदिता झा अपनी कविता “किन्नर” में लिखती हैं कि -

“कोख तो तुम्हें भी जन्म देती है
अघोर प्रसव पीड़ा के बाद
पहली ही गोद तिरस्कार से फेर लेती है मुंह
मान गले से फिर भी लगाती है
सबसे राजदु लारे”

वर्तमान परिपेक्ष में नजर दौड़ाई जाए तो पिछले एक दशक में किन्नरों की समस्या, उनकी संवेदना, पीड़ा को बयां करने वाले उपन्यास और कहानियों ने समाज में काफी जगह बनाई है। अपेक्षित वर्ग पर काफी शोध कार्य भी हुआ है और हो रहा है। चित्रा मुद्गल का उपन्यास “**पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा**” (2016) जो की व्यक्तिगत रूप से मुझे बहुत प्रिय है। इसमें एक माँ अपनी संतान को किन्नरों से दूर रखने की भरसक कोशिश करती है लेकिन मजबूरी में विनोद आखिर “**बिन्नी**” बन जाता है और अपनी माँ के सपने को साकार करने की पूरी कोशिश करता है अपने अधूरेपन में भी यह संकल्प लेता है कि वो कुछ बनेगा और अपनी बिरादरी के लोगों को समाज में इज्जत दिलाने की भरपूर कोशिश करेगा।

भगवंत अनमोल का उपन्यास “**जिंदगी 50-50** (2017) को देखा जाये तो “किन्नर विमर्श” व्याप्त है, उपन्यास के नायक अनमोल के भाई हर्षा को किन्नर होने की व्यथा से दो चार होना पड़ता है इस अनुभव का कारण अनमोल अपने पुत्र सूर्य को उसी पीड़ा से दूर रखने का प्रण लेता है। भगवंत अनमोल ने अपने उपन्यास में साफ तौर पर यह दिखाया है कि किसी कि जिंदगी पूर्ण नहीं होती। सबकी जिंदगी कहीं न कहीं 50-50 अवश्य होती है तो केवल किन्नरों को बहिष्कृत क्यों होना पड़ता है?

प्रदीप सौरभ का उपन्यास “**तीसरी ताली**” एक साहसी उपन्यास है जो जेंडर को लेकर समाज में मौजूद अलगाव को दर्शाता है। किताब के बारे में किताब के फ्लैप पर लिखी पकंज पचौरी की टिप्पणी बहुत सटीक है। वह कहते हैं, ‘यह उभयलिंगी सामाजिक दुनिया के बीच और बरक्स हिंजड़ों, लौंडों, लौंडेबाजों, लेस्बियनों और विकृत-प्रकृति की ऐसी दुनिया है जो हर शहर में मौजूद है और समाज के हाशिये पर जिंदगी जीती रही है।’ जिसमें “तीसरी ताली” यानि ऐसी ताली जिसे समाज में कभी मान्यता नहीं मिली। जिनकी दुआएं पाने के लिए लोगों में इच्छा जरूर है, लेकिन उन्हें देखकर दूर हट जाने वाले लोगों की लंबी जमात भी हमारे समाज में मौजूद है। किताब को पढ़कर जो बात सामने आती है वह यह कि ऐसे लोगों के पास समाज में अपनी पहचान से ज्यादा बड़ा संकट अपनी जीविका को लेकर है। किन्नरों का जीवन क्या है और कैसे गुजर-बसर होता है, इसी पर आधारित है तीसरी ताली। तीसरी ताली में अकेलापन है, जिसे सभी चरित्रों के जीवन में देखा जा सकता है। प्रदीप सौरभ कि उपन्यास “तीसरी ताली” (2014) में गौतम अपने पुत्र को कुछ दिनों तक तो लोगों कि आँखों से बचा लेता है लेकिन सामाजिक अवहेलना के कारण उसे अपने पुत्र का त्याग करना पड़ता है। किताब का आखिरी पन्ना खत्म होता है विजय की कहानी पर जो एक पत्रकार है। सारी दुनिया के सामने अन्यथा की लड़ाई लड़ने और हर जोखिम उठाने का उसमें जज्बा है। मगर एक सच है जो वह दुनिया से

छिपाकर रखता है और यही वजह है कि वह समाज में इज्जतदार लोगों में गिना जाता है। लेकिन अंत में वह सच कहता है कि वह एक मुकम्मल पुरुष नहीं बल्कि हिजड़ा है। किताब के आखिरी पन्ने के साथ बेशक कहानी खत्म हो जाती है, लेकिन ऐसे कई सवाल समाज पर उठाती है। जिसके चलते एक तबके की जिंदगी नर्क बन चुकी है।

महेंद्र भीष्म का उपन्यास “किन्नर कथा” (2011) में एक प्रसंग है कि राजघराने में जन्म लेने वाले “सोना” उर्फ “चंदा” के राज को उसकी जननी बहुत समय तक सामने नहीं आने देती लेकिन जब उसके पिता को पता चलता है कि सोना किन्नर है तो उसे मरने का हुक्म देता है। इस उपन्यास में महेंद्र जी ने माँ की ममता और पीड़ा की स्थिति का वर्णन किया है। वो कहते हैं कि “संतान कैसी भी हो, उसमें शारीरिक, मानसिक कमी क्यों न हो, माता पिता को अपनी संतान हर हाल में भली लगती है, प्यारी होती है फिर भले ही वह संतान हिजड़ा ही क्यों न हो, फिर भी सामाजिक परिस्थितियाँ, खंडन की इज्जत-मर्यादा, झूठी शान के सामने अपने हिजड़े बच्चे से उसके जन्मदाता हर हाल में छुटकारा प लेना चाहते हैं। यह एक कटु सत्य है”।

मोनिका देवी के उपन्यास “अस्तित्व की तलाश में सिमरन” (2018) और “हां मैं किन्नर हूँ कांता भुआ किन्नरों की जीवन शैली पर आधारित हैं। विजेंद्र प्रताप सिंह और रवि कुमार गोंड द्वारा संपादित “कथा और किन्नर” 2018 की 25 कहानियों में किन्नर समाज की कथा, व्यथा कथा का वर्णन के अतिरिक्त किन्नरों के उत्थान हेतु मार्ग भी सुझाए गए हैं।

लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी जो भारतीय हिजड़ा समाज का प्रतिनिधित्व भी कर चुकी है, हिजड़ों व महिलाओं की समस्याओं को भी उन्होंने अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उठाया है उन्होंने अपनी आत्मकथा “मैं हिजड़ा ...मैं लक्ष्मी” में कहती हैं “ समाज नाम का जानवर तो तब भी खड़ा ही रहता है ...कनाडा में भी उन्हें बहुत-सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। समाज उन्हें झट से अपनाता नहीं है। परिवार ही जब नहीं अपनाता तो समाज क्या...हैं किसी की नौकरी चली जाती है, किसी को जान से मारने की धमकी दी जाती है ...फिर ट्रांसजेडर सर्जरी होने के बाद बहुत-से लोग नौकरियां बदलते हैं। प्रस्तुत अवतरण से स्पष्ट होता की किन्नर समाज के साथ हास्यात्मक व्यवहार भारत में नहीं बल्कि विश्व के अन्य देशों में भी इसी तरह का व्यवहार होता है।

डॉ. लवलेश दत्त की कहानी ‘नवाब’ चरित्र प्रधान कहानी है जिसमें कहानीकार ने हिजड़ों को करुणा, त्याग और प्रेम आदि गुणों से युक्त आम इंसान माना है। नवाब एक हिजड़ा होने के बावजूद लिंगोपासक समाज से कई गुना अधिक सक्षम हैं वह विशेष अवसरों पर घरों में जाकर बधाई देता है। संयोगवश उसे एक दिन एक मन्दिर के पास झाड़ियों में फेंकी हुई छोटी बालिका मिलती है तब वह उसका देखभाल करने की जिम्मेदारी लेता है और नवाब को मुख्यधारा के लोगों का विरोध भी सहन करना पड़ता है क्योंकि वे लोग उस पर चोरी का इल्जाम लगाते हैं इसके बावजूद भी वह हार न मानते हुए अपनी बेटी के रूप में अपनाता है। परन्तु लोगों की मानसिकता हमेशा स्त्री के प्रति शरीर भोगी वस्तु बनकर रही है इसलिए लिंगोपासक समाज हमेशा नारी के प्रति व हिजड़ों के प्रति नकरात्मक सोच बनाये उसे हाशियाकृत परिधि में रखते हुए उनका शोषण करते रहे।

अब तक किन्नरों से हमारी मुलाकात खुशियों के मौकों पर होती रही है। बस अड्डों पर, रेल्वे स्टेशन पर, सार्वजनिक जगहों पर पैसे मांगते दिख जाते हैं। मीडिया रेपोर्ट्स के अनुसार “देह व्यापार” में भी किन्नर समुदाय की एक बड़ी आबादी अपनी आजीविका चला रही है। हमारी इस समुदाय के विषय में जानकारी कितनी है यह भी चर्चा का विषय है। “थर्ड जेंडर” जिसे हम हिजड़ा, कोथी, खोजा, ट्रांसजेंडर, छक्का आदि नामों से पुकारते हैं, ऐसे में इनकी पहचान के कारण यह समाज की मुख्य धारा से इतर ही हो जाते हैं। क्या वाकई में हम इस समाज के बारे में खुलकर बात करते हैं और यदि कहीं बात हो रही है तो क्या उसमें भागीदारी करते हैं। सुप्रीम कोर्ट ने इन्हे थर्ड जेंडर का हक तो अवश्य दिया है पर प्रश्न उठता है कि क्या वाकई हम इन्हें समाज की मुख्यधारा में स्वीकार रहे हैं?

संदर्भ ग्रंथ:

- 1 महेंद्र भीष्म “किन्नर कथा” (2011)
- 2 डॉ. लवलेश दत्त कहानी “नवाब” (2018)
- 3 चित्रा मुद्गल: पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा (2016)
- 4 लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी मैं हिजड़ा ...मैं लक्ष्मी (2018)
- 5 भगवत अनमोल “जिंदगी जिंदगी 50-50” (2017)
- 6 मोनिका देवी “हां मैं किन्नर हूँ” (2018)
- 7 प्रदीप सौरभ “तीसरी ताली” (2015)

हिंदी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श

प्रा. डॉ. सुगंधा हिंदुराव धरपणकर

एम्.ए., एम्.एड., एम्.फिल्., पीएच.डी.

अधिव्याख्याती, हिंदी विभाग,

राजा शिवछत्रपती महाविद्यालय,

महागांव, ता. गडहिंग्लज,

जि. कोल्हापूर.

किन्नर हिमालय के पहाड़ी क्षेत्रों में बसनेवाली एक मनुष्य जाति का नाम है जिसके प्रधान केंद्र हिमवत और हेमकूट है। जैसे नाम किन्नर से स्पष्ट है। किन्नरों की उत्पत्ति के बारे दो प्रवाह हैं, एक तो यह कि वे ब्रम्हा की छाया अथवा उनके पैर के अँगूठे से उत्पन्न हुए हैं और दूसरा यह कि अरिष्टा और कस्यप उनके आदिजनक थे। हिमालय का पवित्र शिखर कैलास किन्नरों का प्रधान निवासस्थान था, जहाँ वे शंकर की सेवा किया करते थे। उन्हें देवताओं का गायक और भक्त समझा जाता है। प्राचिन काल से वे नृत्य गान में प्रवीण थे। इंद्रदेव के भक्त थे। कृष्ण का दर्शन करने द्वारका तक गये थे। चित्ररथ उनका प्रधान अधिपति था। बौद्ध साहित्य में किन्नर की कल्पना मानवमुखी पक्षी के रूप में की गई है। 'मानसार' में किन्नर के गरुडमुखी मानवशरीरी और पशुपदी रूप का वर्णन है।

पौराणिक ग्रन्थों वेदों-पुराणों और साहित्य तक में किन्नर हिमालय क्षेत्र में बसनेवाली अति प्रतिष्ठित व महत्वपूर्ण अदिम जाति है। जिनके वंशज वर्तमान जनजातीय जिला किन्नौर के निवासी माने जाते हैं। जिनकी भाषा कन्नौरी, गलचा, लाहौली आदि बोलियों के परिवार के हैं। पुराणों और महाभारत में उनकी चर्चा होती है। महापंडित राहूल सांकृत्यायन ने किन्नौर जिसे वे प्रमाण के साथ प्राचीन किन्नर देश मानते हैं। 'किन्नर देश' का और किन्नर जाति का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व समझने के लिए उनकी बहुचर्चित पुस्तक 'किन्नर देश' और 'हिमाचल' है। डॉ. बंशी रामशर्मा जीने 'किन्नर लोक साहित्य' यह पुस्तक लिखी है जो किन्नर पर पहिला शोधग्रंथ है। इसके अतिरिक्त अनेक विद्वानों और साहित्यकारों ने अपने शोध ग्रंथों, यात्रा-पुस्तकें आलेखों कहानी, उपन्यास कविताओं में किन्नर देश और किन्नोर में रहने वाली किन्नर जनजाति का उल्लेख किया है।

आज विश्वधारातल पर मानव की आधिकारों की चर्चा ने आंदोलन का रूप लिया है। इसमें समाज को मुख्य धारा में लाने की अनेक कोशिशें हो रही हैं। हिंदी साहित्य भी समस्त अनछुए और मोजू मुदों पर अपनी बेबाक राय व्यक्त कर रहा है। इसमें दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, वृद्ध विमर्श, अल्पसंख्यांक विमर्श, आदि विमर्श की भांति हिंदी साहित्यकारों का ध्यान गया है। किन्नर विमर्श पर सदियों से नाम लेने के लिए लज्जित होने वाले समाज में किन्नर या थर्ड जेंडर पर चर्चाएँ हो रही हैं। आज किन्नरों के मानवाधिकारों के लिए वैश्वकधरातल पर प्रयास हो रहे हैं। लम्बे समय तक साहित्य क्षेत्र में किन्नरों की दशा के बारे में चुप्पी छाई रही। इस चुप्पी को तोड़ने का प्रथम प्रयास नीरजा माधव जी ने किया। 1999 में उन्होंने 'यमदीप' इस उपन्यास की रचना की। प्रदीप सौरभ की 'तीसरी ताली' उपन्यास ऐसे अवाच्छित प्रसंगों को उठाता है। जिन पर बात करना भी सभ्य समाज को पसंद नहीं था।

प्राचिन काल से हिंदी साहित्य में किन्नरों पर लिखा जा रहा है। परंतु उनपर खूलकर लिखने में सभ्य समाज को पसंद नहीं था। इक्कीसवीं सदी में किन्नर साहित्य पर बहुत मात्रा में साहित्य लिखा जा रहा है। निरजा माधव ने 1999 में 'यमदीप' 2011 में प्रदीप सौरभ ने 'तीसरी ताली', 2014 में महेंद्र भीष्म जीने 'किन्नर कथा' को रचा। उसी समय गुलाम मंडी का प्रकाशन हुआ। इसके रचना कार निर्मल भुराडिया है। 2016 में महेंद्र भीष्म द्वारा रचित एक और उपन्यास 'मैं पायल' आया यह किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन-संघर्ष पर आधारित है। महेंद्र भीष्म ऐसे प्रथम संवेदनशील रचनाकार हैं। जिन्होंने लगातार दो उपन्यास किन्नरोंपर लिखे हैं। निर्मला भुराडिया जी का 'गुलाम मंडी', प्रदीप सौरभ का तीसरी ताली चित्रा मुदगल का 'पोष्ट बाक्सन 203 नालासोपारा' आदि किन्नरोंपर उपन्यास लिखे गये।

हिंदी साहित्य में उपन्यासों के साथ साथ कहानियों में भी किन्नर व्यथा कथा लिखी गयी है। इसमें बिन्दा महाराज, किन्नर इज्जत के रहबर, नेग, बीच के लोग, त्रासदी ई मुर्दन गाँव, हिजडा आदि में किन्नर व्यथा का यथार्थ दिखाई देता है। आज तक हिंदी साहित्य में इतनी व्यथा, कथा किन्नरोंवर कहानी यों में लिखी नहीं गयी है जितनी की अन्य विषयोंपर लिखी जा रही है। परंतु आज किन्नरों पर लिखा जा रहा है।

किन्नर विमर्श कि कहाणीयों में 'ई मुर्दन का गाँव' में लैंगिक विकृतिसे पीड़ित लोगों की व्यथा को कुसूम अंसल जी ने उजागर किया है। इस कहानी में किन्नर गुरु जया कहती है। "बाँझ औरते हमारे पास बच्चे की कामना से आती है और ताज्जुब, हमारा आर्शिवाद फलता भी है, किसी भी बच्चे का जन्म हमारे नाच-गाने के बिना पूरा नहीं होता। आर्शीवाद देने है तो गंदे-गंदे अल्फाज फूहड से गाने भी गाते है।"¹ अर्थात् किन्नरोंको खुशी के मौके पर शुभ मानते है उनका आर्शिवाद प्राप्त करते है फिर भी उनके नफरत करते है।

शिवप्रसाद सिंह की 'बिन्दा महाराज' इस कहानी में एक हिजडे की जिन्दगी में किस प्रकार की घटनाएँ घटित होती है यही इस कहानी का मुख्य कथानक है। बिन्दा महाराज एक ऐसा पात्र है जो हिजडों के जीवन से सम्बन्ध विशेषताओं से भरपूर है। वह एक तरफ अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तो दूसरी ओर अपने वर्ग विशेष की छवियों को उद्घाटीत करता है। वह समाज की उपेक्षा मजाफ आदि सहते हुए भी समाज के लिए जिता है। बिन्दा महाराज पुरुषत्व-नारीत्व विहीन होने के बावजूद भी उसके मन में प्रेम माया ममता भरी हुई है। उसकी ममता दिपू मिसिर के लडके के प्रती उमड़ आती है। पहली बार बिन्दा उसके लिए मंदिर में जाता है उसके लिए प्रसाद लेकर आता है। लेकिन मिसराईन के डर से दे नहीं पाता वह मुन्ना के लिए दवा लेकर जाता है। तब निसराईन उसे भला बुरा कहकर भगा देती है अगले दिन मुन्ना मर जाता है तब गाँव में यह बात फैलती है कि बिन्दा महाराज के शाप के कारण मुन्ना मर गया। उसी दिन से बिन्दा महाराज बिमार पड़ जाता है।

कुसूम अंसल की 'ई मुर्दन का गाँव' कहानी में किन्नर जीवन की विवशता तथा इनकी नियती और समाज पर व्यंग करती है। इनका कोई दोष न होने के बावजूद भी समाज उन्हें मुर्दे की तरह जीने को मजबूर करता है।—

किरण सिंह की कहानी संज्ञा किन्नरों की मानसिकता पर आधारित है। किन्नर माता पिता अपने बच्चों के भेद को समाज से छिपाने का प्रयास करते हुए कितना भयभीत होता है नरकीय जीवन जीता है इसका वर्णन इस कहानी में किया है। संज्ञा का मतलब न दिन न रात उसी प्रकार किन्नर न स्त्री न पुरुष इसलिए इसका शिर्षक किन्नर जीवन की सार्थकता को बया करता है।

महेन्द्र भीष्म की कहानी 'त्रासदी' में समाज की मानसिकता के देश को झेल रहे किन्नर और स्त्री दोनों की त्रासदी को उजागर किया है सुन्दरी और रति की व्यथा को प्रस्तुत किया है। नैतिकता और आदर्श की माला जपनेवाले उच्चवर्गीय लोग रति नाम की एक स्त्री पर बलात्कार करना चाहते है। उसी समय किन्नर सुन्दरी बलात्कारीयों से रति को बचाती है। इसी कारण बलात्कारी गुस्से में आकार सुन्दरी का चेहरा चाकू से खराब करते है। उसके बाद सुन्दरी का नाचगाना करने रुपये कमाना मुश्किल हो जाता है। वह रति के घर जाकर रहती है। रति का लडका अपनी माँ को चरित्राहिन समझने लगता है। वह सुन्दरी को रेल की पटरी पर फेंक कर मार डालता है। रतिको भी मार डालता है। अर्थात् इस कहानी में किन्नर और स्त्री की प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

गरीमा संजय दुबे की कहानी 'पन्ना बा' में किन्नर के प्रति फैली नफरत भरी मानसिकताओं को रेखांकित किया है। इस कहानी में एक कन्या की जिज्ञासा को किन्नरों के प्रति दिखलाते हुए समाज की जिज्ञासा की अभिव्यक्ति को व्यक्त किया है। विरेन्द्र प्रताप सिंह की 'संकल्प' कहानी में लेखक ने किन्नरों के प्रति सफल बनाने का संकल्प किया है। किन्नर मधुर के परिवार संघर्ष को और उसकी मानसिकता को प्रमुखतासे प्रस्तुत किया है। वह अपने अभिशप्त जीवन को बदलने का संकल्प करता है। वह मेहनत कर के रुपये कमाकर अपना ऑपरेशन करवा लिया है वह स्त्री रूप धारण कर लेता है। मधुर के माध्यम से लेखक ने संकल्प और दृढ़ निश्चय असंभव कार्य को संभव बना देता है। पूनम पाठक की किन्नर और पारस दासोत की कहानी 'गलती जो माफ नहीं' कहानी में उच्चवर्गीय तथा समाज का किन्नरों के प्रति रवैये पर नजर डाली है। इन लोगों को विकृति तो जन्मजात मिलती है। यह ईश्वर ने दि है लेकिन समाज इस विकृत की सजा उन्हें पल-पल देता है। उन्हें जिने देता है न मरना जीवित रहते हुए भी मुर्दों की तरह रहना पड़ता है।

'हिजडा' श्रीकृष्ण सैनी की कहानी में किन्नरों का प्रेम तथा सभ्य समाज की क्रूरता और लोभ को दिखाया गया है। इस कहानी की किन्नर रजियाँ अनाथ बच्चों को अपनाती है। उस बच्चों के माता-पिता मरने के बाद सारी जायदाद हड़पकर बच्चों को अनाथाश्रम में छोड़ना चाहते है उसी समय किन्नरों रजियाँ की राघव के पत्नी से मित्रता होने के कारण उस बच्चों को पालती है। उसे पढा लिखाकर बड़ा करती है। किन्नर रजिया का पुत्रप्रेम आत्मियता और सभ्य और सभ्य समाज की लालसा को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

'नेग' डॉ लवलेश दत्त की कहानी में कन्या के जन्म से कुण्ठित परिवार अपना आक्रोश इन किन्नरों पर निकालता है। किन्नर समाज में बच्ची के जन्म को लेकर फैली अंधविश्वास के भ्रम को दूर करते है। इस कहानी में किन्नर उसने अपनी पर्स खोली और उसमें से पाँच-पाँच सौ के चार नोट और न्योछावर वाले पाँच सौ रुपये निकालकर कुल ढाई हजार रुपये सिगरेट की तरह गोल कर बच्ची की बन्द मुठी में फँसा कर कहा लो चाची हमारी तरफ से नेग... तुम्हारे घर में लक्ष्मी आयी है। यह बताने में शर्म कैसी।"²

‘इज्जत’ के रहबर में किन्नरों की हिम्मत और उनकी दिलेरी को चित्रित किया है। अंजना वर्मा की ‘कौर तार सी बीनी चदरिया’ कहानी में किन्नर सुंदरी सभ्य समाज के सामने एक प्रश्न खड़ा करती है कि हमारे साथ अछूतों जैसा व्यवहार क्यों होता है वह कहती है—“हमें सबसे अलग क्यों रख गया जैसे अछूत है हम? का हम हँसने की चीज है।”³

इसतरह इक्कीसवीं सदी में हिंदी साहित्य में किन्नर से संबंधित कई उपन्यासों, कहानियों और कविताओं में इनकी रचना की जा रही है। परंतु आज भी किन्नर विमर्श अपरिपक्व अवस्था में हैं। समाज आज भी उन्हें स्वीकारने में हिचक रहा है। हिंदी साहित्य में किन्नर कहानियाँ उनकी पिडा, व्यथा, शोषण मजबूरीयाँ और भेदभावों को दर्शने का प्रयास कर रही है।

संदर्भ :

1. कुसुमअंसल — इ मुर्दन का गाँव, पृष्ठ 107.
2. डॉ. एम. फिरोज अहमद — वाङ्मय (त्रैमासिक हिंदी + पत्रिका जनवरी से मार्च), पृ. 101.
3. अंजना वर्मा — त्रैमासिक हिंदी पत्रिका, पृ. 101.



‘मै पायल’ में खुला किन्नरो के जीवित यथार्थ का राज

प्रा. डॉ. शंकर गंगाधर शिवशेट्टे

हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री बंकटस्वामी
महाविद्यालय, बीड

आज का समय विमर्शों का समय है। बहुकेंद्रीयता का समय है। स्त्री, दलित, अल्पसंख्या, वृद्ध, बाल एवं आदिवासी समुदाय परिधी को छोड़कर केंद्र में आ चुके हैं और अपने मूलभूत मानवाधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे। किन्नर समुदाय भी हाशियापरक जिंदगी को छोड़कर अपने अधिकारों के लिए लड़ रहा है। यह एक ऐसा समुदाय है जो समाज के बीचो बीच उपस्थित है लेकिन उसका कोई अस्तित्व नहीं। रामायण और महाभारत काल से ही समाज में इस समुदाय का अस्तित्व विहीन उपस्थिति दिखाई देती है पर ‘सभ्य समाज’ में तिरस्कार और अपमान का दंश जेलने के लिए विवश है। किन्नर उपहास का पात्र बनते हैं। लेकिन उनका मजाक उड़ाने वाले उनकी पीड़ा को नहीं समझते।

किन्नर को देखते ही समाज मन के उपर अजीबोगरीब दुश्चिन्ता दिखाई देते हैं। रेलडिब्बे में बस अड़्डे पर या भिड़बाजार में चौराहे पर किन्नरों के व्यवहार से त्रस्त व्यक्ति उनके मानवाधिकारों के बारे में सोचना तो छोड़ो उनको दूर से देखते ही भागने का प्रयास करता है। निर्मला भुराडियाजी सहित अनेक साहित्यकारों ने यह प्रश्न उठाया है कि यदि प्रकृति ने उन लोगों को किसी एक जेंडर में जन्म नहीं दिया तो इसमें उनका क्या दोष है? वे भी इन्सान हैं अतः उन्हें मानवीय गरिमा का अधिकार क्यों प्राप्त नहीं हुआ? इसमें संदेह नहीं कि किन्नर समुदाय को तरह-तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है इसीलिए इस समुदाय ने भी संविधानिक रूप से अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष शुरू कर दिया है और साहित्यकार भी इस समुदाय की समस्याओं को उजागर करने का प्रयास कर रहा है।

किन्नरों के उद्भव और अतीत के संबंध में अनेक अंतर्कथाएँ प्रचलित हैं इनमें सर्वाधिक प्रचलित कथा भगवान राम के वनगमनसे संबंधित है। कहते हैं कि जब पिता आग्या का पालन करते हुए राम सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट आ गए तो उन्हें मानकर वापस अयोध्या लाने हेतु भरतआयोध्यावासियों के साथ चित्रकूट आये थे लेकिन प्रभू राम ने भरत तथा अयोध्यावासियों की अनुनय विनय अस्वीकार करते हुए सभी नर-नारियों को वापस जाने को कहा परंतु उन्होंने हिजडों के लिए कुछ नहीं कहा जबकि वे भी उन्हें मनाने हेतु वहाँ उपस्थित हुए थे, कहा जाता है कि उनके लिए प्रभू का कोई स्पष्ट आदेश न होने के कारण उन हिजडों ने 14 वर्षों तक वही रुककर प्रभुराम के वापस आने की प्रतीक्षा करने का निर्णय लिया जब वनवास पूर्ण कर भगवान राम वापस आयोध्या जा रहे थे तो उन्होंने इन हिजडों को मार्ग में चित्रकूट में आपनी प्रतीक्षा करते पाया प्रभु द्वारा उनके वहाँ रुकने का कारण पूछने पर इन निर्मल किन्नरों ने बताया कि जब हम भरत के साथ यहाँ आपको मनाने हेतु आये थे तो अपने कहा था।

‘जथा जोगु करि विनय प्रणामा, बिदा किए सब सानुज रामा ।

नारी पुरुष लघुमध्य बड़ेरे, सब सन्मानी कृपानिधी फेरे॥’^१

कहा जाता है कि प्रभू रामजीने हिजडों कि निस्वार्थ भावना से अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने प्रसन्न होकर स्त्रियों को वरदान दिया कि कलियुग में तुम लोग राज करोगे। कहते हैं कि भगवान राम ने इन्हें यह भी वरदान दिया कि तुम जिन्हें अपन आशीर्वाद दोगे उसका कभी अनिष्ट नहीं होगा इसीलिए शुभ अवसरों पर ग्रहस्थ इनका स्वागत करते हैं और इन्हें मुहमंगी रक्कम देकर विदा करते हैं।

अनेक ऐसे दृष्टांत हैं जिन से प्राचीन काल में हिजडों का अस्तित्व प्रमाणित होता है। महाभारत में शिखंडी का उल्लेख आता है, जिसके कारण भीष्म का वध हुआ था। अर्जुन ने ब्रह्मन्नल नामक हिजड़े का भेष धरकर विराटनगर अज्ञातवास का अंतिम वर्ष पूर्ण किया था। गुजरात के किन्नर अर्जुन के ब्रह्मन्नल रूप की पूजा करते हैं और यहाँ के बहुचर देवी के मंदिर में किन्नर बनने के इच्छुक लोग आते रहते हैं। बहुचर देवी किन्नरो कि इष्ट है, जिनका वाहनमूर्गा है। ये लोग खप्परधारीदेवी और शिव के अर्धनारीश्वर रूप की भी उपासना करते हैं।

हिंदी साहित्य को ध्यान से देखेंगे तो स्पष्ट होता है कि निराला ने अपने उपन्यास ‘कुल्ली भाट’ (1939) में समलैंगिक विमर्श के बीज बो दिए थे। यदि इस उपन्यास को हिन्दी में समलैंगिक विमर्श की पहली आवाह सुनने-सुनाने वाला उपन्यास कहा जाए तो गलत नहीं होगा। शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ बहावव्रत्ति और बिदा महाजन किन्नर विमर्श की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। दोनों ही कहानियों में किन्नरों की स्थिति और उनकी पीड़ा को दर्शाया गया है। ब्रंदावनलाल वर्मा का एकांकी ‘नीलकंठ’ का एक किन्नर पात्र

जनता की सेवा हेतु एक सेना बनाना चाहता है ताकि सामाजिक संतुलन बिगड़ने से बचाया जा सके। वह सत्य को परिभाषित करते हुए कहता है कि अपने आपको धोका न देना ही सत्य है।

शारीरिक रूप से विकलांगों को परिवार आपनाता है और समाज में भी उनके लिए तरह-तरह की सुविधाएँ उपलब्ध हैं लेकिन जेनेटिक (अनुवंशिक रूप से) विकलांगों को किन्नरों को परिवार आपनाता। सामाजिक अवहेलना से बचने के लिए उस बच्चे को त्याग दिया जाता है। इसीलिए निवेदिता झा किन्नर शीर्षक अपनी कविता में कहती है।

‘‘कोख तो तुम्ही तुम्हे भी जन्म देती है

अधोर प्रसव पीड़ा के बाद

पहली ही गोद तिरस्कार से फेर लेती है मुँह

माँ गले से फिर भी लगती है सबसे राजदुलारे’’

इस संदर्भ में महेंद्र भीष्म के उपन्यास किन्नर कथा 2011 का वह प्रसंग याद आता है जहाँ राजघराने में जन्मे किन्नर सोना उर्फ चंदा के राजकोमा अपनी ममता के कारण बहुत दिनों तक प्रकट नहीं होने देती। लेकिन जब यह पता चल जाता है कि सोना किन्नर है तो राजा जगत राजसिंह उसे मारने का आदेश देता है। महेंद्र भीष्मने जगह उस माँ की ममता और पीड़ा को उजागर किया है जिसकी संतान किन्नर होने के कारण उससे दूर कर दिया जाता है। साथ ही उन्होंने यथार्थ स्थिति को भी अपनी टिप्पणी के माध्यम से स्पष्ट किया है- ‘‘संतान कैसे भी हो उसमें शारीरिक-मानसिक कमी क्यों न हो माता-पिता को अपनी संतान हर हाल में भली लगती है, प्यारी होती है, फिर भलेही वह संतान हिजड़ा ही क्यों नहीं। फिर भी सामाजिक परिस्थितियों, खानदान की इज्जत-मर्यादा झुँठी शान के सामने अपने हिजड़े बच्चे से उसके जन्मदाता हर हाल में छुटकारा पा लेना चाहते हैं। यह एक कटू सत्य है।’’ महेंद्र भीष्म का उपन्यास में पायल (2016) किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन संघर्ष पर आधारित है।

‘मै पायल’ एक नए विषय समाज में उपेक्षित उपहास के पात्र माने जाते वर्ग हिजड़ाओं जिन्हें परिमार्जित भाषा में किन्नर कहा जाने लगा है, की वेदना दुःखियों परिवार-समाज में उनके प्रति नजरिये की अंतर्कथा है। समाज में शोषित-विस्थापित- दमित लोगों की पीड़ा और भेदभाव की अनेक परतें हैं। जाति, धर्म, वर्ग आदि की गैर - बराबरी के बावजूत इनमें मनुष्य होने की गरीमा मौजूद है। लेकिन किन्नर समुदाय की त्रासदी है कि इन्हें कभी मनुष्य नहीं समझा गया। विडंबन है कि जहाँ अन्य शारीरिक विकृतिग्रस्त उपहास का कारण नहीं बनती लैंगिक विकृति से प्रस्तुत शिशु का अस्तित्व परिवार के लिए अवांछनीय बोझ ही नहीं त्याज्य हो जाता है। पायल के माध्यम से, उपन्यास समाज में अरसे से चली आ रही प्रतिष्ठा के थोथे चलन का प्रतिरोध करता है, जिसके कारण मनुष्य का उपहास उपेक्षा उसकी देहिक विकृति के कारण किया जाता है। प्रश्न यह उठता है कि जब भूकबधिर, दृष्टि बाधित या दूसरी विकलांगताएँ समाज में सहाय है तब कमर से नीचे की विकृति क्यों अवांछित मान ली जाती है?

‘मै पायल’ यातना संघर्ष और जिजीविषा की अनवरत यात्रा है। एक और मनुष्य के अंदरूनी संस्कार की कशमकश और आत्मबल दूसरी और निर्मम दुनिया में जीने अस्तित्व की रक्षा पहचान की स्वीकृति के लिए निरंतर संघर्ष। उपन्यास पाठकों को यथार्थ के उस रूप से परिचय करता है जो उसके अनुभव के दायरे से रोज़ दिखते सुनते हुए भी छूट जाती है। लेखक के साथ हम ऐसी दुनिया में प्रवेश करते हैं, जहाँ होकर भी हम नहीं होते।

उपन्यास का कथ्य एक महानगर के पड़ोस स्थिति कस्बे के निम्न मध्यवर्गीय परिवार में चौथी लड़की के जन्म से प्रारंभ होता है। पुत्र की उम्मीद में अवांछिता एक अप्रिय आवाज राम बहादुर के एक और लड़की हुई कन्या के जन्म के लिए रूढ़ियों के अनुसार इसका सारा दोष माँ पर दिया जाता है। शराबी गुस्सेल निर्दय ड्राइवर पिता, माँ, पाँच बहन- भाई, दाऊ, बाबा बचपन की स्मृतियों के जुगनी द्वारा वर्णन किया गया है।

उपन्यास के केन्द्र में जरूर पायल और किन्नर समुदाय की व्यथा-यातना-संघर्ष है, लेकिन उसके चतुर्दिक परिक्रमा वृत्त में पूरा समाज, व्यवस्था और व्यक्ति के अन्दर छिपी कलुषित प्रवृत्तियाँ स्त्री की नियति, कच्चे बाल मन की यौनिक जिज्ञासाएं, प्रेम के गहरे अर्थ, देह की जरूरत, नैतिक मूल्यों की निरर्थकता, अमानवीय सामाजिक विषमता, गरीबी-अभाव, भूख की त्रासदी, भ्रष्टाचार, बच्चों-किशोरों के अपराध में लिप्तता के कारण, निस्वार्थ प्रेम, सदाशयता, माँ की ममतामयी छांव की अपरिहार्यता और उसे महत्व देने की जरूरत जैसे अनेक सवाल उठाए गए हैं। उपन्यास पायल के माध्यम से पूरे समाज की सोच बदलने की आकांक्षा की महागाथा है। अनेक अनुत्तरित प्रश्न उपन्यास उठाता है – किशोर अनवर जैसे अनेक लोगों की अपराध लिप्तता के लिए कौन उत्तरदायी है? अनवर की मृत्यु क्यों किसी इतिहास का हिस्सा नहीं बनेगी? कौन व्यवस्था जिम्मेदार है इस सबका? पायल का अभीष्ट केवल अपनी मुक्ति नहीं बल्कि उस पूरे समुदाय-वर्ग के सम्मान के साथ जीने के अधिकार का प्रश्न है, जिसके साथ नियति ने उसे जोड़ दिया है।

उपन्यास केवल पायल या किन्नर समुदाय की नहीं बल्कि मनुष्य की अस्मिता की प्रमाणिकता और पहचान की लड़ाई की शुरुआत है। उपन्यास का प्राप्य यह है कि पाठक को अपने व्यक्तित्व की सीमाओं से बाहर निकल कर अनुभूति के वृहत्तर संसार से जोड़ते हुए अनेक आयामों तक उपन्यास का विस्तार हुआ है।

किसी रचना का सृजन आकस्मिक नहीं होता। उसका सीधा और गंभीर नाता अतीत और वर्तमान से होता है। कोई भी लेखक अपने परिवेश से विच्छिन्न नहीं हो सकता। इसी लिए साहित्य सदैव जीवंत रहता है। समाज से उसका जीवंत संबंध होता है जिंदगी, समाज, सत्ता और मनुष्य के अंतर्विरोधों के गहरे तल में उतर कर कहानी का जन्म होता है जितना वह इसमें सफल होता है उतना ही रचना पाठकों की संवेदना का अंग बनती है। लेखक ने समय, समाज और मनुष्य के अंतर्विरोधों को गहराई से समझा है। उपन्यास में समाज की निस्संगता, अमानवीयता पर प्रश्न के साथ विचार किया गया है कि मनुष्य की चिंताएं इतनी आत्मकेंद्रित क्यों हो गई हैं?

उपन्यास में पायल की अप्रतिम सदाशयता के साथ विसंगतियों से लड़ने-संघर्ष की अपूर्व क्षमता है। माँ के पावों की आकृति ही उसके मन में बस गई है। पिता जो हमेशा उसके प्रति कटु रहे, चप्पलों से पीटा, जान से मारने की कोशिश की उनके प्रति भी उसके मन में रोष नहीं है। वह उनकी स्थित, मजबूरियों को समझती है। उनकी बीमारी की चिंता उसे सालती है। माँ के रूप में अप्रतिम छवि उभरती है। बेटी के प्रति असीम स्नेह-लगाव, जो पूरे जीवन पति और सामाजिक दबाव, आशंका, सामाजिक भय के बावजूद कभी मिटता नहीं। एक अखंड आत्मा के अलग हुए दो टुकड़े माँ को ईश्वर का प्रतिरूप कहा गया है।

कहानी-उपन्यास के स्वरूप, बनावट में चाहे जितना बदलाव आ गया हो लेकिन उसकी कथनीयता-किस्सागोई कभी नहीं खतम होगी। लेखक की क्षमता और सामर्थ्य का आधार यही होते हैं। इस दृष्टि से लेखक ने कथ्य और शिल्प में नया प्रयोग किया है। यथार्थ को खंगालते हुए आत्मकथा में उपन्यास, किन्नर गुरु पायल की स्मृतियों को शब्द देकर और उपन्यास में आत्मकथा का प्रतिस्थापन किया है। यथार्थ के धरातल पर उपन्यास का विन्यास लेखक की सृजनात्मक कल्पना से जीवनी या आत्मकथा से ऊपर उठ कर एक नई विधा की स्वतंत्र सत्ता के रूप में निरूपित किया गया है। कहानी को कहानी रहने देने की प्रतिबद्धता के साथ भाषा-शिल्प के स्तर पर यह उपन्यास सहज संवेदनात्मक, गहरी विचार दृष्टि के साथ अन्याय और विसंगति का प्रतिवाद करता है। काव्य की तरह एक सफल कथाकृति में भी रचना के मार्मिक अंशों के पाठक के साथ साधारणीकरण के बिंदु होते हैं। लेखक के प्रकट वर्णन के बिना भी। पाठक उन बिंदुओं से साक्षात्कार करता है। यह रचना और पाठक के एकात्म का क्षण होता है। समीक्ष्य कृति में ऐसे अनेक स्थल हैं। भूख के कारण 'जूंटे दोने से चाट का चाटना', 'प्लेटफॉर्म पर फेंके गए सड़े भोजन को खाना', 'अनवर के शरीर का दो हिस्सों में कट जाने' ऐसे अनेक प्रसंग रोंगटे खड़े कर देते हैं। केवल करुणा ही नहीं जगाते उस व्यवस्था पर सोचने के लिए विवश करने के साथ आक्रोश जगाते हैं, जो इसके लिए उत्तरदायी है। भाषा और शिल्प की सहजता उपन्यास की संवेदना को घनीभूत करने के साथ पठनीयता बढ़ाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ:-

१. रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड पृष्ठ क्र. 398 /4
२. किन्नर शीर्षक कविता : निवेदिता झा पृष्ठ क्र. 38
३. में पायल: महेंद्र भीष्म पृष्ठ क्र. 45
४. में पायल : महेंद्र भीष्म पृष्ठ क्र. 85

नारकीय जीवन से घर वापसी का विफल उद्यम:नालासोपार

प्रा. डॉ. संग्राम शिंदे

(हिंदीविभागाध्यक्ष)

आमदार शशिकांत शिंदे महाविद्यालय, मेढा

जि. सातारा

सलग्न : शिवाजी विश्वविद्यालय ,कोल्हापुर (महा.)

हिंदी महिला उपन्यासकारों में चित्रा मुद्गल का अनन्य साधारण नाम है। अपने औपन्यासिक साहित्य के लिए नयी भूमिका तलाश ने का काम चित्रा मुद्गलजी ने किया है। 'एक जमीन अपनी', 'आवाँ', 'गिलगुड' और 'नालासोपार' जैसे उपन्यासों के द्वारा नवी भूमि एवं विषयों को चुना है। इक्कीसवीं शताब्दी में जिन विषयों की चर्चा की जाती है, उनमें से एक है किन्नरविमर्श, इस विषय को ध्यान में रखकर 'पोस्ट बॉक्स न.२०३ नालासोपार' में किन्नर समुदाय का चित्रण किया है—“हिंदी साहित्य जगत में अपनी अप्रतिम जगह बना चूकी वरिष्ठ कथाकार चित्रा मुद्गल का यह उपन्यास विनोद उर्फ बिमला के बहाने हमारे समाज में लंबे समय से चली आ रही मानसिकता का विरोध है, जो मनुष्य को मनुष्य समझने से बचती रही है। **XXX** महज शारीरिक कमी के चलते किसी इंसान के असामाजिक बना देने की कुर विडम्बना है।”^१ भारतीय समाज, संस्कृति उच्च परंपरा तथा मूल्यों में विश्वास रखती है, परंतु आज भी समाज में गलत मान्यताएँ, धारणाएँ एवं परंपरा दिखाई देती है। लिंग को आधार बनाकर एक सामाजिक विभाजन रेखा खिंचने का प्रयास किया जाता है जिस के कारण पूर्ण मानव के गुण होने के बावजूद भी समाजव्यवस्था से अलग जीवन जीना (यापन) करना पड़ता है। हम अपने आप को २१वीं शताब्दी में पाते हैं, वैज्ञानिक विकास में चहुँ दिशाओं में हो रहा है फिर भी 'थर्ड जेन्डर' को लेकर समाज में निर्माण हुई गलत धारणाओं को नकारना जरूरी है। अपने माता—पिता एवं समाज की धूतकार के कारण यह समुदाय दर—दर की ठोकरे खाने के लिए मजबूर बन गया है इस संदर्भ में लेखिका कहती है—“आज, जबकि ऐसे असंख्य लोगों को समाजस्वीकृति मिलने लगी है,— हमारी संसद भी इस संदर्भ में पुरातनपंथी नहीं रहीं है, क्या यह उम्मीद नहीं की जानी चाहिए कि परिवार व समाज अपनी सोच के मकड़जाल से बाहर निकल आए।”^२ लिंग के आधारपर इन लोगों के आजू—बाजू में मकड़जाल बुना गया है, समाज की गलत धारणा तथा पूर्वग्रह को दूर करना होगा। सब से बड़ी बात तो यह होगी की माता—पिता को अपने संतान के प्रति नजरियाँ बदलना होगा, सबसे पहले मानसिक एवं सामाजिक आधार तो परिवार के माध्यम से मिलना चाहिए। परिवार के अन्य सदस्यों का रवैया भी सकारात्मक रहा तो अपनी बौद्धिक क्षमता के आधारपर अलग जगह निर्माण करने में यह समुदाय सक्षम हो सकता है। अपनी लिंग अधुरता के कारण यह समुदाय ऐसी सजा भुगतता है जिस से इनका कोई संबंध नहीं होता— इस संदर्भ में मधुरेश कहते हैं — “चित्रा मुद्गल 'नालासोपार' में एक गहरी मानवीय अपील के साथ उपस्थित हैं। समाज में जैसे बलात्कृत स्त्री अपने किसी अपराध के बिना एक दोहरा दंड भुगतती है, अपने अपमान एवं यातना के साथ परिवार और समाज की उपेक्षा का दंड, लगभग वही स्थिति समाजमें लिंग दोष से ग्रस्त बच्चों की होती है। अपने जिस दंड की सजा वे भुगतते हैं, उसमें उनकी अथवा उनके माता—पिता की भी कोई भूमिकानहीं होती। जब—तक ये बच्चे असामाजिक और माफिया तत्वों के शिकार होकर इस अंधेरे में धकेल दिये जाते हैं।”^३ यह चित्र तो आज अधिक दिखाई देने लगा है।

पत्रात्मक शैली में लिखा यह उपन्यास पाठक वर्ग पर अपनी अलग छाप छोड़ने में पूर्ण सफल रहा है। बिन्नी उर्फ विनोद उर्फ बिमला के द्वारा अपनी बा को लिखे पत्रों के माध्यमसे थर्ड जेन्डर का संपूर्ण जीवन ही हमारे सामने आता है। बिन्नी अपनी बा (वंदनाबेन) का लाडला रहा है तीनों बच्चों में सबसे अधिक बुद्धिमान एवं माँ की सहायता करनेवाला बिन्नी रहा है। परंतु असामाजिक तत्वों के कारण अपने परिवार से अलग हो जाता है। दिल्लीस्थित उसके साथ जबरन वो काम करवाने का प्रयास किया जाता है जिस के लिए उसका मन मानता नहीं है। बिन्नी जिन संस्कारों में पला बढ़ा है, शिक्षा के प्रभाव के कारण अन्य किसी भी प्रभाव को मानने के लिए वो तैयार नहीं होता दिल्ली के अनुभव को कथन करते हुए बिन्नी उर्फ बिमला या विनोद कहता है— “उनके लाते घुंसे, थपड़ और कानों में गर्म तेल सी टपकती किसी भी संबंध को न बख्शनेवाली अश्लील गालियों के बावजूद न मैं मटक—मटक कर ताली पीटने को राजी हुआ, न सलमें—सितारेवाली साड़ियाँ लपेट लिपिस्टिक लगा कानों में बुंद लटकाने।”^४ अपने संस्कारों विचारों एवं सिद्धांतोंपर अडिग रहनेवाला बिन्नी दिखाई देता है। मात्र शारीरिक कमी के कारण अन्य लोगों के समान मटकते हुए चलना, भीख माँगना आदि बातों का विरोध करने के कारण बिमला के साथ मारपीट की जाती है फिर भी अपने निर्णय को नहीं बदलता।

विनोद के व्यक्तित्व के कारण उपन्यास अत्याधिक प्रभावित रहा है। उपन्यास की संपूर्ण कथावस्तु विनोद के व्यक्तित्व का प्रभाव है। विनोद अपने समुदाय को उपर उठाने का काम अपने विचारों से करता है। इस संदर्भ में प्रमोद मीणा कहते हैं —“यह उपन्यास दूसरे उपन्यासों की जैसे हिजड़ों के अल्पज्ञान जीवन के छिपे पहलुओं का रोचक वृत्तांत पेश न करके मानवतावादी दृष्टिकोण से हिजड़े होने की पीड़ा को हमारे समक्ष रखता है और यह उपन्यास इस दृष्टि से भी अलग है कि उपन्यास का हिजड़ा नायक विनोद अपने कष्टों और तकलीफों का रोना रो कर समाज से दया—अनुकंपा की याचना नहीं करता। विनोद न सिर्फ अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए संघर्ष करते दिखता है अपितु वह राजनीति द्वारा उपलब्ध कराये अवसर का लाभ उठाकर अपनी हिजड़ा बिरादरी को भी ओढ़ी गई नियति से मुक्त होने का प्रबोधन देने के लिए प्रयास करता है।”⁴ विनोद के व्यक्तित्व के कारण यह उपन्यासों के समान नहीं है। एक सकारात्मक सोच ही नहीं तो बल्कि प्रत्यक्ष रूप से क्रियान्वीत होती हुई दिखाई देती है।

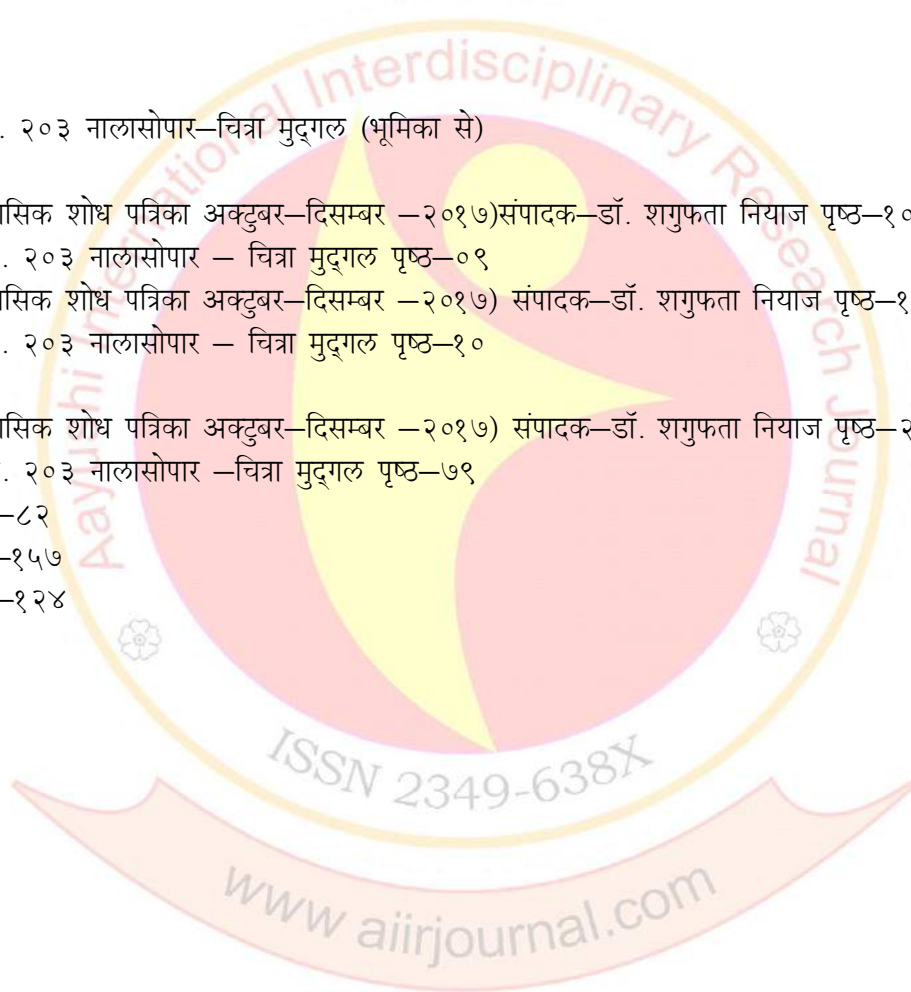
बलात थर्ड जेन्डर समुदाय में जीवन व्यापन करने के कारण विनोद या विमला को घुस्सा आने लगता है। अन्य हिजड़ों के समान वो नहीं रहता बल्कि अपनी एक अलग पहचान बनाने में कामयाब हो जाता है। अपने समुदाय के लोगों के समान सजना—संवरना एवं लोगों को लुभाने के लिए भावभंगीमा करना उसे पसंद नहीं है, जो चिज अपने व्यक्तित्व में नहीं है उसे वो दिखाना नहीं चाहता— “स्त्रियों के लक्षण मुझमें कभी नहीं रहे। अब भी नहीं है, और जो लक्षण मुझमें नहीं है, उन्हें सिर्फ इसलिए स्वीकारूँ की मेरी बिरादरी के शेष सभी, उन हाव—भावों को अपना चूके है?”⁵ ऐसे समय में बा वंदनाबेन बिन्नी को समझाते हुए कहती है कि अन्य लड़कों से वह कैसे भिन्न है। प्राकृतिक रूप से किसी को आँख नहीं होती किसी का पैर नहीं होता तो भी लोग अपना जीवन जीते हैं, तुम्हें भला क्यों कष्ट होता है, तुम भी अपना जीवन व्यापन कर सकते हो। वैसे देखा जाए तो विनोद स्कूल में सबसे होशियार छात्र रहा है। अपनी कक्षा में सबसे अव्वल रहता है, किसी भी अन्य छात्र उससे डरने लगते की अब हमें पुरस्कार मिलनेवाला नहीं है— “**XXX** पढ़ने में अपनी कक्षा में सदैव अव्वल आनेवाला/ डरते थे लड़के मुझसे / कहते थे, जिस खेल की प्रतियोगिता में खड़ा हो जाता है तु विनोद, पुरस्कार लेकर ही दम लेता है/ कुछ पुरस्कार हमारे लिए भी छोड़ देना/”⁶ अपने बौद्धिक सामर्थ्य के आधार पर जननांग की कमी को विनोद भूलना चाहता है। एक मात्र अंग के न रहने से क्या वह सामान्य व्यक्ति के समान जीवन नहीं जी सकता? ऐसा प्रश्न उसके मन में निर्माण हो जाता है। किन्नर चंपाबाई के कारण विनोद की अगली पढ़ाई हो नहीं पाती, घर बैठे पढ़ाई करना बिन्नी को अपने साथ लेकर चली जाती है। अपनी बिरादरी में आने के उपरांत भी बिन्नी का मन नहीं लगता। अपनी बाल्यकाल की प्रेमी का ज्योत्सना के प्रति बराबर उसका मन लगा रहता है। जो एक भावात्मक रिश्ता होता है वो बिन्नी में दिखाई देने लगता है। अपनी बा को समझाते हुए कहता है कि मैं ज्योत्सना के लिए तो मर गया परंतु ज्योत्सना मेरे लिए जीवित है। बिन्नी ज्योत्सना के प्रेम को भुलाने का प्रयास करता है परंतु भूल नहीं पाता। अपनी बा के लिखे पत्रों में ज्योत्सना का जिक्र आता ही है। बिन्नी बराबर अपने घरवालों को याद करता है; सिध्दार्थ, सेजलभाभी, पिता एवं छोटे भाई को भुलता नहीं। सेजल भाभी की गर्भवस्था में अपनी बा से बराबर पूछने का काम करता है। कूल बिन्नी दिल्ली में रहते हुए भी मुंबई के नालासोपार वाले घर को भूल नहीं पाता। उसकी आत्मियता बराबर झलकती रहती है। कैसी सामाजिक रीति है कि जिस शारीरिक विकलांगता के लिए यह समुदाय जिम्मेदार नहीं होता उसकी सजा ता उग्र भूगतने के लिए मजबूर हो जाता है। इस संदर्भ में डॉ. पुष्पा गुप्ता कहती है—“जिस शारीरिक विकार में स्वयं उसकी कोई भूमिका नहीं होती, उसी विकार की सजा आजीवन झेलने के लिए ये वर्ग अभिशक्त है।”⁷ इस समुदाय के साथ हमेशा ही भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया जाता है, जिस के कारण विनोद जैसे शिक्षित युवक इस बात का विरोध करते हैं।

बिन्नी का विवेक जाग्रत है, वो अच्छी तरह से जानता है कि परिस्थितियों में कितना भी परिवर्तन क्यों न हो अपने विवेक को जाग्रत रखना है। विधायक के द्वारा दिए जानेवाली सुविधाओं के कारण जरा भी भावनिक नहीं होता बल्कि अपनी परिपक्वता दिखाते हुए कहता है— “सुविधाएँ ठीक है जरूरी है। काम नहीं चलता आजकल उनके बिना लेकिन सुविधाएँ अगर हमारी आजादी को गिरवी रखले तो उन सुविधाओं का सुख सहूलियत मात्र नहीं होता, गुलामी में बदल जाता है।”⁸ विनोद अच्छी तरह से जानता है कि व्यक्ति के जीवन की समस्याएँ मात्र शिक्षा से ही दूर हो सकती हैं। इसी कारण अपने सगेसाथियों को पढ़ने के लिए प्रेरित करता है। पढ़ाई ही एक मात्र जरिया है जो इन लोगों को इस नारकिय जीवन से छूटकारा दिला सकता है। सायरा, चंद्रा एवं पूनम जोशी को पढ़ने के लिए बार—बार प्रेरित करता है— “तुम लोग पढ़ना, उसी तरह से जिस तरह से मेरे संग पढ़ती है।”⁹ एक समय हाशिये पर रहनेवाला दलित समुदाय डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के विचारों से प्रभावित हुआ। उनके बतलाए मार्ग पर चलने लगा, शिक्षा, संघटन एवं संघर्ष के महत्व को लोगों ने जाना जिसे यह समुदाय स्वाभिमान से विनोद कहता है— “पढ़ाई ही हमारी मुक्ति का रास्ता है। कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा गया है हमारे लिए। विनोद किन्नरों को संबोधित करते समय स्वाभिमान, सम्मान, आत्मसम्मान निर्भीकता, शिक्षा, स्वावलंबत्व निर्माण की

आवश्यकता बतलाता है। विनोद अपनी बिरादरी को समझाते हुए कहता है कि दलितों का उद्धार डॉ. बाबासाहब आंबेडकरजी ने किया है तो किन्नरों का उद्धार विनोद क्यों नहीं कर सकता— “दलितों के लिए आंबेडकर पैदा हो सकते हैं तो किन्नरों के लिए विनोद क्यों नहीं पैदा हो सकता।”^{११} राजनेता किसी का फायदा नहीं उठाते ऐसा नहीं है। विधायक जी अपने फायदे के लिए बिन्नी के माध्यम से सारे किन्नरों को एकत्रित कर आंदोलन के लिए उकसाते हैं। विधायकजी बिन्नी को कहते हैं कि आंदोलन, हरताल, लुटमार के द्वारा ही अपने समुदाय के लिए आरक्षण माँग सकते हो। इन सारी बातों का ब्यौरा बिन्नी पत्र के द्वारा अपनी वंदनाबेन को देते रहता है। अपने बेटे से जुदा होकर वंदनाबेन पछतावा करने लगती है। समाज की परवाह किए बिना उसे घर बुलाती है परंतु लौटने से पहले ही विधायकजी, तितलाबाई (किन्नर) आदि के राजनीतिका शिकार हो जाती है। बंम्बई के नालासोपार में जिस किन्नर की लाश मिली थी वह कोई और न होकर विनोद ही था। वंदनाबेन के द्वारा लिखे माफीनामे से ही पता चलता है कि विनोद घर लौटने का प्रयास तो करता है परंतु उसका यह प्रयास असफल बन जाता है— “कुर्ला, कालीना कॉम्प्लेक्स से लगी हुई मीठी नदी में पुलिस ने एक किन्नर की फूली लाश बरामद की है। शव की शिनाख्त नहीं हो पाई है। सिर बुरी तरह कुचला हुआ। पुलिस इस वारदात को आपसी रंजिश का नतीजा मान रही है।”^{१२}

संदर्भ—

- १) पोस्ट बॉक्स नं. २०३ नालासोपार—चित्रा मुद्गल (भूमिका से)
- २) वही
- ३) अनुसंधान (त्रैमासिक शोध पत्रिका अक्टूबर—दिसम्बर —२०१७) संपादक—डॉ. शगुफता नियाज पृष्ठ—१०
- ४) पोस्ट बॉक्स नं. २०३ नालासोपार — चित्रा मुद्गल पृष्ठ—०९
- ५) अनुसंधान (त्रैमासिक शोध पत्रिका अक्टूबर—दिसम्बर —२०१७) संपादक—डॉ. शगुफता नियाज पृष्ठ—१३
- ६) पोस्ट बॉक्स नं. २०३ नालासोपार — चित्रा मुद्गल पृष्ठ—१०
- ७) वही—पृष्ठ—११
- ८) अनुसंधान (त्रैमासिक शोध पत्रिका अक्टूबर—दिसम्बर —२०१७) संपादक—डॉ. शगुफता नियाज पृष्ठ—२९
- ९) पोस्ट बॉक्स नं. २०३ नालासोपार —चित्रा मुद्गल पृष्ठ—७९
- १०) वही — पृष्ठ—८२
- ११) वही — पृष्ठ—१५७
- १२) वही — पृष्ठ—१२४



किन्नर विमर्श एक परिशीलन

प्रा.डॉ. वीरश्री वशिष्ठजी आर्य
हिन्दी विभाग
वैद्यनाथ कॉलेज परळी-वै.

लग रहे स्वार्थ के नित मेले, ईन्सान खो गया राहों में।
घृणा का परचम झूम रहा, करुणा कराहती आहों में।
नित भेद-भाव के नाले को, सागर में बह जाने दो।
समरसता को आने दो, समरसता को आने दो।

समरसता का अर्थ ही समाज को एकजुट करना एवं पारस्परिक भेदभाव को समाप्त करना है। समरसता का प्रयोग मैं समाज में निहित उस हाड़ – मांस से बने स्त्री – पुरुष के संयोग से उत्पन्न मानव का चोला ओढ़े, कभी नारी तो कभी पुरुष गुणों को धारण किये वर्ग से करना चाहती हूँ, जिसे समाज में गेय, किन्नर, हिजड़ा, थर्ड जेंडर अदि नामों से जाना जाता है।

भाषा की दृष्टि से देखा जाए तो, उसमें त्रिलिंगीय भेद हमें मान्य है। पुल्लिंग/स्त्रीलिंग/नपुंसकलिंग। लेकिन समाज में उपस्थित स्त्री/पुरुष/गेय तीनों में से केवल दो ही मान्य हैं – स्त्री और पुरुष। प्रबुद्ध वर्ग भली भाँति जनता है कि, चाहे स्त्री हो या पुरुष उसमें 'लज्जा' उनका स्थाई भाव है तभी जब वे संभोग करते हैं, तो 'श्वान' की तरह नहीं ईन्सान की तरह छिपकर करते हैं वही 'लज्जा' गेय अर्थात् किन्नरों में भी होती है। जब भी स्त्री अपमानित होती है, क्रोधित होती है, संकटों से घिर जाती है, तो प्रायः वह पुरुष गुणयुक्त बलशाली हो जाती है ठीक उसी प्रकार जब पुरुष भययुक्त होता है, करुणामय होता है, दयनीय और कमजोर होता है तो वह भी स्त्री गुणयुक्त हो जाता है। संसार के हर स्त्री में कहीं ना कहीं पुरुष और पुरुष में कहीं ना कहीं स्त्री छिपी होती है तभी समुद्र मंथन में अमृत प्राप्त करने के लिए देवों की ओर से विष्णु का मोहिनी रूप धारण करना, महाभारत में पांडवों के अश्वमेध यज्ञ की सफलता हेतु कृष्ण का मोहिनी रूप धारण कर अर्जुन और उल्लिखित से उत्पन्न बलीपुत्र इरावत के साथ रात बिताना साफ तौर से दर्शाता है कि स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के गुणयुक्त होते हैं।

पौराणिक कथाएं प्रमाण देती हैं कि, किन्नर तब भी थे जब महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ था और बचे किन्नरों ने कृष्ण से कहा था हम कहाँ जाएँ ? उस समय कृष्ण ने उन्हें कहा था अभी आकर बताता हूँ तुम यहीं रुको और वें नहीं आए उस युग से आज तक किन्नर उनकी प्रतीक्षा में हैं। इतिहास के कुछ पन्नों पर आज भी ये दर्ज है कि, शासक बदल गए परन्तु २०वीं शती तक किन्नरों की स्थिति में कुछ ज्यादा अंतर नहीं पाया गया। हालाँकि मुगल काल के शासक अकबर ने इन्हें अपने महल में अपने हरम में अपनी बेटियों और पत्नियों की सुरक्षा का जिम्मा सौंपा था। और उनकी संख्या सैकड़ों में थी। उसके बाद जहांगीर और शाहजहाँ ने भी इसी नीति को अपनाया था।

सलतनें मिटती गयी नयी नीतियाँ आती रहीं और फिर एक बार किन्नर 'बेघर' हो गए।

२१ वीं सदी की वर्ष २०११ की जनगणना के अनुसार देश में ट्रांसजेंडरों की संख्या ४.८८ लाख है। और तब भी वे समाज में हीन दर्जे के ही माने जाते रहे। जिस इरावत की एक रात की पत्नी कृष्ण बने थे और दूसरे दिन उसकी बली महाभारत युद्ध विजय हेतु चढ़ा दी गई थी, जिस समय स्वयं कृष्ण मोहिनी रूप में रोये और विलाप किया था। उसी मोहिनी के पती और अर्जुन पुत्र इरावत को 'किन्नर' देवता मानते हैं। आज भी तमिलनाडु में विल्लुपुरम स्थित 'इरावत मंदिर' में सारे किन्नर लाखों की संख्या में आकर एक दिन की इरावत की पत्नी बन रात भर जश्न मनाते हैं और सुबह उसकी मृत्यु की पीड़ा से छाती पिट पिट कर विलाप करते हैं।

चौकाने वाली बात है कि थर्ड जेंडर की पहचान वाली कुल जनसंख्या का ६६ प्रतिशत आबादी ग्रामीण इलाकों में रहती है।

"सबसे पहले नंबर पर २८ प्रतिशत थर्ड जेंडर वाली आबादी उत्तर प्रदेश में है जहाँ १ लाख ३७ हजार (१,३७,०००) लोगों की पहचान की गई। दूसरे नंबर पर आंध्र प्रदेश ६ प्रतिशत (४४,०००) थर्ड जेंडर लोग रहते हैं। तीसरे नंबर पर महाराष्ट्र और बिहार ८ प्रतिशत (४१,०००) थर्ड जेंडर लोगों की पहचान की गई है। पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश ३०,०००, तमिलनाडु – २२,०००, ओडिसा और कर्नाटक २०,०००, और राजस्थान – १७,००० थर्ड जेंडर लोग रहते हैं।"

पत्रकार अंकुर शर्मा बताते हैं – "भारत में साल २०१४ में सुप्रीम कोर्ट ने इन्हें (किन्नरों को) सरकारी दस्तावेजों में बाकायदा थर्ड जेंडर के तौर पर एक पहचान दी है। वो सरकारी नौकरीयों में जगह पा सकते हैं।

स्कूल कॉलेज में जाकर पढ़ाई कर सकते हैं। उन्हें वही अधिकार दिए हैं जो किसी भी भारतीय नागरिक के हैं।"²

वर्षों से वंचित गेय समाज को २१वीं सदी के दूसरे दशक में कुछ न्याय की आशा ने भाव विभोर कर दिया, लोग उन्हें कुछ प्रतिशत ही सही अपने जैसा मान रहे हैं। लेखक उनपर कहानियाँ, उपन्यास लिख रहे हैं। पत्रकार उनसे प्रत्यक्ष भेंट कर उनके दर्द को जनता के सामने लाने का प्रयास कर रहे हैं। पढ़े लिखे किन्नरों की तादात उपरोक्त फैसले से खुलकर सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए प्रयासरत दिखाई दे रही है। वर्षों से साहित्य और समाज के हाशिए पर रहा किन्नर समाज विमर्श के रूप में संगोष्ठी और सेमिनारों में चर्चा का विषय बन रहे हैं। बेझिझक किन्नरों से बात करती और उनके साथ काफी समय व्यतीत कर उनकी गुमों की तस्वीरें हम तक पहुंचाने वाली मैग्नम फोटोग्राफर शहरिया शर्मीन (SHAHARIA SHARMIN) जिसे जूरी अवार्ड के लिए चुना गया। "किन्नरों की जिंदगी के वो रंग जो अनदेखे हैं।" में उदघाटित करती हैं – शर्मीन के मुताबिक उनकी परवरिश एक कट्टरपंथी परिवार में हुई थी। वो बचपन से अपने आसपास किन्नरों को देखती थी ; लेकिन कभी भी परिवार के साथ उनके बारे में बात नहीं कर पाती थीं, क्योंकि ये उनके तहजीब के खिलाफ समझा जाता था और किन्नरों को समाज का हिस्सा ही नहीं माना जाता था।³

दुनियाँ में जब कोई पहली बार किसी क्षेत्र में पदार्पण करता है तो उसका नाम स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हो जाता है और वह दूसरे व्यक्तियों का रोल मॉडल (जीवनादर्श) बन जाता है। ठीक उसी तरह 2017 वर्षात में छः ऐसी बात घटीत हुयी जिन्होंने किन्नरों के लिए एक आदर्श स्थापित किया—

- 1) "कोच्चि मेट्रो में ट्रांसजेंडरों की नियुक्ति— 23 ट्रांसजेंडरों को बतौर कर्मचारी नियुक्त किया है। ऑपरेशन द्वारा अपना लिंग बदलने वाले व्यक्तियों को भी इस अनुच्छेद में शामिल किया गया है।
- 2) ट्रांसजेंडरों के लिए अलग से क्लीनिक 'कोह्यम का सरकारी मेडिकल कॉलेज' इस मामले में देश में पहला क्लीनिक है, जिसमें कॉलेज की प्लास्टिक सर्जरी विभागाध्यक्षा डॉ.लक्ष्मी जयकुमार बताती हैं कि इस क्लीनिक में साईकिएट्री, एंडोक्रिनोलॉजी, डर्मेटोलॉजी, प्लास्टिक सर्जरी, गायनोकोलॉजी और यूरोलॉजी आदि के विशेषज्ञ भी ट्रांसजेंडर मरीजों के लिए उपलब्ध हैं।
- 3) पुलिस फोर्स में ट्रांसजेंडरों की भर्ती – भारत में अबतक सिर्फ दो ही पुलिस अधिकारियों की भर्ती हुई है 1. तमिलनाडू और 2. राजस्थान
- 4) पहली ट्रांसजेंडर पुलिस अधिकारी की नियुक्ति – 2017 के एप्रैल में तमिलनाडू की 'पृथिका यशिनी' देश की पहली सब इंस्पेक्टर बनी हैं।
- 5) पहली ट्रांसजेंडर जज— जुलाई 2017 में कोलकत्ता में जन्मी जोजिता मंडल हैं। आज वे पश्चिम बंगाल के इस्लामपूर की लोक अदालत में जज हैं।
- 6) पहली ट्रांसजेंडर कॉन्स्टेबल – नवम्बर 2017 में राजस्थान की जालौर में रहनेवाली 'गंगा कुमारी' का नाम लिया जाता है।"⁴

उपरोक्त ट्रांसजेंडरों की ही हिजड़ा, कोठी, पंथी, डांगा, इबल डेकर और गे इतनी श्रेणियाँ मानी जाती हैं। जिन्हें लोग 'केटेगरी' भी कहते हैं।

2018 में शीतकालीन सत्र में ट्रांसजेंडर के अधिकारों से जुड़ा एक अहम बिल पारित किया गया था। यह बिल उनके अधिकारों को संरक्षित करता है जिस पर सदन ने मुहर लगाई थी। इस बिल में ट्रांसजेंडर को परिभाषित करने, उनके खिलाफ भेदभावपर पाबंदी लगाने और उन्हें लिंग पहचान का अधिकार देने का प्रावधान शामिल है।

एक साल तक बेरोजगार रहने के बाद ट्रांसजेंडर बनी चेन्नई की 'रक्षिका राज' रजिस्टर्ड नर्स बनी। वे कहती हैं – मुझे कोर्ट में पिटीशन तक दाखिल करनी पड़ी और तब जाकर मुझे नौकरी मिली है।

नवभारत टाइम्स के साक्षात्कार में 'रक्षिकाराज' कहती है – "चुनौतियाँ कई होंगी लेकिन हमें उठकर उन्हें (उनसे) लड़ना होगा और जगमगाना होगा।"⁵

किन्नरों की समस्या को ध्यान में रखते हुए समाज में किन्नरों को नई पहचान दिलाने के लिए महाराष्ट्र सरकार ने 40 सदस्यीय किन्नर समाज कल्याण महामंडल का गठन किया था जिसके द्वारा निम्नकार्यों का होना तय है – महामंडल किन्नरों को पहचान पत्र देने से लेकर उनकी पढ़ाई लिखाई, स्कॉलरशिप, घर, नौकरी, स्वास्थ्य जैसी सभी बुनियादी सुविधाएँ मुहैया कराएगा। सामाजिक न्याय और विशेष सहाय्यक मंत्री किन्नर समाज कल्याण महामंडल का अध्यक्ष होगा।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी की अध्यक्षता में केंद्रीय कॅबिनेट ने 19 जुलाई 2016 को ट्रांसजेंडर पर्सन्स (प्रोटेक्शन ऑफ राईट) बिल को मंजूरी दी थी उसी के तहत उपरोक्त महामंडल की शुरुवात की गई 2019 में जिसके फायदे निम्न रूप से दर्शाए गये—

- 1) "महामंडल किन्नरों को विशेष पहचान पत्र देगा ।
- 2) शिक्षा में मदत हेतु 10 वीं के बाद स्कॉलरशिप मिलेगी ।
- 3) हॉस्टेल में रहने की सुविधा ।
- 4) डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर 'स्वाधार योजना' अंतर्गत उन्हें सालाना 48 से 60 हजार तक का वजीफा सुविधा ।
- 5) किन्नरों को आवास मुहैया कराने में सरकार मदत करेगी ।
- 6) पढे लिखे किन्नरों को रोजगार मुहैया कराया जाएगा ।
- 7) स्वास्थ्य हेतु एवं जागरूकता हेतु उपचार शिविर आयोजित होंगे ।
- 8) नशा करने वाले किन्नरों के लिए नशामुक्ति कार्यक्रम लागू होंगे ।"⁶

भारत में 2014 का सुप्रीम कोर्ट का थर्ड जेंडरों को समाज में अपनी पहचान दिलाने को भलेही पारित कर चुका हो लेकिन पढे लिखे सुसभ्य समाज में आज भी थर्ड जेंडरों के लिए सार्वजनिक शौचालय मुहैया कराने में नगर पालिका, महापालिका, विधानसभा, लोकसभा सभी कन्नी काटते नजर आते हैं ।

वर्ष 2016 तक पूरे भारत देश में सिर्फ मैसूर ही ऐसा एकमात्र शहर था जहाँ थर्ड जेंडर वालों के लिए सार्वजनिक शौचालय की व्यवस्था की गई थी ।

मुंबई की एकता हिंद सोसायटी ने अलग शौचालय बनाया है । मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में भी किन्नरों के लिए अलग शौचालय बना है । फिर भी इस समस्या का हल होना नितान्त आवश्यक है नागपुर में भी किन्नरों के लिए शौचालय बना है । फिर भी संख्या को मद्दे नजर रखते हुए प्रत्येक बसस्थानक, रेलवे स्टेशन, स्कूल, कॉलेज, शैक्षणिक संस्थानों और हाट बाजारों में भी किन्नरों के लिए अलग से शौचालय की व्यवस्था होनी चाहिए ।

भारत का पहला ट्रांसजेंडर स्कूल खुला 'केरल' में जो 'कोची' शहर में स्थित है 700 लोगों ने शुरू में इसे जगह देने से इन्कार किया था । इसमें पढानेवाले टिचर भी ट्रांसजेंडर ही हैं ।

अमेरिका के ट्रांसजेंडर भलेही सेना में शामिल होने की दौड़ में हो पर भारत में ट्रांसजेंडरों के प्रति इतनी प्रगल्भता आने में कुछ समय भारतीय समाज के स्त्री, पुरुषों को अवश्य लगेगा । मनुष्य जिस दिन यह जान लेगा की 'आत्मा का कोई लिंग नहीं होता' वह जिसमें प्रवेशित होती है वही उसका लिंग बन जाता है तो शायद इस तिसरे लिंग की समस्याओं का समाधान हो जाए फिर भी मेरे विचार से निम्न उपाय किन्नरों का जीवन बेहतर बनाने में अवश्य कारगर होंगे । —

- 1) जिसप्रकार एक सांसद— एक गांव —गोद लिया गया था वैसे ही केवल उत्तर प्रदेश, आंध्रप्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडू, कर्नाटक और राजस्थान जहाँ किन्नरों की संख्या अधिक है प्रति सांसद एक किन्नर को गोद दिया जाए अर्थात स्कूल, कॉलेज, नौकरी का जिम्मा वे लेंगे तो 8 राज्यों के विधान परिषद, विधानसभा, राज्य सभा और लोकसभा सदस्य संख्या ही 3,029 हो जाती है । यथा राजा तथा प्रजा नुसार वे आदर्श बन जाएंगे और लोग भी किन्नरों को सम्मान की दृष्टि से देखेंगे ।
- 2) भारत के सभी जिलों में किन्नरों के स्कूलों की व्यवस्था की जाए ।
- 3) किन्नरों के लिए जन्म से मृत्यु पर्यंत शिक्षा दिक्षा और पालनपोषण वाले आश्रम शालाओं का निर्माण किया जाए ।
- 4) भारत में स्थित 789 विश्वविद्यालयों में ट्रांसजेंडरों की पदवी और पदव्युत्तर शिक्षा का प्रावधान किया जाए । जैसे— स्कॉलरशिप, आवास के लिए हॉस्टेल आदि.
- 5) राष्ट्रीय त्योहारों में किन्नरों को शामिल किया जाए ।
- 6) सरकारी नौकरीयों को फॉर्म में जाति सूचक एवं लिंग सूचक कॉलम में स्थान दिया जाए । जैसे लिंग— स्त्री / पुरुष / गेय
- 7) प्राचीन एवं मध्य काल में जैसे किन्नरों को महलों में पाकशाला और हरम में एहम औदे प्रदान थे । उसी प्रकार देश के नेता, अभिनेता, व्यापारी, उद्योगपति उन्हें काम पर अपने घर, फॅक्ट्री में रखेंगे तो समाज में किन्नरों को देखने का नजरिया बदलेगा और सामान्य ज्ञान प्रबुद्ध वर्ग से सिखेगा तथा किन्नरोंसे दैनिक व्यवहार करना प्रारंभ कर देगा ।

- 8) ट्रांसजेंडरों को चर्चासत्र, परिसंवाद, कॉन्फरन्स, सेमिनारों में शामिल किया जाए ।
जब तक हम रोजमर्रा के जीवन से उन्हें नहीं जोड़ेंगे तब तक लिंगभेद के फासले कभी खत्म नहीं होंगे ।
एक हों ! चिर प्रेम की गंगा बहाने के लिए ।
जाग उठो ! इन्सानियत के मूल्य लाने के लिए ।
उठो बढ़ो ! हैवानीयत के महल ढाने के लिए ।
सांसद में चल पड़ो अधिकार पाने के लिए ।
उठ खड़े हो ! अस्मिता अपनी बचाने के लिए ।
बढ़े चलो ! फिर किन्नरों, क्रांति लाने के लिए ।।

संदर्भ सूची :

1. चौक ichowk.in – शर्मा रिम्मी (Sharma.rimmi) – 06 एप्रैल 2017
2. समाचार पत्र देश – अंकुर शर्मा – 05 जुलै 2015
3. किन्नरों की जिन्दगी के वो रंग जो अनदेखे हैं –फियोना मॅकडोनल्ड बीबीसी कल्चर,30 अगस्त 2017
4. वर्षात 2017– सत्याग्रह – गायत्री आर्य – 31 दिसंबर 2017
5. एक साल तक बेरोजगार रहने के बाद ट्रांसजेंडर बनी, रजिस्टर्ड नर्स,मिली नौकरी –नवभारत टाईम्स.कॉम – 25 अक्तुबर 2019
6. महाराष्ट्र में किन्नरों के उत्थान को बना किन्नर समाज कल्याण महामंडल–नवभारत टाईम्स– राजकुमार सिंह – 24 फरवरी 2019



प्रतिनिधि बाल कविताएँ में बाल विमर्श

श्री. अजित विठ्ठल लिपारे
५२६/अ प्लॉट नं २४/अ
कामाठीपुरा, सातारा ४१५००९

आज का युग विभिन्न चुनौतियों से गुजर रहा है। हमारे जीवन को बाजारवाद, वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण ने काफी मात्रा में प्रभावित किया है। वर्तमान युग के साहित्यकारों ने हमारे जीवन से जुड़ी हर समस्या का सामाधान करने का प्रयास अपने साहित्य के माध्यम से करने की कोशिश की है। साहित्य जगत में आज-कल विभिन्न विमर्शों पर चर्चाएँ होती रहती है। इन विमर्शों में दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श, मजदूर विमर्श के साथ बाल विमर्श भी महत्वपूर्ण बन गया है। पहले-पहल बाल साहित्य कम मात्रा में लिखा गया। साहित्यकारों की दृष्टि इसकी ओर कम रही, किंतु आज कल काफी मात्रा में यह साहित्य लिखा जा रहा है। बाल साहित्यकारों में हरिकृष्ण देवसरे, रामनिवास मानव, हरिश निगम, भगवत दुबे, कृष्णबल्लभ पौराणिक, जयजयराम आनंद के साथ परशुराम शुक्ल का नाम भी महत्वपूर्ण माना जाता है। परशुराम शुक्ल हिंदी साहित्य जगत के सशक्त हस्ताक्षर के साथ-साथ बाल साहित्य जगत के दैदियमान नक्षत्र भी है। उन्होंने बाल साहित्य पर अपनी लेखनी को सुशोभित किया है। इस संबंध में डॉ. श्याम बिहारी श्रीवास्तव लिखते हैं, “श्री शुक्ल की १५० से अधिक पुस्तकें और लगभग ६००० स्फुट रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।”^१

परशुराम शुक्ल जी ने बाल उपन्यास, बाल कहानी, बाल एकांकी, बाल धारावाहिक, सूचनात्मक साहित्य के साथ-साथ बाल कविताओं पर भी अपनी कुशल लेखनी चलाई है। इन्होंने अपने कविताओं के माध्यम से विभिन्न विषयों को प्रस्तुत किया है। इसके संबंध में उपासना का मत है, “ इनकी बाल कविताओं में राष्ट्रीयता, मानव धर्म, नैतिकता, को देखा जा सकता है। इनकी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना को अधिक बल मिला है। इनकी कविताएँ एक और उच्च आदर्श प्रस्तुत करती हैं तो दूसरी ओर समाज का यथार्थ चित्रण करती हैं।”^२ शुक्ल जी ने बच्चों के मनोविज्ञान को समझकर उनकी जिज्ञासाओं को शांत करने का प्रयास अपनी कविताओं के माध्यम से किया है। श्री शुक्ल जी द्वारा लिखित ‘प्रतिनिधि बाल कविताएँ’ ऐसी ही एक महत्वपूर्ण किताब है। इसका प्रकाशन सन् २०१५ में रामश्री प्रकाशन, भोपाल मध्यप्रदेश से किया गया। इस संग्रह में उन्होंने अपने ४२ काव्य संग्रहों में से बारह काव्य संग्रहों यथा ‘कलरव’, ‘नंदनवन’, ‘आओ बच्चों गाओ बच्चों’, ‘मंगल ग्रह जाएँगे’, ‘चारो खाने चित’, ‘हमारे प्राकृतिक प्रतीक’, ‘तिरंगा’, ‘सूरज पान है’, ‘चिड़िया नीड़ बनाती’, ‘मेरा रोबो बड़ा निराला’, ‘विजय पर्व’, ‘बाल सतसई’ आदि में संकलित कविताओं में से कुछ कविताओं को चुना है।

वर्तमान युग के बालक कल्पनिकता के बजाय यथार्थपरक या वास्तविक बातें सुनना अधिक पसंद करते हैं। इस संबंध में छाया श्रीवास्तव और डॉ. संगीता पाठक लिखती हैं, “ वर्तमान युग के बालक राजा-रानी, भूत-प्रेत, परीयाँ, जंगल का राजा, जलपरी आदि की कहानियों में रूचि नहीं रखते हैं। वह कल्पनिक रूप में नहीं रहना चाहता उसे वास्तविक रूप जो उसे मनोरंजन दे व साक्षात् हो वहीं भाता है। उसे कल्पनाओं को आधार बनाकर संतुष्ट नहीं किया जा सकता।”^३ बाल साहित्य का प्रधान उद्देश्य बालकों का मनोरंजन है। शुक्ल जी ने इस तत्व को जो प्रधानता दी है, किंतु इसके साथ बालकों को नया-नया ज्ञान देने की कोशिश अपने कविताओं के माध्यम से की है। ‘प्रतिनिधि बाल कविताएँ’ में चार-चार पंक्तियों के शिशु गीतों के साथ चालीस पंक्तिओंवाली कविताएँ भी संकलित हैं। इस संग्रह में संकलित कविताओं के माध्यम से शुक्ल जी ने बच्चों को राष्ट्रभक्ति, मानवीय मूल्य, प्रकृति प्रेम, पारिवारिक रिश्ते, नये-नये आविष्कार आदि के बारे में बताया है।

परशुराम शुक्ल जी एक समाजशास्त्री होने के साथ-साथ आधुनिक विचारों को भी महत्व देते हैं। इसके साथ वे सामाजिक परंपराओं को कभी भी अस्विकार नहीं करते। उनका ईश्वर के उपर विश्वास है। उनके अधिकतर काव्य संग्रहों की शुरुवात ईश्वर की प्रार्थना से हुई है। बच्चे बड़े नादान होते हैं, वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि इस धरती पर मानव ने आपस में भेदभाव की जो सोच अपनाई है इसको तुम मिटा दो। आज इसी भेदभाव के कारण खून की नदीयाँ बहाई जाती हैं। बच्चे मानते हैं अगर भगवान ने सबको एक समान शारीरिक अवयव दिए हैं तो हम कौन होते हैं आपस में भेदभाव की खाई निर्माण करनेवाले। शुक्ल जी के शब्दों में

“ यदि तुम ईश जगत के हो तो, सारा भेद मिटाओ।
वरना तुमको नहीं मानता, तुम पत्थर हो जाओ।”^४

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से बच्चों में समानता की भावना का विकास होता है। भेदभाव को खत्म किए बगैर हम प्रगति के पथ पर आगे नहीं बढ़ सकते यही इस काव्य पंक्तियों के माध्यम से सूचित होता है।

शुक्ल जी आधुनिक विचारोंवाले होकर भी परंपराओं को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। अपनी संस्कृति का पालन कर हम आधुनिक बन सकते हैं। आज कल का युग विज्ञान का युग है। बच्चों के हाथों में मोबाईल आने की वजह से वह उत्सव, पर्व-

त्यौहारों के महत्व को समझ नहीं रहा है। शुक्ल जी ने अपने काव्य के माध्यम से होली, दीपावली, रक्षाबंधन, दशहेरा आदि त्यौहारों के बारे में बताया है।

“करना सदा बहन की रक्षा, भैया तुमको समझाता है।
कच्चे धागों का यह बन्धन, रक्षा बन्धन कहलाता है।”^४

उपर्युक्त पंक्तियों में रक्षाबंधन त्यौहार के महत्व के बारे में बच्चों को बताया गया है। साथ ही भाई बहन का रिश्ता क्या होता है?, भाई के बहन के प्रति क्या कर्तव्य होते हैं? यह भी सूचित किया गया है। इसी प्रकार ‘होली रंगों का त्यौहार’ में होली के बारे में कहा गया है।

पशु-पंछी, कीड़े-मकोड़े, जानवर आदि में शुक्ल जी विशेष रूचि रखते हैं। उनके लगभग सभी काव्य संग्रहों में वन्यजीवों के बारे में कविताएँ दिखाई देती हैं। उनका जानवरों के प्रति लगाव का पता इस बात से चलता है कि उन्होंने ढाई हजार पृष्ठों का और पाँच खंडों में विभाजीत ‘विश्व जलचर कोश’ तैयार किया है। शुक्ल जी ने इस प्रकार की कविताओं के माध्यम से बच्चों को उन वन्यजीवों के बारे में विभिन्न प्रकार की जानकारी दी है। जैसे उनकी शारिरीक संरचना, वे कहा पाये जाते हैं? उनकी गुण विशेषताएँ आदि। कुछ जीव तो ऐसे हैं जिनके नाम भी हमें पता नहीं। अभी तक हम यह समझते आए हैं कि कोयल मिठा गाती है, किंतु वह मादा कोयल न होकर नर कोयल की आवाज होती है। शुक्ल जी कि ‘उडन गिलहरी’, ‘नीलकंठ’, ‘उदबिलाब’, ‘देवहंस’, ‘कृष्णमृग’, आदि ऐसी ही कविताएँ हैं, जिनके माध्यम से उन्होंने इन जीवों की वैज्ञानिक जानकारी दी है।

आज बच्चों को राष्ट्रीय प्रतीकों के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी है। इन राष्ट्रीय प्रतीकों के साथ आज हर एक राज्य ने अपने-अपने राज्यपक्षी, राज्यपशु घोषित किए हैं, जैसे – असम का राजकीय पशु गैंडा तो राजकीय पक्षी देवहंस है। कुछ पशु पंछियों को एक राज्य के साथ अने राज्यों ने अपना राज्यपशु और राज्यपक्षी घोषित किया है। कृष्णमृग आन्ध्रप्रदेश, पंजाब और हरियाणा का राजकीय पशु है तो नीलकंठ कर्नाटक, उड़ीसा, बिहार, तेलंगना का राज्यपक्षी है। शुक्ल जी ने ऐसी अनेक कविताओं के माध्यम से बच्चों को नयी-नयी जानकारी देने की कोशिश की है।

आज नये-नये आविष्कार हो रहे हैं। नयी-नयी चीजें निर्माण हो रही हैं, जैसे कम्प्यूटर, रोबो, रॉकेट, टेलीविजन आदि। बच्चों के मन में इनके प्रति अनेकानेक जिज्ञासाएँ हैं। ये सब साधन चलते कैसे हैं? इनके माध्यम से हम क्या-क्या काम कर सकते हैं? आदि सवालों का समाधान शुक्ल जी ने अपने कविताओं के माध्यम से किया है। ‘कम्प्यूटर’, ‘मेरा रोबो बड़ा निराला’, ‘मैंने राकेट एक बनाया’, ‘टेलीविज़न’ आदि कविताएँ इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

“मेरा रोबो बड़ा निराला। मैमोरी वाला सिम डाला।
काम सभी करता पल भर में, करता कोई नहीं घुटाला।”^५

प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से रोबो जा आज के युग का नया आविष्कार है। इसके बारे में जानकारी दी है। ‘टेलीविज़न’ कविता में टेलीविज़न का आविष्कार किसने किया? टेलीविज़न के माध्यम से हम क्या-क्या जानकारी पा सकते हैं आदि के बारे में बताया है।

शुक्ल जी कुशल समाजशास्त्री, अध्यापक होने के साथ-साथ सच्चे पर्यावरण प्रेमी भी हैं ऋतुओं के अनुसार प्रकृति में क्या-क्या बदलाव आते हैं इसके बारे में शुक्ल जी ने बच्चों को बताया है। ऐसी कविताओं में ‘आई सर्दी आई’, ‘आई गर्मी आई’, ‘वर्षा’ आदि प्रमुख हैं।

“किट किट दाँत बजानेवाली, आई सर्दी आई।
भाग गये सब पतले चादर, निकली लाल रजाई।”^६
“आग लगाती, बदन जलाती, आई गर्मी आई।
भाग गये सब उनी कपड़े, कम्बल और रजाई।”^७

बच्चों के व्यक्तित्व के निर्माण में, उन्हें संस्कारित करने में अभिभावकों के बाद गुरु अर्थात् शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण रहती है। गुरु ही बच्चे को अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाता है। ज्ञानाश्रयी शखा के प्रवर्तक कबीर ने तो गुरु को गोविंद अर्थात् भगवान से भी बड़कर माना है। शुक्ल जी बच्चों को अपनी कविताओं के माध्यम से गुरु का सम्मान करने की शिक्षा देते हैं। शिक्षक में ऐसी शक्ति है जो बच्चों में ज्ञान की ज्योत प्रज्वलित कर उसे महान व्यक्ति बनाता है। ईश्वर केवल जीवन देता है, किंतु शिक्षक हमें ज्ञान का सागर देता है। जिसकी वजहसे हम अपना जीवन सफल बना सकते हैं।

“ईश्वर से बढ़ कर करो, शिक्षक का सम्मान।
ईश्वर देता जिन्दगी, शिक्षक देता ज्ञान।”^८

सार रूप में कहा जाय तो परशुराम शुक्ल एक कुशल समाजशास्त्री, अध्यापक होने के साथ-साथ श्रेष्ठ बाल साहित्यकार भी हैं। बाल मनोविज्ञान गहराईसे अध्ययन कर उन्होंने अपना काव्य सृजन किया है। अपने काव्य के माध्यम से उन्होंने बालकों का मनोरंजन तो किया ही है, किंतु इसके साथ उन्हें ज्ञान का भांडार भी दिया है।

संदर्भ सूची :-

१. संपा. शुक्ल प्रो. त्रिभुवननाथ - 'साक्षात्कार' पत्रिका, भोपाल, अप्रैल, २०१३, पृष्ठ १३
२. International Journal of Advanced Educational Research, Issue 2, March 2018, Page 429-430
- ३- Shodhaytan- AISECT University Journal, Vol IV/Issue VII, June 2017, Page 616
४. शक्ल परशुराम- 'प्रार्थना', रामश्री प्रकाशन, भोपाल, २०१५, पृष्ठ २७
५. शक्ल परशुराम - 'रक्षाबंधन', रामश्री प्रकाशन, भोपाल, २०१५, पृष्ठ ३०
६. शक्ल परशुराम - 'मेरा रोबो बड़ा निराला', रामश्री प्रकाशन, भोपाल, २०१५, पृष्ठ ७१
७. शक्ल परशुराम - 'आई सर्दी आई', रामश्री प्रकाशन, भोपाल, २०१५, पृष्ठ ४३
८. शक्ल परशुराम - 'आई गर्मी आई', रामश्री प्रकाशन, भोपाल, २०१५, पृष्ठ ४३
९. शक्ल परशुराम - 'बाल सतसई', रामश्री प्रकाशन, भोपाल, २०१५, पृष्ठ ८६



डॉ. परशुराम शुक्ल के बालकाव्य का बच्चों के व्यक्तित्व विकास में योगदान

डॉ. भगवान जाधव

पिपल्स कॉलेज, नांदेड
जि. नांदेड

डॉ. सहदेव वर्षारणी निवृत्तीराव

श्री विजयसिंह यादव महाविद्यालय, पेठवडगाव
ता. हातकणंगले जि. कोल्हापुर

प्रस्तावना:

राष्ट्र निर्माण में बालसाहित्य बेहद रचनात्मक और महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आज का बालक ही कल का नीतिनिर्माता और निर्धारक होता है। यदि बच्चों को समुचित नैतिक शिक्षा, संस्कार एवं मानवीय मूल्यों से रुबरु करवा लिया जाए तो निसंदेह वे राष्ट्र प्रगतिर गतिमान होंगे।

बच्चों को अथवा बच्चों की रुचि को केंद्र में रखकर लिखे गये साहित्य को बाल साहित्य कहा जाता है। पहले बाल साहित्य का अर्थ उपदेशात्मक कविताओं अथवा लोककथाओं परीकथाओं तथा जादू टोने की कहानियों से लिया जाता था लेकिन अब इस अर्थ में परिवर्तन हो चुका है। आज के बाल साहित्य के केंद्र में आज का वह बच्चा है जिसके सामने एक ओर सपनों का असीम संसार है तो दूसरी ओर चुनौतियों का बड़ा सा पहाड़। यही कारण है कि आज का बाल साहित्य बच्चों का केवल मनोरंजन नहीं करता, बल्कि उनका ज्ञानवर्धन कर उन्हें सामाजिक विद्रुपताओं से जुझने की शक्ति देता है।

बाल साहित्य बच्चों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर लिखा गया साहित्य होता है। बाल साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसका अपने आप में सरल, सहज और स्वाभाविक होना है। हमारे देश में प्राचीन काल से ही बालसाहित्य लिखा जाता रहा है। पंचतंत्र कथा, सरित्सागर, हितोपदेश, नीतिकथाओं तथा लोककथाओं का अथाह भंडार इस तथ्य का साक्ष्य है। बाल साहित्य बालकों को संस्कार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह बालकों की प्रारंभिक अवस्था से ही उसके मन विचार और कल्पना को परिमार्जित करते हुए समाज एवं राष्ट्र के भावी स्वरूप की पृष्ठभूमि तैयार करता है। बाल साहित्य कल का भविष्य है। वरिष्ठ साहित्यकार नामवर सिंह जी केशवों में- “बच्चों की दृष्टि से देखी गई दुनिया प्रकृति और समाज का चित्रण जिस साहित्य में किया जाता है, वही बाल साहित्य है।”

बाल साहित्य की सभी वही विधाएं हैं, जो सामान्य साहित्य की होती हैं। हिन्दी में बाल कविताएं, शिशु गीत, बाल कहानियां, बाल एकांकी, महापुरुषों की जीवनियां, वैज्ञानिक एवं अन्य उपलब्धियों आदि पर रोचक व प्रेरणास्पद साहित्य रचा जा रहा है। बाल पत्रिकाएँ भी बड़े सुरचिपूर्ण ढंग से निकल रही हैं। बाल कविता की सबसे बड़ी विशेषता उसकी ज़यता होना जरूरी है। इसमें सरल और प्रचलित शब्दों का प्रयोग होता है।

आज के साहित्य में दुनिया भर के देशों में बाल साहित्य की महत्ता स्वीकृत की जा रही है। इस बात को प्रमाणित करने के लिए चीन का उदाहरण देना समीचीन होगा। चीन ने बहुत से मामलों में अमेरिका से भी अधिक प्रगति कर ली है। आज अमेरिका का मार्केट चीनी वस्तुओं से भरा पड़ा है। भारत में भी दिपावली के पटाखों से लेकर होली के रंग तक सभी वस्तुएं चीनी हैं। लेकिन आज दुनिया जानती है कि चीन ने भौतिक प्रगति तो खूब कर ली, किंतु उसकी संस्कृति विलुप्ति के कगार पर खड़ी है। हर देश जानता है कि संस्कृति खत्म तो देश समाप्त। आज चीन अपने देश की संस्कृति की पुर्नस्थापना के लिए परेशान है। और इसके लिए उन्होंने बच्चों को चुना है। बच्चों के लिए बालसाहित्य को चुना है। नैतिक और शाश्वत मूल्यों से युक्त बाल साहित्य को चुना है। आज चीन का बुद्धिमान साहित्यकार वर्ग बाल साहित्य की रचना में लगा है और वहाँ विशेष रूप से बाल कविताएं अधिक लिख रहा है। बालकविता की सबसे बड़ी उपयोगिता संस्कृति की सुरक्षा और हस्तांतरण है। बाल कविता के माध्यम से ही संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाती है। चीन में संस्कृति की सुरक्षा बाल कवित्व के द्वारा ही संभव हो सकेगी।

डा. परशुराम शुक्लजी ने अपनी बाल कविता के माध्यम से बच्चों के व्यक्तित्व विकास में बहुत बड़ा योग दिया है। बच्चों के व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास के अनेक साधन हैं। बच्चों के व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास में बाल साहित्य बहुत आवश्यक होता है। परशुराम शुक्लजी की कविता भी अत्यंत प्रभावशाली कविता है। जो बच्चों के व्यक्तित्व को संवारने में सहायक सिद्ध होती है। उनका बालकाव्य बच्चों के नैतिक विकास में निश्चित रूप से बड़ा सहायक रहा है। बच्चों में सत्य एवं अहिंसा, निस्वार्थ प्रेम एवं सहानुभूति दया और करुणा, सौहार्द्र और सामंजस्य, सदाचार और श्रम का महत्त्व, कर्तव्यनिष्ठा, परोपकार की भावना, विश्वबंधुत्व और विश्वकल्याण की भावना आदि नैतिक गुणों को विकसित कराने में सहायक सिद्ध रहा है।

फुल हमेशा, कभी खिले, बस एक बार खिलता है।

यह जीवन ऐसा जीवन, जो एक बार मिलता है।

इस छोटे से जीवन में, कुछ कर दिखलाना है।

मैं नन्हा सा अंकुर, मुझको सूरज पाना है।^१

बढ़ती आयु वाले बच्चों को बहुत बार सामाजिक मूल्यों और आदर्शों से संघर्ष करना पड़ता है। परिणामस्वरूप कभी कभी वे अनिश्चितता की स्थिति में पहुँच जाते हैं। ऐसे में बाल कविता ही बच्चों के व्यक्तित्व को सही दिशा दे सकती है। परशुराम शुक्ल जी की कविता भी बच्चों को इसी प्रकार का रास्ता दिखाने का काम कर रही है।

परशुराम शुक्ल जी की कविता बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास में योग दे रही है, जिससे उनके व्यक्तित्व में आस्था और विश्वास, राष्ट्रभक्ति एवं देशप्रेम, पर्व एवं त्योहार, सामाजिक समस्याओं का ज्ञान, सांस्कृतिक विरासत का ज्ञान, भाषा का महत्त्व, अनीति और अन्याय का विरोध, प्रकृति और पर्यावरण का महत्त्व आदि गुणों का विकास हो रहा है।

एक प्रदूषण और बढ़ रहा
आओ इसको भी हम जानें।
यह चरित्र को मिटा रहा है,
इसको भी हम सब पहचानें।^२

एक महत्वपूर्ण बात यह है की, आज के बालक ऊपर से देखने पर चाहे जितने भी लापरवाह लगे, आज के बालक से वे उतने ही जिम्मेदार भी हैं। वे माँ-पिता की मुश्किलों और परेशानियों को भली-भाँती समझते हैं। बेटी हो या बेटा घर के कामों में माँ की मदद करते हैं। ऐसे नन्हें बच्चों को लेकर उनके नन्हें संकल्पों को लेकर भी कविताएं लिखी गई हैं। इतना ही नहीं नई सदी की नई तकनीकें भी आज की बाल कविता में दिखाई देती हैं। यह बिल्कुल सच्चाई है कि, आज के बालक नई-नई चीजों और उनसे जुड़ी तकनीकी जानकारी को झट से जान लेते हैं। वे उनका इस्तेमाल करना ही नहीं, बल्कि उनका आनंद लेना भी सीख जाते हैं। घर में कम्प्यूटर आने पर पापा से पहले मुन्ना सीख गया। इस्तरह हजारों सालों से चले आ रहे जीवन के संस्कारों को बच्चों तक पहुँचाने का कार्य शुक्लजी बड़ी निष्ठा से कर रहे हैं। उनका बालकाव्य बच्चों के मानसिक विकास में बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। स्वस्थ मनोरंजन, ज्ञानवर्धन, वैज्ञानिक दृष्टि, जीवन के उद्देश्य का निर्धारण, नवीन चिंतन की प्रेरणा, तर्कपूर्ण व्यवहार, भौतिक संस्कृति का ज्ञान, अंतरिक्ष का ज्ञान आदि सभी गुणों का विकास उनकी कविता कर रही है। केवल इतना ही नहीं तो परशुराम शुक्ल का बालकाव्य का शारीरिक विकास में भी योग दे रहा है। जैसे नियमित दिनचर्या सादा एवं पौष्टिक भोजन, योग और व्यायाम, सरल एवं प्राकृतिक जीवन, रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा आदि बातों की महत्ता उनकी बाल कविता से बच्चों को समझ में आ रही है।

निष्कर्ष:-

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बाल कविता की उपयोगिता और महत्व सर्वमान्य है। भारत में भी बाल साहित्य के विकास के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। हम देख रहे हैं कि, वर्तमान समय में हमारा देश संक्रमणकाल से गुजर रहा है। एक तरफ भारतीय संस्कृति है तो दूसरी तरफ विदेशी संस्कृति तेजी से बढ़ रही है। ऐसे में बच्चे कुछ भ्रमित दिखाई दे रहे हैं। बाल साहित्य ही दिशा देकर इस भ्रम को दूर कर सकता है। बच्चे परिवार और समाज के लिए जरूरी हैं। बच्चे परिवार के भीतर अधिकांश समय व्यतीत करते हैं। परिवार और समाज के भीतर एक ऐसा बाल साहित्य प्रदान करना आवश्यक है जो उनके व्यक्तित्व का संतुलित विकास कर सके। यह बाल साहित्य की सबसे बड़ी आवश्यकता और उपयोगिता है। आज हमें ऐसे बाल साहित्य की आवश्यकता है, जिसमें बच्चों के व्यक्तित्व का संतुलित विकास हो, तथा उन्हें भारत की गौरवशाली संस्कृति की जानकारी मिल सके। बाल साहित्य बच्चों के साथ ही परिवार और समाज के लिए भी आवश्यक है। निश्चित रूप से नैतिक और शाश्वत मूल्यों का महत्त्व स्थापित करना भी परशुराम शुक्ल जी के काव्य का मूल प्रयोजन है।

संदर्भ:-

१. बाल साहित्य और आलोचना- अनुज कुमार पृ ३३
२. सूरज पाना है- डा. परशुराम शुक्ल पृ २६
३. तिरंगा- डा. परशुराम शुक्ल पृ ४८

प्रवासी हिंदी साहित्य में बाल विमर्श

डॉ. कृष्णात आनंदराव पाटील
हिंदी विभाग,
श्री शिव-शाहू महाविद्यालय, सरुड
ता. शाहुवाडी, जि. कोल्हापुर.

साहित्य का मूल उद्देश्य समाज के प्रति संवेदना जगाना है। यह संवेदना मनुष्यता के साथ ही आती है। बच्चों के बिना मनुष्यता का जीवित रहना असंभव है। यह विडंबना ही कि समाज में बालक के अधिकारों की बात बस कही मात्र जाती है लेकिन अब तक वह कागज से जमीन का सच नहीं बन पायी है। हमारे हिंदी साहित्य में अधिकांश बाल लेखन महानगर/नगर को केंद्र में रखकर लिखा गया है लेकिन बालकों की अच्छी खासी संख्या गाँव/देहात में रहती है जिनतक बाल साहित्य पहुँचाना बेहद आवश्यक है क्योंकि बालकों के विकास में बाल साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है।

बचपन में हम जो कुछ पढ़ते हैं, वह ऐसी अमिट छाप छोड़ता है, जो कई बार तो हमारी पहचान तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पहले जमाने में दादी-नानी बालकों को कहानियाँ सुनाती थीं। अब वह वक्त नहीं रहा। ऐसे में बच्चों को बहतरिन किताबें पढ़ने को देने की आवश्यकता है। भारत देश में कई बड़े नामी साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने बाल साहित्य लिखा है। कई प्रवासी भारतीय लेखकों ने बालकों के लिए बहुत कुछ लिखा है जैसे देवी नागरानी, श्रीमती सरिता मेहता, निरंकार देव सेवक, दिविक रमेश, आदि।

प्रवासी साहित्य सर्वथा नवीन नहीं है। बीसवीं सदी में प्रवासी भारतीयों ने भारतीयता को बनाये रखने का प्रयास किया है। पूर्व में उपलब्ध प्रवासी हिन्दी साहित्य से आज का प्रवासी साहित्य अलग है। विगत पैंतीस-चालीस वर्षों में नवीन तकनीकी उपकरण विकसित हुए, प्रौद्योगिकी चरम सीमा लाँगती गयी तो प्रवासी साहित्य भी अत्यधिक लोकप्रिय होता गया। प्रवासी भारतीयों में कुछ ऐसे प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों के नाम शुमार हैं जिन्होंने यह सोचने पर मजबूर कर दिया है कि भारतवंशियों का सूरज कभी नहीं डूबता है।

भारतीय मूल के विदेशों में रहने वाले साहित्यकारों के लेखन को प्रवासी साहित्य कहा जाता है और जिन्होंने हिन्दी को माध्यम बनाकर लिखा है वे प्रवासी भारतीय साहित्यकार हैं। हिन्दी का प्रवासी साहित्य बहुत समृद्ध है। प्रवासी हिन्दी साहित्य अपनी एक अलग पहचान बनाने में सफल सिद्ध हुआ है। हिंदी शब्दकोशों में 'प्रवासी' का अर्थ प्राप्त होता है-विदेशों में रहने वाले भारतीय। यद्यपि अन्य भाषाओं में इस शब्द का प्रयोग और अर्थ अलग हैं। व्यापक अर्थ में जो लेखन अपने घर से दूर हुआ हो यानि विदेश में वह प्रवासी साहित्य है।

प्रवासी हिंदी साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास, कहानियाँ, महाकाव्य, अनुदित साहित्य, कविताएँ, नाटक, खंडकाव्य, एकांकी, आत्मकथा, यात्रावर्णन आदि का लेखन किया गया है।

शोषण, अन्याय, अत्याचारों एवं सदियों से भेदभाव का दंश सहने वाले समाज के दबे व उपेक्षित समुदायों का मुखर विरोध साहित्य में 'विमर्श' बनकर उभरा और स्त्री-विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी-विमर्श, युवा-विमर्श जैसे अनेक विमर्श आज हमारे सामने हैं किन्तु अन्य क्षेत्रों की भाँति बच्चे साहित्यिक विचार -विमर्श के क्षेत्र में भी लगभग उपेक्षित हैं। बच्चों के संबंध में यह समस्या है कि एक तो वे अपने अधिकारों से अनभिज्ञ हैं, दूसरे वे स्वयं संगठित या एकजुट होकर अपनी समस्याएँ तथा अपनी माँगें व्यक्त नहीं कर सकते, तीसरे, जिनके हाथों में उनके हित के लिए आवश्यक संसाधन, शक्ति व सामर्थ्य मौजूद हैं, वे मात्र योजनाओं और नीतियों की घोषणा करके अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। बच्चों का 'वोट बैंक' न होना उनके लिए अभिशाप बन जाता है। ऐसे में अनेक अधिकारों की पैरवी का जिम्मा किस पर है? कौन उनके शोषण, उनपर हो रहे अत्याचारों, अन्याय व भेदभाव के खिलाफ आवाज बुलंद करेगा? निश्चित रूप से हमारी ही जिम्मेदारी है जिससे हम कदापि मुख नहीं मोड़ सकते।

साहित्यकार भी शून्य में रचना नहीं करते बल्कि उनकी कृति में समाज की पूरी झलक विद्यमान होती है। इसी कारण बाल-जीवन से जुड़ी विभिन्न सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं की ओर प्रवासी भारतीय हिन्दी कथाकारों का ध्यान न गया हो, ऐसा कतई नहीं है। अन्य विमर्शों की अपेक्षा लिंग, जाति, व काल-भेद से परे तथा 'सहानुभूति' और 'स्वानुभूति' के पगड़े से मुक्त यह एक ऐसा मुद्दा है जिस पर इस साहित्य में गंभीर एवं परिपक्व चिंतन मिलता है। घोषित रूप में भले ही अभी प्रवासी भारतीय हिन्दी साहित्य में 'बाल-विमर्श' चर्चा के केंद्र में न आया हो किंतु इसमें यह कहाँ, कितना और किस रूप में है यही दिखलाने का प्रयास है।

ऐसे में कहा जा सकता है कि हर जिम्मेदार बाल साहित्यकार के सामने उसकी हर अगली रचना नई चुनौती ही लेकर आती है, क्योंकि यहाँ न कोई ढर्रा काम आता है और न ही कोई सीख। सही मायनों में तो अन्ततः अपना बोना और अपना काटना ही प्रायः काम आता है।

हमारी चिंता विश्व समाज में बालक के महत्त्व को लेकर है। क्या वैश्विक स्तर पर तमाम बालक उन न्यूनतम सुविधाओं और अधिकारों से सम्पन्न हैं जिनका हमें किताबी या भाषणबाजियों वाला ज्ञान है? बालक व बालिकाएँ हमारी साँस की तरह है।

शहरी, कस्बाई, ग्रामीण, आदिवासी, गरीब, अमीर, लड़की, लड़का सभी के बालक हैं। न साँस के बिना मनुष्य का जीवित रहना संभव है और न बालक के बिना मनुष्यता का।

क्या व्यापक संदर्भ में बच्चे को एक ऐसा पात्र मान लिया जाए जिसमें बड़ों को अपनी समझ बस ढूँसनी होती है। आज बच्चे को ही शिक्षित करने की जरूरत नहीं है, बड़ों को भी शिक्षित करने की जरूरत है।

जब आप बच्चों के लिए लिखो तो बच्चों के लिए मत लिखो। अपने भीतर के बच्चे द्वारा लिखो। बच्चों की जिज्ञासाओं, भावनाओं और कल्पनाओं को अपना बनाकर उनकी दृष्टि से ही दुनिया को देखकर जो साहित्य बच्चों के लिए भी सरल भाषा में लिखा जाए, वहीं बच्चों का अपना साहित्य होता है।

अशिक्षा और रुढ़िग्रस्त मानसिकता के अन्धकार में कई बार स्वयं अभिभावक या संरक्षक ही अपने बच्चों को गलत हाथों में सौंपकर आँखें मूँद लेते हैं। टोने-टोटके, धर्माडंबर तथा तंत्र-मंत्र की आड़ में बच्चों के साथ किया जानेवाला व्यवहार कई बार प्राणघातक सिद्ध होता है।

प्रवासी हिन्दी कथा साहित्य में माता-पिता के आपसी तनावों, अलगाव तथा सम्बन्ध विच्छेद के परिणाम स्वरूप बच्चों पर पड़नेवाले दुष्प्रभावों तथा ऐसी स्थिति में उनमें उत्पन्न होने वाली मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर भी बड़ी गहनता से विचार, विमर्श किया गया है।

प्रवासी हिन्दी साहित्य का ही एक अंग प्रवासी बाल विमर्श या बाल-साहित्य भी माना जाता है। प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों ने अपनी कई रचनाओं यथा-कविताओं, कहानियों को बाल-साहित्य के रूप में भी प्रस्तुत किया है, जो एक सार्थक पहल मानी जा सकती है। बाल विमर्श का मूल आशय बालक को केंद्र में रखकर साहित्य रचना करना है। जिसमें बालक के बाल जीवन की आवश्यक और सकारात्मक बातों के साथ-साथ उसके जीवन के आवश्यक परिवर्तनों का भी समावेश किया गया हो। जैसे-पारिवारिक ज्ञान, सामाजिक ज्ञान, सांस्कृतिक और धार्मिक इत्यादि बदलाव का वर्णन किया जाना चाहिए।

इस प्रकार प्रवासी हिन्दी साहित्य संसार में बाल जीवन से जुड़े गम्भीर प्रश्नों की ओर ध्यानाकर्षण का प्रयास किया जा रहा है तथा बाल-विमर्श के संदर्भ में ठोस जमीन तैयार की जा रही है।

आज हमारा बाल साहित्य महानगरों पर केंद्रित है तो भारतीय बच्चों का परिवेश कम्प्यूटर, सड़के, मॉल, आधुनिक तकनीक से संपन्न शहरी स्कूल और अंतरराष्ट्रीय, गरीब परिवेश पर केंद्रित है तो गाँव-देहात तक फैली पाठशालाएँ भी हैं, कच्चे-पक्के मकान-झोपड़ियाँ भी हैं, उनके कृषक या मजदूर माता-पिता के साथ-साथ उनकी गाय भैंस-बकरियाँ भी हैं, प्रकृति का संसर्ग भी है। दोनों परिवेशों से जुड़े बच्चे आज के बच्चे हैं और उनसे जुड़ा साहित्य ही बाल-साहित्य कहलाता है। आज बाल विमर्श के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू समाज में उपलब्ध है। एक ओर उसके पास सुविधाओं का अंबार लगा हुआ है, जिससे एकस्थिति में वह वंचित रह जाता है और दूसरी स्थिति में उसका दुरुपयोग करके नकारात्मक विचारों को भी ग्रहण कर सकता है। बालक को अच्छी शिक्षा देने में माता-पिता, परिवार, समाज, शिक्षक और साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। आज बाल-साहित्यकारों को जरूरत है कि वह छोटे-बड़े शहरों और कस्बों के साथ-साथ जंगलों और गाँवों में रह रहे बच्चों तक भी अपनी पहुँच बनायें। वस्तुतः आज हमारे बाल लेखकों की पहुँच आदिवासी और ग्रामीण बच्चों तक भी सहज-सुलभ होनी चाहिए। इसमें अनेक साहित्यिक अकादमियों और नैशनल बुक ट्रस्ट आदि की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है, कार्यशालाएँ आयोजित की जा सकती हैं। कहा जा सकता है कि बाल-साहित्यकारों के लिए शहरी-ग्रामीण बाल-साहित्य के रूप में यह एक बड़ी चुनौति है जिसमें साहित्यकार सराहनीय प्रयास कर रहे हैं।

अंततः हम कह सकते हैं बाल साहित्य को रोचक बनाने के लिए तथा इसका उत्थान करने को हमें इस दिशा में कड़े कदम उठाने होंगे। तभी उसका उत्थान हो सकता है और हम सफल हो सकते हैं।

संदर्भ सूची

- 1) बच्चे, बचपन और बाल साहित्य – अखिलेश श्रीवास्तव चमन
- 2) साहित्यालोचन – श्यामसुंदर दास
- 3) बाल मनोविज्ञान – विकिपीडिया
- 4) बाल साहित्य सृजन नई चुनौतियाँ- दिविक रमेश

डॉ. परशुराम शुक्ल सूचनात्मक बाल साहित्य – स्वरूप और उपयोगिता

डॉ. एम. आर. मुंडकर

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,

नाईट कॉलेज ऑफ आर्ट्स एण्ड कॉमर्स,

इचलकरंजी।

प्रस्तावना :-

मनुष्य की आयु के चार महत्वपूर्ण पड़ाव माने जाते हैं- 1. बाल 2. युवा 3. प्रौढ़ और 4. वृद्ध। इन चार पड़ावों में मानवी जीवन रचा-बसा है। मानवी जीवन की शुरुआत बालावस्था से होती है। मनुष्य के जीवन का यह सबसे महत्वपूर्ण पड़ाव माना जाता है। जिस प्रकार शुद्ध बीज से अच्छे फलधारी वृक्ष की इच्छा की जाती है उसी प्रकार एक सक्षम एवं अच्छा नागरिक बनाने के लिए बाल मनो को संस्कारित करना जरूरी होता है। माता-पिता, अध्यापक और सामाजिक परिवेश के साथ बालक मन को संस्कारित करने का काम अच्छा साहित्य करता है। इस दृष्टि से बाल साहित्य का अपना एक अलग महत्व रहा है। प्रारंभ में हिंदी साहित्य जगत में बाल साहित्य एवं उनके रचनाकारों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया। लेकिन कालांतर में सूचनात्मक बाल साहित्य के महत्व को समझते हुए इसे साहित्य की स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता मिली।

सूचनात्मक बाल साहित्य अर्थ एवं स्वरूप :-

बाल साहित्य प्राचीन काल से हमारी परिवार एवं संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। परिवार के बजुर्ग लोग बच्चों को संस्कारित करने और उनका मनोरंजन करने के लिए लोरियाँ, लोकगीत, परियों की कहानियाँ सुनाते रहे हैं। वैसे तो बाल साहित्य का निश्चित उद्गम बताना मुश्किल है। लेकिन जब से इन कहानियों को लिपिबद्ध किया जाने लगा तब से बाल साहित्य पुस्तकों में सुरक्षित होने लगा। औपचारिक इतिहास की बात करे तो हम बचपन से ही अपने पूरखों से मौखिक रूप से कहानियों को सुनते आए हैं लेकिन इसे लिपिबद्ध करने का प्रारंभ ही 'बाल-साहित्य' का जन्म है। 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' जैसी प्राचीन कृतियाँ इसका प्रमाण है। डॉ. शुचिता सेठ के अनुसार, "पंचतंत्र, हितोपदेश तथा कथा सरितासागर की कहानियों से हिंदी बाल साहित्य लेखन की प्रेरणा मिली।"¹ कालांतर में भारतेंदु पूर्व युग, भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, आधुनिक युग आदि से बाल साहित्य का विकास हुआ है।

सूचनात्मक बाल साहित्य का अर्थ :-

आधुनिक बाल साहित्य में सूचनात्मक बाल साहित्य को एक विशेष एवं स्वतंत्र विधा के रूप में देखा जा रहा है। सूचनात्मक बाल साहित्य इस शब्द में जुड़ा 'सूचना' का सीधा अर्थ है जानकारी। आज विज्ञान एवं तकनीक का युग है। प्रतिक्षण नई-नई सूचनाओं से मानवी मन प्रभावित हो रहा है। अतः बाल साहित्य का इससे प्रभावित होना स्वाभाविक है। "शैक्षिक बाल साहित्य के मुख्यतः तीन रूप हैं- सूचनात्मक, विचारात्मक और भावनात्मक। सूचनात्मक रचनाएँ वे हैं जिनमें सीधे-सीधे सूचनाएँ दी जाती है। ऐसी रचनाएँ 'क्या आप जानते हैं?' 'इसे भी जानों' जैसे शीर्षकों के अंतर्गत चित्ररहित या चित्रसहित प्रकाशित होती है। विचारात्मक शैक्षिक साहित्य के अंतर्गत विविध संदर्भों से जुड़े जानकारीपूर्ण आलेख आते हैं।"² स्पष्ट है कि मनुष्य जीवन से जुड़े विभिन्न क्षेत्रों की वैज्ञानिक नवीन जानकारीयाँ सूचनात्मक बाल साहित्य के अंतर्गत आती है।

सूचनात्मक बाल साहित्य का स्वरूप :-

वर्तमान समय भूमंडलीकरण का होने के कारण विज्ञान एवं तकनीक के अनगिणत आविष्कारों ने बालक मन को और अधिक जिज्ञासापूर्ण बनाया है। सन् 1990 के बाद बाल साहित्य में प्रयोगवादी युग का प्रारंभ हुआ जो निरंतर बना हुआ है। यह परिवर्तन कला, साहित्य, विज्ञान सभी क्षेत्रों में आया है। लेकिन विज्ञान के क्षेत्र में परिवर्तन की गति सर्वाधिक दिखाई देती है।

सूचनात्मक बाल साहित्य का क्षेत्र अमर्यादित है और उसे सीमा में बांधा नहीं जा सकता। इसके अंतर्गत ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, प्राकृतिक, वैज्ञानिक, यांत्रिक आदि अनेक प्रकार की नई सूचनाएँ आती हैं। डॉ. परशुराम शुक्ल ने सूचनात्मक बाल-साहित्य की अवधारणा के संदर्भ में कहा है कि, "सूचनात्मक साहित्य में महापुरुषों, संतों, समाज सुधारकों के जीवन चरित्र, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, विभिन्न प्रकार के आविष्कारों, खोजों, समसामयिक एवं प्राचीन घटनाओं से संबंधित आलेखों आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। सामान्य साहित्य अथवा प्रौढ़ साहित्य में

भी सूचनात्मक साहित्य को महत्वपूर्ण समझा जाता है तथा इसका उपयोग दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है, किंतु बाल साहित्य में सूचनात्मक साहित्य अधिक महत्वपूर्ण है।³ अतः इससे स्पष्ट होता है कि सूचनात्मक साहित्य मनुष्य के प्रत्येक क्षेत्र से जुड़ा है। प्रत्येक क्षेत्र में आ रही नई जानकारी सूचनात्मक साहित्य का विषय है।

सूचनात्मक बाल साहित्य की विशेषताएँ :-

सूचनात्मक बाल साहित्य का विवेचन करने के पश्चात उसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ सामने आती हैं वह इस प्रकार है-

1. सूचनात्मक बाल साहित्य प्रामाणिक होता है।
2. सूचनात्मक बाल साहित्य के तथ्यों की परीक्षा और पुनर्परीक्षा हो सकती है।
3. सूचनात्मक बाल साहित्य में यथार्थ तथ्यों का प्रयोग किया जाता है।
4. सूचनात्मक बाल साहित्य द्वारा भ्रामक कल्पनाओं का खंडन किया जाता है।
5. सूचनात्मक बाल साहित्य आलेखों के साथ कहानी, नाटक, कविता द्वारा भी लिखा जा सकता है।
6. सूचनात्मक बाल साहित्य प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों मार्ग से लिखा जाता है लेकिन इसमें प्रत्यक्ष मार्ग अच्छा होता है। परोक्ष मार्ग से तथ्यों के संदर्भ में भ्रामक धारणाएँ उत्पन्न होने का खतरा होता है।

सूचनात्मक बाल साहित्य और डॉ. परशुराम शुक्ल :-

डॉ. परशुराम शुक्ल मूलतः समाज विज्ञान के अध्येता रहे हैं। उनका जिज्ञासु मन समाज निर्माण एवं बालक इस विषय पर निरंतर अध्ययनरत रहा है। बाल साहित्य और उसमें भी सूचनात्मक बाल साहित्य उनके रुचि का क्षेत्र रहा है। उन्होंने बड़ी संख्या में सूचनात्मक बाल साहित्य का सृजन किया है। उनकी गद्य में लिखी सूचनात्मक बाल साहित्य की संख्या लगभग 89 हैं। डॉ. परशुराम शुक्ल ने सूचनात्मक बाल साहित्य पर अनेक किताबों का सृजन किया है। उन्हें सूचनात्मक बाल साहित्य का जनक कहा जाता है। डॉ. शुक्ल द्वारा 'उगते हुए सूर्य का देश: जापान' किताब का प्रकाशन सन् 2009 में हुआ। इसमें जापान का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। वर्ष 2012 में देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व एवं उनके जीवन के महत्वपूर्ण प्रसंगों पर बेहतरीन सूचनात्मक किताब है। वर्ष 2012 में 'भारत के राजकीय प्राकृतिक प्रतीक' शीर्षक से पुस्तक प्रकाशित हुई। इस ग्रंथ के लिए भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली से एक लाख रुपए का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था।

सूचनात्मक बाल साहित्य की उपयोगिता :-

साहित्य की परिभाषा ही 'सहितस्य भावः साहित्यम्' की गई है। जहाँ सबके हित एवं मंगलमय जीवन की बात है, वहाँ साहित्य है। यह नियम सूचनात्मक बाल साहित्य पर भी लागू होता है। परम्परावादी साहित्यकारों ने बाल साहित्य एवं उसकी उपयोगिता को लेकर संकुचित दृष्टि रखी थी। प्रौढ़ साहित्य की तुलना में बाल साहित्य को हमेशा कम आंका गया है। इसका कारण यह था कि प्रौढ़ साहित्य पूरे जीवन की व्याख्या करता है लेकिन बाल साहित्य बाल मनोविज्ञान और उनकी छोटी-सी दुनिया से संबंध रखता है। इस कारण उसकी उपयोगिता को लेकर हमेशा से अनदेखी की गई है।

सूचनात्मक बाल साहित्य की उपयोगिता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. परशुराम शुक्ल लिखते हैं, "बाल साहित्य की यदि निष्पक्ष होकर विवेचना की जाये तो सूचनात्मक साहित्य का महत्व स्पष्ट हो जाएगा। सूचनात्मक साहित्य बच्चों में सामान्य ज्ञान का विकास करता है और उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करता है। इन दोनों की वर्तमान में बड़ी आवश्यकता है। इसके साथ ही सूचनात्मक साहित्य भाषा को समृद्ध बनाता है एवं उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है।"⁴ डॉ. शुक्ल के इस कथन से स्पष्ट होता है कि सूचनात्मक बाल साहित्य एक स्वतंत्र विधा है जो निरंतर विकसित हो रही है।

1. सूचनात्मक बाल साहित्य बच्चों में सामान्य ज्ञान का विकास करना :-

हम 21 वीं सदी में जी रहे हैं और इसमें विज्ञान एवं तकनीक का बोलबाला रहा है। आज सूचना एवं प्रौद्योगिकी के प्रचंड विकास के कारण विज्ञान के विभिन्न साधनों का आविष्कार हुआ है। ज्ञान का प्रचंड स्रोत इन विज्ञान के साधनों से हमारे द्वार तक पहुँच गया है। इसकारण पुराने जमाने की तुलना में आज के बच्चे बहुत ही 'स्मार्ट' हैं। आज के बच्चे दूरदर्शन, संगणक, मोबाइल जैसे तकनीकी साधनों के कारण छोटी आयु में ही बड़ों की तरह मानसिक रूप से परिपक्व बने हैं। इस संदर्भ डॉ. शुक्ल कहते हैं, "हम इक्कीसवीं सदी में पहुँच चुके हैं। वर्तमान समय में सामान्य ज्ञान का महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। स्कूल अथवा जिला स्तर से लेकर राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की सामान्य ज्ञान की

परीक्षा हो अथवा संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षा हो, सर्वत्र सूचनात्मक बाल साहित्य की आवश्यकता अनुभव होती है।⁵ बालक कोरी कल्पना और क्लिष्टतियों पर आधारित जितना भी साहित्य पढ़े लेकिन इससे सामान्य ज्ञान का विकास नहीं हो पाता। बच्चे की बुद्धि तर्क और कल्पना के जंजाल में फँसती है।

2. सूचनात्मक बाल साहित्य बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टि का विकास करना :-

सूचनात्मक बाल साहित्य मूलतः वैज्ञानिक साहित्य होने के कारण उसमें विवेक एवं तर्क निष्ठ बुद्धि को महत्व दिया जाता है। इसमें विज्ञान के कार्य-कारण-भाव को महत्वपूर्ण माना जाता है। डॉ. शुक्ल लिखते हैं, “सूचनात्मक बाल साहित्य यथार्थ तथ्यों और वैज्ञानिक जानकारीयों पर आधारित होता है, अतः यह वैज्ञानिक विवरण देने के साथ ही बच्चों के दृष्टिकोण को वैज्ञानिक बनाता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण बच्चों में भ्रामक तथ्यों को समझने तथा विषयों और घटनाओं को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने की क्षमता उत्पन्न करता है।”⁶ अतः स्पष्ट है कि बालक सूचनात्मक साहित्य के जरिए यथार्थ तथ्यपरक जानकारीयों से परिचित हो जाता है। उसमें विज्ञान दृष्टि का विकास होने के कारण वह अंधविश्वास और आडंबरों से बचता है।

3. सूचनात्मक बाल साहित्य बच्चों के व्यक्तित्व का संतुलित विकास करना :-

‘शिक्षा’ का प्रधान उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास होता है। शिक्षक, बाल साहित्यकार और सरकार भी इस दृष्टि से प्रयास कर रहे हैं। बच्चों के संतुलित व्यक्तित्व विकास को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम बनाए जाते हैं। अध्यापक भी बच्चों को केवल किताबी बातें न बातकर वे कक्षा की चार दिवारी से बाहर ले जाकर व्यवहार ज्ञान दिलाते हैं। सूचनात्मक बाल साहित्य के संतुलित व्यक्तित्व विकास में उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए डॉ. शुक्ल उदाहरण देते हैं, “धर्म और तर्क पर आधारित तथ्य भ्रामक और एक-दूसरे के विरोधी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए हिंदू धर्म ‘दान’ को महत्वपूर्ण मानता है। इसके विपरीत प्रोटेस्टेंट धर्म ‘बचत’ को महत्वपूर्ण मानता है और यह बताता है कि एक पैसा बचाना, एक पैसा कमाने के समान है।”⁷ इस तरह से बच्चों में भ्रम की स्थिति निर्माण होती है और आगे उसमें कुंठा जन्म लेती है। कुंठा बच्चे के संतुलित व्यक्तित्व में बाधा निर्माण करती है। सूचनात्मक बाल साहित्य में अनुभव सिद्धता, यथार्थ और प्रामाणिक तथ्य होने से सूचना में विरोधाभास नहीं होता और बच्चा भ्रम एवं कुंठा से बच जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि सूचनात्मक बाल साहित्य बच्चे संतुलित विकास में सहायक होता है।

4. सूचनात्मक बाल साहित्य भाषा को संपन्न बनाता है :-

भारत में हिंदी अभी भी राष्ट्रभाषा का स्थान प्राप्त नहीं कर पाई है। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए बच्चों को पर भाषिक संस्कार करने जरूरी है। इस दृष्टि से बच्चों में मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम निर्माण करना हो तो इसमें सूचनात्मक बाल साहित्य का सृजन करना जरूरी है। डॉ. शुक्ल के अनुसार, “हिंदी बाल साहित्यकार अत्यंत सरल शब्दों में सूचनात्मक बाल साहित्य लिखकर इस संबंध में सकारात्मक पहल कर सकते हैं। सूचनात्मक बाल साहित्य सदैव तथ्यपूर्ण होता है और थोड़ा सा प्रयास करके इसे रोचक बनाया जा सकता है। इसमें उपयोगिता का गुण होता है तथा यह जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। भारत के बच्चों को यदि व्यक्तिगत स्तर से लेकर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक सफल बनाना है तो उन्हें सूचनात्मक साहित्य प्रदान करना होगा।”⁸ स्पष्ट है कि सूचनात्मक बाल साहित्य के जरिए हमारे देश, राज्य एवं विश्व की भाषाओं के संस्कार बालकों पर आसानी से किए जा सकते हैं। सूचनात्मक बाल साहित्य के सुबोध, सरल भाषा के जरिए हम बच्चों पर मातृभाषा, राष्ट्रभाषा और विश्वभाषा के सुनियोजित संस्कार करके उन्हें भाषिक व्यक्तित्व का संतुलित विकास कर सकेंगे। भारत में तो सूचनात्मक बाल साहित्य भाषिक संपन्नता में मददगार साबित हो रहा है।

निष्कर्ष :-

हिंदी बाल साहित्य में ‘सूचनात्मक बाल साहित्य’ एक नवीन विधा है। सन् 1990 के बाद हिंदी बाल साहित्य में प्रयोगवादी युग का जन्म हुआ जिसमें डॉ. परशुराम शुक्ल ने हिंदी बाल साहित्य को सूचनात्मक बाल साहित्य से जोड़ने का कार्य किया। इस कारण डॉ. परशुराम शुक्ल को सूचनात्मक बाल साहित्य का सूत्रधार माना जाता है।

सूचनात्मक बाल साहित्य बच्चों और बड़ों को भी यथार्थ तथ्यों से परिचित कराता है। बच्चों में भ्रामक धारणाएँ निर्माण नहीं होती और उनमें वैज्ञानिक दृष्टि निर्माण होती है। बच्चों के सामान्य ज्ञान का विकास होता है। बच्चों के व्यक्तित्व का संतुलित विकास होता है। इससे बाल साहित्य विषयों की विविधता और विस्तार को बढ़ावा मिलता है। सूचनात्मक साहित्य के जरिए बच्चों पर भाषिक संस्कारों के साथ भाषिक संपन्नता में भी वृद्धि होती है। कुल मिलाकर देखा जाए तो सूचनात्मक बाल साहित्य अपने उपयोगिता के कारण वर्तमान समय एक चर्चित विधा बन चुका है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1.समकालीन हिंदी बाल साहित्य, डॉ. शुचिता सेठ, पृ.1
- 2.एएसबीमासइंडिया.ब्लॉक.पोस्ट.25 जनवरी, 2012
- 3.बाल साहित्य समीक्षा, मई, 1988, संपा. राष्ट्रबंधु बाल कल्याण संस्थान, कानपुर, पृ.6
- 4.वही, पृ.19
- 5.वही, पृ.208
- 6.हिंदी बाल साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन, डॉ. परशुराम शुक्ल, पृ.211
- 7.वही, पृ.212
- 8.वही, पृ.214



हिंदी उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में बाल विचलन

डॉ. पंडित बन्ने

एम.ए.नेट., बी.एड., एम.फिल. पीएच.डी.डी.लिट्.

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,

भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल)

तह-करमाला, जि-सोलापुर (महाराष्ट्र)

आज के समय की आवश्यकता है कि बालकों के भरण, शोषण, शिक्षण व प्रशिक्षण के साथ – साथ उनके समायोजन पर भी विचार किया जाय। वस्तुतः सभ्यता के विकास के साथ जो औद्योगिकीकरण बाजारवाद अतिबौद्धिकता का प्राधान्य हुआ है, उसमें सर्वाधिक आहत बालक ही हुआ है। शिक्षा का नवीनीकरण करते हुए जो नए – नए सपने देखे जा रहे हैं, वह व्यावसायिकता से इतनी घिरती जा रही है कि सर्व शिक्षा अभियान जैसे स्वस्थ प्रयोग भी अपनी अर्थवत्ता नहीं बना पा रहे हैं। संयुक्त परिवार के विघटन से उनके पास कहानियाँ सुनानेवाले दादा – दादी, नाना – नानी का अभाव है। बड़े अपने संघर्ष में लगे हैं। बालक अपने प्रश्नों, शंकाओं के अनुत्तरित रह जाने पर अनेक प्रकार की समस्याओं को स्वयं ही झेल रहे हैं। वे बाल सुलभ चंचलता, अबोधता को पीछे छोड़ वयस्को के दायित्व को अपने छोटे – छोटे कंधों पर उठा लेने को विवश है।

मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' उपन्यास भी एक असहज दांपत्य संबंधों की त्रासदी को झेलनेवाले बालक के चिंतन, स्मृति, कल्पना व जिज्ञासा को उकेरता है। जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का उपन्यास 'मूर्दाघर मुंबई' महानगर के किनारों पर विकसित होने वाले उन बालकों के जीवन से सम्बद्ध है। उनके कोई स्वप्न नहीं है। कचरे के ढेर पर बची हुई रोटी को तलाशना इनकी दिनचर्या है। दूषित परिवेश में रहने वाले ये बालक आवारागर्दी करते हुए समय बिताते हैं। जुआ खेलना इनका प्रिय खेल है। जुआ खेले हुए ये बालक आपस में गाली – गलोज भी करते हैं। "गन्या मादरचोद पत्ता देख के खेलता क्या? गौडू..... ऐसा मारेगा लात। तू खेल रे महादेव..... बिनधास। हाय रे! क्या पत्ता खेला है। मेरी जान कुरबान जाऊँ। चल रे मेरे शेर..... इसकी मैं माँ की.....।"

मूर्दाघर के गन्या, अन्या, सोन्या का नंगे पुरुष के प्रति किया गया व्यवहार उद्दण्डता को रेखांकित करता है। मुहम्मद अपने साथी सोन्या से कहता है – "चलना..... चलता क्या? अपुन देखेगा कइसा नंगा हो के नहाता। सोन्या.....। अबे ओ साले सोन्या। इधर..... इधर आ बोलता तो आ ना। एक भोत अच्छी बात बोलना तेर कू.....।" बालकों का यह व्यवहार बाल विचलन दायरे में आता है। मूर्दाघर के इन बालकों का व्यवहार सभ्यता की प्रगति के प्रतिमान महानगरों के किनारों पर बसी हुई उन दूषित की उपज थे जहाँ लोग जीवित हैं क्योंकि साँसे चल रही है।

भीमसेन त्यागी का 'काला गुलाब' उपन्यास बालक राजू के मन में उठनेवाली जिज्ञासाओं को प्रस्तुत करता है। सहारनपूर में रहनेवाला बालक राजू मम्मी की बीमारी से परेशान है। मम्मी को यह कैसी बीमारी है, जिससे वह बिस्तर पर लेट गई है और दर्द में भी उसके चेहरे पर मुस्कान है। उनके मन में अनेक प्रश्न उठते हैं। मम्मी चीखती हुई अस्पताल गई और खुश होकर क्यों आई? उनके साथ उसका छोटा भाई कहाँ से आया, कैसे आया, कोई उत्तर नहीं देता। बालक में क्रोध, प्रेम, ईर्ष्या आदि का विकास जन्म से आरंभ हो जाता है। दूसरे बालक के आने पर सहोदर ईर्ष्या पनपने लगती है।

राजू अब तक परिवार में अकेला बालक था। अब राजू का भी उस पर बराबर का अधिकार हो जाता है। नितिन की मम्मी जब नए बालक को सुंदर कहती है, तो वह चिढ़ जाता है उसे भी मम्मी के साथ लेटना है, किंतु वह ऐसा नहीं कर पाता। घर के सभी सदस्यों का ध्यान संजू पर है। घर में कोई राजू के मन में होनेवाली हलचल को जानने का प्रयास नहीं करता, जिससे राजू के अबोध मन में उठनेवाले अनेक प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हैं। राजू घर में टँगी एक – एक तस्वीर को देखकर यह जानना चाहता है कि तस्वीर को देखकर यह जानना चाहता है कि तस्वीर किसकी हैं, किंतु पूछने पर उससे मात्र इतना याद रखने को कहा जाता है कि वह तस्वीर तुम्हारी आंटी की है। प्रस्तुत उपन्यास में राजू चिलित बाल पात्र के रूप में उभरकर सामने आता है।

द्रोणवीर कोहली का 'काया – स्पर्श' उपन्यास बालकों के विचलन से संबंधित हैं। बड़े परिवारों में पले लड़के – लड़कियाँ भौतिक सुख – सुविधाओं के बावजूद स्नेह – सौहार्द के अभाव में मनोरोगी हो जाते हैं। आतमीयता के अभाव में मनोरोगी होते एक ऐसे बालक की कहानी जिसका जीवन एक दुर्घटना बन कर रह गया है।

डॉ.काया के इक्ष्वाकु के घर पर जाने से होता है। विशाल तथा भव्य निवास था। उसे शहर के पॉश इलाके में स्थित हृदय सुगति का बंगला एकदम वीरान और निर्जन लगता है। काया उसके कमरे तक पहुँचती है और पाती है कि इच्छु, में मनोरोगी होने के सभी लक्षण विद्यमान है।

‘मुझे चाँद चाहिए’ उपन्यास बाजारवाद की उपभोक्तावादी संस्कृति का चित्रण है। उपन्यास की नायिका वर्षा वशिष्ठ का बचपन का नाम यशोदा शर्मा व सिलविल है। वह अपनी कमजोरियों व दीनता को नकारती हुई, एक नए इतिहास को रचने की आकुलता से भरी हुई है। यशोदा शर्मा के पिता किशनदास शर्मा प्राइमरी स्कूल में संस्कृत के अध्यापक थे। शहर के पुराने, निम्नमध्यम वर्गीय इलाके में सँकरी, उबड़खाबड़ गलियों और खुली बदबूदार नालियों के बीच उनका पंद्रह रुपये किराये का आधा कच्चा, आधा पक्का दुमंजिला मकान था। पूरे परिवार में पाँच भाई बहन थे। वर्षा अपनी महत्वाकांक्षा में लिखती है – “मेरा बस चले तो मैं आकाश की दहलीज पर बनी सात रंगों की इंद्रधनुषी अल्पना बनूँ, आश्रम में शंकुतला की प्रिय वन – ज्योत्सना सखी बनूँ, चंद्रमा को देखकर खिल जानेवाली दबी – संकुची मध्यमवर्गीय कन्या है, उसकी महत्वाकांक्षा की अंतिम सीमा यही हो सकती है कि कोई लोअर डिवीजन क्लर्क उसके हाथों से वरमाला स्वीकार कर ले मामूली दहेज के बावजूद ससुराल के रसोईघर में उसके साथ कोई दुर्घटना न हो।”

धीरे – धीरे वर्षा अपनी कमजोरियों पर विजय पा लेती है। कालांतर में एक सफल अभिनेत्री ही नहीं बनती अपितु साहित्य अकादमी के सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार से सम्मनित भी होती है।

अमरकांत का ‘काल उजले दिन’ उपन्यास में ममता के अभाव में तरसता चित्रण है। उपन्यास का ‘मैं’ पात्र में अंतर्द्वन्द्व की घुटन है। पाँच – छ वर्ष में उसकी माता की मृत्यु हो जाती है। पिता दूसरी शादी कर लेते हैं। सौतेले भाई अशोक के दुनिया में आते ही विमाता का व्यवहार परिवर्तित हो जाता है। “उनका सारा प्यार जो कृत्रिम रूप मुझ पर उड़ला जा रहा था अपने खून से उत्पन्न लड़के पर केंद्रित हो गया और वह धीरे – धीरे मुझसे घृणा करने लगी।” पिता पुत्र के संबंधों में भी दूरियाँ आने लगी। इससे नायक के अंदर हीनता की भावना भरती गई। उसने किसी भी बात के लिए जिद्द करना छोड़ दिया। यहाँ तक कि मामूली कपड़े पहनकर स्कूल जाया करता था। दूसरी तरफ उसका बेटा भाई ठाठ – बाट से रहता था, जिसके कारण मेहमान ‘मैं’ को घर पर काम करनेवाला नौकर समझते थे। कथानायक नौवीं कक्षा में फेल हो जाता है। पिता उसे पीटते हैं। एक दिन वह घर से भाग जाता है। घर से भागते हुए वह ट्रंक से पैसों की चोरी करता है। किशोरावस्था में इस प्रकार का भटकाव कथानायक के बाल विचलन की ओर संकेत करता है। घर से चोरी करके भाग जाता है और क्रांतिकारियों के गिरोह में शामिल होकर डकैती करने लगता है। ‘काले उजले दिन’ के नायक उन युवाओं की मानसिकता को उद्घाटित करता है जो घर की उपेक्षा के कारण अंतर्मुखी बन जाते हैं।

कुमलकुमार के उपन्यास ‘अपार्थ’ का नायक अशोक एक निरर्थक, निकम्मा व अर्थहीन जीवन जीने वाला पात्र है। माँ की उपेक्षा तथा बात – बात पर मारने – पीटने की प्रवृत्ति उसे अशिष्ट, आक्रमक, परपीड़क बना देती है। माँ की सहेलियाँ कहती हैं “यह तो तनिक भी तेरा बेटा नहीं लगता।” अशोक के माँ के मन में उसके लिए नफरत है।

अशोक की विचलित प्रवृत्ति स्थान – स्थान पर मिलता है। घर पर शीशे – चीनी के बर्तनों को तोड़कर ज्यों का त्यों रख देता है। छोटे भाई चुधु को जानबूझ कर गिरा देता है। वह बीड़ी पीने लगता है तथा बीड़ी पीते हुए उसके अंदर का लावा उबलता है। वह सोचता है – “मैं नफरत करता हूँ उस और से जो मेरी माँ है। मैं इससे कभी नहीं माफी माँगूंगा। यह मेरी माँ नहीं है। यह औरत मेरी माँ नहीं हो सकती, मैं इससे नफरत करता हूँ.....सिर्फ नफरत.....और नफरत के सिवा कुछ नहीं।” इस प्रकार अशोक एक ऐसा विचलित बालक बन जाता है। परिवार में अपना स्थान तलाशता वह निरंतर एक छोर से दूसरे छोर पर भटकता, छटपटाता रहता है।

महावीर अधिकारी लिखित ‘तलाश’ उपन्यास के बाल पात्र टोनी, नलिनी चोकर, लितिका व परिनबाई फुल सेना – सदन की उस भ्रष्ट व्यवस्था का पर्दापाश करते हैं जिसमें उनका जीवन दिशाविहीन हो जाता है। टोनी के जीवन की विषमता उसके मन में अविभावकों के प्रति घृणा को इतना पोषित कर देती है कि वह आजीवन माता – पिता के प्रेम व वात्सल्य को समझ ही नहीं पाता। टोनी अपने से बड़ी आयु की महिला से झूठे प्रेम का नाटक करता है। लितिका को दादी जब उसके माता – पिता के विषय में जानना चाहती है, तो वह झूठ बोलता है।

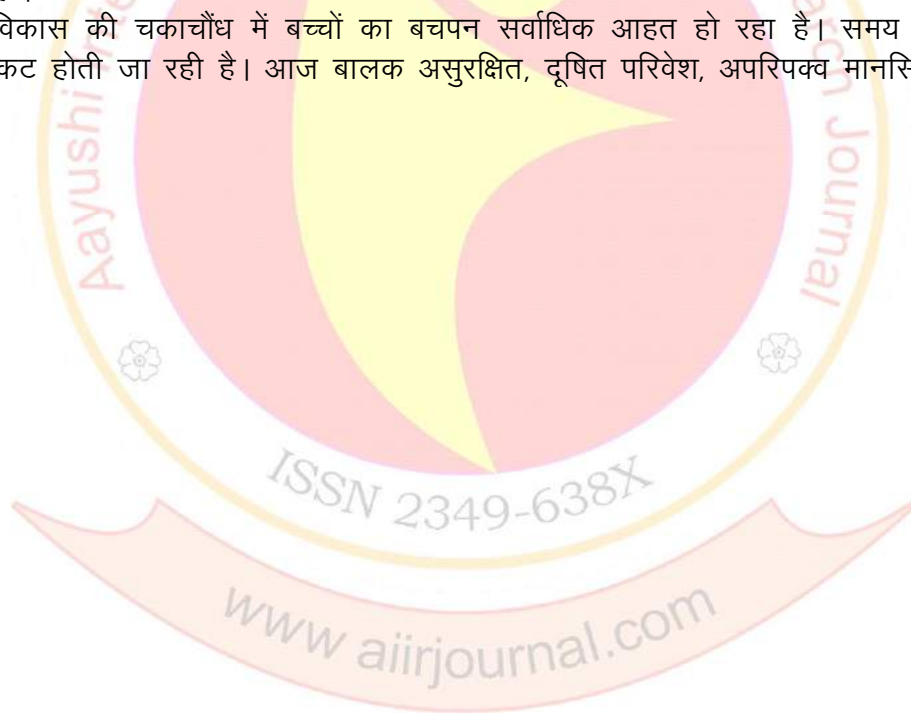
प्रस्तुत उपन्यास की बाल नायिका नलिनी चोकर बाल्यकाल में हुए यौन – शोषण के कारण खण्डित मानसिकता से ग्रस्त हो कर रह जाती है। नलिनी का आत्मकथन है – “बारह वर्ष की उम्र से मेरा जीवन उसी आदमी के हाथों नष्ट हुआ था, जो मुझे बेटी बनाकर अनाथालय से ले गया था। उसने मुझे सड़क पर ढकेल दिया था। तभी मैं बीमार हूँ, मुझे दौरे आते हैं।” परिनबाई देह का व्यापार करती है। टोनी द्वारा उठाया गया यह प्रश्न कि काश मेरी माँ ने मुझे नौ महीने कोख में रखकर घूरे पर न फेंक दिया होता, बार – बार पाठक को

उद्धेलित करता है। 'तलाश' उपन्यास अनाथालयों बालसुधार गृहों में व्याप्त भ्रष्टाचार को इंगित करता हुआ व सोचने पर विवश करता है।

गंगा प्रसाद मिश्र का उपन्यास 'मुस्कान है कहाँ' में उपन्यासकार ने एक साथ अनेक बालपात्रों का वर्णन करते हुए समाज का ध्यान बालकों की त्रासदी की ओर ध्यान आकर्षित किया है। रजनीश मध्यवर्गीय वर्मा दम्पति का जेष्ठ पुत्र है। उसके छोटे भाई का नाम उर्मिल तथा बहन का नाम सरिता है। उसकी माँ शैलजा वर्मा एक महाविद्यालय में प्राध्यापिका है। घर में बच्चों को पालन पोषण करने के लिए गार्जियन की नियुक्ति की गई है। श्यामा उसकी छोटी बहन के साथ बिस्तर में सो रही थी। वह वहीं से अँगड़ाई लेते हुए उसे बतलाती है कि वह बेबी को सुलाते – सुलाते सो गई अतः उसे नहीं मालूम कि वह उर्मिल कहाँ पर है? जनीश किशोर भाव से श्यामा के गले में दुपट्टा खींच देता है और श्यामा रजनीश के उपर गिर जाती है। अनायस ही घटी यह घटना रजनीश के मन को युवा – भटकाव की ओर ले जाती है। उसे श्यामा का स्पर्श एक अपरिचित सुख देने लगता है। वह सुख को प्राप्त करने के लिए स्कूल से भाग कर घर आने लगता है। माता – पिता उसकी इस मनोदशा से अपरिचित है। वह शराब का सेवन करने लगता है। सड़कों पर देर रात को घूमता रहता है। रजनीश का यौन – प्रसंगों की ओर झुकाव, देर रात तक सड़कों पर आवारागर्दी, शराब या मैण्ड्रेक्स का नशा करना, पिता से अविष्टतापूर्ण संवाद, घर से भाग जाना यह बालक के अपेक्षित व्यवहार के अनुसार नहीं है।

उर्मिल का आवारा बालकों के साथ घूमना उसे उदण्ड बना देता है। बड़े भाई रजनीश के पूछने पर कि वह उन बच्चों के साथ क्यों खेल रहा है। अपना बचाव करता हुआ उर्मिल झूठ बोलता है – "यह मुझे जबरदस्ती खिला रहा है। मैंने खेलने से मना किया तो इसने मुझे बहुत मारा।" उर्मिल की उदण्डता दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। किशोरावस्था की देहरी पर खड़ा उर्मिल ज्ञानों के प्रति आकृष्ट होता है एक दिन वह सिरदर्द का बहाना बनाकर ज्ञानों को अपने पास बिठा लेता है और अचानक उसकी गर्दन अपनी बांहों में लेकर उसका मुँह चूमने लगता है। यहाँ तक कि ज्ञानों की चीख – पुकार को नजर अंदाज करते हुए – "उसने बाहें और कस लीं, ओठ, गाल, गर्दन चूमता रहा।"

सभ्यता के विकास की चकाचौंध में बच्चों का बचपन सर्वाधिक आहत हो रहा है। समय के साथ साथ समस्याएँ और भी बिकट होती जा रही हैं। आज बालक असुरक्षित, दूषित परिवेश, अपरिपक्व मानसिकता से गुजर रहे हैं।



डॉ. परशुराम शुक्ल के बाल साहित्य का मूल्यांकन

डॉ. साईनाथ विठ्ठल चपले

सहायक प्रध्यापक, हिंदी विभाग,
नाईट कॉलेज ऑफ आर्ट्स एण्ड कॉमर्स,
इचलकरंजी

प्रस्तावना :-

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान युग तक हिंदी बाल साहित्य सृजन की धारा अखंड प्रवाहित रही है। पंचतंत्र की कहानियों को बाल साहित्य सृजन की नींव माना जाता है। लेकिन आधुनिक युग से ही बाल-साहित्य के सही विकास को समझा जा सकता है। भारतेंदु से शुरू हुई हिंदी बाल-साहित्य की विकास यात्रा वर्तमान समय में उत्कर्ष की ओर पहुँची है। सन् 1990 के बाद कुछ सृजनधर्मी बाल साहित्यकारों ने बाल-साहित्य में प्रयोग किए। इन प्रयोगों से ही हिंदी बाल साहित्य में सूचनात्मक बाल साहित्य की परिपाटी शुरू हुई। इसके सूत्रधार के रूप में डॉ. परशुराम शुक्ल का नाम विशेष उल्लेखनीय माना जाता है। डॉ. शुक्ल ने 150 से अधिक पुस्तकें और लगभग 6000 स्फुट रचनाएँ लिखी हैं। अतः प्रस्तुत अध्याय में डॉ. शुक्ल के सूचनात्मक बाल साहित्य का मूल्यांकन करने का प्रयास रहा है।

डॉ. शुक्ल के सूचनात्मक बाल साहित्य में राष्ट्रपुरुषों के विचारों का मूल्यांकन :-

किसी भी देश के निर्माण में इतिहास का महत्वपूर्ण योगदान होता है और यह इतिहास वहाँ के राष्ट्रपुरुषों के जीवन से निर्माण होता है। राष्ट्रपुरुषों के विचार पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं और इसी कारण वह पूरे मानव समाज के मन में अपना अहम स्थान बनाते हैं। इन राष्ट्रपुरुषों ने अपने जीवन कार्य से स्थापित किए आदर्शों को हमारी आनेवाली पीढ़ियों को अवगत कराना समय की मांग है। कहा जाता है जो इतिहास को नहीं जानते वे इतिहास भी नहीं बना सकते। इसलिए बच्चों को किताबों के माध्यम से राष्ट्रपुरुषों के जीवनवृत्त एवं उनके विचारों से परिचित करना जरूरी है। इसी दृष्टि से डॉ. परशुराम शुक्ल का साहित्य मूल्यवान है। उन्होंने अपनी कविता और कहानियों में जहाँ संभव हो वहाँ हमारे राष्ट्रपुरुषों के महत्त्व को स्थापित किया है। उनकी वंदे मातरम् कविता में वे कहते हैं,

“वीर शिवा राणा प्रताप का,
रक्त हमारे तन में।

...विश्व शांति उद्देश्य हमारा,

जब तक दम में दम। वंदे मातरम्।”ⁱ

प्रस्तुत कविता में डॉ. शुक्ल ने छ.शिवाजी महाराज, महाराणा प्रताप, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, राम, कृष्ण आदि राष्ट्रपुरुष हमारे आदर्श होने की बात कही है। साथ ही उनके सत्य, अहिंसा, धर्म आदि के विचारों को जानकर विश्व शांति के उनके महान उद्देश्य से परिचित होने का संदेश दिया है। आजादी की पहली जंग का नेतृत्व करनेवाली वीर महिला रानीलक्ष्मीबाई भी भारतवासियों के मन-मन में बसी हुई है। उन्होंने अंग्रेज सरकार के खिलाफ स्वाभिमान पूर्वक युद्ध करके अपनी राष्ट्रनिष्ठा की मिसाल कायम की। इतिहास की यह नारी इतिहास के पन्नों पर हमेशा के लिए अमर हुई है। शुक्ल ने ‘रानी लक्ष्मीबाई’ इस कविता में रानी की पूरी जानकारी दी है,

“आओ बच्चों। तुम्हें सुनाएँ,
गाथा एक पुरानी।

...बाद मृत्यु के गंगाधर की,

उसने राज सम्हाला।”ⁱⁱ

स्पष्ट है प्रस्तुत कविता में झाँसी की रानी की पूरी सूचनात्मक जानकारी मिलती है। साथ ही उन्होंने देश की आजादी के लिए अपने प्राणों का बलिदान से बालक परिचित होते हैं। उनके युद्ध कौशल, उनकी परवरिश, उनकी शादी और झाँसी की रानी बनने तक की सूचनाएँ बालकों को मिलती है।

राष्ट्रपुरुषों के अंतर्गत उन्होंने हॉकी के जादूगर मेजर ध्यानचंद पर भी कविता लिखी है। आज वर्तमान समय में बच्चे केवल क्रिकेट के पीछे पागल हुए हैं। कई बालकों को यह भी पता नहीं होता कि भारत का राष्ट्रीय खेल हॉकी है।

अतः डॉ. शुक्ल 'हॉकी के जादूगर' इस कविता में बच्चों को मेजर ध्यानचंद और उनके हॉकी के कौशल्य की जानकारी दी है। जैसे-

“आओ बच्चों आज हम सभी,
ध्यान चंद को जानें।

...सारे जग में धूम मच गई,

ओलम्पिक भी जीते।”ⁱⁱⁱ

प्रस्तुत कविता में मेजर ध्यानचंद की सूचनात्मक जानकारी मिलती है। प्रतिकूल हालात में सैनिक की जिम्मेदारी को निभाते हुए मेजर ध्यानचंद ने हॉकी में जो करिश्मा दिखाया था उससे पूरी दुनिया दंग रह गई थी। बच्चों के मन भी हॉकी तथा मेजर ध्यानचंद के प्रति सम्मान बढ़ता है। अतः राष्ट्रपुरुषों के विचारों की दृष्टि से भी डॉ. शुक्ल का सूचनात्मक साहित्य मौलिक है।

डॉ. शुक्ल के सूचनात्मक बाल साहित्य में राष्ट्रीय पर्व/दिन के संदर्भ में मूल्यांकन :-

बालकों के शैक्षिक जीवन में उन्हें कई राष्ट्रीय पर्व और दिनों की जानकारी होती है। लेकिन बालक इन राष्ट्रीय दिनों को केवल औपचारिक रूप में समझता है। 26 जनवरी को 'गणतंत्र दिन' और 15 अगस्त को 'स्वाधीनता दिन' को केवल सफेद युनिफॉर्म पहनकर, सुट-बुट में स्कूल जाना और ध्वज फहराने के बाद मिठाई खाकर वापस घर आना यही तक ही बालकों की समझ होती है। लेकिन डॉ. परशुराम शुक्ल ने अपनी सूचनात्मक बाल कविताओं के माध्यम से ये दिन क्यों मनाए जाते हैं? इनका राष्ट्र के स्तर पर क्या महत्त्व है? इनकी तिथियाँ यहीं क्यों निश्चित की गई है? आदि की विस्तार से जानकारी दी गई है।

डॉ. शुक्ल ने गणतंत्र दिन, विश्व जल दिवस, विश्व पुस्तक दिवस, खेल दिवस, बाल दिवस, दशहरा आदि राष्ट्रीय दिन और पर्व पर सूचनात्मक बाल कविताएँ लिखी हैं। 26 जनवरी पर विशेष रूप से लिखी 'अधिकार कर्तव्य' कविता में डॉ. शुक्ल लिखते हैं-

“संविधान आजादी वाला,
बच्चों इस दिन आया

...अधिकारों के साथ जुड़े,

कर्तव्यों को पहचानो।”^{iv}

स्पष्ट है कि प्रस्तुत कविता में डॉ. शुक्ल ने गणतंत्र दिन क्यों मनाया जाता है और इससे भारतीय नागरिकों को अधिकार और कर्तव्य के बारे में बालकों के सामान्य ज्ञान को बढ़ाया है।

वर्तमान समय में दुनिया के अधिकांश देश जल संकट की समस्या से जुझ रहे हैं। आज जल संकट का सामना करने के लिए हमें जल साक्षर बनने की जरूरत है। इसलिए 22 मार्च को विश्व जल दिवस के रूप में मनाया जाता है। डॉ. शुक्ल ने अपनी 'जल महिमा' कविता में जल ही जीवन, रोजाना व्यवहार में पानी का इस्तेमाल, स्वास्थ्य के लिए पानी का उपयोग, मनुष्य की नादानी से जलस्रोतों का प्रदूषण आदि का सुबोध विवेचन किया है। जैसे-

“जल ही जीवन जीव जगत का,
बच्चों पक्का मानो।

...आज अभी से जल संरक्षण,

करने की तुम ठानो।”^v

स्पष्ट है प्रस्तुत कविता में बालकों को पानी के महत्त्व के साथ पानी के प्रदूषण की गंभीरता और जल संरक्षण का भी संदेश दिया है।

आज स्कूली बच्चों में विभिन्न नशों को लेकर कौतुहल होता है। कक्षा के कुछ बिगड़े हुए बच्चों की संगत में आकर बच्चे बुरे नशों में फँस सकते हैं। इससे उसका जीवन बरबाद हो सकता है। साथ ही घर में भी कोई नशा करता है तो बच्चों की परवरिश पर इसका बुरा असर पड़ता है। अतः 26 जून को विश्व नशा निवारण दिन मनाया जाता है। इस दिवस के उपलक्ष्य में डॉ. शुक्ल ने अद्भूत नाटक यह चित्रात्मक कविता लिखी है। इसमें छोटे बच्चों द्वारा विभिन्न नशों

जैसे, सिगरेट पीना, भांग पीना, गांजा पीना, शराब पीना, अफीम पीना आदि के द्वारा नशे में चूर लोग किस प्रकार गलतियाँ करते हैं यह कविता में बताया है। अंत में लोग इस अद्भुत नाटक को देख कहते हैं-

“लोगों ने नाटक देखा तो,
बात समझ में आई।
नशा छोड़ने में ही सबको,
अपनी लगी भलाई।”^{vi}

स्पष्ट है कि प्रस्तुत कविता में डॉ. शुक्ल ने बच्चों के विभिन्न नशों के बारे में दिखाकर उनके बुरे प्रभावों को भी नाटकीय कविता के माध्यम से स्पष्ट किया है। कविता के अंत में उन्होंने नशा के छोड़ने में जीवन की भलाई होने की बात स्पष्ट की है।

बच्चों के जीवन में ‘बाल दिवस’ का अपना एक अलग महत्व होता है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू का जन्म दिन बाल दिवस के रूप में मनाया जाता है। आज के बच्चे ही कल के देश के कर्णधार बनने वाले हैं। इसलिए 14 नवम्बर को बाल दिवस मनाया जाता है। डॉ. शुक्ल ने ‘बाल दिवस’ नामक कविता में सूचनात्मक जानकारी दी है-

“चाचा नेहरू का बच्चों से,
बहुत पुराना नाता।
....ऊँच-नीच का भेद भुला कर,
सबको गले लगाओ।”^{vii}

स्पष्ट है ‘बाल दिवस’ कविता पढ़ने के बाद बच्चों को बाल दिवस का महत्व, बाल दिवस क्यों मनाया जाता है? और बालकों के उत्तरदायित्वों की जानकारी मिलती है।

वर्तमान समय में भारत में ‘बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ’ का नार दिया जा रहा है। आज भारत में बेटी को भी बेटों के समान दर्जा दिया जा रहा है। आज हर क्षेत्र में महिलाएँ पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही हैं। विश्वभर में महिला सक्षमीकरण के मुद्दे को प्राथमिकता दी जा रही है। 24 सितंबर को पूरी दुनिया में अंतर्राष्ट्रीय बालिका दिवस मनाया जाता है। इस दिन के उपलक्ष्य में डॉ. शुक्ल ने ‘बेटी’ इस कविता के माध्यम से बेटी की शिक्षा का महत्व और महिला समक्षमीकरण को स्पष्ट किया है। वे लिखते हैं-

“पढ़ लिखकर मैं बनूँ डॉक्टर,
सबकी जान बचाऊँ।
...साथ बुढ़ापे तक दूँगी मैं,
यह विश्वास दिलाती।”^{viii}

स्पष्ट है प्रस्तुत कविता बालिका दिन एवं बेटी की परिवार एवं राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट कराती है।

भारतीय समाज में विभिन्न सांस्कृतिक पर्वों की बड़ी अहमियत होती है। इसमें दिवाली और दशहरा बच्चों के बहुत ही पसंदीदा त्यौहार हैं। डॉ. शुक्ल ने दशहरा पर्व पर ‘विजय पर्व’ नामक कविता लिखी है। इस सूचनात्मक बाल कविता में डॉ. शुक्ल ने दशहरा पर्व क्यों मनाया जाता है इसकी विस्तृत जानकारी स्पष्ट की है। उन्होंने संक्षिप्त कविता में राम अवतार, राम-जानकी विवाह, जानकी का अपहरण, राम-रावण युद्ध और राम की विजय आदि बातों को सुबोध कविता में स्पष्ट किया है। इसमें कवि लिखते हैं,

“मानवता की रक्षा करने,
राम धरा पर आये।
मर्यादा पुरुषोत्तम बन कर,
सारे जग में छाये।
.....राम मारते जब रावण को,
विजय पर्व कलाता।”^{ix}

अतः स्पष्ट है कि डॉ. शुक्ल द्वारा राष्ट्रीय पर्व एवं दिन पर लिखी सूचनात्मक कविताएँ बालकों के सामान्य ज्ञान में वृद्धि कराती है। यह राष्ट्रीय दिन और पर्व क्यों मनाए जाते हैं? इसका जवाब उन्हें मिलता है। राष्ट्रीय पर्वों को लेकर बच्चों के मन में एक सांस्कृतिक बोध जागृत होता है और वे इनके महत्त्व से भी परिचित होते हैं।

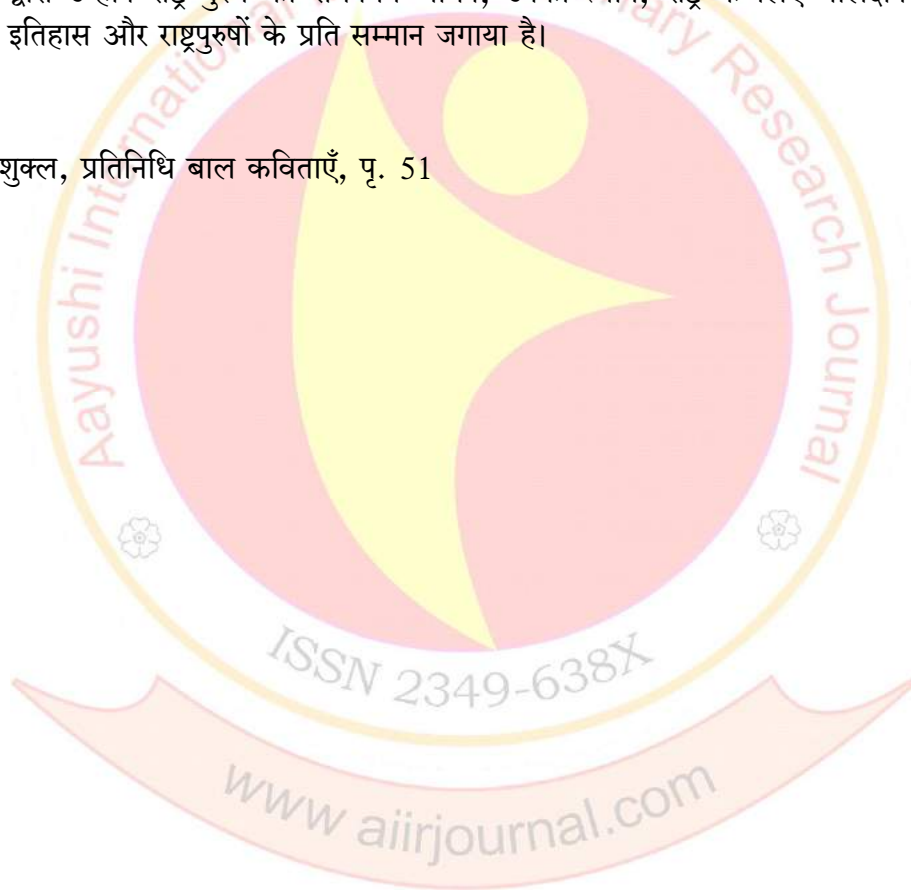
निष्कर्ष :

हिंदी में बाल साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। 1990 ई. के बाद कुछ सृजनधर्मी बाल साहित्यकारों ने बाल-साहित्य में प्रयोग किए। इन प्रयोगों से ही हिंदी बाल साहित्य में सूचनात्मक बाल साहित्य की परिपाटी शुरू हुई। इसके सूत्रधार के रूप में डॉ. परशुराम शुक्ल का नाम विशेष उल्लेखनीय माना जाता है। डॉ. शुक्ल के सूचनात्मक बाल साहित्य उपयोगिता की दृष्टि से बहमोल है। डॉ. परशुराम शुक्ल का सूचनात्मक साहित्य बच्चों में बौद्धिकता का स्तर बढ़ाने में विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। उन्होंने बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टि का विकास करने हेतु अनगिनत किताबें लिखी हैं।

राष्ट्रपुरुषों के विचार पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं और इसी कारण वह पूरे मानव समाज के मन में अपना अहम स्थान बनाते हैं। इन राष्ट्रपुरुषों ने अपने जीवन कार्य से स्थापित किए आदर्शों को हमारी आनेवाली पीढ़ियों को अवगत कराना समय की मांग है। डॉ. शुक्ल ने भी अपनी अनेक सूचनात्मक बाल कविताओं में छ. शिवाजी महाराज, महाराणा प्रताप, झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, महात्मा गांधी, पं. नेहरू, मेजर ध्यानचंद आदि राष्ट्रपुरुषों पर कविताएँ लिखी हैं। इन कविताओं के द्वारा उन्होंने राष्ट्र पुरुष का संघर्षमय जीवन, उनका त्याग, राष्ट्र के लिए बलिदान आदि के द्वारा बच्चों के मन में हमारे इतिहास और राष्ट्रपुरुषों के प्रति सम्मान जगाया है।

संदर्भ :

- I. डॉ. परशुराम शुक्ल, प्रतिनिधि बाल कविताएँ, पृ. 51
- II. वही, पृ. 84
- III. वही, पृ. 81
- IV. वही, पृ. 77
- V. वही, पृ. 78
- VI. वही, पृ. 80
- VII. वही, पृ. 49
- VIII. वही, पृ. 82
- IX. वही, पृ. 83



इक्कीसवीं सदी की कविता में बाल विमर्श

डॉ. सिद्धाम कृष्णा खोत

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,

प्रा.डॉ.एन.डी.पाटील महाविद्यालय, मलकापुर.

कवि के विचारों तथा भावों का साधन है उसकी कविताएँ। कवि अपने काव्य द्वारा चिन्ता तथा आक्रोश व्यक्त करता है। प्रत्येक कविता अपने युग की पहचान है। यह भी सत्य है कि उसमें अतीत के चित्रण और भविष्य के संकेत भी युग संदर्भ से जुड़कर आते हैं। मनुष्य के अंतर्जगत और बाह्यजगत का सही चित्रण काव्य के द्वारा होता है। मनुष्यजीवन में काव्य का महत्व शाश्वत है। सच्चे अर्थों में काव्य सबसे प्राचीन बहुचर्चित विधा है। आज के कवियों ने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर भी चर्चा शुरू की है।

असल में समाज और साहित्य का गहरा संबंध है। साहित्य को मानव मन की अभिव्यक्ति कहा जाता है। संसार की सभी भाषाओं का अपना अपना साहित्य होता है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी सिर्फ साहित्यिक भाषा नहीं है। वह भावों तथा विचारों के अभिव्यक्ति के साथ साथ व्यवसाय विज्ञान, तकनीक और बाजार की भाषा बनी है। हिंदी भाषा में बड़े पैमाने पर साहित्य लिखा गया है। हिंदी साहित्य में अनेक विषयों पर विमर्श हुआ है जैसे कि दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, नारी विमर्श, किसान विमर्श, मजदूर विमर्श, किन्नर विमर्श। विमर्श अर्थात् जीवंत बहस है। आज का युग विमर्शों का युग है। हिंदी के साहित्यिक प्रकारों में युगगत परिवर्तनों को स्वीकार कर चलने की क्षमता है। हिंदी साहित्य में जीवन से जुड़ने की असीम क्षमता होने के कारण विभिन्न विमर्शों में बाल विमर्श की भी चर्चा शुरू हुई।

सच्चे अर्थों में प्रचंड जिज्ञासा बच्चों में होती है। बच्चे के लिए सभी बातें एकसमान होती हैं। बच्चे चंचल, भावबोध किंतु सरल मन के होते हैं। बचपन की उम्र में बच्चे बादशाह होते हैं। वह विभिन्न समस्याओं का समाधान मनोरंजन के माध्यम से करते हैं। डॉ. मस्तराम कपूर के शब्दों में, “ बालसाहित्य का सर्वप्रथम और सबसे प्रमुख महत्वपूर्ण उद्देश्य बालकों को स्वस्थ आनंद देना होना चाहिए, ऐसा आनंद जो उनके जीवन को पोषक है।”¹ बालसाहित्य केवल मनोरंजन ही नहीं करता अपितु ज्ञान-विज्ञान की बातें भी करता है। बच्चों को हितकारक उपदेश देने का काम भी बालसाहित्य करता है। “ आज बालसाहित्य का अर्थ केवल पिपासा को शांत करना ही नहीं है, बल्कि उन्हें आधुनिक जीवन और समाज के मूल्यों से जोड़ना भी है। बच्चे जिस परिवेश में रहते हैं उसे सुगमता से समझे और अपने आस पास की समस्याओं के समाधान खोज सके।”²

अनेक माता पिता अपने बच्चों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं देते हैं। अनुशासन के नाम पर डराया, धमकाया जाता है। औद्योगिकरण, नागरीकरण और आधुनिकरण की प्रक्रिया ने आत्मियतापूर्ण व्यवहार खतरे में है। अनेक बार ऐसा होता है कि माता पिता समय न होने के कारण बच्चों को प्यार नहीं दे सकते।

“ बहुत याद आते प्यारे लगते,
गुनगुने पानी की तरह,
बच्चे अपने।”³

बांग्लादेश की निर्भीक एवं साहसी लेखिका तसलिमा नसरिन के ‘यह दुःख यह जीवन’ काव्य संग्रह में नारी संबंधी कविताओं की संख्या अधिक है। नारी के विविध रूपों में से बेटी रूप का शोषित रूप अंकित किया है। “ निश्चित ही वह मांग सकती है समान अधिकार निश्चित ही वह मांग सकती है शिक्षा, स्वास्थ्य, सम्मान निश्चित ही वह मांग सकती है कोख की स्वाधीनता लड़की का जन्म।”⁴ कवि राजेश जोशी की कविता विविधता और अनेक रूपता के साथ व्याप्त है। कवि राजेश जोशी ने वर्तमान पीढ़ी को लेकर चिन्ता व्यक्त की है। माता-पिता नौकरी करने के कारण झूलाघरों का प्रचलन बढ़ रहा है। वर्तमान युग में एकल परिवार होने के कारण खिलौनों की मांग बढ़ती जा रही है। मँहगे खिलौने से अकेला बच्चा चाहरदिवारी में खेलता है। बच्चों का अकेलापन कवि राजेश को अखरता है—

“ कि बच्चे अकेले होते जाएंगे
कि बच्चे अकेले होते जाएंगे लगातार”⁵

वर्तमान युग समस्याओं का युग है। नश्वरवाद, आतंकवाद, अंधविश्वास, भूखमरी, बेरोजगारी के कारण बच्चों के मन में कई प्रश्न निर्माण होते हैं। इन्हीं प्रश्नों की चर्चा शशिप्रभा तिवारी ने ‘बच्चे के प्रश्न’ कविता में की है। रात में सोया हुआ बच्चा सुबह उठता है तो वह देखता है कि आज की सुबह अलग है। नगर में आतंक का आलम है, कफरू है। बंद कमरे में तड़फता बच्चा माँ को प्रश्न करता है—

“ पापा दप्तर क्यों नहीं जाते
तुम बाजार क्यों नहीं जाती
बच्चे बाहर क्यों नहीं निकलते

तुम चुप क्यों हो
जवाब दो ना, माँ
अभी तो ना मुहर्रम है

ना रामनवमी, फिर यह तनाव कैसा।”⁶

हर बच्चे के मन में तरह तरह के प्रश्न निर्माण होते हैं। बच्चे को लगता है कि न रामनवमी है न मुहर्रम फिर भी घर के सभी सदस्य घर में क्यों है? प्रश्न को ध्यान में लेकर माँ बच्चे को दुःखी नहीं करना चाहती।

“ माँ ने जवाब दिया—क्यों? बेटे
क्या हिंसा का तांडव पर्व नहीं हमारा
जिसे बिना तय तारीख या दिन के
हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-इसाई मनाते हैं
रक्त की नदियाँ बहाते हैं
बसी बस्तियाँ उजाड़ते हैं।”⁷

अफसोस की बात है कि भारत में वर्णभेद के रूप में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश और शूद्र आदि में समाज का विभाजन हुआ है। भारत वर्ष में पुरातन काल से ऊँच-निचता को लेकर संघर्ष चलता रहा है। धर्म के नाम पर मनुष्य के साथ साथ ईश्वर को भी बाँटा गया है। आर्थिक असमानता के कारण अमीर-गरीब का स्तर देखने को मिल रहा है। स्पष्ट है कि आज के बच्चे भी चिंतित हैं। वे आर्थिक असमानता का शिकार बने हैं।

“ जैसे ही कौर उठाया
हाथ रूक गया
सामने किवाड़ से लगकर
रो रहा था वह कड़का
जिससे मेरे सामने
रखी थी थाली।”⁸

निष्कर्ष रूप में हम कहना चाहते हैं कि बाल साहित्य मनोरंजन और जिज्ञासाओं का भी समाधान करता है। इक्कीसवीं सदी की कविता में यथार्थ का सही चेहरा देखने को मिलता है। बच्चे को मार्गदर्शन की नितांत आवश्यकता होती है। प्रतियोगिता के दौर में अजनबीपन बढ़ रहा है। जिसका प्रभाव बच्चों पर पड़ रहा है। दुर्भाग्य से यह कहना पड़ता है कि मशीनीकरण के युग में बच्चे का बचपन नहीं रहा है।

संदर्भ—

1. डॉ.कपूर मस्तराम, हिंदी बाल साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ.८४.
2. सं. डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, बालसाहित्य रचना और समिक्षा, पृ.०६
3. रमाकांत शर्मा, गोधूली, पृ.३०.
4. तसलीमा नसरीन, यह दुःख यह जीवन, पृ.११९.
5. राजेश जोशी, खिलौना, पृ.१०५.
6. शशिप्रभा तिवारी, बच्चे के प्रश्न, पृ.१४९.
7. वही, पृ.१४९.
8. डॉ. संतोष कुमार तिवारी, अज्ञेय से अरूण कमल तक भाग-२, पृ.२१४.

डॉ. जाकिर अली 'रजनीश' की बाल कहानियों में आधुनिकता बोध

प्रा. सुधाकर कल्लाप्पा इंडी

सहा. प्राध्यापक, हिंदी विभाग
श्रीमती आक्काताई रामगोंडा पाटील कन्या
महाविद्यालय, इचलकरंजी

प्रस्तावना -

साहित्य का सामाजिक मूल्यों से तथा जीवन से किसी न किसी रूप से अपरिहार्य संबंध अवश्य है। पाठकों के आधार पर साहित्य का वर्गीकरण प्रौढ साहित्य, बाल साहित्य इस रूप में किया जाता है। साहित्य शब्द में जब 'बाल उपसर्ग' जुड़ जाता है तब वह बाल साहित्य के रूप में माना जाता है। बालको की रूचियों, कल्पनाओं, बौद्धिक क्षमताओं, उनकी सूझबूझ उनका परिवेश उनकी मानसिकता आदि को केन्द्र में रखकर लिखा गया साहित्य, बाल साहित्य माना जाता है। हिन्दी बाल साहित्य की एक समृद्ध परम्परा है। समकालीन बाल साहित्य की एक अलग परम्परा बन चुकी है और बाल साहित्य लेखन की विवेच्य कालावधि में उभरने वाले सशक्त हस्ताक्षर हैं - डॉ. उषा यादव, रोहिताश्व अस्थाना, जाकिर अली 'रजनीश', रामनिरंजन शर्मा, प्रकाश मनु, रमेश तैलंग आदि। वैश्वीकरण, राष्ट्रीयता की भावना, वैज्ञानिक प्रगति, पर्यावरण के प्रति जागरूकता बाल साहित्य में आधुनिकता बोध को दर्शाता है। जाकिर अली 'रजनीश' की बाल कहानियाँ, बाल मन की मानसिकता को अच्छी तरह समझती है।

मुख्यबिंदु-

- डॉ. जाकिर अली 'रजनीश' के बाल कहानी साहित्य में आधुनिकता की अवधारणा को स्पष्ट करना।
- डॉ. जाकिर अली 'रजनीश' बाल कहानी साहित्य में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, शहरीकरण, क्लब संस्कृति, अतिव्यस्त जीवनशैली, नये कलात्मक आयाम आदि का अध्ययन उद्देश्य रूप में, आलेख में परिलक्षित हैं।
- उनकी बाल कहानियों के माध्यम से बालजगत् में जिस नई क्रान्ति का सूत्रपात हुआ है उसका विवेचन इस आलेख में किया गया है।
- लेखकों/बाल साहित्यकारों का ध्यान बाल साहित्य की रचना और उनके नए पहलुओं पर आकर्षित करना चाहता हूँ ताकि वे समय की मांग को देखते हुए आधुनिक परिवेश की पृष्ठभूमि में बाल कहानी साहित्य का निर्माण कर सकें जो आगे चलकर बाल पाठकों के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सके।

विषय विस्तार -

डॉ. जाकिर अली 'रजनीश' के बाल कहानियाँ में आधुनिकता बोध यह विषय इसलिए लिया गया है, क्योंकि बाल कहानी साहित्य की एक लंबी परम्परा होने पर भी आज का बाल कहानी साहित्य कई अर्थों में पुराने बाल साहित्य से अलग है। बाल कहानी साहित्य में आधुनिकता एवं आधुनिकता बोध आज का आधुनिकतावादी बाल साहित्य पारम्परिक बाल साहित्य से सर्वथा भिन्न है। वही देशप्रेम, तितली, होली, दिवाली जैसे पिछपेपित लिखी जाने वाली घिसी पिटी शैली भी अलग है। रजनीश जी का बाल कहानी साहित्य बाल मनोविज्ञान, जिज्ञासा, विज्ञान की प्रगति, समकालीन परिदृश्य, वैश्वीकरण, पर्यावरण, राष्ट्र की एकता और अखंडता, शैक्षिक परिवेश में बदलाव, बदलते जीवन मूल्य और संचार माध्यमों में आई क्रान्ति को चित्रित करता है। रजनीश जी ने समर्पित भाव से साहित्य सृजन कर साहित्य संसार में बाल कहानी साहित्य के अन्तर्गत आधुनिकता बोध को उजागर किया है। अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय फलक पर आई परिवर्तन की लहर का आरोह अवरोह भी इसमें विद्यमान है। बाल साहित्य में समकालीन परिदृश्य को उभारा है। बालकों के मनोरंजन के साथ वे बालकों के चरित्र निर्माण की शक्ति रखती हैं। 'मैं स्कुल जाऊँगी' कहानी संग्रह में उन्होंने समाज में लिंग भेद की समस्या को एक नई दिशा दी है। 'ऑर्डर ऑर्डर' कहानी में पर्यावरण के प्रति जागरूकता को उजागर किया है। 'सुपरमैन' कहानी के माध्यम से बच्चों के साथ किये गए मजाक महंगे पड़ जाते हैं इसकी चेतावनी कहानीकार रजनीश ने दी है। 'रंगों का जादू' कहानी बच्चों में परोपकार के गुण को उजागर करता है। 'मदद करो कम्प्यूटर' आधुनिक तंत्रज्ञान का सही उपयोग करने से आनेवाले खतरे से हम बच सकते हैं इस बात की पुष्टि इस कहानी से होती है।

बच्चों की रुचि को देखकर डा. जाकिर अली रजनीश की कुछ कहानियों का कथानक बच्चों को बहुत ही पसंद एवं लुभाता है- जैसे 'सुमती का सपना' का कथानक जो बालकों को आसानी से हिंदी वर्णमाला का ज्ञान कराती। 'म' से अनार बनने वाला फल उसकी उपयोगिता को समझती अध्यापिका ऐसे करके सारी वर्णमाला की जानकारी, वर्णमाला से कौन-से शब्द बनते हैं, उसकी उपयोगिता का ज्ञान हमें होता है।

'सुपरमैन' डा. जाकिर अली रजनीश द्वारा लिखित कहानी में अध्यापक सारे स्कूल के बच्चों को जब नैनीताल पिकनिक के लिए ले जाते हैं, जब वह नैनीताल पहुँचते हैं तब सारे बच्चे थके रहते हैं, लेकिन कुछ बच्चों में बहुत उत्साह रहता है। यह सारे बच्चे आराम करने के बाद सुपरमैन देखने की इच्छा अपने अध्यापक को बताते हैं। अध्यापक उनको सुपरमैन दिखाने के लिए एक गाँव में पहुँचते हैं। बात यह है कि यह कोई सुपरमैन नहीं है, उस गाँव का लड़का जिससे सारे बच्चे चिढ़ाते थे 'सुपरमैन'।

'सुपरमैन' उसी कारण वह लड़का आपने आपको भी सुपरमैन समझने लगा था। जब वह स्कूली बच्चे उक्त गाँव में पहुँचे तब वह लड़के को गाँववालों ने बुलाकर पहाड़ी से छलाँग मारने के लिए कहाँ और साथ ही साथ यह भी कहा की आज सच में दिखा दे, 'तू सचमुच सुपरमैन है या नहीं', अब उस लड़के ने कमर पर रस्सी बाँधकर पहाड़ी से जो छलाँग लगाई। लेकिन वह जिंदा नहीं रह पाया। बच्चों का कक्षा में मजाक करना उसको भुगतना पड़ा। कहानी का कथ्य हमें यह सीख देता है कि कक्षा में कोई भी कुछ चिढ़ाएँ उसे अपने दिमाग तक लेना गलत बात है।

'रंगों का जादू' डा. रजनीश जी द्वारा लिखित, उन्होंने रंगों के महत्त्व को दर्शाया है। रंगों का जादू होली के दिन हर कोई पीछली बातों को भुलकर आगे मित्रत्व का हाथ बढ़ाता है। राहुल इस कहानी का मुख्य पात्र है, लेकिन राहुल के दोस्त होली के दिन एक रंगों से भरा गड्डा तैयार करते हैं ताकि उसमें बाकी के बच्चों को फेंककर होली खेली जाएँ। लेकिन राहुल को इस प्रकार की होली पसंद नहीं है, वह चाहता है सबको सुखे रंग आयुर्वेद के रंग लगाकर हम होली खेलें। तात्पर्य होली का त्योहार रंगों का त्योहार एक-दूसरे के प्रति प्रेम भावना को आदर का त्योहार है।

'मदद करो कम्प्यूटर' का कथानक कुछ इस प्रकार का है कि विवेक का जन्मदिन है, विवेक उसी दिन जल्दी उठता है स्कूल जाता है, तबतक उसके माता-पिता घर में विवेक के जन्मदिन की सारी सजावट करते हैं, रंग-बिरंगी गुब्बारे, रिबन, सितारे कमरे में लगाते हैं। कमरे के बीचों-बीच एक मेज पर केक रखने का इंतजाम करते हैं। जब विवेक स्कूल से लौटता है जब वह बहुत खुश हो जाता है, इतना सब इंतजाम मम्मी-पापा ने किया, यह देखकर वह फूला नहीं समाता। जन्मदिन कि तैयारी में यह तीनों भी व्यस्त हो जाते हैं, उतने में दरवाजे की घंटी बजती है और चार-पाँच गुण्डे घर में घुस जाते हैं। गुण्डे विवेक के मम्मी पापा से तिजोरी की चाबी की माँग करते हैं, उसके पापा को बाँधकर चाबी लेते हैं। विवेक को एक गुण्डा पकड़कर दूसरे कमरे ले जाते हैं विवेक की नजर कम्प्यूटर पर जाती है, वह कम्प्यूटर पर बैठकर किसी तरह इंटरनेट चालू करता है। गुण्डे का ध्यान उस कम्प्यूटर पर जाता है लेकिन उसे अंग्रेजी न आने के कारण वह गुंडा दूसरी तरफ़ देखता है। तब तक विवेक इंटरनेट के जरिए पुलिस तक यह जानकारी देता है सामान लुटकर जाने वाले गुण्डे जब सामान लेकर बाहर जाते हैं तब तक पुलिस आती है और उन्हें गिरफ्तार कर लेती है। इन्स्पेक्टर ने विवेक के सिर पर हाथ फेरता है, विवेक खुशी से झूम उठता है उसके लिए वह बड़ा तोहफा और क्या हो सकता है? अपनी समझदारी के बलपर उसने अपने घर की खुशियाँ लुटने से बचा ली थी। और यह उसके लिए गर्व की बात थी।

'देश की खातीर' का कथानक इस प्रकार है कि देश के प्रति कर्नल अमन अपनी जान देने के लिए तैयार है। कर्नल अमन ने अपनी जान खतरे में डालकर आतंकवादियों के गढ़ाई-लिखाई में व्यस्त था, इसलिए अमन मोहल्ले में जाकर बच्चों के साथ खेलता और बहुत गप्पे करता था। गप्पू मामाजी के साथ और नानी के साथ बहुत बातें करता था, जबकि उसके मामाजी और नानी गाँव से एक दिन पहले ही आ गए थे। नानी जी की उम्र अस्सी साल की है, कोई बड़ा-बूढ़ा इन्सान कितनी देर तक लगातार बोलते रहने के कारण जल्दी ही थक जाती थी। लेकिन गप्पू बिलकुल नहीं थकता था। गप्पू सारी रात बातों के बताशे बनाता रहता था। दूसरे दिन गप्पू सुबह उठकर बगिचे के एक क्यारी के पास जा पहुँचा। उसमें ढेर सारे रंगबिरंगे फूल खिले हुए थे। गप्पू को फूल बहुत अच्छे लगते हैं। वह चुपचाप उन्हें देखने लगा। तभी अचानक एक तितली वहाँ आ पहुँची। वह फूलों का मीठा रस चूसने लगी। रंगबिरंगी तितली को देखकर गप्पू का मन प्रसन्न हो गया। वह दौड़कर उसके पास जा पहुँचा और उसे पकड़ने की कोशिश करने लगा। उस समय तितली बहुत भूखी थी। उस फूलों का रस पीकर अपनी प्यास बुझाना चाहती थी लेकिन गप्पू उसे पकड़ने कि कोशिश कर रहा था और तितली इर्द-गिर्द कर रही थी। तितली को पकड़ने में असफल होने के कारण वहाँ से वो चला गया। घर में पहुँचने के बाद उसकी हालत दिन-भर थके होने के कारण बेकार हो गई थी। मम्मी ने गुस्से में आँखें तरेकर पूछा "कहाँ गए थे तुम? मैं इतनी देर से तुम्हारा इंतजार कर रही हूँ और तुम्हारा कहीं पता नहीं है।" मम्मी की बात सुनकर गप्पू को रोना आ गया। वह रूँआसा होकर बोला "मम्मी मुझे

माफ कर दीजिए, अब मैं कभी देर नहीं करूँगा। कभी किसी के साथ बातों के बताशे नहीं बनाऊँगा।” गप्पू की यह हालत देखकर मम्मी का गुस्सा छू-मंतर हो गया। मम्मी धीरे से मुस्कराई। उन्होंने गप्पू को गोद में उठा लिया और उसे प्यार करने लगीं।

‘थोड़ी सी खुशी’ कहानी का कथानक जो एक त्योहार से जुड़ा है। ‘इमाम’ एक गरीब लड़का, जो अपने दोस्तों के साथ गरीब परिस्थिति के कारण ईदगाह नहीं मना पाता है। ‘इमाम’ इतना गरीब था की उसकी आवाज में भी एक दर्द था। बेचारे के पास इतने पैसे भी नहीं थे कि वह ईद के दिन भी ठीक तक कपड़े पहन सके। उसका दोस्त सादिक ने उसे नए कपड़े दिलवा दिए। सादिक के इस व्यवहार से उसकी अम्मी बड़ी खुश हो गई थी। सादिक ने भी माँ की ओर बड़े गर्व से देखा। उसके चेहरे की चमक फिर से लौट आई थी। वह ईद के चाँद की तरह जगमग कर रहा था उसका चेहरा। उसने थैला हाथ में पकड़ा और आगे बढ़ गया। उम्मीद के दीपक से जगमगाती सैकड़ों निगाहें उसका मगला लक्ष्य था।

‘सबसे बड़ा पुरस्कार’ कहानी में रजनीश जी ने माँ की सेवा को ही सर्व श्रेष्ठ सेवा माना है। कहानी का पात्र अकरम खुद को मिलनेवाले पुरस्कार को छोड़कर अपनी बीमार माँ की सेवा में अपना सबसे बड़ा पुरस्कार मानता है। ‘मेरा सबसे बड़ा पुरस्कार तो आपकी सेवा है। आपने मुझे पाल-पोसकर इस काबिल बनाया है। आपकी दुआ से मैं ऐसे कई पुरस्कार जीतूँगा...आज आपकी तबियत ठीक नहीं है, आपको मेरी जरूरत है, तो क्या ऐसे में मैं आपको छोड़कर पुरस्कार लेने चला जाता? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आप यहाँ दर्द से तड़पती रहें और मैं वहाँ अपना सम्मान करवाऊँ, यह मुझसे नहीं हो सकता। कभी नहीं हो सकता।’ कहते हुए अकरम की आँखें भर आईं। प्रस्तुत कहानी के माध्यम से कहानीकार ने आधुनिक परिवेश में भी बच्चों संस्कार जीवित होनी बात कही है।

‘छोटी सी बात’ कहानी में डॉ. जाकिर अली रजनीश ने पशु-पक्षियों के महत्व को समझा रहे हैं। आधुनिक परिवेश के चकाचौंध में बच्चे अपने साथ रहने वाले पशु - पक्षियों के अस्तित्व को नकारते जा रहे हैं। ऐसे में कहानीकार ने सलिल पात्र के माध्यम से मनुष्य पशु-पक्षियों की बराबरी नहीं कर सकता, वे भी जीने का अधिकार रखते हैं, इस बात को चित्रित किया है। सन्नाटे को तोड़ते हुए शेर ने बात आगे बढ़ाई, ‘अब तो तुम्हें पता हो गया होगा नादान मनुष्य कि तुम इन जीवों से कितने महान हो अब जरा तुम अपनी घमंड की चिमनी से उतरने की कोशिश करो और हमेशा इस बात का ध्यान रखा कि सभी जीवों में कुछ नकुछ मौलिक विशेषताएँ पाई जाती हैं। सभी जीव आपस में बराबर होते हैं। न कोई किसी से छोटा होता है न कोई किसी से बड़ा। समझे?’

‘चॉकलेट चोर’ कहानी में रजनीश जी ने आधुनिक परिवेश में बिगड़ते रिश्तों की तरफ इशारा किया है। बच्चे खेल खेल में एक दूसरे पर चोरी का आरोप लगते हैं और उनका आपसी रिश्ता बिगड़ जाता है। इस कहानी में किरण और वरुण भाई बहन हैं जो चॉकलेट के लड़ते हुए दिखाई देते हैं। “चाचाजी भैया मेरी चॉकलेट नहीं दे रहे हैं। किरन की आँखों में आँसू देखकर चाचाजी पिघल गये। वे वरुण को घूरते हुए बोले, “वरुण ये मैं क्या सुन रहा हूँ? किरन की चॉकलेट कहाँ है?” “नहीं चाचाजी, यह झूठ बोल रही है। मैंने इसकी चॉकलेट छुई तक नहीं।” इस कहानी के माध्यम से बच्चों में बचपन से एक-दूसरी की चीजों की ओर आकृष्ट होना आदत होती है, कई बार इस आदत को बालक चोरी का नाम देता है, लेकिन उनको यह बात का पता नहीं होता है, कि चोरी का अर्थ और चोरी होती क्या है।

निष्कर्ष -

स्वतंत्रता के पूर्व सारे देश का प्रमुख लक्ष्य स्वतंत्रता प्राप्ति का अलख जगाना था। इसी प्रक्रिया में साहित्यकारों ने बाल कहानी साहित्य के प्रति अनदेखा रूख किया। परन्तु स्वतंत्रताप्राप्त होते ही बाल मनोविज्ञान, बाल शिक्षा, बाल विकास की ओर साहित्यकारों का ध्यान गया। नए नए प्रयोग बालकों के मनोविज्ञान को लेकर होने लगे। ऐसे युग में बच्चों से संबंधित वैज्ञानिक लेखों के लिए द्वार खुले। अंतरिक्ष और चंद्रमा पर उड़ाने भरी जाने लगी। रूढ़ीवादी और अंधविश्वासों की कढ़ियाँ टूटने लगी। दिनोंदिन मानव जीवन में समाहित होता विज्ञान, बाल साहित्य के लिए एक महत्वपूर्ण अध्याय बन गया।

डॉ. जाकिर अली ‘रजनीश’ के बाल कहानीयों में आधुनिकता बोध के अध्ययन से हमें आज के बाल जगत् में भौतिकता के प्रति आकर्षण का ज्ञान होता है और उसके दुष्परिणाम से हम समाज को अवगत करा सकते हैं। आधुनिकता के परिणामस्वरूप आज के बालक के बदले हुए जीवन से जुड़े जाकिर अली ‘रजनीश’ के बाल कहानीयों के माध्यम से, युगीन परिस्थितियों से जूझते हुए बालक की संवेदना का ज्ञान हमें पूरी तरह होता है। आधुनिक समाज में पर्यावरण, प्रदूषण, मनोवैज्ञानिक समस्याएँ, लिंग भेद से जुड़ी समस्याओं, नैतिक मूल्यों से जुड़ी समस्याओं से घिरे बालकों की मानसिकता समझने के लिए यह आलेख प्रस्तुत किया गया है। यह आलेख न मात्र आधुनिकता के दुष्परिणामों को चित्रित करता है। वरन् बालकों को समय की प्रासंगिकता एवं समसायिकता के अनुरूप चलने का एक व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. जाकिर अली 'रजनीश': 21 वी सदी की बाल कहानियाँ (2011), पृ. 1 से 34
2. Hindi Samay- https://www.hindisamay.com/writer/writer_details_n.aspx?id=1686
3. Gadyakosh- http://gadyakosh.org/gk/जाकिर_अली_%27रजनीश%27
4. Shodhganga- <https://sg.inflibnet.ac.in/handle/10603/41768>



‘फॉस’ में आत्महत्याग्रस्त किसान की बेटी कलावती

डॉ. एकनाथ श्रीपती पाटील,
हिंदी विभाग प्रमुख,
राधानगरी महाविद्यालय,
राधानगरी, जिला-कोल्हापुर।

संजीव का नया उपन्यास ‘फॉस’ सन 2015 में प्रकाशित हुआ है। यह उपन्यास किसान विमर्श को सामने रखता है। तीन लाख से अधिक किसानों ने आत्महत्या करना और 80 लाख से अधिक किसानों द्वारा किसानों छोड़ देने की पार्श्वभूमि पर लिखा प्रस्तुत उपन्यास किसानों की दारुण पराजय की गाथा प्रस्तुत करता है। भारतीय परिवारिक जीवन में जैसे लड़की का जन्म अभिशाप माना जाता है वैसे ही आज किसान का होना भारतीय समाज व्यवस्था में अभिशाप माना जाने लगा है। और इन दोनों के साथ सही न्याय की अपेक्षा आज भी पूर्ण नहीं हो रही है। भारतीय किसानों के लिए खेती आज अभिशाप बन गई है। जिसे वह छोड़ नहीं सकता क्योंकि खेती छोड़ देंगे तो उसके पास जीवन जीने के लिए और कोई साधन नहीं है इसलिए वह उसे छोड़ नहीं सकता। और दूसरी बात यह है कि किसानों करने में ‘मरजाद’ है ऐसा भारतीय किसानों का माना है, जो मजदूरी में नहीं है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र शिबू जो अपने ‘मरजाद’ को बचाते-बचाते आत्महत्या करने मजबूर हो जाता है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्रों में शिबू (शिवशंकर), शकुन (शकुंतला) तथा उनकी दोनों बेटियाँ सरस्वती और कलावती, अशोक, विजयेन्द्र आदि के नाम लिए जा सकते हैं लेकिन इन सब पात्रों में पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करनेवाला पात्र है— कलावती याने कला या छोटी। प्रस्तुत उपन्यास की कलावती अन्य सभी पात्रों से अपनी अलग पहचान लेकर उपन्यास में उपस्थित हुई है। कला की सारी सोच विचार करने की पद्धति उसके वैज्ञानिक दृष्टि को सामने रखती है। कलावती है तो एक छोटी जोत के किसान की बेटी, जिसे मालूम है कि भारतीय किसान खेती याने किसानों छोड़ नहीं सकता क्योंकि उसके पास जीवन निर्वाह का अन्य कोई साधन नहीं है। इसलिए किसानों में अपनी ‘मरजाद’ को बचाये रखने में नाकाम रहा किसान आत्महत्या को गले लगाने लगता है। ऐसे पस्त हिम्मत किसानों की सहायता हेतु ‘मिनी कृषि अनुसंधान’ केंद्र शुरू करनेवाली कलावती की चारित्रिक विशेषताओं को संजीव ने रेखांकित किया है जो उसे उपन्यास के अन्य पात्रों से अलग पहचान देने कारगर साबित हुई है।

● कलावती / कला / छोटी :

‘फॉस’ उपन्यास की प्रमुख पात्र तथा उपन्यास की नायिका कलावती तथा छोटी है। महाराष्ट्र के यवतमाल जिले में स्थित बनगाँव की रहनेवाली छोटी, शिबू और शकुन की छोटी बेटी है जिसने शराफत का टोकरा अपनी बड़ी बहन सरस्वती के सिर पर रखकर स्वयं उन्मुख जीवन जीती रहती है। इसी उन्मुख तथा स्वच्छंद जीवन उसे बेवजह गाँव में बदनाम तथा कलंकित करता है लेकिन उसे उसकी परवाह नहीं है। गाँव में लोग उसके माँ-बाप को छोटी के वडील, छोटी की आई नाम से पहचानते हैं। छोटी जब स्कूल के युवा महोत्सव के समापन समारोह में भाग लेने हेतु रुक जाती है और बाकी बच्चे गाँव वापस आते हैं तो गाँव में भूचाल आता है, “हाय देवा, अनर्थ हो गया।” मन्दिर के पुजारी जिस जिससे पूछते हैं, ‘कुछ पता चला?’ फिर खुद ही बताते हैं, “हमें तो पहले से ही पता था कि एक दिन यह होकर रहेगा।” पुरुषी भोगवादी मानसिकता के कारण छोटी का अन्य लड़कियों के साथ वापस न आने का गलत अर्थ निकाल कर उसे बदनाम करने का कार्य पुजारी करता है। नतिजतन शिबू बदनामी से डरकर उसे स्कूल जाने से रोकता है। छोटी सोलह की होने आयी मगर उसका बचपना नहीं गया। उछल-कूद, घूमना-फूदकना मानो उसके दुर्गुण माने जाने लगे। छोटी निडर होने के साथ पढ़ने लिखने तेज हैं। खेलकूद की उम्र में पत्र-पत्रिकाएँ पढ़कर अपने माँ-बाप तथा पड़ोसी अशोक के साथ किसान आत्महत्या पर चर्चा करती दिखाई देती है। अपनी माँ के साथ महुआ चुनने गई छोटी जंगल विभाग के कर्मचारी खुदाबख्श की वासना का शिकार होते-होते बच गई, “जल्दी-जल्दी हम उसके पास पहुँचे, देखा, भड्डू ने उसकी बाँह पकड़ रखी थी और खींच रहा था।” इस घटना के बाद शिबू अपनी दोनों बेटियों की जल्द से जल्द शादी करने की सोचता रहता है। छोटी हाजिरजवाबी लड़की है। जब पुलिस गाँव के स्त्री-पुरुषों को थाने ले जा रही थी तब कुछ सवर्ण किसान उसकी माँ को निशाना बनाकर चोर कहने लगते हैं। तो छोटी ने तुरंत जवाब दिया किया, “पेट में भूख हो और खेत में दाना, तो क्या करना चाहिए?” छोटी पिछड़ी जाति के माँ-बाप की लड़की है। छोटी की माँ जब नवबौद्ध बन जाती है तब वह अपनी बेटियों की पढ़ाई आगे जारी रखती है। पड़ोस में रहे मराठा अशोक के साथ छोटी पैदल स्कूल जाती है। दोनों में कैशोर्यसुलभ प्रेम पैदा होता है और

बातों-बातों में छोटी द्वारा पूछे रिलेशनशीप के संबंध में अशोक उसके होठों को चूमकर उसे थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी का अर्थ समझता है।

छोटी पूरी तरह से आधुनिक विचारों की मॉडर्न लड़की है। वह फैशनबल कपड़े पहनने हिचकती नहीं। मामी की दी हुई जिन्स पहनकर मटकती-छटकती डोलने लगी गाँव में। आधुनिक मर्दोवाले कपड़े पहनने के कारण गाँव में उसकी आलोचना होती है। लेकिन उसे परवाह नहीं है। पारंपरिक धोती जब पहनने कहा जाता है तब वह उतनी उत्सुक दिखाई नहीं देती। अपने घर की रोटी आनंद से खानेवाली छोटी है। मराठी पर्व त्योहार के दिन मीठे व्यंजन बनाए जाते हैं। कर्ज के बोझ के कारण शकुन पुरणपोली नहीं बनाती। गरीबी के कारण मीठे व्यंजन घर में नहीं बने, यह जाननेवाली छोटी अपने घर में रोटी-चावल-प्याज को स्वाद से खाती दिखाई देती है। छोटी अपनी बहन सरस्वती से दो साल छोटी है पर दिखने में उससे बड़ी लगती है। मंदिर के पुजारी की उसपर बुरी नजर है। इसलिए अपनी जवान होती बेटियों के विवाह की चिंता शिबू को है। लेकिन दहेज देने उसके पास पैसे नहीं हैं। फिर भी वे दूल्हे की तलाशी शुरू करते हैं।

छोटी स्पष्टवक्ता लड़की है। हमारे समाज में मर्यादा का पालन स्त्रियों से होने की अपेक्षा की जाती है। उसकी माँ उनके सामने 'बेटियों का बाप होना बड़ी जिम्मेदारी होती है' कहती है तो छोटी झट से उसका प्रतिवाद करती हुई कहती है कि, "मुलगियों के सिर पर ही इज्जत का सारा बोझ क्यों आई।" इस तरह का प्रतिवाद स्पष्टता से कर समाज में लड़का-लड़की बराबर होने की बात दोहराकर, समाज की परवाह बगैर किए अशोक के साथ बे-झिझक गाँव में घूमनेवाली छोटी पढ़ाई में भी अव्वल रहती है। उछल-कूद, दंगा-मस्ती करनेवाली छोटी खेत-खलिहान के कामकाज में अपने माँ-बाप की सहायता करती है। छोटी उम्र में एक माँ का हृदय रखनेवाली छोटी है। आत्महत्या किये किसान के बच्चे को छोटी अपने घर ले आती है, "इसलिए कि जन्म देने के बाद इसकी आई भी.... माने इसका कोई नहीं अब। कोई रखने को तैयार नहीं। सोचा, ऐसे बच्चे का पालना पुण्य का काम है, फिर अपना कोई भी न था - ये भैया हुआ मेरा।"³ अशोक और छोटी के बीच की नजदिकी मंदिर के पुजारी को खटकती रहती है, इसलिए वह बच्चे को लेकर छोटी की बदनामी करने लगता है, "अरे वह बच्चा कला और अशोक का है। इतने दिन बाहर रखा ताकि पता न चले।"⁴ शक का इलाज तो हकीम भी नहीं कर सकते। बेटी की बदनामी से डरकर बाप शिबू आत्महत्या कर लेता है। बा पके असमय मौत का बड़ा सदमा छोटी का पहुँचता है। शिबू के आत्महत्या के बाद एन.जी.ओ. उस बच्चे को ले जाते हैं। छोटी उसका विरोध कर सकती थी, उसमें विरोध की भरपूर शक्ति थी पर उसकी शक्ति पर उसका अपना बाप स्वयं का खून उँडेल गया और उसे चूप रहना पड़ा। ऐसे माहौल में दोनों बहनों का विवाह बौद्ध धर्म के अनुसार संपन्न होता है। विवाह के समय छोटी को अशोक की याद आती है और उसका सच्चा प्रेम जाति के भेंट चढ़ने का दुख उसे होता है।

कलावती/छोटी बुद्धिमानी स्त्री है। देश, दुनिया तथा जीवन को जानने-समझने की भरपूर जिज्ञासा उसमें है। उसके जिज्ञासा की भूख केवल अशोक से तृप्त होती थी। लेकिन अशोक से नजदिकी उसका दुर्गुण माना जाता है। उसे लेकर गाँव में उसकी बदनामी होती है। बाप की हत्या उससे कहा जाता है। अपनी बहन को सफाई देते हुए वह कहती है, "क्या गरीब की बेटी जवान नहीं होती? मैंने ऐसा क्या कर दिया ताई? मेरी भूख थी... जानने की भूख, जिज्ञासा की भूख जो हर पल धधकती रहती है। इस समूची दुनिया को आत्मसात कर लेने की भूख, ऐक्चुअली मैं उसे डिफाइन भी नहीं कर पा रही ठीक, ठीक। देह से ज्यादा दिमाग की। रुहानी। मैं दुनिया की हर बात को जान लेना चाहती थी, वह थोड़ी-बहुत अशोक से पूरी होती थी। स्कूल से नहीं। आई-बाबा से भी नहीं। तुझसे नहीं। पड़ोसियों से नहीं। अशोक होती। गाँववालों ने शक का बीज डाल दिया वडिल के दिमाग में, मैं निकाल नहीं पायी।"⁵ बाप के हत्या का कलंक लेकर वह घर से विदा होकर ससुराल चली आती है। गाँव, घर, माँ, बहन तथा प्रेमी की यादें छोड़ वह अपने ससुराल में नया जीवन शुरू करती है।

गडचिरोली का बाँसोडा गाँव छोटी का ससुराल है जो आदिवासी मिश्रित गाँव है। सुहाग सेज पर छोटी अपने पति से आगे पढ़ने और बढ़ने न रोकने का वचन लेती है। बाँसोडा में बिजली नहीं है। नई बहू का मुँह देखने आए गाँव के सरपंच को वह गाँव में बिजली न होने का प्रश्न पूछती है। सरपंच को प्रश्न पूछना उसको निर्लज्ज साबित करता है। लेकिन निडर, बुद्धिमानी छोटी गाँव की समस्या सुलझाने हेतु सरपंच तथा गाँव के अन्य लोगों के श्रमदान से गाँव में बिजली लाने सफल होती है। सांस-ननद तथा पति उससे एक पारंपरिक बहू की अपेक्षा रखते थे मगर छोटी देश, समाज तथा जीवन को जानने की जिज्ञासा रखनेवाली तथा समस्याओं सुलझाने की क्षमता रखनेवाली बुद्धिमान महिला है। अतः ऐसी औरत से पारंपरिक बहू की अपेक्षा करना अनुचित है। अतः पति, सास, ससूर से अनबन तथा अपनी इच्छा-आकांक्षा-जिज्ञासा की तृप्ति के लिए वह ससुराल को त्याग देती है। मायके आने पर वह पहले अशोक को ढूँढती है। मगर प्यार में चोट खाये अशोक गाँव छोड़कर कहीं चला गया है। वह विजयेन्द्र के घर आकर रहने लगती है। यहाँ छोटी अपनी कॉलेज की पढ़ाई के साथ विजयेन्द्र की सहायता करती है। वे कपास उत्पादक किसानों की समस्या को लेकर सेमीनार का आयोजन करते हैं, जिसके द्वार पर लगा फेस्टुन छोटी द्वारा बनाया गया है, "भारतीय किसान कर्ज में जन्म लेता है, कर्ज में ही

मर जाता है।" ससुराल को त्याग कर आयी अपनी बेटी को शकुन कहती है कि, "मुझे मालूम था, कोई भी आँचल तुझे बाँध नहीं पायेगा। तू आग है आग।"⁶ इसतरह शकुन ही अपनी बेटी को पहचानती हुई दिखाई देती है।

छोटी अंधविश्वास न माननेवाली है। फूलगाँव के लोग कुओं का सूख जाना, फसल पर टिड्डी का हमला, सूखा, बच्चों का फेल होना और किसान आत्महत्या के लिए निरंजनदेवगिरि द्वारा बताया अनुष्ठान और अखंड हरिनाम संकीर्तन करने लगते हैं तो छोटी उन्हें प्रश्न पूछकर विरोध करती दिखाई देती है, "तो निरंजन देवगिरि ने क्या कहा, अनुष्ठान पूरा होते ही कुओं में पानी भर जायेगा, सूखा खत्म हो जायेगा, क्या पत्ते लौट आयेंगे?"⁷ छोटी मोहन दादा के गले में रस्सी बाँधकर, उन्हें बैल बनानेवाले, उनका अपराधबोध जगानेवाले निरंजन देवगिरि पर अपना क्रोध व्यक्त कर अंधविश्वास का जोर-शोर से विरोध करती दिखाई देती है।

छोटी विजयेन्द्र के साथ किसानों के हित के लिए कार्य करने लगती है। दोनों मिलकर 'मंथन' का आयोजन करते हैं। मंथन में देशभर के किसान, बीज, खाद, कीटनाशक और उनसे जुड़ी हर समस्या पर विमर्श होने लगता है। मंथन अभियान के अंतर्गत वे दोनों नागपुर विधानसभा अधिवेशन में आत्महत्या किए किसानों के विधवाओं का जुलूस निकालते हैं। इस दोनों में नजदिकी बढ़कर संभोग सुख लेते हैं। छोटी ने प्रेम अशोक से किया, शादी सुभाष से और संभोग सुख विजयेन्द्र से, ये क्या मामला है? छोटी पारंपरिक नीतिमूल्यों के खिलाफ विद्रोह करनेवाली आधुनिक महिला है। किसी एक के प्रति मन-प्राण वचनवाली एकनिष्ठता रखना उसे ऋणवादी मूल्य तथा सदियों से थोपे गए मूल्य लगता है, जिसे वह तोड़ना चाहती है। अशोक को लेकर पूछे विजयेन्द्र के प्रश्न पर वह कहती है, "अशोक? वही क्यों, पूरी जिंदगी में और भी आ जाये, तुम्हारे भी हमारे भी?"⁸ इसतरह छोटी अपने तथा दूसरों के जीवन में मुक्त यौन संबंध का पुरस्कार करती है। छोटी के चरित्र को लेकर डॉ. गिरीश काशिद कहते हैं, "ग्रामीण जीवन में रहकर उसके विचार मुक्ति, स्वतंत्रता और समता की बातें करते हैं। वह संदर्भों अपने नजरिये से देखती है।"⁹ उपन्यास में उसका प्रेमी अशोक 'कलावती कुंज' के जरिए आत्महत्याग्रस्त किसानों के बच्चों के लिए कार्य करने लगता है। जिस बच्चे को लेकर वे दोनों गाँव में बदनाम हुए उसे वह अपना बेटा मानता है। छोटी के इस बात का गर्व महसूस होता है कि जो कार्य वह नहीं कर सकी, वह उसका प्रेमी अशोक कर दिखाता है। उसे वह प्रोमेथ्यूज की उपमा देती है। और अंत में सिंधुताई सपकाळ से प्रेरणा ग्रहण कर देशभर के किसानों के हित रक्षा के लिए 'मिनी कृषि अनुसंधान' केंद्र खोलकर कार्य करने लगती है। इसतरह छोटी का चरित्र उपन्यास में निरंतर उर्ध्वगामी बना दृष्टिगोचर होता है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि संजीव का 'फॉस' उपन्यास वर्तमान किसान जीवन की त्रासदी को चित्रित किया है। अभावग्रस्त और आत्महत्याग्रस्त किसान परिवार के स्त्री जीवन को कितनी यातनाएँ भुगतनी पड़ती है इसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में छोटी के माध्यम से किया है। फिर भी वह परिस्थिति से हार न मानकर जीवन में आए संकटों सामना कर उससे मार्ग निकलती है। जो आत्महत्याग्रस्त परिवार को परिस्थिति के साथ जूझने की प्रेरणा देता है। साथ ही प्रस्तुत उपन्यास में आज के स्त्री का पारंपरिक विचारों के प्रति विद्रोह तथा आधुनिक विचारों का स्वीकार इस दृष्टिकोण को भी चित्रित किया है। इसप्रकार संजीव जी का 'फॉस' उपन्यास किसान आत्महत्या के साथ नारी मन की पीड़ा का असली दस्तावेज है।

संदर्भ :

1. संजीव, फॉस, पृष्ठ 10, 11
2. वही, पृष्ठ 91
3. वही, पृष्ठ 100
4. वही, पृष्ठ 101
5. वही, पृष्ठ 124
6. वही, पृष्ठ 156
7. वही, पृष्ठ 215
8. वही, पृष्ठ 217
9. सं. डॉ. एस. वाय. होनगेकर, डॉ. आरिफ महात, 21 वीं शती का हिंदी साहित्य : नव विमर्श, ए.बी.एस. पब्लिकेशन, वाराणसी, पृष्ठ 93, 94 (फॉस : वर्तमान कृषि और किसानों का दस्तावेज— डॉ गिरीश काशिद)

किसान से मजदूर बना भारतका अन्नदाता

इन्द्रदेव शर्मा (शोधार्थी)

हिंदी विभाग

(हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद)

कोई भी विमर्श अपने आप की अस्तित्व और अस्मिता की पहचान की तलाश करता है । वह अपने वजूद और हक की प्राप्ति के लिए संघर्षरत रहता है । मजदूर, मजूर, श्रमिक वर्ग और कामकाजी तबका इत्यादि नामों से इस बहुत बड़े वर्ग को जाना जाता है । वह कामकाजी वर्ग जो कंपनियों, कारखानों, कोयलों के खादानों, सड़कों का निर्माण, मकानों का निर्माण, ईं ट के भट्टों में काम करने वाले और खेतों (मजदूर किसान) में काम करने वाले ये सभी श्रमशील वर्ग मजदूर की श्रेणी में आते हैं । मजदूर वर्ग अपने हक और हकूक के लिए लड़ता रहा है । यह मेहनतकश वर्ग कोई खैरात या भीख नहीं मांगता बल्कि वह अपने द्वारा किए गए मेहनत का मेहनताना मांगता है । कार्लमार्क्स का 'द्वंद्ववात्मक भौतिकवाद' इन सभी मजदूरों की संघर्ष की बात करता है और कहता है कि 'दुनिया के मजदूर एक हों' तभी मजदूरों को उनका हक मिलेगा । मजदूरों के साथ कोई नाइंसाफी ना हो उसे उसका पूरा हक मिले इन्ही सब को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक वर्ष 1 मई को मजदूर दिवस के रूप में मनाया जाता है । आज यह दिवस मात्र एक दिवस ही रह गया है । मूल कारणों के बारे में बहुत ही कम लोग बात करते हैं ।

मजदूर विमर्श के सन्दर्भ में एक लेख में कहा गया है कि-“जो मेहनत तथा शारीरिक परिश्रम करता है, खून पसीने का काम करता है और उसके प्रतिदान में रोजी पाता है । अंग्रेजी में 'लेबर' शब्द का हिंदी पर्याय श्रमिक है । जो अपने दैहिक श्रम के बूते पर रोजी-रोटी पाता है और अपना तथा अपने परिवार वाले का भरण-पोषण करता है असल में वही श्रमिक है । अतः ऐसे व्यक्ति के सन्दर्भ में किया जाने वाला विचार-चिंतन श्रमिक विमर्श या मजदूर विमर्श कहलाता है । शारीरिक परिश्रम से रोजी कमाने वाले के बारे में किया गया सोच-विचार तथा परामर्श ही मूलतः मजदूर विमर्श कहलाता है ।”¹

मजदूरों की कई श्रेणियां होती हैं जो एक दूसरे से श्रृंखलाबद्ध तरीके से कार्य करती हैं इसके बारे में भारतीय मजदूर संघ के अध्यक्ष बी०एस०काम्बले लिखते हैं कि-“प्रत्येक ग्राम किसानों, कृषि श्रमिकों और कारीगरों कि एक सहकारी प्रजाधीन सम्पत्ति है . यह किसानों का कर्तव्य होगा कि भूमि सीमांकन कानून के कारण जो भी भूमि का अतिरिक्त हो उससे अपने को उन्मुक्त कर लें, कृषिश्रमिकों वैधानिक को न्यूनतम मजदूरी अवश्य मिले और ग्रामीण कारीगरों और कृषि श्रमिकों को अतिरिक्त कृषि उत्पादन में पूर्ण हिस्सा दिया जाय .”²

स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के समर्थन के साथ मजदूर वर्ग के अधिकारों और सेवाओं के बारे में संविधान निर्मात्री डॉ०बी०आर०अम्बेडकर 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' संस्था के द्वारा मजदूर वर्ग के हक की बात की है. डॉ० अम्बेडकर द्वारा श्रमिक वर्ग या मजदूर वर्ग के अधिकारों और भलाई के लिए किए गए कार्यों का विंदुवार वर्णन प्रद्युम्न यादव ने इस प्रकार किया है

- 1-बाबा साहेब वाइसरॉय के कार्यकारी परिषद के श्रम सदस्य थे । उन्हीं की वजह से फैक्ट्रियों में मजदूरों के 12 से 14 घंटे काम करने के नियम को बदल कर 8 घंटे किया गया था ।
- 2-बाबा साहेब ने ही महिला श्रमिकों के लिए मातृत्व लाभ जैसे कानून बनाने की पहल की थी ।
- 3-बाबा साहेब ने 1936 में श्रमिक वर्ग के अधिकार और उत्थान हेतु 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' की स्थापना की । इस पार्टी का घोषणा पत्र मजदूरों, किसानों, अनुसूचित जातियों और निम्न मध्य वर्ग के अधिकारों की हिमायत करने वाला घोषणापत्र था ।
- 4-बाबा साहेब ने 1946 में श्रम सदस्य की हैसियत से केन्द्रीय असेम्बली में न्यूनतम मजदूरी निर्धारण सम्बन्धी एक बिल पेश किया जो 1948 में जाकर 'न्यूनतम मजदूरी कानून बना।

¹ <https://books.google.co.in/books?id=v3GW2IQPp80C&pg=PA105&lpg=PA105>

² भारतीय श्रम की माँगों का देशव्यापी आकर्षण, अनु० बी०एस० काम्बले पृष्ठ संख्या : 9

- 5-बाबा साहेब ने ट्रेड डिस्प्यूट एक्ट में सशोधन करके सभी यूनियनों को मान्यता देने की आवश्यकता पर जोर दिया। 1946 में उन्होंने लेबर ब्यूरो की स्थापना भी की।
- 6-बाबा साहेब पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मजदूरों के हड़ताल करने के अधिकार को स्वतंत्रता का अधिकार माना और कहा कि मजदूरों को हड़ताल का अधिकार न देने का अर्थ है मजदूरों से उनकी इच्छा के विरुद्ध काम लेना और उन्हें गुलाम बना बा। 1938 में जब बम्बई प्रांत की सरकार मजदूरों के हड़ताल के अधिकार के विरुद्ध ट्रेड डिस्प्यूट बिल पास करना चाह रही थी तब बाबा साहेब ने खुलकर इसका विरोध किया।
- 7-बाबा साहेब ट्रेड यूनियन के प्रबल समर्थक थे। वह भारत में ट्रेड यूनियन को बेहद जरूरी मानते थे। वह यह भी मानते थे कि भारत में ट्रेड यूनियन अपना मुख्य उद्देश्य खो चुका है। उनके अनुसार जब तक ट्रेड यूनियन सरकार पर कब्जा करने को अपना लक्ष्य नहीं बनाती तब तक वह मजदूरों का भला कर पाने में अक्षम रहेंगी और नेताओं की झगड़ेबाजी का अड़्डा बनी रहेंगी।
- 8-बाबा साहेब का मानना था कि भारत में मजदूरों के दोबड़े दुश्मन हैं पहला ब्राह्मणवाद और दूसरा पूंजीवाद। देश के श्रमिक वर्ग के उत्थान के लिए दोनों का खात्मा जरूरी है।
- 9-बाबा साहेब का मानना था कि वर्णव्यवस्था न सिर्फ श्रम का विभाजन करती है बल्कि श्रमिकों का भी विभाजन करती है। वह श्रमिकों की एकजुटता और उनके उत्थान के लिए इस व्यवस्था का खात्मा जरूरी मानते थे। उनके इस नज़रिये को आज भी भारतीय वामपंथी जानबूझकर या अनजाने में समझने में अक्षम रहे हैं।
- 10-बहुत ही कम लोग इस बात को जानते हैं कि बाबा साहेब भारत में सफाई कामगारों के संगठित आंदोलन के जनक भी थे। उन्होंने बम्बई और दिल्ली में सफाई कर्मचारियों के कई संगठन स्थापित किए। बम्बई म्युनिसिपल कामगार यूनियन की स्थापना बाबा साहेब ने ही की थी।³

हिंदी साहित्य के संदर्भ में यह माना जाता है कि राजनीति के क्षेत्र में जो मार्क्सवाद है वही हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद है।

हिंदी साहित्य में पहली बार प्रगतिवादी विचारधारा से ही शोषित वर्ग की दुःखद को जोर-शोर से उठाया जाने लगा। हिंदी कथा साहित्य में खासकर कहानी और उपन्यास जैसी विधाओं में मजदूर या श्रमिक वर्ग की समस्याओं को केंद्रबिंदु मानकर तमाम कहीं और उपन्यास लिखे गए, गिरिराज किशोर का 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास मजदूर वर्ग के समस्याओं और सच्चाई को समझाने के लिए सबसे अच्छा उदाहरण है। कमलाकांत त्रिपाठी का 'बेदखल' उपन्यास में भी दासत्व मजदूर का उल्लेख किया गया है। वैसे मजदूर विमर्श में अंतर्गत सभी वर्ग की जानी चाहिए लेकिन संभव नहीं है। इस अलेख के अंतर्गत मैंने उन गरीब मजदूरों का जिक्र किया है जो खेती-किसानी का काम करते हैं तथा जमींदारों और उच्चवर्गीय किसानों के खेतों में दिन-रात मेहनत करता है फिर भी उसे दो वक्त का भोजन भी सही से नसीब नहीं होता अर्थात् मैंने भूमिहीन किसान या किसान मजदूर की समस्याओं को उपन्यासों के हवाले दिखाने की कोशिश किया है। एक पंक्ति के माध्यम से मजदूरों की स्थिति और सच्चाई को समझा जा सकता है

तीन पेट भूखे रहे, कैसे हो निर्वाह।

मजबूरी ने दिखा दी, मजदूरी की राह।।

उपर्युक्त पंक्ति में यह दिखाया गया है कि जो किसान अन्नदाता कहलाता है तथा भारत की आत्मा कहा जाता है। वही आज परिस्थितिवश या सरकार की असचेताता के कारण मजबूर होकर किसान से मजदूर बनता जा रहा है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा वर्ग किसान रहा है और है भी। किसान, भारत की कृषि संस्कृति का मूलधार है। किसान के बिना भारतीय संस्कृति का विश्लेषण अधूरा रहता है क्योंकि भारतीय संस्कृति में किसान की संवेदना और इतिहास समाया हुआ है। जिस देश में आधे से अधिक आबादी खेती का काम करता हो तो स्वाभाविक-सी बात है कि इस वर्ग को सम्मिलित किये बगैर भारतीय संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती है।

भारत देश में विशेष रूप से उत्तर भारत में किसानों को चार श्रेणियों में बांटकर देखा जा सकता है।

1. उच्चवर्गीय किसान
2. मध्यवर्गीय किसान
3. निम्नवर्गीय किसान

³ <https://www.nationalindiannews.in/dr-ambekar-5/?lang=hi>

4. गरीब मजदूर किसान या भूमिहीन किसान

उच्चवर्ग के किसानों के पास जमीनें काफी मात्रा में होती हैं जो स्वयं खेती नहीं करते बल्कि दूसरे लोगों से खेती करवाते हैं। मध्यवर्ग के किसानों के पास 10 या 12 एकड़ जमीनें होती हैं। इस वर्ग का किसान स्वयं खेती करता है और जरूरत पड़ने पर मजदूरों से खेती करवाता है। निम्नवर्ग के किसानों के पास जमीनें बहुत कम होती हैं या तो जमीनें होती ही नहीं हैं। जमीन ही इनके लिए सब कुछ है। इनका सारा का सारा परिवार खेती पर ही निर्भर रहता है। गरीब मजदूर किसान के पास जमीन का एक भी धूँ (एकड़) नहीं रहती वह दूसरों की ही खेतों में काम करता है या समय मिलने पर कस्बों में जाकर मजदूरी करता है जिससे उसके परिवार को खाने की व्यवस्था हो सके।

गरीब मजदूर किसान एक निश्चित समय के लिए जमींदारों से जमीन लेकर खेती करता है। उत्तर भारत में अक्सर यह देखा गया है कि भूमिहीन किसान ½ की खेती करते हैं। जिसे उनकी भाषा के 'अधिया' की खेती कहते हैं। गरीब मजदूर किसान सबसे ज्यादा मेहनती होता है। उसके अन्दर चाह बनी रहती है कि ज्यादा से ज्यादा फसलों का उत्पादन करे क्योंकि उस उत्पादित फसलों में से उसे आधा भाग मिलेगा। औद्योगिक क्रांति और भूमंडलीकरण के प्रभाव से अन्न खेतों में काम करने वाले श्रमिकों की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है। श्रम का स्थान कृषि कार्य के नवीन उपकरणों ने ले लिया। जिसकी वजह से यह वर्ग पूरी तरह खेती से दूर होता गया।

भारत की आत्मा गांवों में निवास करती है। अधिकांशतः भारत देश गांवों से ही बना है। भारतीय कला, संस्कृति और यथार्थ गांवों में ही दिखाई देता है। गांवों में रहने वाले अधिकतर व्यक्ति खेती का कार्य करते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय या जीवन शैली खेती पर ही निर्भर रहता है। सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना के निर्माण में किसान की बहुत बड़ी भूमिका ही है लेकिन आज गांवों की आत्मा तड़प रही है, वह कराह रही है, धीरे-धीरे यह गांव की आत्मा मरती जा रही है। स्वतंत्रता पूर्व से ही हिंदी कथा साहित्य में किसान जीवन पर केन्द्रित साहित्य लिखने का शिलशिला जारी रहा है। हाँ यह बात दूसरी है कि किसम जीवन पर आधारित लेखन कार्य छुट-पुट ही होता रहा है। गिने-चुने लोगों का ही ध्यान इस तरफ रहा। उन्होंने गाँव जीवन की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनितिक स्थितियों पर लेखन कार्य किया है। इन लेखकों के लेखन में ग्रामीण जीवन, ग्रामीण प्रकृति और ग्रामीण संस्कारों को समझने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

हिंदी उपन्यासों में किसान जीवन को लेकर आलोचक मैनेजर पाण्डेय 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' में लिखते हैं- "भारतीय उपन्यास का स्वतन्त्र रूप तब विकसित हुआ जब उपन्यास रचना के केंद्र में भारतीय किसान जीवन आया। तभी वह यथार्थवाद विकसित हुआ जो राष्ट्रीय जागरण का अभिन्न अंग था। किसान जीवन से जुड़कर ही भारतीय उपन्यास की सच्ची भारतीयता विकसित हुई और उपन्यास राष्ट्रीय जीवन की महागाथा का प्रतिनिधि साहित्य रूप बना। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किसान भारतीय समाज का पहले भी था और आज भी है। किसान भारतीय चेतना का मूर्तरूप और औपनिवेशिक का सर्वाधिक शोषित और उत्पीड़ित वर्ग भी था। उस समय भारतीय किसान एक ओर साम्राज्यवादी शोषण का शिकार था और दूसरी ओर सामंती लूट का। किसान जीवन के उपन्यास जुड़ने का अर्थ भारतीय समाज की समग्रता के केंद्र से जुड़कर उसकी इतिहास प्रक्रिया में सक्रिय विभिन्न शक्तियों को पहचानना"⁴

भारत में नई अर्थनीति लागू होने से पहले कृषि सुधार सम्बन्धी औद्योगिक और हरित जैसी क्रांतियाँ हो चुकी थीं। इन क्रांतियों का मुख्य उद्देश्य नये तरीके से खेती करवाना और फसलों के उत्पादन में तेजी लाना था। भारत में दिनोदिन बढ़ती आबादी को देखते हुए यह आवश्यक है भी है कि कृषि क्षेत्र में नये-नये विकासात्मक प्रयास किए जाएँ। किसान दिन-रात खेतों में मेहनत करके फसल उगता है। लेकिन सरकार की अदूरदर्शिता और प्राकृतिक आपदाओं के कारण किसान मजबूर खेती छोड़ रह है और जीविका की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहा है। धीरे-धीरे किसान अपनी गरिमा और पहचान खोता जा रहा है और किसान से मजूर में तब्दील होता जा रहा है। खेती से पलायन का मतलब ही है दूसरों की मदूरी करना। हाँ इसका अलग-अलग हो सकता है। बानगी के तौर पर खेती छोड़कर शहर और कस्बों में गया किसान रिकशा चालता है, चौकीदारी करना और ईंट गारे का काम करना। अर्थात् वह किसान से मजदूर बनता जा रहा है।

भारतीय किसानों को किसान से मजदूर बनने के निम्नलिखित कारण हैं

⁴ साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ संख्या 286

1. भारतीय समाज में व्याप्त महाजनी और सामंती व्यवस्था।
2. जमींदारों से किसानों को लिया गया कर्ज की अदायगी न कर पाना।
3. किसान द्वारा उत्पादित फसलों का उचित दाम न मिलना।
4. भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आना।
5. ठेके पर खेती का होना।
6. जमीन वितरण का सही तरीके से क्रियान्वयन न होना।
7. सरकार की किसानों के प्रति दुलमुल रवैया।
8. दिनोंदिन बढ़ती महँगाई।

किसान सिंचाई जैसी तमाम असुविधाएँ जैसे फसलों का उचित मूल्य न मिलना और दिन प्रति दिन वस्तुओं के दामों की बढ़ोतरी आदि समस्याओं के गिरफ्त में फँसे बहुत सारे किसान खेती करने से अच्छा कोई दूसरा काम धन्धा करना ज्यादा पसंद करते हैं। 'खेतिहर समाज' शीर्षक से सम्पादित पुस्तक की भूमिका में चैतन्य कृष्ण लिखते हैं 'गिरती आमदनी, बढ़ता कर्ज, बर्बाद होती फसल, आबाद होने के बाद खरीददार के अभाव में बेची जाती उपज, महँगे होते बीज, उर्वरक और कीटनाशक और उनके बाजार पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की बढ़ती पकड़, खेतिहर समाज पर सूदखोरों और महाजनों की कसती गिरफ्त, रोजगार के कम होते मौके, बढ़ता पलायन यह दुष्चक्र निरंतर दोहराया जा रहा है। इन सभी कारणों की वजह से किसान किसान से मजूर बन रहा है।

खाद्यान उद्योग में बढ़ता एकाधिकार कृषि पर भी नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। जो की विश्व के अधिकांश गरीबी की आमदनी का एक मात्र जरिया है। अभी तक के प्रभाव बता भी रहे हैं कि ग्रामीण गरीबी उन्मूलन में छोटी अर्थव्यवस्था अधिक कारगर सिद्ध होती है। जैसे-जैसे इसका विस्तार होता जायेगा और कृषि कार्पोरेट की बाजार में हिस्सेदारी बढ़ती जाएगी राज्य भी कृषि सम्बन्धी कानूनों में बदलाव करेंगे और कार्पोरेट जगत मिट्टी से लेकर भोजन की थाली तक सब पर कब्जा कर लेगा। भारत में कल कारखाने और उद्योग धंधे खुलने से किसानों की जमीनों पर कम्पनियों का कब्जा हो रहा है। अपनी उपजाऊ जमीनों को किसन विवश होकर बेच रहा है। हालत यह हो गई है कि किसान अपने ही जमीन पर मालिक से नौकर या मजूर बनता जा रहा है।

मल्टीनेशनल कंपनियों के उदय और ठेके की खेती ने भारतीय किसानों से उसकी किसानी छीन रहा है। किसान अपनी ही जमीन में मालिक से नौकर बनता जा रहा है। बानगी के रूप में इसे हम इस प्रकार देख सकते हैं- "यह बहुत बड़ा षडयंत्र है। बड़ी कांसपिरेसी है। यह सारी परेशानी प्राकृतिक नहीं है। यह तो पैदा की जा रही है किसान के सामने। बिजली, खाद और बीज तो दो किसानों को। लेकिन नहीं हमें तो वह समय देखना है जब मल्टीनेशनल कम्पनियाँ खेती करेंगी और किसान अपने ही उन खेतों में मजदूरी करेंगे। किसानों के बच्चे इन मल्टीनेशनल की फैक्ट्रियों में श्रमिक बनकर काम कर रहे होंगे।"⁵

निष्कर्षतः

यह कहा जा सकता है कि मजदूर विमर्श का मुद्दा आजादी से पूर्व मिल मालिकों से शोषण के खिलाफ शुरू हुआ था और सामान काम और सामान वेतन तथा जितना काम उतना वेतन के लिए आन्दोलन किया गया था। फैक्ट्रियों में काम करने वाले मजदूरों के काम के दौरान आकस्मिक मृत्यु पर उसके घर वालों को मुआवजे भी दिए जाय इन तमाम मांगों के लिए समय समय पर लड़ाई रहता रहा है इन सबका प्रभाव हिंदी के कथाकारों पर भी भरपूर पड़ा और उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में इन्हीं मजदूरों का उल्लेख किया है। यह विमर्श उन सभी समस्याओं की तलाश करता है जिन समस्याओं की वजह से मजदूर वर्ग परेशान रहा है

सन्दर्भ

1. भारतीय श्रम की मांगों का देशव्यापी आकर्षण, अनु० बी०एस० काम्बले, नवीन मार्केट कानपूर, 1969
2. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय,
3. अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, शिवना प्रकाशन, सिहोर, मध्यप्रदेश : 2017
4. बेदखल, कमलकांत त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली : 1997

अंतरजाल(इंटरनेट)

<https://books.google.in/books?id=v3GW2lQPp80C&pg=PA105&lpg=PA105>

<https://www.nationalindiannews.in/dr-ambedkar-5/?lang=hi>

⁵ अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या 175

‘शिकंजे का दर्द’ आत्मकथा में मजदूर विमर्श

प्रा.संगीता विष्णु भोसले

वसुंधरा कला महाविद्यालय जुले सोलापूर, सोलापूर ।

प्रस्तावना :

वर्तमान समय में साहित्य के द्वारा समाज और इतिहास में उपेक्षित जनजीवन पर प्रकाश डाला जा रहा है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन में बाल विमर्श, मजदूर विमर्श, युवा विमर्श, किसान विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि को संविधान प्रदत्त अधिकार देकर सामाजिक और आर्थिक समानता के प्रवाह में लाने का प्रयास किया जा रहा है। वर्चस्वादी शक्तियों ने अपने स्वार्थ के लिए समाज के विशिष्ट वर्ग को आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से निम्न स्तर का जीवन जीने के लिए बाध्य किया है। जिसमें दलित और मजदूरों का अंतर्भाव हो जाता है। जब सत्ता और अर्थनीति हाथ में हाथ डालकर चलते हैं, तब आर्थिक विकास की आशा करना व्यर्थ है। ऐसी स्थिति में सामान्य मनुष्य सत्य को जानते हुए भी अन्याय का प्रतिकार नहीं कर पाता है। भारत में दलित मजदूरों की स्थिति ऐसी ही है। जातिप्रथा निर्मूलन, जमींदारी प्रथा उन्मूलन, बंधूआ मजदूर उन्मूलन अधिनियम आदि कानून बनने के बाद भी मजदूरों का खुलेआम शोषण किया जाता है।

हिंदी साहित्य में सुशीला टाकभौरे ने दलित मजदूरों की व्यथा पर कलम चलायी है। सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा ‘शिकंजे का दर्द’ का प्रकाशन सन २०११ में वाणी प्रकाशन नई दिल्ली से हुआ है। आत्मकथा में दलित मजदूरों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति, मजदूरों का शारीरिक श्रम शोषण, महिला मजदूरों का शोषण, बाल मजदूर की समस्या आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है।

दलित मजदूर की अवधारणा :

भारत में जातिवादी व्यवस्था ने दलितों पर जो सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, धार्मिक पाबंदियाँ थोप दी हैं। उन पाबंदियों ने दलित को मजदूर बना दिया है। मजदूर और दलित की परिभाषा से दलित मजदूर की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

१. “काम की प्रकृति एक समान नहीं होती। कुछ काम केवल बुद्धि से किए जाते हैं, तो कुछ केवल कागज और पेन का प्रयोग करके किये जाते हैं और कई व्यक्ति शारीरिक श्रम करने का काम करते हैं।”^१
२. कोलिन्स कोबिल्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार, “श्रमिक वह व्यक्ति है, जो ऐसा कार्य करता है जिसमें कठोर शारीरिक श्रम तथा कार्य निहित होता है।”^२
३. “श्रमिक का अर्थ उस व्यक्ति से है जो किसी भी प्रकार का शारीरिक श्रम करता है और श्रम के बदले वह अपना पारिश्रमिक प्राप्त करता है जिसे मजदूरी कहते हैं।”^३

इस दृष्टि से दलित को श्रमिक या मजदूर कहा जा सकता है। जो दलित है वे मजदूर है, लेकिन जो मजदूर है वे दलित ही होंगे यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है। यह बात दलित शब्द की परिभाषा से स्पष्ट हो जाती है—

१. डॉ.चंद्रकांत बांदिवडेकर के अनुसार, “दलित यानी अनुसूचित जातियाँ, बौद्धिक कष्ट उठानेवाली जनता, मजदूर, भूमिहीन, गरीब, किसान, खानाबदोश जातियाँ, आदिवासी । दलित शब्द की यह जाति निरपेक्ष परिभाषा है।”^४ अर्थात् अर्थहीन और शोषित जन दलित है।
२. ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं, “...बहुत कम श्रम मूल्य पर चोबीसो घंटे काम करने वाले श्रमिक, बंधूआ मजदूर, दलित के श्रेणी में आते हैं।”^५ ओमप्रकाश वाल्मीकि का व्यापक दृष्टिकोण उद्धृत हुआ है। वे श्रमिक, और मजदूरों को दलित के श्रेणी में रखते हैं।
३. केशव मेथाम के अनुसार, “अनुसूचित जाती, बौद्ध, मजदूर, आदिवासी, गरीब, किसान, भूमिहीन को दलित माना है।”^६
४. डॉ.वानखेडे कहते हैं, “जो श्रमजीवी है वे दलित है।”^७
५. नामदेव ढसाल दलित की परिभाषा देते हुए दलित पैथर के मंच से कहते हैं, “अनुसूचित जाती, उपजाति, बौद्ध, श्रमिक, जनता, मजदूर, भूमिहीन, खेतमजदूर, यायावर और आदिवासी है।”^८
६. डॉ.अम्बेडकर के अनुसार, “दलित जातियाँ वे हैं, जो अपवित्रकारी होती हैं। इस श्रेणी में कारीगर, धोबी, मोची, भंगी, बसोर, सेवक, जैसे चमार डंगरी, सउरी, ढाला आते हैं। कुछ जातियाँ परंपरागत कार्य करने के अतिरिक्त कृषि—मजदूरी का कार्य करती हैं। दलित शब्द करुणा या पश्चात्ताप को नहीं बल्कि बेवजह दमन और अपमान का शिकार होने के स्वाभाविक रोष को व्यक्त करता है।”^९

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं का अवलोकन करने के बाद कहा जा सकता है कि सभी विद्वतजनों का दलित शब्द को लेकर व्यापक दृष्टिकोण दिखाई देता है। वे दलित के श्रमिक या मजदूर होने का समर्थन करते हैं।

मजदूर जीवन की समस्या :

शारीरिक, मानसिक, आर्थिक शोषण के कारण दलित मजदूरों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है —

१. प्रवास से संबंधित समस्या:

दलित मजदूरों को मजदूरी करने के लिए अपने घर से या गाँव के बाहर खेत खलिहान में जाना पड़ता है। जिसके लिए उन्हें यातायात का साधन नहीं दिया जाता है। इसलिए उन्हें समय से पहले पैदल ही काम पर जाना पड़ता है। यदि उन्हें देर हो जाती है तो मालिक, ठेकेदार या मोकददम उन्हें घुड़कियाँ सुनाता है। कई बार उनकी मजदूरी काट दी जाती है, काम से निकाल दिया जाता है या उनसे ज्यादा श्रम करवाया जाता है।

लेखिका के पिता और भाई गाँव में अनाज के बोरे ढोने का काम करते थे। उन्हें प्रति बोरे के हिसाब से एक या दो आने मिलते थे। बोरियाँ ढोने का काम बहुत कष्टप्रद होता था। बोरियाँ पीठ पर लादकर स्टेशन से मालगोदाम, वहाँ से सेटों के गोदाम तक, कभी अड्डेबाजार से अद्वितीया दलाल की दुकान तक ढोनी पड़ती थी। इस मेहनत में पाँव, पीठ, पेट दर्द करते थे। मालगाडी से उतारी गई मोठी, लम्बी, गोल लकड़ियाँ कंधों पर लादकर दूर तक जाना पड़ता था। साहुकारों के खेत और बगीचे के मैदान में थप्पी लगाई जाती थी। एक बार एक मजदूर के कान से लकड़ी टकराने पर वह बेहोश होकर गिर जाता है। मालिक और ठेकेदार को उसके जान की परवाह नहीं थी। उन्हें केवल अपने फायदे से मतलब था—“काम करना नहीं आता तो क्यों करते हो ? मरना है तो कहीं और जाकर मरो, हमारे सिर पर क्यों मरते हो?”^{१०} मालिक के लिए मजदूरों के जान की कोई किंमत नहीं होती है। लेखिका को अपने माँ के साथ गाँव से बाहर खेत-खलिहान में पैदल जाना पड़ता था।

२. आर्थिक शोषण की समस्या :

दलित मजदूरों का ठेकेदार, जमींदार, साहूकार, मोकददम, सेनेटरी इंस्पेक्टर के द्वारा आर्थिक शोषण किया जाता है। वे गरीब मजदूरों की कमाई अपने जेब डालते हैं। उनसे कम मजदूरी में अधिक काम करवाया जाता है और कभी-कभी मेहनताना भी नहीं दिया जाता है। वह जब अन्याय का प्रतिकार करता है तब गालियाँ देकर, मारपीट करके, धमकी देकर चूप कर दिया जाता है।

समाज में मेहनत मजदूरी करनेवाली महिलाओं का शोषण अधिक होता है। सीमा दीक्षित कहती है, “हां जहाँ पर स्त्री समूह केवल मजदूर या श्रमिक वर्ग है और मालिक वहाँ का पुरुष होता है वह उनका शोषण अवश्य करता है।”^{११} सुशीला टाकभौरे की माँ आर्थिक कठिनाईयों से जुझने के लिए बेटी सुशीला को खेत में मजदूरी करने के लिए अपने साथ ले जाती थी। लेखिका गेहूँ की बालियाँ चुनती थी और उनकी माँ गेहूँ की सूखी फसल काटकर पूली बनाती थी। “शाम के समय काटी गयी पूलियों के हिसाब से दिनभर के मेहनत के रूप में दो या तीन पुली दी जाती थी।”^{१२} ठंड के मौसम में चने के खलिहान में सूखी पटलियों के खटाई से बहुत कष्ट होता था। ज्यादा मेहनत करने के बाद भी कम मजदूरी दी जाती थी। लेखिका कहती है, “दिनभर पसीना बहाने के बाद हमारी मेहनत की कमाई बहुत कम दी जाती। माँ कभी ज्यादा देने के लिए कहती तब मालिक कहते—जो हिसाब है, उसी हिसाब से देंगे। आना है तो आओ, नहीं तो मत आओ।”^{१३} मालिक अपने हिसाब से मजदूरी देता था। वह जानता था कि दलित मजदूरों के पास मजदूरी के सिवा अन्य कोई जीविकोपार्जन का साधन नहीं है। इसलिए उनका आर्थिक शोषण किया जाता था।

सूखे पौधों से लेखिका के हाथ छिल जाते थे, चमड़ी निकलती थी। पौधों की जड़े पैरों में गड़ने के कारण खून बहता था। रोटी का इंतजाम करने के लिए दलित मजदूरों को दर्द भूलकर मजदूरी करनी पड़ती थी। तिल के खलिहान में तिल के रूप में मेहनताना दिया जाता था। लेखिका की माँ श्रम के अनुपात में मूल्य मांगती थी। तब मालिक व्यंग्य और उपहास उड़ाते हुए कहता, “गंगा बह रही है ? उलीच के दे दे ? हराम का माल है?”^{१४} लेखिका की माँ मेहनत का सही मूल्य पाने के लिए झगड़ती थी। तिल बेचकर रसोई का सामान खरीद लिया जाता था। गरीब और जरूरतमंद लोग उल्लाना सुनकर भी काम पर जाते थे। मजदूरों को आर्थिक अभाव ने अपमान सहने के लिए विविध कर दिया था।

३. कर्ज से पीड़ित :

दलित मजदूरों को मिलनेवाली मजदूरी में उनकी प्रथमिक जरूरतें पूरी नहीं हो पाती हैं। जिसके कारण उन्हें कर्ज लेना पड़ता है। शादी —ब्याह, तीज— त्यौहार और मेहमानों के आने पर ज्यादा ब्याज देकर या कोई वस्तु गिरवी रखकर रुपये लेने पड़ते हैं। शराब पीना और जुआ खेलना ये बुरी आदतें उन्हें ऋणग्रस्त बना देती है। सुशीला टाकभौरे के पिता ने बेटी इमरती के शादी के लिए कर्ज लिया था। “तब पिताजी ने दूसरी दरखास्त में १८ वर्ष उम्र लिखकर कर्ज मंजूर करवाया था।”^{१५}

४. निम्न जीवन स्तर :

छलित मजदूरों की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण उनका जीवन स्तर अत्यंत निम्न दर्जे का है। उन्हें मूलभूत सुविधाओं के लिए कठोर संघर्ष करना पड़ता है। जितना मेहनताना मिलता है, उसमें दो वक्त की रोटी का जुगाड करना मुश्किल होता है। वे शारीरिक दृष्टि से कमजोर हो जाते हैं। दलित मजदूर छप्परनुमा झोपड़ी या कच्चे मिट्टी के मकान में रहते हैं। मकान की छत बारीश में टपकती है। दीवारें गिली हो जाती है। घर के चारों ओर कीचड़ जम जाता है। वे कम मजदूरी के कारण घर की मरम्मत नहीं कर पाते हैं। “मजदूरों के घरों में गरीबी और गंदगी थी। घरों के सामने गंदा पानी बहता रहता, नाली में सुअर लोटते रहते।”^{१६} सुशीला टाकभौरे अपने घर का वर्णन करते हुए कहती है, “एक कमरा और औसारी, कच्चा फर्श, कच्ची मिट्टी की दीवारें, छोटे कबेलुओं की छत बस यही था हमारा घर।”^{१७} गरीबी और तंगहाली की स्थिति में मजदूरों को ‘ये हाथ कमाओ वो हाथ खाओ’ जैसा जीवन जीना पड़ता है।

५. श्रम शोषण की समस्या :

मजदूरों के श्रम का शोषण किया जाता है। लेखिका की नानी गाँव में सफाई का काम करती थी। वह सुबह से दोपहर एक बजे तक काम करती थी। “नगरपरिषद के सभी कर्मचारियों को बुलाकर काम बताया जाता। दोपहर तीन बजे से ६ बजे तक बेगार चलती। मोकदुम या सेनेटरी इंस्पेक्टर अलग-अलग मैदानों, गलियों, नालियों की सफाई का काम करवाते। यह नौकरी के अतिरिक्त काम रहता। इसका कोई मेहनताना या तनखाह नहीं दी जाती। बेगार का काम करके नानी थककर चूरचूर हो जाती थी।”^{१८} लेखिका के गाँव के सफाई कर्मचारी श्रम शोषण के विरुद्ध हड़ताल करते हैं। लेखिका इसका कारण बताते हुए —“गाँववालों द्वारा किसी भी समय काम बताया जाना, काम पर न जाने पर गाली-गलौच, मारपीट करना, काम अधिक करवाना और मेहनताना कम देना, समय पर नहीं देना।”^{१९} तत्कालीन समाज पर समाजवाद का प्रभाव था—“उस समय पूँजीवाद के विरोध में और समाजवाद के पक्ष में बातें होती थी। सरकारी नीतियों से भी समाजवाद को बढ़ावा दिया जाने लगा था।”^{२०}

६. बाल मजदूर की समस्या :

बाल मजदूर की समस्या राष्ट्रीय समस्या बन गयी है। शिक्षा के प्रति उदासिन दृष्टिकोण और निर्धनता के कारण छोटे बच्चों को काम पर भेज दिया जाता है। इनमें से बहुत से बच्चों का भविष्य अंधकारमय बन जाता है। वे अपने ही माँ बाप का जीवन दोहराते हैं। बानापुरा से सिवनी तक डामर की खाली कोठियाँ ले जाने का काम बच्चों से करवाया जाता था। लेखिका के छोटे भाई ये काम करते थे। एक कोठी के लिए दो-ढाई किलोमीटर आना-जाना पड़ता था। दिनभर कई चक्कर लगाने पड़ते थे। चलने और दौड़ने से नसे अकड़ जाती थी।

निष्कर्ष :

आजादी के सात दशक बीतने के बाद भी मजदूरों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है। सुशीला टाकभौर दलित मजदूर जीवन की भुक्तभोगी है। भारत में मजदूर वर्ग ने उत्पादन से लेकर ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कला-कौशल के निर्माण और उसके संवर्धन में अपने बौद्धिकता एवं कठोर श्रम का प्रमाण दिया है। मजदूरों के द्वारा बनाये गये चीजों का मूल्य है, परंतु उनके श्रम का उचित मूल्य न मिलने के कारण उनकी दशा अत्यंत दयनीय है।

संदर्भ ग्रंथ :

१. उमेश उपाध्याय—वर्तमान सामाजिक समस्याएँ: कारण और निराकरण, पृष्ठ ४१
२. वही, पृष्ठ ४१
३. वही, पृष्ठ ४१
४. राम अवतार यादव—दलित साहित्य का सौंदर्यबोध, पृष्ठ २८
५. ओमप्रकाश वाल्मीकि —दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ १४
६. डॉ. भरत धोंडीराम सगरे—इक्कीसवीं सदी का दलित साहित्य, पृष्ठ १०
७. डॉ. नरसिंहदास वणकर—दलित विमर्श, पृष्ठ १२
८. वही, पृष्ठ १२
९. वही, पृष्ठ ३५
१०. सुशीला टाकभौर —शिकंजे का दर्द, पृष्ठ ७२
११. सीमा दीक्षित —स्त्री अस्मिता : शय्या से सर्वोच्च अदालत तक, पृष्ठ ८२
१२. सुशीला टाकभौर— शिकंजे का दर्द, पृष्ठ ६७
१३. वही, पृष्ठ ६७
१४. वही, पृष्ठ ६७
१५. वही, पृष्ठ ९०
१६. वही, पृष्ठ ३९
१७. वही, पृष्ठ ६२
१८. वही, पृष्ठ २७
१९. वही, पृष्ठ ८७
२०. वही, पृष्ठ १२५

‘कांच के इधर-उधर’ : मजदूरों की शहादत - सुधा अरोड़ा

सहा. प्रा. संजीवनी संदीप पाटील

हिंदी विभागाध्यक्ष

कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,

गडहिंग्लज.

प्रत्येक सदी अपने साथ कुछ चुनौतियाँ लेकर आती है। सदी आगमन के साथही आवश्यकताएँ, अपेक्षाएँ, मान्यताएँ एवं सामाजिक स्तर पर बदलाव होता है। यही बदलाव आज २१ वीं सदी में दिख रहा है। २१ वीं सदी के प्रथम एवं द्वितीय दशक पर बाजारवाद का प्रभाव दिख रहा है। भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण से मनुष्य केवल स्वार्थवश मनुष्य के साथ जुड़ रहा है। नम्र 'दक जीतवूँसंस्कृतिको अपनाकर मनुष्य की परख उपयोगिता की कसौटी पर कर रहा है। ग्लोबल विलेज में जीनेवाला मनुष्य केवल ग्लोबल ही बन गया है। वह अपनी जड़ों को भूलता जा रहा है। वैश्विक स्तर पर तकनीकी जगत से लेकर सभी दिशा में व्यापक परिवर्तन हो रहे हैं। निरंतर हो रहे वैज्ञानिक अविष्कारों से मनुष्य के जीवन को गति प्राप्त हो रही है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने स्तर से उपर उठने का प्रयास कर रहा है। इन प्रयासों ने कई अस्मितावादी विमर्शों को हमारे सन्मुख लाकर खड़ा किया है। व्यक्ति के जीवन में आए बदलाव का प्रभाव आज साहित्य कला, इतिहास, संस्कृति इत्यादी पर दिख रहा है।

२१ वीं सदी की सशक्त कहानिकार के रूप में सुधा अरोड़ाजी को पहचाना जाता है। सामाजिक सरोकारों से जुड़ी यह लेखिका विगत पांच दशकों से कहानी लेखन में जुड़ी हुई है। २०१२ में प्रकाशित ‘कांच के इधर उधर’ यह कहानी सुधा जी के संवेदनशील मन से पाठकों को खूबसूरत कराती है। केवल नारी विमर्श पर लेखन न कर समाज का उपेक्षित वर्ग अर्थात् मजदूर जीवन की दास्तान भी उन्होंने अंकित की है।^१

“हमारे जातमहल जिन कामगारों के हाथों और पसीने की कमाई है, उनका भी वही हथ होता है, जो शहद की बूंद बूंद जुटाती हुई एक मख्खी का, जो शहद के भंडार को हथिया लेने के बाद शहादत देने पर मजबूर की जाती है।”

आज २१ वीं सदी में भी मजदूरों का शोषण हो रहा है। काम के बदले कम पैसे देना, काम पर असुरक्षितता, उच्च वर्ग की उपेक्षा, अन्याय, शोषण, बंधुआ मजदुरी आदि कई समस्या से मजदूर त्रस्त है। उन्ही मजदूरों की दुर्दशा यह कहानी दिखाती है। वैश्वीकरण की आँधी ने गरीब तथा मजदूरों को पूरी तरह से विस्थापित कर दिया है। इस कहानी में मधुमक्खी के छन्ने एवं मधुमक्खियों गरीब एवं मजदूरों का प्रतिक है। उँची इमारतों पर रंग लगानेवाले गूंगे मजदूर की मौत हो जाती है। न ही ठेकेदार उसके मौत की जिम्मेदारी लेता है न उस बेबस परिवार की मदद करता है। ठेकेदार यहाँ उच्च वर्ग की मानसिकता से परिचित करता है।

रेशमा और भीमा का पिता मजदूर है। वह बड़ी ईमानदारी एवं लगन के साथ काम करता है। वह दिहाड़ी मजदूर है। रोज तीन सौ रुपये उसे मजदूरी मिलती है। उस इलाक़े की सभी इमारतें, टावर पर वह रंग देने का काम वह करता है। वैसे तो दस साल से वह इसी पुताई के काम में है पर अब तक उसका काम पक्का नहीं हो पाया है। जो काम दूसरे मजदूर आठ घंटे में करते हैं, वह पांच घंटे में करता है। जोखिम का काम होने पर भी वह खूश है। एक दिन बंधे हुए बांस उतराते समय ऊपर वाले मजदूर के हाथ से बांस उसके सिर पर गिर गया। नतीजा वह अपना संतुलन खो बैठा और चौतिसवें माले से गिर गया। घटनास्थलपरही उसने दम तोड़ दिया। उसकी मौत तो हो गयी पर ठेकेदार ने मौत का मुआवजा देने से मना कर दिया। ठेकेदार ने मजदूरों को आलसी जहिल बताकर सेप्टी बेल्ट देन पर भी मजदूर पहनने की बात कही। इसके लिए हम जिम्मेदार नहीं हैं ऐसी बात कह दी। असल में सच्चाई तो यह थी की बांस उतराते समय मजदूरों की पोजीशन हर दो मिनट में बदलती रहती है। ऐसे में वे बेचारे सेप्टी बेल्ट पहनकर काम नहीं कर सकते। बेल्ट लगाकर काम करना देख ठेकेदार उन्हें काम पर आनेसे मना कर देता है। बेचारे पेट के लिए जोखिम उठाकर काम करते रहते हैं। क्योंकि दिहाड़ी काम अगर बीस का है तो पचास मजदूर लाइन में खड़े रहते हैं। ऐसे में ठेकेदार की मनमानी चलती रहती है। ठेकेदार की गलती का शिकार बेचारा गूंगा मजदूर बन जाता है। ठेकेदार ने पहले ही सारे मजूरों के सुरक्षा फॉर्म पर अंगुठे लगवा लिए हैं। अतः ठेकेदार मजूर की मौत इल्जाम से साफ साफ बच जाता है। ठेकेदार की मनमानी का शिकार बेचारा मजदूर अपने बीवी बच्चों को अनाथ कर चला जाता है।

दूसरी ओर अपने को सुसंस्कारीत तथा उच्चभ्रु समझनेवाले लोग लेखिका को आगाह करते हैं की वह अपने साथ मजदूरों के बच्चों को प्लेंट में लेकर नहीं आ सकतीं। सोसायटी के ऑफिस में लेखिका को बुलाकर मिस्टर मलकानी समझाते हैं कि “आप मोबाईल केश में काम करती हैं, अच्छी बात है। हमें बहुत अच्छा लगता है कि आप गरीब बच्चों के लिए कुछ कर रही हैं। आप जरूर करें। पर ऐसा है कि कामगारों के पढ़नेवाले बच्चे बार-बार आपके घर आते जाते हैं, यह दूसरे लोगों को ठीक नहीं लगता। हम काफी वक्त से तिसरी सर्विस लिफ्ट की प्लैनिंग कर रहे हैं, ताकी कामवाली बाइयां स्टोर से सामान लाने वाले लडके, कुरियर बॉइज और सामान लेने जाने वाले मजदूरों के लिए अलग बंदोबस्त करवाया जा सके। लेकिन जब तकवह लिफ्ट नहीं बनती, आप अपना सोशल वर्क स्कूल तक ही रखें, उसे घर पर लेकर न आएँ। प्लीज बुरा न माने पर यहाँ रहने वालों को दिक्कत होती है। आप समझेंगी शायद।”^२

बच्चों का साफ-सुथरा रहना, सलीके से रहना सोसायटीवालों के लिए कोई मायने नहीं रखता। वे कवल उन बच्चों को मजदूर के बच्चों के रूप में देख उनकी उपेक्षा करते हैं। वे सोचते हैं की केवल साफ कपड़े पहननेसे शक्ति-सुरत नहीं बदलती, बर्ताव नहीं बदलता। सोसायटी के पढे-लिखे लोग गरीब मजदूर के बच्चों का तिरस्कार करते हैं। साथ ही उन्हें उपमानित करते हैं। घरों का निर्माण करनेवाले मजदूर अपने पसीने की बूंदों से घर बनाते हैं। जबतक काम चलता रहता है तब तक मजदूरों का आना कोई समस्या उत्पन्न नहीं करता। लेकिन काम खत्म होने ही उन मजदूरों का वहाँ प्रवेश निषिद्ध किया जाता है। ये कहाँ की मानवता है?

आज भी मजदूरोंका शोषण दिन-ब-दिन बढ़ रहा है। ठेकेदार द्वारा शोषण, मालिकों द्वारा शोषण, पढे-लिखे सोसायटी में रहनेवाले लोगों द्वारा शोषण। अनपढ़ होने का फायदा उठाकर मजदूरों की जान जोखिम में डालनेवाले ठेकेदार तथा सोसायटी में बच्चों के आनेपर पाबंदी लगानेवाला समाज दोनों में कोई फर्क नहीं है। एक वर्ग मजदूरों का खुलेआम शोषण करता है तो दुसरा चोरी छुपे। न खुद मदद करता है न दुसरो को करने देता है।

‘कांच के इधर-उधर’ के माध्यम से सुधा जी शोषक और शोषितों के बीच की दिवार दिखाने की कोशिश करती है। मधुमक्खी शहद इकट्ठा करती है पर उस शहद को मधुआ लेकर चला जाता है। साथही जहरील गैस से मधुमक्खियों को मारा जाता है। हम अपने घर के परदे न खोलकर केवल ए.सी. चलाते रहते हैं। नतिजा मधुमक्खियों अपना छत दिवार पर बनाती है। बाद में बड़ी बेरहमी के साथ छत्ता काटा जाता है। वैसे यहाँ पर्यावरणीय विमर्श भी दिखाई देता है। जंगल के पेड़ काटकर मनुष्य ने वहाँ इमारतों का जंगल बना दिया है। अब सारे जीव-जंतु कहाँ रहेंगे। इसलिए बेचारे गलती से इमारतों के बाहर आ जाते हैं। मारी गयी मधुमक्खियों देख लेखिका का संवेदनशील मन व्याकूल होता है। वह देखती है कि,

“ कुछ ही मिनटों बाद कभी आसमान कीथाह लेने वाले और अब बेजान बना डाले गए,इन सुनहरे पंखों का ढेर, पार्क के किनारे-किनारे बनाए गए, हरे रंग के खूबसूरत डस्टबिन में बिछे चिकने काले प्लास्टिक के गारबेज बैग में होगा और हम साफ-सुथरी सड़क पर बड़े आराम से चल रहे होंगे।”³

चहे मजदूर मर जाए या मधुमक्खी आज मनुष्य को कोई फर्क नहीं पड़ता। केवल एक पल के लिए सहानुभूति जताकर स्वार्थ से आगे बढ़लेनेवाले लोगों की तादात बढ़ गयी है। वैश्वीकरण ने मनुष्य को इतना व्यवहारी बना दिया की वह ममता, स्नेह, अपनापन ही भूल गया। वैसे भी जहाँ अपने माँ बाप को बुढ़ापे में दर-दर की ठोकरें खाने के लिए मजबूर करनेवाली नयी पीढ़ी से मजदूरों के साथ सौहार्दता दिखाना संभव नहीं है। आज की दयनीय स्थिति के संबंध में डॉ. प्रतिमा सक्सेना जी लिखती है,

“मोहभंग से लेकर आज की बिगड़ती हुई स्थितियों तक पूंजीवादी तबका खूब पनप रहा है। बड़े घरानों के अतिरिक्त नव धनाढ्यों का एक बहुत बड़ा वर्ग रक्तबीज की भाँती बढ़ रहा है। समाज में सामन्त वर्ग पुरी तरह समाप्त नहीं हो पाया है। वह पंचो, सरपंचो, भूमिपतियों, छोट-बड़े नेताओं और दलालों के रूप में आज भी विद्यमान है। इसलिए शोषण कम नहीं हुआ है, बल्कि बढ़ा ही है।”⁴

२१ वी सदी की महिला कहानीकार सुधा जी अपनी कहानियों के माध्यम से मजदूरों की स्थिति और त्रासदियों के लिए उत्तरदायी ताकतों के उद्देश को बेनकाब करना चाहती है। साथ ही सामाजिक यथार्थ को गहराई के साथ पहचानकर व्यक्तिवादिता और भौतिकता की आग से खत्म होती मनुष्य की संवेदनशून्यता को दिखाने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष-

समाज के प्रगति, समृद्धि एवं खुशहाल जीवन देनेवाले श्रमिकों के योगदान को नमन करना चाहिए। उत्पादन वृद्धि तथा अर्थव्यवस्था को मजबूती देने में श्रमिकों के प्रयास रहते हैं। अंतः केवल १ मई के दिन मजदूर दिवस मनाने के बदले मजदूरों के कठिन परिश्रम, दृढ़ निश्चय और निष्ठा का सम्मान करना होगा। साथही मजदूरों के हितों की रक्षा के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र और समाज को सदैव तत्पर रहना होगा। सुधा जी अपनी कहानियों के माध्यम से शोषित मजदूरों को सम्मान एवं सुरक्षा देते देने का प्रयास कर रही है। अन्यथा आज भी धूमिल जी की काव्य की तरह ही होगा जैसे,

“ ओ, मजदूर, ओ मजदूर
तू ही सब चीजों का कर्ता
तू ही सब चीजों से दूर
ओ मजदूर, ओ मजदूर। ”

संदर्भ ग्रंथ-

१. पृ. १६, भूमिका अभी जारी है... १० प्रतिनिधी, कहानियाँ: सुधा अरोड़ा
२. पृ. १५६, १० प्रतिनिधी कहानियाँ: सुधा अरोड़ा
३. पृ. १६४ ,.....
४. पृ. १५८, आधुनिक हिंदी गजल और आधुनिकता बोध, प्रतिमा सक्सेना
५. २१ वी सदी के साहित्यिक विमर्श - डॉ. विष्णुदेव मल्लिक
६. स्मकालिन हिंदी साहित्य विविध विमर्श - प्रो. श्रीराम शर्मा

‘नीला आकाश’ में चित्रित मजदूर विमर्श

डॉ. सुनील बापू बनसोडे

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

जयसिंगपुर कॉलेज, जयसिंगपुर

पिन- 416101

(Affiliated to Shivaji University, Kolhapur.)

आधुनिक और उत्तर आधुनिक काल में आर्थिक उदारीकरण, भूमंडलीकरण, आधुनिक बाजारवाद, विज्ञान की चमत्कारपूर्ण उन्नति एवं सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव सर्वाधिक रहा है। सामाजिक विसंगतियों, राजनीति का गीरता स्तर, शासनतंत्र और व्यावसायिक संगठनों ने लेखकों के सामने कई तरह के संकट पैदा कर दिए हैं। हर चित्र बिकाऊ होने लगी। इसका असर कला, साहित्य और संस्कृति पर भी हुआ। साहित्य क्षेत्र में भी मनोरंजन और लोकप्रिय साहित्य आने लगा। फिल्म व्यवसाय और जनसंचार के माध्यमों ने एक ईमानदार और विवेकशील लेखक को समाज से कटने के लिए मजबूर किया। परिणामस्वरूप इस उत्तर आधुनिक काल में साहित्यकारों के सामने लेखन करते समय अनेक समस्याएँ खड़ी होने लगी। एक समय था जब लेखक अपनी और आस पास के उपेक्षित समाज की बात करता था और समाज की मूक भाषा को वाणी देने का काम करता था। ऐसा विवेकशील लेखक आज वर्ण, वर्ग, जाति, पंथ और धर्म के नाम पर बंट गया है। वह खुलकर नीडर होकर अपनी बात रखने के लिए हिचकिचाता है। उसके मन में हमेशा आशंका होती है कि मेरी लिखित बात से किसी धर्म की भावना को ठेंस तो नहीं पहुँच रही है? समाज विकसित होता गया परंतु समाज में विवेकशून्यता बढ़ती गई है। धर्म और जाति के आधार पर संगठनों को निर्माण हुआ परंतु इन मजबूत संगठनों ने समाज का बहुत कम हित किया। उत्तर आधुनिक में हमने विज्ञान की प्रगति को ही समाज की प्रगति माना है। अगर देखा जाए तो आज भी ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ शिक्षा, प्राथमिक सुविधाएँ और मनुष्य को मनुष्य के रूप में दर्जा देने का अभाव है। हमने भौतिक प्रगति की है परंतु हममें पीछड़े, दलित और अभावग्रस्त समाज को मनुष्यता की दृष्टि से देखने की मानसिक प्रगति विकसित नहीं की। वर्तमान में भी छुआछूत, जातिभेद, उच्च-नीचता की बीमारी बढ़ती जा रही हैं। दलित वर्ग को शिक्षा से वंचित रखने का प्रयास किया जा रहा है। अंतरजातीय विवाह का विज्ञापन दिखाया जाता है परंतु आज भी जब सवर्ण लड़की के साथ दलित वर्ग का लड़का विवाह कर लेता है तो उसने जिंदा दफना दिया जाता है।

विकसित शहरों में भी जाति के आधार पर अलग-अलग नगर बसाये जाते हैं। शिक्षा के अभाव में अनमेल और बालविवाह किए जाते हैं। आज स्त्री जितनी असुरक्षित हैं उतनी पहले कभी नहीं थी। उसे ईश्वर और धर्म के नाम पर धमका कर उसका उपयोग किया जाता है। और भी ऐसी अनेक चुनौतियाँ हैं, जो उत्तर आधुनिक काल में साहित्यकारों के सामने खड़ी हैं। फिर भी वर्तमान समय में कुछ ऐसे अनेक लेखक हैं जो निडर होकर लिखते हैं और वर्तमान का यथार्थ परिदृश्य लोगों के सामने लाने का प्रयास करते हैं। ऐसे ही निडर लेखकों के बिच एक महाराष्ट्रीय दलित हिंदी लेखिका है, जिनका नाम सुशीला टाकभौरे है। सुशीला जी ने अब तक चार कविता-संग्रह, तीन कहानी-संग्रह, दो नाटक, एक आत्मकथा और सन् 2013 में ‘नीला आकाश’ नाम का उपन्यास लिखा है। यह उपन्यास बिल्कुल उत्तर आधुनिकता को चित्रित करता है। इस उपन्यास में दलित समाज की समस्याओं के साथ, उनके उचित समाधान हैं। पहले दलित साहित्य में आपबीती का चित्रण ज्यादा पैमाने पर रहता था, परंतु इसमें शिक्षा, जागृति, सशक्तिकरण, उत्थान तथा मुक्ति का प्रबल आग्रह है। प्रसिद्ध साहित्यकार फारुकशाह कहते हैं, “साहित्य क्षेत्र में भी शोषित-उत्पीड़ित समुदायों की वेदनाओं और यातनाओं को प्रस्तुत कर मानव-मुक्ति की संभावनाओं को तलाशा जा रहा है। ऐसे में यह उपन्यास वाल्मीकि तथा मातंग जैसे हाशिये में भी हाशिये की स्थिति में पाये जाते समुदायों के, अस्तित्व-संघर्ष को चिह्नित करता है—यह बात उल्लेखनीय है।”

‘नीला आकाश’ मुख्य रूप से दलितों की व्यथा और एकता की कथा है। महाराष्ट्र का एक गांव है कन्हान, जहाँ सामाजिक भेदभाव और छुआछूत की परंपरा आज भी है। पूरा गांव वर्ण और जाति के आधार पर अलग-अलग मोहल्लों में बंटा है। अछूत जाति के घर बस्तियों से दूर, गांव के बाहर नाले के किनारे हैं। मांग जाति की बस्ती को ‘सेवानगर’ और महार जाति की बस्ती को ‘भीमनगर’ और साथ ही ‘मांगवाडा’ मेहतर मोहल्ला इसी नाम से पहचाना जाता है। इस उपन्यास में लगभग तीन पीढ़ियों का चित्रण है। उपन्यास में प्रमुख चित्रण मिलता है, मांग और वाल्मीकि समाज का, जिसमें इस उपन्यास के प्रमुख पात्र नायक आकाश और नायिका नीलिमा हैं और उनके माता-पिता, दादा-दादी तथा गौण पात्र विचरण करते हैं। वाल्मीकि समाज महर्षि वाल्मीकि

को अपना गुरु मानते हैं और मांग समाज अण्णाभाऊ साठे को अपना मानकर उत्सव मनाते हैं। महार समाज ने डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का आदर्श सामने रखकर शिक्षा प्राप्त करके अपनी जाति में परिवर्तन के बीज बोये हैं। वे लोग बाबासाहेब को सिर्फ पूजनीय ही नहीं मानते हैं तो उनके दिखाये हुए मार्ग पर आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं। सुशीला जी कहती हैं, "उस समय डॉ. आंबेडकर से जुड़े लोग अधिक जाग्रत होकर परिवर्तन के मार्ग पर आगे बढ़कर, शिक्षा और नौकरी में प्रगति की ओर बढ़े। मगर मातंग और मेहतर जाति के लोग हिंदू धर्म को मानते हुए, गांधीजी की दया और सहानुभूति से प्रभावित रहते हुए, अपनी पहले की स्थिति में जकड़े रहे।" 2

महार समाज के लोगों ने परम्परागत शूद्र काम करना छोड़ दिया है, परंतु वहीं काम करने में मांग, मेहतर तथा अन्य दलित जातियों में होड़ लगी है। दलित समाज में अनेक ऐसे कलाकार हैं जो परम्परागत कला प्रकार को जीवित रखने का प्रयास करते हैं। परंतु मान-सम्मान उच्च जाति के कलाकारों को मिलता है। जैसे "उच्च जाति के कलाकारों को अधिक सम्मान, मानधन और गौरव दिया जाता है। जब कि दलित अछूत कलाकारों की कला को निम्न दृष्टि से देखा जाता है। दलित होने से जैसे उनकी कला भी निम्न हो जाती है।" 3 दलित मोहल्ले में गरीबी और हर चीज का अभाव है। पीने का पानी बड़ी मुश्किल से मिलता है। दूर से मांगकर पानी पिना पड़ता है। रोजगार और जाति का अटूट और गहरा रिश्ता रहा है। स्वतंत्र भारत में दलित वर्ग शिक्षा और नौकरी पाने में स्वतंत्र नहीं है। मास्टरजी दलित बच्चों को पढ़ाने के बदले उन्हें मारने-पिटने, व्यंग और अपमान भरी बातें करते हैं दिलचस्पी रखते हैं। मास्टरजी कहते हैं, "साले कंजर, मेहतर, मांग, बसोर-क्यों चले आते हैं पढ़ने? जाओ, अपने मां-बाप के साथ सड़कें झाड़ों, कचरा उठाओ, मैला उठाओ, मरे ढोर उठाओ।" 4 इन लोगों के सामने आज भी पढ़ाई की बहुत बड़ी समस्या है। अशिक्षा के कारण अंधविश्वास, पाखंड, दहेज कुप्रथा, अनमेल एवं दुजवर विवाह के चंगुल में फस जाते हैं। छुआछूत की बीमारी कम होने का नाम नहीं ले रही है। उपन्यास की नायिका नीलिमा सोचती है, "जैसे स्कूल के पढ़ने वाले सब बच्चे हैं वैसी मैं हूँ। मैं भी वैसा ही युनीफार्म पहनती हूँ, जैसा सब पहनते हैं, फिर मैं अछूत कैसे हो गई।" 5

उत्तर आधुनिक काल में भेदभाव की बीमारी दलित समूह के अंतर्गत भी है। खान-पान, शादी-ब्याह, काम-धाम से लेकर बोलचाल तक भेदभाव असर दिखाई देता है। एक दूसरे को कम या तुच्छ मानने की इस प्रवृत्ति पर नीलिमा की टिप्पणी इस प्रकार है, "हमारे बीच काहे की जात पात? जो काम हम करते हैं, वैसे ही काम वे करते हैं। जो हमारे सुख-दुख हैं, वहीं उनके सुख दुख हैं। हम तो वैसे ही कीचड़ की दलदल में फंसे हैं। आपस में मिलकर, इस दल दल से बाहर निकलने की बात सोचना चाहिए।" 6 इस उपन्यास के माध्यम से सुशीला टाकमौर जी का भी प्रयास यह है कि दलित समूह ने आपसी भेदभाव को मिटाकर दलितों में एकता और संघटित होने की भावना पनप ले। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के विचारों को अपनाकर जाति उद्धार की बात करनी चाहिए। अपना अस्तित्व और अस्मिता की पहचान कर शिक्षा का प्रसार और आर्थिक स्वावलंबन लाने की आवश्यकता है। महिलाएँ समाज का आधा हिस्सा हैं, उनको समानता का दर्जा मिले, यह बात बाबासाहेब ने बहुत पहले कही थी। "शिक्षा, संगठन और संघर्ष" का नारा षडयंत्री राजनेताओं ने दलित वर्ग तक नहीं पहुँचने दिया। राजनेताओं ने अपने हित और स्वार्थ के लिए दलित समूहों को एकत्र नहीं आने दिया। बाबासाहेब ने जाति के आधार पर बने दलित संगठनों का विरोध किया था। वे हमेशा समाज कल्याण की बात करते थे, शिक्षा पाने की बात करते थे, आत्मविश्वास जगाने की बात करते थे। नीलिमा के माध्यम से लेखिका कहती है, "हिंदूवादी रीति ने हमें दिया है-छुआछूत, अपमान, अन्याय, शोषण, अत्याचार। क्या कभी किसी ने सोचा है, हम हिंदू केवल इसलिए हैं कि हम सवर्ण हिंदू समाज की सेवा करते हैं। क्यों कि वे जानते हैं-जिस दिन सफाईकर्मी समाज, ईसाई, मुसलमान या बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेगा, फिर वह उनके घर सफाई करने नहीं जायेगा। कम से कम अब तो हमारे लोगों ने इस बात को समझना चाहिए।" 7

सुशीला जी ने दलित समूहों की अनेक समस्याओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। सिर्फ समस्याओं का चित्रण करना उनका उद्देश्य नहीं है तो उन समस्याओं का चुनौती पूर्ण स्वीकार कर, उन्हें उलझने का सुझाव लेखिका देती है। एक नई सामाजिक परम्परा शुरू करने की पहल लेखिका ने की है। वह उत्तर आधुनिक काल के अनुसार परिवर्तित होने का संदेश देती है। सवर्ण और अछूत का भेद मिटने, दलितों के बीच एकता, संगठन और भाईचारा बढ़ने, आंतरजातीय विवाह के माध्यम से दलित एकता मजबूती, शिक्षा और नौकरी के अवसर में समानता, बेटा और बेटी में समानता, पैतृक रोजगार छोड़ने, विषमता खत्म करने, आर्थिक स्वावलंबन, नारी को शिक्षित करने, अंधविश्वास मिटने, बुद्ध का अहिंसा, मानवतावाद एवं विश्वबंधुत्व का मार्ग अपनाने, बाल, अनमेल और दुजवर विवाह का विरोध, छोटा परिवार, नशाबंदी, महिलाओं का आत्मविश्वास बढ़ाने का संदेश सुशीला टाकमौर देती है।

संदर्भ :

1. टाकभौरे सुशीला – नीला आकाश, पृ. सं. 107
2. टाकभौरे सुशीला – नीला आकाश, पृ. सं. 23
3. टाकभौरे सुशीला – नीला आकाश, पृ. सं. 12
4. टाकभौरे सुशीला – नीला आकाश, पृ. सं. 34
5. टाकभौरे सुशीला – नीला आकाश, पृ. सं. 63
6. टाकभौरे सुशीला – नीला आकाश, पृ. सं. 78
7. टाकभौरे सुशीला – नीला आकाश, पृ. सं. 103



कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यास में चित्रित मुसलिम नारी विमर्श ('आना इस देश' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)

प्रा. अंजली महेश उबाळे

D. K. S. C. College, Ichalkaranji

प्रस्तावना –

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। जिसमें समाज का हुबहू प्रतिबिंब दिखाई देता है। समाज में घटीत होनेवाली हर छोटी – मोटी घटना एवं प्रसंग से सजग संवेदनशील साहित्यकार प्रभावित होकर साहित्य सृजन करता है। चाहे वह घटना, प्रसंग किसी भी देश, किसी भी समाज एवं किसी भी व्यक्ति के साथ घटीत क्यों न हो, संवेदनशील तथा जागृत साहित्यकार उससे अछुता नहीं रह सकता। वह उस घटना एवं प्रसंग को अपनी सच्ची अनुभूति एवं कल्पनाशक्ति के माध्यम स्फूर्तबद्ध करने का यथाशक्ति प्रयास करता है। तभी तो कालजयी कृतियों का निर्माण होता है। अतः ऐसी ही कालजयी कृतियों के निर्माण से हिंदी साहित्य भंडार दिन-दिन समृद्ध होता जा रहा है। वास्तविकता इन साहित्यिक कृतियों का सृजन तत्कालीन समाज के अलग-अलग विषयों को केंद्र में रखकर किया गया है। जिनमें नारी भी एक है। 'नारी' को केंद्र में रखकर साहित्य सृजन करनेवाले साहित्यकारों की सूची लंबी है जिसमें मुसलिम नारी के जीवन पर भी यथार्थता से प्रकाश डाला गया है। इन साहित्यकारों में कृष्णा अग्निहोत्री का नाम आदर से लिया जाता है। उन्होंने अपने साहित्य में न केवल इक्कीसवीं सदी की ज्वलंत समस्याओं पर यथार्थता से प्रकाश डाला है बल्कि उनके समाधान को भी यथोचित प्रस्तुत किया है। वर्तमान युग में हर व्यक्ति कम-अधिक रूप से आतंकवाद, सांप्रदायिकता, धर्मांधता, जातिभेद, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, गरीबी, अत्याचार, व्यसनाधिनता, अवैध व्यवसाय आदि कई तरह की समस्याओं से ग्रस्त है। यह स्थिति केवल भारत की है ऐसी बात नहीं है बल्कि दुनिया भर के लगभग सभी देशों को इस भयावह वास्तविकता से गुजरना पड़ता है। यह तो सर्वज्ञात ही है कि, भारत बहुभाषाभाषी एवं बहुधर्मिय लोगों का देश है। जहाँ हर धर्म के अपने अलग-अलग संस्कार, रीति-रिवाज, प्रथा-परंपराएं एवं मान्यताएं हैं। धर्म संबंधी स्वतंत्र नियम कायदे कानून हैं जिसका पालन करना हर एक के लिए बंधनकारक माना जाता है। वास्तव में सभी धर्मों में स्त्री-पुरुष दोनों के हित के लिए समान नियम बनाये गये हैं जिनका पालन करना दोनों के लिए अनिवार्य है। किंतु वास्तविकता कुछ अलग ही है। पुरुषप्रधान संस्कृति के कारण हर धर्म में नारी आज भी शोषित ही है उसमें भी सांप्रदायिक भेदभाव, धार्मिक भेदभाव एवं बलात्कार जैसी अनैतिकता के कारण उसकी स्थिति और भी सोचनीय बनी है। जिसका यथार्थ चित्रण कृष्णा अग्निहोत्री जी के 'आना इस देश' लघु उपन्यास में किया गया है।

'मुसलिम नारी विमर्श' पर विचार करते समय सबसे पहले हमें 'मुसलिम', 'नारी' और 'विमर्श' इन तीनों शब्दों से परिचित होना आवश्यक है। 'मुसलिम' का शब्दकोशीय अर्थ है, 'मुसलमान'। लीग- स्त्री. हिंदुस्तान के संप्रदायवादी मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्था (1906 में स्था.)¹ और मुसलमान का शब्दकोशीय अर्थ है, 'इस्लाम मजहब को माननेवाला, मुसलिम'² अर्थात् इस्लाम धर्म का अनुयायी मुसलिम समाज। आधुनिक हिंदी शब्दकोश के अनुसार 'नारी' को 'यौना', 'यौनिता', 'सीमंतिनी', 'नीता', 'वामा', 'दारा', 'कलत्रा', 'महिला', 'अबला', 'वधू', 'जनी', 'जोशा'³ कहा गया है 'विमर्श' शब्द का कोशीय अर्थ है, 'किन्हीं दो व्यक्तियों के बीच का संवाद, बहस या सार्वजनिक चर्चा'⁴ स्त्री विमर्श की परिभाषा देते हुए उत्तरशती के साहित्य में लिखा गया है, 'स्त्री विमर्श याने बौद्धिक, सामाजिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक आदि महत्त्वपूर्ण स्तर पर विशिष्ट स्तर द्वारा किसी सामाजिक एवं पारंपारिक विषय पर गहरी सूझबूझ एवं समझदारी के साथ सोचविचार करना ही स्त्री-विमर्श है'⁵ यहां पर हम 'मुसलिम नारी विमर्श' पर विचार करेंगे।

1) पुरुषप्रधान संस्कृति से शोषित नारी-

हर धर्म इंसान को इंसान होने के नाते एक दूसरे के साथ इंसानीयता से जीवन जीने की सिख देता है। किंतु आज भी समाज में धर्म- जाति, वर्ग पंथगत भेदभाव के साथ-साथ स्त्री-पुरुष में भी भेदभाव किया जाता है। मुसलिम समाज ने स्त्री-पुरुष दोनों के हित के लिए समान हक - अधिकार दिए हैं किंतु वास्तविकता कुछ और ही है। दोनों भी समाज के अभिन्न अंग होने के बावजूद नारी के लिए अलग और पुरुष के लिए अलग मापदंड को अपनाने के लिए बाध्य किया जाता है। पुरुषप्रधान संस्कृति के इस दोहरे मापदंड से नारी आज भी शोषित है। 'आना इस देश' उपन्यास में लेखिका ने इसका यथार्थ चित्रण किया है। विवेच्य उपन्यास की नायिका सुरैया पाकिस्तान में रहनेवाली पढी-लिखी नारी है। किंतु शिक्षित एवं सुंदर होने पर भी वह अपना जीवनसाथी खुद नहीं पसंद कर सकती। परिवारवालों की इच्छा के आगे उसे अपनी इच्छा –आकांक्षाओं, भावनाओं को दबाना पड़ता है। इससे विपरीत पुरुष धन एवं शोहरत

के बल पर चार-चार बार जिसे चाहे उसे अपनी पत्नी बना सकता है। अतः एवं सुरैय्या की इजाजत के बिना उसके पिता नदीम उसका विवाह दुगुनी उम्रवाले पहले से ही शादीशुदा परवेज से करा देते हैं। अतः नारी भावनाओं को समझनेवाली सुरैय्या की मा तरन्नुम इस रिश्ते का विरोध करते हुए कहती है, "हा देखा है, वे सुरैय्या से दुगुनी उम्र के हैं। एक बीवी दम तोड़ चुकी है, अब जनाब आप मर्दों को तो किसी भी उम्र में हमसफर चुनने का हक है, पर महिलाओं को तो उम्र कैद ही मिलती है। जब तक कोई शादी के लिए हाथ न मांगे चुप रहो"।⁶ अतः स्पष्ट है, मुसलिम नारी को अपना जीवनसाथी खुद पसंद करने का अधिकार नहीं दिया जाता उसे तो खुंटे की गाय की तरह किसी के भी घर बांध दिया जाता है। वास्तव में धर्म ने स्त्री और पुरुष दोनों के हित के लिए उचित अधिकार दिए हैं इस संदर्भ में डॉ. इनामदार जी कहते हैं, "इस्लाम ने जिस प्रकार पुरुषों को तलाक देने का अधिकार दिया है उसी प्रकार कुछ अवस्थाओं में स्त्रियों को भी पुरुषों से तलाक लेने के अधिकार प्रदान किए गए हैं जिसे 'खुलाह' कहा जाता है"।⁷ किंतु सुरैय्या पति के डर से तलाक नहीं ले सकती।

2) पति के अत्याचार की शिकार नारी -

नारी चाहे पिता के घर में हो या पति के, उस पर कई तरह की पाबंदियाँ लगाई जाती हैं। उसे अपनी इच्छा से जीवन जिने नहीं दिया जाता। फिर भी अगर वह इन सबका विरोध करते हुए अपनी खुशियाँ दूढ़ना चाहती है तब सबसे पहले उसका पति ही उस पर जुल्म ढाता है। विवेच्य उपन्यास की नायिका सुरैय्या एक अच्छी गायिका है। अतः शादी के पश्चात् पत्रकार उसका टी.वी. पर इंटरव्यू लेता है और उसे अपनी गायकी पेश करने का अवसर मिलता है, तब उसका पति परवेज ही उस पर उँगली उठाता है। उसकी प्रशंसा करने की बजाय वह उसे बदसूरत बनाने की धमकी भी देता है। परवेज कहता है, "साहिबा, आप तो बहुत खूबसूरत लग रही थीं? बड़ी बन संवर कर पब्लिक के सामने पेश हुईं-----सब समझता हूँ, पर इतना याद रहे, जरूरत पड़ी तो तुम्हारे चेहरे पर एसिड डलवा दूंगा"।⁸ लगता है, पति के अत्याचार की शिकार बनी सुरैय्या को उसके दबाव में जीवनयापन करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

3) संतान सुख से वंचित रहने के लिए विवश नारी-

संतान प्राप्ति हर नारी के लिए प्रकृति का सबसे बड़ा वरदान माना जाता है। जिसको पाकर वह स्वर्गसुख की अनुभूति करती है। अतः बच्चे के जन्म से लेकर लालन-पालन तक की सभी जिम्मेदारियों को वह हंसते-हंसते निभाती है। एक माँ के लिए उसका बच्चा ही सबकुछ होता है। अतः उसको पाने के लिए वह बड़ी-से बड़ी दौलत को भी ठूकराने के लिए तैयार होती है। किंतु नारी जीवन की विडंबना तो यह है कि, इतना सबकुछ करने के पश्चात् भी उसे संतानसुख से वंचित रहना पड़ता है जिसका यथार्थ चित्रण 'आना इस देश उपन्यास में किया गया है। सुरैय्या परवेज से विवाह होने के पश्चात् बच्चे को तो जन्म देती है किंतु अत्याचारी एवं व्यभिचारी पति से छूटकारा पाने के लिए मायके में रहने के लिए विवश होती है। अतः बालक को हासिल करने के लिए परवेज हर तरह की कोशिश करता है किंतु सुरैय्या जीवन का एकमात्र सहारा बच्चे को पाने के लिए पति द्वारा मिलनेवाली सारी जायदाद को छोड़ने के लिए तैयार होती है। केवल संतानसुख की अभिलाषा रखनेवाली सुरैय्या का नवजात शिशु मर जाता है उसे तो न बच्चे का सुख मिल पाता है और न ही पति की जायदाद का हिस्सा। "बच्चे का चेहरा देख शायद जिंदगी बसर हो जाती पर अब वो एकदम सिकुड़कर किसी कटघरे में स्वयं कैद हो रही थी"।⁹ अत्याचारी एवं चरित्रहीन पति के कारण सुरैय्या को अजीवन संतानसुख से वंचित रहना पड़ता है।

4) पुरुषों की गंदी मानसिकता की शिकार नारी-

पति के अत्याचार एवं पुत्र वियोग से पीड़ित सुरैय्या को विवशता वश दुर्बल में खाला के पास भेज दिया जाता है किंतु नारी की विवशता का अनुचित लाभ उठाने वाला जिजा उसके साथ गंदी हरकतें करता है पत्नी के होते हुए भी सुरैय्या को पाना चाहता है। नारी को केवल खिलौना माननेवाला जिजा सुरैय्या की भावनाओं के साथ भी खिलवाड़ करता है। लेखिका कहती है, "किसी न किसी बहाने से वे कार से छोड़ने निकलते व सारे रास्ते उसकी तारीफ करते कभी कंधे तो कभी गला छूते कहते, 'जान तुम में व तुम्हारी आपा में कितना फर्क है। वो कठपुतली है और तुम भागती गुड़िया। मैं तुम्हें बहुत सुखी रखूंगा तुम निकाह के लिए हा भर कह दो'।¹⁰ ऐसे स्वार्थी व्यभिचारी पुरुषों के कारण ही नारी को यातनामय जीवन जिना पड़ता है।

5) धर्मांधता से शोषित नारी -

हर धर्म में धार्मिकता होनी चाहिए धर्मांधता नहीं। किंतु आज वास्तविकता यह है कि धर्म में धर्मांधता ही बढ़ती जा रही है। मुसलिम धर्म में स्त्री और पुरुष दोनों को समान महत्त्व दिया है किंतु कुछ धर्मांध व्यक्तियों द्वारा दोहरे मापदंड को अपनाकर नारी का शोषण किया जाता है। सुरैय्या का पति परवेज चार-चार बार विवाह कर सकता है, किंतु पति के अत्याचार से शोषित, पीड़ित नारी सुरैय्या पुनः घर नहीं बसा सकती। भारत में रहने वाला अबीर जब उसे फिर से सेटल होने के लिए कहता है तब सुरैय्या कहती है, "वैसे

भी मुसलिम औरते गोरी, काली, पढी-लिखी कैसे भी हो, उन्हें कुराण शरीफ का वास्ता दे वैसी ही जिने की इजाजत है, जरा लाईन से हटे तो फरमान में दंड, सजा, बेरहमी, पत्थरबाजी व मौत ही पल्ले पडती है"11। अतः स्पष्ट है मुसलिम नारी को धर्म का वास्ता देकर शोषण किया जाता है।

6) पंथगत भेदभाव की शिकार नारी -

धर्म-धर्म के अंतर्गत भेदभाव से पुरा मानव समाज आक्रांत है किंतु एक ही धर्म के अंतर्गत भी अनेक पंथों में समाज को विभाजित किया जाता है। मुसलमान धर्म में 'शिया' और 'सुन्नी' नामक दो पंथ हैं। " शिया का अर्थ 'अल्ली' संप्रदाय का अनुयायी होता है। 'खलिफा' के अनुयायी सुन्नी कहे जाते हैं -----दोनों सम्प्रदायों में कोई मौलिक विरोध नहीं है। फिर भी दोनों में खलिफा, भाग्यवाद, आत्मा की स्वतंत्रता आदि विषयों पर घोर वाद-विवाद होने लगा। दोनों में कटुता के भाव भी आने लगे"12। परितक्ता नारी सुरैय्या से शिया पंथ का व्यक्ति बहुत-सारी उलझनों के बाद भी शादी करने के लिए तैयार होता है। सुरैय्या की दोस्त गीत भी उसे शादी करके सुखी वैवाहिक जीवन को अपनाने की सलाह देती है किंतु सुरैय्या के माता-पिता इसके लिए बिल्कूल तैयार नहीं होते। वे कहते हैं, "शिया से शादी करो तो मुल्क में मत लौटना। हम तुम्हारे लिए मर गए"13। लगता है अंतर्गत भेदभाव के कारण सुरैय्या को अविवाहित रहने के लिए विवश होना पड़ा है। शिया-सुन्नी के आपसी भेदभाव से पीड़ित नारी सुरैय्या कहती है " सुन्नी व शिया भी एक-दूसरे के खून के प्यासे। पाकिस्तान के अनेक इलाकों में, रिश्तेदारों, खानदानों तथा समाज के गलत रिवाजों को अगर औरत चुनौती देती है, तो उसे भी और उन लड़कियों को भी मार डालने की प्रथा कबिलाईयों में अब भी बरकरार है, जिसे काकरी कहते हैं"14। मनुष्य हित में घातक इन गलत प्रथाओं के चलते नारी जीवन दुःखमय बना है।

7) पुरानी गलत प्रथा-परंपराओं की शिकार नारी -

धर्म चाहे हिंदु हो मुसलिम हो या अन्य कोई भी, उनमें प्राचीन काल से लेकर आज तक चलती आ रही कई पुरानी, गलत रूढ़ि-प्रथा, परंपराएँ पाई जाती हैं। जिनके कारण समाज खोखला बनता जा रहा है। उसमें भी नारी की स्थिति और भी सोचनीय है। इन प्रथाओं में बालविवाह एक ऐसी ही प्रथा है जिसमें लड़कियों को बड़ी होकर जीवनसाथी पसंद करने का अवसर ही न मिल सके इसलिए उनका विवाह बाल्यावस्था में ही कर दिया जाता है। "पाकिस्तान में भी कबाइली इलाकों में तो प्रेम के नाम पर खुनी जंग छिड़ जाती है। इसलिए जंग से बचने के लिए लड़कियों का विवाह छोटी उम्र में ही कर दिया जाता है यदी लड़की अपने पति से छुप कोई नाजायज प्रेम करे या रिश्ता जोड़े तो उस पुरुष व औरत को मार डालते हैं। यह कारोकारी प्रथा (बुरी औरत) व (बुरा आदमी) तो अरब व इराण में भी है"15। दुनिया के हर कोने में नारी का अमानवीय शोषण किया जाता है। उसकी नारी सुलभ भावनाओं को उसके साथ ही दफनाया जाता है।

8) अकेलेपन में जीवनयापन करने के लिए विवश नारी -

हर इंसान को जीवनपथ पर चलते समय एक अच्छे हमसफर की आवश्यकता होती है जो उसके सुख-दुःख में साथ देकर उसका खयाल रखता है। किंतु विवेच्य उपन्यास की सुरैय्या विवाह के पश्चात भी पति एवं पुत्र प्रेम से वंचित रहती है। भारत आने पर अबीर नामक हिंदु युवक से प्रेम करती है। अबीर का विवाह पहले से ही मनु से तय हुआ है। अतः सुरैय्या अबीर से शादी करके उन दोनों के बीच नहीं आना चाहती। मनु से विवाह करके अबीर पारिवारिक जीवन बिता सकता है। पर सुरैय्या को तो जीवनभर अकेलेपन को झेलना पड़ता है। सुरैय्या कहती है, "मैं भी नहीं चाहूंगी कि मेरे लिए तुम आग पर ही चलो यूँ तो कैसी भी फितरत हो मुहबत कोई मिटा नहीं सकता अबीर क्योंकि, जज्बात न तो हिंदु हमें है ना मुसलमान हमारे यहाँ पीर, पैगंबर मर्द होते हैं औरते नहीं। वरना मैं भी पीर बनकर खुदा की बंदगी में उम्र काट देती"16। लगता है आतंकवाद, सांप्रदायिकता, धर्मांधता आदि कई कारणों से नारी को अकेलेपन में जीवनयापन करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

9) आतंकवादी हमलों की शिकार नारी -

वर्तमान युग में दिन-ब-दिन आतंकवाद फैलता जा रहा है। इसका मूल सांप्रदायिकता एवं धर्मांधता में पाया जाता है। आए दिन हो रहे हिंदु-मुसलिम दंगे-फसादों के कारण दोनों देशों के लोग दहशद में जी रहे हैं। आतंकवादी हमलों से देश की बेकसूर आम जनता मारी जाती है। पाकिस्तान में रहनेवाली सुरैय्या भारत में नाना-नानी से मिलने आती है, तब उसकी मुलाकात हिंदु धर्म के अबीर से होती है। दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं किंतु धर्मांधता, पुरानी गलत मान्यताएँ एवं सांप्रदायिकता के कारण वे दोनों विवाह नहीं कर पाते। अतः भारत आई सुरैय्या वापस पाकिस्तान जाने लगती है तब भारत-पाकिस्तान की सीमा पर आतंकवादियों द्वारा किए गए बलात्कार की वह शिकार होकर पागल बन जाती है। आतंकवादियों द्वारा किए गए अमानवीय अत्याचार से पीड़ित नारी सुरैय्या

आखिर भारत-पाकिस्तान दोनो देशो की सीमा पर हाथ रखकर मर जाती है। दोनो देशो में सुख, शांती अमन की चाह रखनेवाली सुरैया को अपनी जान गवां नी पडती है

निष्कर्ष -

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि ,इक्कीसवीं सदी के साहित्यकारो की लंबी सूची में कृष्णा अग्निहोत्री जी स्थान अनन्यसाधारण है। सन 2014 में प्रकाशित 'आना इस देश ' उपन्यास में लेखिका ने अनेक ज्वलंत समस्याओ पर प्रकाश डालकर उसका यथोचित समाधान भी प्रस्तुत किया है। मुसलिम नारी जीवन संघर्ष के साथसाथ आतंकवादी हमले, धर्म-पंथगत भेदभाव, धर्मांधता, सांप्रदायिक दंगेफसाद स्त्री-पुरुष भेदभाव, अन्याय-अत्याचार एवं आतंकवादियों द्वारा मुसलिम नारी पर किए गए पशुतुल्य अमानवीय अत्याचार की दर्दनाक व्यथा को कथा के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। पुरुषप्रधान संस्कृति पुरुषो की गंदी मानसिकता, पति द्वारा किया जानेवाला शोषण, धर्म एवं पंथगत भेदभाव पुरानी, गलत रूढी-प्रथा –परंपराएँ, अकेलापन आदि कई कारणो से मुसलिम नारी आज भी शोषित-पीडित, यातनामय जीवनयापन करने के लिए विवश है, जिसका मर्मस्पर्शी चित्रण विवेच्य उपन्यास में मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1) संपा.कालिकाप्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दलाल श्रीवास्तव – 'बृहत हिंदी कोश', पृ. क्र. 909 ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 2013
- 2) संपा. कृष्णकांत दीक्षित, सुर्यनारायण उपाध्याय – मानक विशाल हिंदी शब्द कोश, पृ. क्र. 773, कमल प्रका.,दिल्ली, 2015
- 3) गोविंद चातक – आधुनिक हिंदी शब्दकोश, पृ. क्र. 308
- 4) सु. मो. शहा – राष्ट्रावाणी, द्वैमासिक मार्च-अप्रैल, पृ. क्र. 67, 2011
- 5) वही – पृ. क्र. 67
- 6) कृष्णा अग्निहोत्री – 'आना इस देश', पृ. क्र.18 अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 2014
- 7) डॉ.सय्यद अब्दुल मजीद निजामुद्दीन इनामदार – 'हिंदी उपन्यासों में मुस्लिम समाज' पृ. क्र. 114 , रोली प्रका.,कानपुर, प्र. सं. 2013
- 8) कृष्णा अग्निहोत्री – 'आना इस देश', पृ. क्र.20 अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 2014
- 9) वही – पृ. क्र. 21
- 10) वही – पृ. क्र. 22
- 11) वही – पृ. क्र. 32
- 12) प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड, डॉ. विद्यासागर सिंह – 'धर्म एक स्वरूप अनेक' भाग 2, पृ. क्र. 82, एम. के. पब्लिकेशन, जयपुर, प्र. सं. 2012
- 13) कृष्णा अग्निहोत्री – 'आना इस देश' पृ. क्र. 33 अमन प्रका., कानपुर, प्र. सं. 2014
- 14) वही – पृ. क्र. 46
- 15) वही – पृ. क्र. 39
- 16) वही – पृ. क्र. 59

समकालीन हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श

डॉ. ज़ियाउर रहमान जाफरी

एट पो० - माफी

वाया- अस्थावां, जिला-नालंदा,

बिहार, ८०३१०७

स्त्री हिन्दी साहित्य में किसी न किसी रूप में मौजूद रही है। यह अलग बात है कि हर दौर का साहित्य स्त्री को अपने-अपने नज़रिए से देखता रहा है। जो स्त्री कभी अपवित्र और कमज़ोर समझी जाती थी, आज वो अपनी पूरी ताकत के साथ मौजूद है। स्त्री आज जहां पहुंची है, वो यहां तक किसी के रहमो-करम से होकर नहीं आई है, बल्कि उन्होंने अपने संघर्ष और अपनी मेहनत से यह मुकाम हासिल किया है। यह अलग बात है कि पुरुष शासित समाज ने जहां तक संभव हो सका, उसे फलने-फूलने से रोका। आज स्त्री जिस कविता में मौजूद है कल तक उसका कविता लिखना भी अच्छी नज़रों से नहीं देखा जाता था। मीर तक़ी मीर जैसे शायर की बेटी की कविता भी जला दी गई, जिसे वह बर्दाश्त नहीं कर सकी और अंततः खुदा की प्यारी हो गई। बकौल- डॉ० कल्पना वर्मा- १८वीं- १९वीं शताब्दी में अगर स्त्रियों ने कुछ लिखा भी है तो अपने नाम को गोपनीय रखने की चेष्टा की है।⁹

असल में पितृसत्तात्मक समाज स्त्रियों एक खास-चश्में से देखता है, उसकी नज़र में स्त्री धर का काम करने और प्रजनन करने के लिए है। पुत्र का धर से निकलना कोई अर्थ नहीं रखता, स्त्री धर से निकले तो वह सीता ही क्यों न हो उन्हें अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है। वह जंग हो, रेप हो, या धरेलु हिंसा सबसे ज्यादा स्त्रियां ही प्रताड़ित होती हैं। दहेज की सूली वही चढ़ती है, और पति के मरने पर सादा लिबास उसे ही दिया जाता है। आखिर विधुर के लिए भी तो कोई नियम- क़ायदे होने चाहिए। हिन्दी कविताओं में स्त्री का रोष और उसका दर्द दोनों देखने का अंकन हुआ है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियां उल्लेखनीय हैं-

मैं स्त्री हूं, और जब मैं स्त्री हूं
तो मुझे दिखना चाहिए स्त्री की तरह
मसलन मेरे केश लंबे स्तन पुष्ट और कटि क्षीण हो....

- रंजना जयसवाल

मिल जानी चाहिए
अब मुक्ति स्त्रियों को आखिर कब तक विमर्श में रहेगी मुक्ति

-नीलेश रघुवंशी

शायद किसी दिन हम भी जी सकें
भीड़ भरे चिड़ियाघरों में
सुख से चाय का
एक प्याला अकेला

-चंद्रकला

तुम्हें चाहिए एक औसत औरत
न कम न ज्यादा बिल्कुल नमक की तरह

-सुजाता

ऐसा नहीं है कि ये आवाज यहीं उठी। कभी महोदवी वर्मा ने भी कहा था-
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना।

साहित्य में स्त्री विमर्श स्त्री को देहवादी स्त्री विमर्श बनाकर रख दिया गया है। स्त्री मुक्ति सिर्फ देह की आज़ादी नहीं है, स्त्री मुक्ति का अर्थ है, उसके वाजिब हक को प्रदान करना, उसे सम्मान देना, और उसे सम्मान अवसर देना। स्त्री पुरुष का प्रतिपक्ष भी नहीं है। असल में स्त्री और पुरुष दोनों समाज के अंग हैं, और स्त्री की स्वतंत्रता स्त्री का अधिकार है। कठगुलाब उपन्यास में पांच पात्र हैं। इसमें चार महिला पात्र ऐसे हैं, जो अलग-अलग ढंग से सोचते हैं। अनामिका की एक कविता है-

हमने एक दिन कहा हमें पढ़ो उस तरह
जैसे बी०ए० करने के बाद
विज्ञापन के एक-एक
शब्दों को पढ़ा होगा।

स्त्री के इसी दुख,दर्द और नारी मुक्ति के सवाल को चित्रा मुद्गल अपने उपन्यास आवां में उठाती हैं। मैत्रेयी पुष्पा के अल्मा कबूतरी तक आते-आते समाज में आ रहा बदलाव दिखने लगता हो फिर भी ये कितने अफसोस की बात है कि आज़ादी के लगभग सत्तर सालों के बाद भी हम, स्त्री सशक्तिकरण स्त्री विमर्श, और स्त्री स्वतंत्रता की चर्चा कर रहे हैं। अब तक तो स्त्री और पुरुष के बीच हर अंतर मिट जाना चाहिए। हमने स्त्री स्वतंत्रता की बात मानकर उसे बाजार और विज्ञापन में खड़ा कर दिया। स्त्री विमर्श कुछ स्त्रियों का विमर्श नहीं है। यह उस स्त्रियों की बात भी है, जो किसी बन प्रदेश में रहते हुए गुमनामी की जिंदगी गुज़ार रही हैं मैत्रेयी पुष्पा ने बेतवा बहती रहे में उस ग्रामीण स्त्रियों की दशा पर प्रकाश डाला है, जो कई अभिशाप को सहते हुए समाज का मुकाबला करती हैं। मुदुला गर्ग की कहानी तीन कीलों की टोकरी में नारी पशुवत बर्बरता को झेलती है।

असल में सबसे ज़रूरी है, समाज का प्रगतिशील होना जो हमें बचपन से सिखाता है कि स्त्री का चरित्र पुरुष के चरित्र से ठीक विपरीत होना चाहिए।

उर्मिला शिरीष का सवाल वाजिव है कि- एक ही मां-बाप की संतान में इतना अंतर वही नाम, कुल, गोत्र, पहचान, खून एक होता है, तो उसकी चीज़ क्यों अलग हो जाती है।² लेखिका तस्लीमा नसरीन साफ़ तौर पर कहती हैं कि उन सभी

प्रथाओं, रीति-रिवाजों का खण्डन करना चाहिए, जिनके अस्तित्व का कोई तार्किक कारण नहीं होता।³

स्त्री विमर्श को बहाने स्त्री की हैसियत हिन्दी की कई, कहानियों, कविताओं, लेखों, नाटकों आदि में दिखाई देती है। स्त्री विमर्श और स्त्री के हालात को समझने के लिए कृष्णा सोबती का सूरजमुखी अंधेरे के, उषा प्रियंवदा कृत, रूकेगी नहीं राधिका, मन्नु भण्डारी का उपन्यास आपका, बंटी शिवानी की लिखी हुई कृष्णा कली, ममता कालिया का बेधर, और नासिरा, शर्मा कृत सात नदियां एक समुन्दर का अध्ययन बेहद ज़रूरी हैं। यह वे किताबें हैं, जिसने स्त्री विमर्श को हिन्दी कथा साहित्य में स्थान दिलाया है। इन उपन्यासों में स्त्री के अंदर की मुक्ति की छटपटाहट दिखती है। चित्रा मुद्गल के आवां की नीता कहती है- "मैं पत्नी नहीं सहचरी बनना चाहती हूँ.....पत्नी शब्द में मुझे दासीत्व की बू आती है।" ममता कालिया का मानना है कि स्त्री के अपने देह पर अपना अख्तियार होना चाहिए। वह लिखती हैं- तुम्हारी देह तुम्हारी अपनी है। तुम उसका जो चाहो इस्तेमाल करो।⁴

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिन्दी की महिला लेखिकाओं ने अपने दम पर अपनी अस्मिता का निर्माण किया है। स्त्री विमर्श सिर्फ अपना दुख बयान करने की रचना नहीं है। इन रचनाओं में नायिकाएं खुद अपने महत्व को रेखांकित करती हैं, परंपरा का विरोध करती हैं। किसी के हाथ का खिलौना नहीं बनतीं। दुनिया ने जिसे सिर्फ जिस्म समझा था, उसे पता चला कि उसकी और भी किस्म है।

संदर्भ

- 1) स्त्री विमर्श :- विविध पहलू -डॉ० कल्पना वर्मा पृष्ठ-90
- 2) निर्वासन - उर्मिला शिरीष - पृष्ठ-६३
- 3) नष्ट लड़की नष्ट गद्य तस्लीमा नसरीन, पृष्ठ-४
- 4) एक जमीन अपनी - चित्रा मुद्गल पृष्ठ-9६० -9६9
- 5) हिन्दी अनुशीलन, जुन-२००४ पृष्ठ-०७

स्त्री एहसासों को जीने की चाहत : मैं भी औरत हूँ

डॉ. कविश्री जायसवाल

असि प्रोफेसर (हिन्दी)

एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ

प्रकृति ने सभी कार्य को ठीक ढंग से पूरा करने के लिये किसी न किसी साधन की व्यवस्था की है, जिसके द्वारा हम उस कार्य को पूरा करते हैं। इनमें से कुछ कार्य हैं जो प्रकृति के अनुसार अपने आप चलते रहते हैं जैसे वातावरण में परिवर्तन होना, दिन रात होना आदि। लेकिन इसके अतिरिक्त पृथ्वी पर स्त्री पुरुष के जीवन को बढ़ाने के लिये उनके भारीर में यौनांगो तथा जननेन्द्रियों की रचना की है किन्तु कभी-कभी ई वर से भी चूक हो जाती है, वो स्त्री पुरुष की संरचना करते समय जैसे कहीं खो जाता है कुछ भूल जाता है। कुछ ऐसा जो स्त्री-पुरुष दोनों को अधूरेपन का एहसास दिलाता है। इस अधूरेपन को कुछ स्त्री-पुरुष अपने जीवन का अभिप्राय मानकर घुट-घुट कर जीवन जीते हैं तथा कुछ इसे अपने जीवन की चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं और चिकित्सीय सुविधा लेकर अपने जीवन के इस अधूरेपन को भरने की कोशिश करते हैं और सफल भी होते हैं। "मैं भी औरत हूँ।" इसी अधूरेपन को भरने की कथा है। हिजड़ा जीवन से मुक्ति, सम्मानपूर्ण जीवन सम्बन्धी, सामाजिक, चिकित्सीय, धार्मिक, अवधारणाओं एवं तथ्यात्मक सत्यों पर ही आधारित उपन्यास "मैं भी औरत हूँ" की लेखिका स्वयं एक स्त्री रोग एवं प्रसूती विशेषज्ञ है। उपन्यास में लेखिका ने मंजूला और रोनी का ऑपरेशन से हिजड़ापन दूर करने का उल्लेख करते हुए आधुनिक चिकित्सा पद्धति की प्रगति से परिचित कराया है।

कभी-कभी कोई समस्या एक बड़ी दुर्घटना का कारण बनती है रोनी जो इस उपन्यास की नायिका है, एक ग्रामीण पृष्ठभूमि से है। उसके घर-परिवार व गांव में कोई भौचालय न होने के कारण उसे रोज सुबह अंधेरे ही भौच के लिये जाना पड़ता है। लेखिका ने उपन्यास के प्रथम पृष्ठ से ही गांव में कोई भी भौचालय न होने के कारण भौच की समस्या की ओर पाठक का ध्यान केन्द्रित किया। रोनी एक अलहड़ कि गोरी है। उसकी मां अक्सर रोनी को इतनी सुबह अकेले भौच के लिये जाने को मना करती है।

"माँ कहती" अब तू बड़ी हो रही है रोनी अकेली इतनी सुबह बाहर भौच के लिये मत जाया कर, पर रोनी हँस देती है। माँ मैं अकेली कहाँ होती हूँ? मेरी संगी-साथी तो बहुत होते हैं। "कौन होते हैं तेरे साथ, बता तो जरा अपनी सहेलियों के नाम? माँ पूछती, तो जवाब मिलता, माँ देखो हवा मेरी सखी है, मेरे साथ अठखेलियाँ करती है, सूर्य भगवान सुबह-सुबह प्रकट होकर मुझे आर्पित देते हैं। पेड़ों की पत्तियों की सरसराहट मानों मुझसे बात करने को उत्सुक रहती है, और कोयल अपनी मीठी-मीठी तान सुनाकर मुझे संगीत के लिये प्रेरित करती है, कहती हैं, आओ मेरे साथ संगीत की मधुर तान छेड़ों और मस्त हो जाओ।" (1) रोनी दसवीं क्लास में पढ़ रही थी। कै गोर्य अवस्था से युवा अवस्था में पदार्पण कर रही थी। उसके स्त्रियोचित अंग विकसित हो रहे थे। कभी-कभी जीवन की कोई घटना हमारे पूरे वजूद को हिला देती है। देना भर में भायद ही कोई अखबार हो जिसमें प्रतिदिन बलात्कार की खबर न छपती हो। ऐसी एक घटना रोनी के साथ घटती है, जो उसके जीवन में भूचाल ला देती है क्योंकि बलात्कारियों के माध्यम से ही उसे पता चलता है कि वह हिजड़ा है, सामान्य युवती नहीं। यदि वह सामान्य युवती होती तो निश्चित रूप से उस दिन उसके साथ बलात्कार होता। इस दुर्घटना को उपन्यासकार ने दर्शाते हुए लिखा है— "वह गांव से काफी दूर निकल आयी थी। कहीं घर लौटने में देर न हो जाये, यही सोचकर वह एक खेत में खड़े हुए पेड़ की ओर मुड़ गई। खेत की मेड़ पर खड़ा हुआ यह पीपल का पेड़ काफी अच्छी ओट देता था। रोनी ऐसे ही पेड़ों की ओट लेकर बैठ जाती थी। भौच से निवृत्त होने। ज्यों ही वह एक पेड़ की आड़ में बैठने लगी, उसने चार-पांच लड़कों को पास की एक झाड़ी के पास खड़े देखा तो वह थोड़ी सहम-सी गई। वह अपना लोटा उठाकर जाने लगी। इतने में ही दो लड़के उसकी ओर दौड़े, अरे ठहर साली, कहाँ जाती है? बड़ी मुँकिल से तो आज हाथ लगी है। अरे भाई..... तुम चाहते क्या हो? रोनी बहुत घबरा गई थी..... चल उठ चल हमारे साथ चल। हम भी मजा करेंगे और तुझे भी करवायेंगे। रोनी स्थिति की गंभीरता को देखते हुए चिल्लाई अरे बचाओ, मुझे बदमाशों से बचाओ। चुप, साली चिल्लाती है, एक जोरदार थप्पड़ रोनी के गाल पर मार दिया और फिर जोर से उसका मुँह हथेली से बंद कर उसे गोद में उठाकर ले चला। चुप रह रांड, नहीं तो अभी और बुरा हाल करूँगा, रोनी अर्धचेतन अवस्था में पहुँच गई थी। उसका फूलों जैसा नाजुक बदन निरप्राप हृदय। उसे रौंदा जा रहा था। वह असहाय थी, असमर्थ थी, अपनी रक्षा करने में। कुछ ही मिनटों बाद वह लड़का अपने कपड़े झाड़ते हुए वापस पहनने लगा। दूर खड़े हुए लड़के दौड़कर आये और बोले, अरे सुरे हो गया, मजा आ गया

.....खाक मजा आ गया, यह साली तो हिजड़ा है। हिजड़ा, बाकी चार के मुँह से एक साथ निकला। हाँ भाई हिजड़ा ही है, हमने बेकार में अपना समय बर्बाद किया, चलो यहाँ से। तू सच कह रहा है, उन चारों को भायद वि वास नहीं हो पा रहा था। मैं झूठ क्यों बोलूँगा, तुम्हें वि वास नहीं हो रहा है तो तुम खुद देख लो, नीचे तो उसके कुछ है ही नहीं। पर ऊपर तो सब है हाँ हाँ ऊपर ही है, पर नीचे कुछ नहीं।" (2) पन्द्रह बरस की कि गोरी रो नी इस आधे घण्टे में तीस वर्ष की महिला के रूप में परिवर्तित हो गई थी। उसका मानसिक असंतुलन हो गया था। बार-बार उसे वह भाव याद आ रहे थे, कि 'अरे यह तो हिजड़ा है।' वह समझ नहीं पा रही थी कि क्या करे, 'रो नी बिस्तर पर लेटी हुई फूट-फूटकर रोये चली जा रही थी। आज उसके साथ यह कैसी अनहोनी व भयंकर दुर्घटना हुई थी। वह बाल-बाल बच गई थी, पर बचने का कारण जो उसने सुना, उससे वह हतप्रभ थी। क्या मैं लड़की नहीं हूँ? क्या मैं औरत नहीं हूँ? मैं हिजड़ा हूँ? वह सिहर उठी। उसने अपने स्तनों पर हाथ फेरा, जो धीरे-धीरे विकसित हो रहे थे, फिर उसने ऐसा क्यों कहा? अनेक प्र न उस कि गो कन्या के मन को उद्वेलित कर रहे थे, पर वह यह प्र न किससे पूछे? किसे अपना हमराज बनाए? यदि यह बात किसी के कान में भी पड़ गई, तो हो सकता है, वह उसकी हँसी उड़ाए, उसे दया की नजर से देखे या किसी दूसरे को बता दें और पूरे गांव में यह बात फैल जाए। नहीं वह इस बात की किसी के साथ साझेदारी नहीं कर सकती, मन में उतार-चढ़ाव चल रहा था।" (3) युवावस्था के प्रारम्भ होते ही यौन िक्षा के अभाव में युवक एवं युवतियों का मन कितना विचलित रहता है। परिवारों में कोई भी भारीर में होने वाले बदलावों के सम्बन्ध में कोई बात नहीं करता। स्त्रियाँ भी अपनी बेटियों को ये सोचकर कि वे ये सब जानकर बिगड़ जाऊँगी। कुछ नहीं बताती है। रो नी भी अपने भारीर के बदलावों तथा बलात्कार न कर पाने पर लड़कों द्वारा खीज कर उसको हिजड़ा कहते हुए छोड़कर भागने के बाद से बहुत चिंतित एवं विचलित रहने लगती है। वह अपनी भारीरिक संरचना को समझने के लिए एक दिन, "उसने अपना कमरा बंद किया और सलवार उतारकर सामने जाँघों के बीच में एक भाँ ग रखकर उसने अपना निरीक्षण करना शुरू किया। ऊपरी बनावट बिल्कुल वैसी ही थी जैसी उसने छोटी लड़कियों, नन्हीं बच्चियों में देखी थी पर उन उभारों के नीचे उसे कोई छेद दिखाई नहीं दिया। उसने अपनी अँगुली से टटोला पर वहाँ कुछ नहीं था। फिर उसने एक पेंसिल लेकर उसका पीछे का हिस्सा वहाँ पर दबाया लेकिन वह वहीं रहा, अपितु थोड़ा और दबाने पर उसे दर्द अनुभव होने लगा। रो नी काँप उठी तब क्या उस लड़के ने जो कहा क्या वह सच है। वह लड़की नहीं है, वह औरत नहीं है। अब मैं फिर क्या हूँ? क्या इसीलिये मुझे माहवारी प्रारम्भ नहीं हुई? क्या मेरी भादी नहीं हो पायेगी? क्या मैं कभी माँ नहीं बन पाऊँगी? ओह-क्या मैं नपुंसक हूँ? पर फिर मेरी ऊपरी बनावट स्तन आदि तो ठीक है पर क्या अन्दर कुछ ठीक नहीं है, यह सब मुझे कौन बताएगा?" (4) अचानक एक दिन वह टी0वी0 पर स्टे फ्री सिक्वोर का विज्ञापन देखते हुए अपनी माँ सुधा से पूछ बैठती है कि लड़कियाँ इसका प्रयोग कहाँ करती हैं? तब उसकी माँ उसे मासिक रक्तस्त्राव के बारे में बताती है, तब उसकी बड़ी बहिन मंजुला भी कह बैठती है, "पर माँ मुझे तो ऐसा कुछ नहीं होता। नहीं हुआ तो हो जायेगा। किसी को जल्दी व किसी को देर से होता है, कहने को तो सुधा ने रो नी को यह कहकर चुप करवा दिया, पर एक डर मन-मस्तिष्क पर हावी हो गया। दोनों लड़कियों में से किसी को भी अभी तक मासिक स्त्राव आरम्भ नहीं हुआ था। रो नी तो खैर अभी पंद्रह वर्ष की है पर मंजुला तो सत्रह की होकर अठारहवें में लग गयी है। अठारह वर्ष की उम्र में ही मुझे भादी होते ही मंजुला गर्भ में रह गई थी। नहीं, अब कोई आलस्य नहीं करेगी। कल ही दोनों लड़कियों को लेकर गाजियाबाद दिखाकर लाना है।" (5) अगले दिन दोनों पति-पत्नी अपनी दोनों पुत्रियों के साथ डॉ0 रमन्ना के नर्सिंग होम पर पहुँचे। डॉ0 रमन्ना अनुभवी डॉक्टर थी। उन्होंने लड़कियों की केस हिस्ट्री ली व फिर उनकी जांच करने के बाद उन्हें अल्ट्रासाउण्ड कराने को कहा। "बीमारी के बारे में आपको अल्ट्रासाउण्ड के बाद ही नि चित तौर पर बता सकूँगी। क्योंकि कुछ मरीजों के बारे में हमारा परीक्षण ही हमें सही निर्णय करने में सहायक होता है, पर कुछ रोगों में हमें म पीन की सहायता लेना आव यक हो जाता है। अल्ट्रासाउण्ड के प चात् ही मैं विस्तारपूर्वक दोनों की बीमारी के बारे में बता सकूँगी। वैसे यह संयोग ही है कि मैं इतने वर्षों के बाद दो मरीज एक साथ वह भी दोनों बहने, एक जैसी विकृति से ग्रस्त देख रही हूँ।" (6) अल्ट्रासाउण्ड के बाद डॉक्टर ने दोनों बहनों के भारीरिक कमी को उनके माता-पिता के समक्ष रखा और उनका ऑपरे िन करवाने के लिये कहा, "आपकी दोनों बेटियों में भगवान ने कुछ कमी बनाई है, भारीरिक कमी बनाई है, भारीरिक तौर पर। मंजुला में भगवान ने गर्भा य, अण्डा य सब कुछ बनाया है पर उसकी योनि नहीं बनी है। मासिक स्त्राव बाहर निकलने का रास्ता प्रकृति ने नहीं बनाया है। हम ऑपरे िन द्वारा नकली योनि बनाकर इस कमी की पूर्ति कर देंगे, तब इसे हर महीने मासिक रक्तस्त्राव भी होगा। यह भादी भी कर सकेगी व इसके संतान भी उत्पन्न हो सकती है। ऑपरे िन के बाद इसमें कोई कमी नहीं रहेगी, पर छोटी लड़की रो नी को भगवान ने न तो गर्भा य बनाया है और न ही योनि बनाई है। इसकी भी हम कृत्रिम योनि तैयार कर सकते हैं। बाकी बाहरी स्त्रियोचित अंग इसके वैसे ही है। अतः यह पत्नी तो बन सकेगी पर माँ नहीं बन पायेगी और न ही इसके कभी मासिक रक्तस्त्राव होगा।" (7) रो नी ई वर को धन्यवाद

देती है कि भगवान ने उसे हाथ पैर आंखे आदि सभी अंग तो दिये हैं, इतना अच्छा मस्तिष्क दिया है, भारीर का एक ऐसा अंग ही तो नहीं है और फिर यदि वह भादी नहीं करेगी तो किसी को पता भी नहीं चलेगा। देखना, मैं एक दिन इस भाग्य को बदल दूंगी। कोई न कोई ऐसा कार्य करूँगी जो किसी ने न किया हो। फिर सब मेरी भारीरिक विकृति को ध्यान न देकर मेरे भाग्य की सराहना करते नजर आयेंगे। “धन्यवाद भगवान। तुमने मेरे ऊपर इतनी दया तो की कि मुझे ऐसी विकृति दी जो दिखाई नहीं देगी। यदि भगवान मेरी एक आँख छीन लेता तो सबको मैं कानी दिखाई देती या एक पैर से लंगड़ी होती तो सब मुझे लंगड़ी कहकर चिढ़ाते। अब कम से कम मैं देखने में तो ठीक-ठाक। सब लोग तो मुझे सुंदर ही कहते हैं, मैं क्यों परे पानी अनुभव करूँ।” (8) फिर दोनों बहनों का ऑपरे इन कर स्त्री रूप में दिया जाता है। पहले मंजुला का ऑपरे इन होता है, “प्लास्टिक सर्जन ने मंजुला की जाँघ से एक तेज धार वाले चाकू से उसकी पतली-पतली चमड़ी की परतें निकाली, व उन्हें सेलाइन के घोल में तैरा दिया गया। फिर उन्होंने बाह्य योनि के हिस्से में छेद बनाया व डिस्के इन द्वारा वे लोग गर्भा य के मुँह तक पहुँच गये, ज्योंही गर्भा य का मुँह योनि के खुलने पर संपर्क में आया कुछ महीनों से मासिक स्त्राव का इकट्ठा हुआ काले रंग का रक्त बाहर आ गया।” (9) ऑपरे इन की सभी आवश्यक विधियों को सम्पन्न करते ही सभी ने प्रसन्न मुद्रा में राहत की सांस ली।

फिर रो पानी का भी सफल ऑपरे इन होता है और उसे भी अधूरी स्त्री देह से मुक्ति मिल तो जाती है किन्तु मां बनने का एहसास फिर भी अधूरा रहता है। डॉ. रमन्ना कहती, “जितना हम कर सकते थे, उस कमी की पूर्ति करके एक योनि हमने बना दी है, पहले जाँघ से हमने स्किन की ऊपरी तह निकाली, जिस बाद में योनि के स्थान को डिसेक्ट करके उसे उस रॉ एरिया पर लगा दिया गया है। अब आप इसकी भादी कर सकेंगे, पर न तो मासिक स्त्राव इसे होगा, ना ही बच्चे।” (10) कुछ वर्षों बाद बड़ी बहन मंजुला का विवाह एक डॉक्टर विपिन से हो जाता है और उनके घर एक पुत्र का जन्म होता है पुत्र जन्म के समय मंजुला की माँ सुधा को बहुत चिन्ता होती है वह मंजुला का प्रसव डॉ. रमन्ना से ही करवाती है क्योंकि डॉ. रमन्ना ने ही मंजुला का ऑपरे इन किया था, “अब डॉ. रमन्ना को निर्णय लेना था कि मंजुला का नॉर्मल प्रसव करवाया जाये या ऑपरे इन से बच्चा उत्पन्न करवाए। उन्हें यही डर था कि नॉर्मल प्रसव करवाने में जो नकली योनि बनाई है उसमें पता नहीं मुख का संकुचन कितना होगा। प्राकृतिक योनि तो बच्चों को प्रसव देते समय पूरी तरह से फैल जाती है व प्रसव के पचात् अपने संकुचन गुण के कारण पुनः अपनी पूर्ववत् हालत में लौट आती है। चूंकि इस प्रकार केस चार-पाँच हजार में से किसी एक को होता है। अतः यह योनि किस प्रकार का व्यवहार करेगी, उसके लिये वे निश्चित नहीं थी। फिर उन्होंने मन ही मन ऑपरे इन करने का निर्णय लिया व मंजुला का सिजेरियन ऑपरे इन कर दिया।” (11) उधर रो पानी का कैरियर ग्राफ भी तेजी से ऊपर की ओर चढ़ता रहा। एकजीक्यूटिव, फिर असिस्टेंट मैनेजर, मैनेजर, ए.वी.पी., वी.पी., फंग इनल हैड आदि बनने के बाद आज वह ग्लेनमार्क कम्पनी की सी.ई.ओ. है। चौबीस वर्ष की उम्र में आई.आई.टी. देहली से इंजीनियरिंग, एमटैक व अहमदाबाद के प्रसिद्ध इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट कॉलिज से एम.बी.ए. करने के पचात् अपनी बुद्धिमत्ता व योग्यता के बलबूते पर ही आज वह इस मल्टीने इनल कम्पनी ग्लेनमार्क की सी.ई.ओ. बन गई। किन्तु फिर भी जैसे सांप अपनी केंचुली में बंद होता है वैसे ही उसने अपने आस-पास के लोगों से अलग-थलग एक आवरण में अपने को लपेट रखा है। कभी-कभी वह बहुत हताश होती है और रोने लगती है, “भगवान ने मेरे साथ कितना बड़ा अन्याय किया है। मुझे इतना अच्छा दिमाग दिया, सुंदर बनाया पर मेरे साथ यह पक्षपात क्यों किया? क्यों मुझे भारीर का एक अंग न देकर मेरा जीवन निरर्थक कर दिया? मैं पत्नी बनने का सुख पा सकती हूँ पर मैं किसी पुरुष को इसलिये स्वीकार नहीं कर पा रही हूँ कि मैं उसे बच्चा नहीं दे सकती। वैसे यह कोई बड़ी बात नहीं है, कई महिलाओं के बच्चे नहीं होते, उनके सब कुछ होता है, पर वे माँ नहीं बन पाती है, तो क्या वे जिंदगी का सुख नहीं मांगती। फिर मैं स्वभाव से इतनी अलग क्यों हूँ?” (12) यद्यपि रो पानी का ऑपरे इन सफल था किन्तु फिर भी वह अपने को पूरी स्त्री नहीं समझ पाती थी उसे हर पल अधूरेपन का एहसास होता था। इसी कारण उसने छत्तीस वर्ष की हो जाने पर भी भादी नहीं की थी। वह पुरुषों से हमेशा एक दूरी बनाकर रखती थी। एक दिन अचानक रो पानी की तबियत खराब होती है वह कई दिन ऑफिस भी नहीं गई। उसके ही ऑफिस का सहयोगी ओंकार पटेल उसकी देखभाल करता है। ओंकार मन ही मन रो पानी को पसंद करता था। एक दिन बीमारी के कारण रो पानी आँख बन्द करके चुपचाप लेटी थी, उसी निद्रित अवस्था में ही उसने पटेल का हाथ अपने सीने पर रखा। उसे उस समय लग रहा था, कि मानो ये हाथ उसकी माँ के हैं। पटेल ने इसको रो पानी की स्वीकृति माना और फिर मर्यादा के सब बंधन टूट गये। उनके भारीर एक हो चुके थे व रो पानी को अनुभव हो रहा था कि वह इतने बड़े सुख से अब तक वंचित क्यों रही? “आज रो पानी के अंग-अंग में खुशी झलक रही थी। उसका दिल कह रहा था कि वह बालकनी में खड़ी हो खूब

चिल्ला-चिल्लाकर कहे कि ओ कालोनी की महिलाओं, देखो-देखो, मैं भी एक सामान्य औरत हूँ। मैं भी तुम सब जैसी ही हूँ, मैं भी भादी कर सकती हूँ।" (13) फिर दोनों परिवारों ही सहमति से परिणय सूत्र में बंध जाते हैं। रोानी पत्नी बनने के बाद मां बनने का सुख भी पाना चाहती है। जिन स्त्रियों में भ्रूण नहीं होता है वे अन्य किसी स्त्री के भ्रूण में अपने पति का वीर्य स्थापित करवा कर भी अपनी स्वयं की संतान पा सकते हैं। रोानी भी सेरोगेट मदर से अपना बच्चा पाना चाहती है। इला सांवत नामक स्त्री को वे सेरोगेटेड मदर के रूप में पाते भी हैं, परन्तु उन्होंने उस स्त्री के साथ कोई वैधिक अनुबन्ध नहीं किया हुआ होता है और इला द्वारा बताई हुई परिस्थितियों पर भरोसा कर लेने के कारण उन्हें धोखा मिलता है। परिस्थितिवश उन्हें अपनी संतान जो कि एक लड़का था, नहीं मिलती है और वे अनाथालय से एक नवजात लड़की को गोद लेते हैं और अपना सुखी परिवार बनाते हैं।

इस तरह से हम कह सकते हैं कि अन्य उपन्यासों की तुलना में से यह उपन्यास चिकित्सीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसकी लेखिका स्वयं स्त्री रोग विशेषज्ञ है। भायद इसीलिये उन्होंने इस उपन्यास का रचना भी जन सामान्य को हिजड़ों की भाारीरिक संरचना समझने तथा हिजड़ों की अवसादपूर्ण जीवन में जागृति लाने के उद्देश्य से किया है। यह पुस्तक एक खास तरह के नजरिये के साथ पढ़े जाने की मांग करती है कि अगर थर्ड जेण्डर के लोगों को पारिवारिक तथा सामाजिक सहयोग प्राप्त हो तो वे लोग समाज के साथ कंधा मिलाकर चल सकते हैं।

सन्दर्भ सूची –

1. मैं भी औरत हूँ – अनुसूया त्यागी, प्रथम पृष्ठ
2. वही – पृष्ठ सं.-10, 11
3. वही – पृष्ठ सं.-14
4. वही – पृष्ठ सं.-17
5. वही – पृष्ठ सं.-18
6. वही – पृष्ठ सं.-19
7. वही – पृष्ठ सं.-21
8. वही – पृष्ठ सं.-29
9. वही – पृष्ठ सं.-26
10. वही – पृष्ठ सं.-29
11. वही – पृष्ठ सं.-49
12. वही – पृष्ठ सं.-57
13. वही – पृष्ठ सं.-60
14. हिन्दी उपन्यासों के आइने में थर्ड जेण्डर, डॉ. विजेन्द्र प्रताप सिंह



नारी की व्यथा- कथा का जीवंत दस्तावेज 'हलाला उपन्यास'

प्रा. सौ. कविता संदीप तळेकर

फ्लैट नं.104, डी विंग, दीप रेसिडेंसी,
सालईवाडा, सावंतवाडी,
ता. सावंतवाडी, जिला- सिंधुदुर्ग

समकालिन हिन्दी उपन्यास साहित्य में खूब उभरा हुआ नाम है भगवानदास मोरवालजी। जिन्होंने नव- नवीन विषयों को लेकर उपन्यासों का सृजन किया है। एक सजग कर्तव्यदक्ष साहित्यकार की जिम्मेदारी उन्होंने बखुबी से निभायी है। उनका प्रत्येक उपन्यास अछूते विषय का प्रमाण है। मोरवालजीने समाज के प्रति प्रतिबद्ध होकर साहित्य- सृजन किया है। सजिया सज्जाद जहीर कहती है कि यह तो असंभव है कि कोई शिक्षित और संवेदनशील साहित्यकार कलम उठाए और उन हालात से बेखबर रहे जो उनके चारों ओर गुजर रहे हैं। तलवार अगर जालिम के हाथ में जुल्म- जबर का प्रतीक है तो लड़नेवाले के हाथ में हक- इंसाफ का हथियार।

भगवानदास मोरवाल जी ने अपने कलम के जरिए समाज में उन तथाकथित रुढ़ियों, अंधश्रद्धाओं धर्म के आड में नारियों पर हो रहे अन्याय, अत्याचार को अपने साहित्य के जरिए वाणी प्रदान करने का प्रयास किया है। हाल ही में प्रकाशित उनका 'हलाला' यह उपन्यास में मुस्लिम समाज की नारी से सम्बन्धित 'तलाक' जैसी महत्वपूर्ण समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब कहा जाता है। किसी भी समाज को अगर अच्छी तरह से जानना पहचानना है तो साहित्य एक बड़ा माध्यम हो सकता है। बहरहाल भारतीय मुस्लिम समाज को भी यदि हमें अच्छी तरह से जानना समझना है तो साहित्य से दूजा कोई बेहतर माध्यम नहीं। डॉ. राही मासूम रजा का कालजयी उपन्यास 'आधागाँव' शानी का 'काला जल' मंजूर एहतेशाम का 'सूखा बरगद' और अब्दुल बिस्मिल्लाह का 'झीनी- बीनी चदरिया' आदि उपन्यासों में मुस्लिम समाज की आन्तरिक बुनावट उसकी सोच को आसानी से समझ सकते हैं।

धर्म के नाम पर स्त्री का शोषण उसके अधिकारों का हनन तो आम बात हो गई है। चाहे वह किसी भी धर्म में हो। संजय सहाय- अपने आलेख 'धार्मिक औरते' में लिखते हैं- सभी धर्मों में सबसे समर्पित भक्त महिलाएँ होती हैं, धर्म का सारा व्यापार कारोबार इनके भरोसे चलता है। लेकिन हर धर्म का संस्थापक और उसका परमपिता कोई पुरुष होता है। हम देख ही रहे हैं पितृ- सत्तात्मक समाज के कठोर पारिवारिक सामाजिक धार्मिक नियमों का पालन करने हेतु स्त्रियों को किस तरह विवश ही नहीं भयभीत किया गया है। यदि वे कथित नियमों का पालन नहीं करेंगी तो उनका लोक (मायके ससुराल) में ठौर नहीं मिलेगी अन्य ठौर दूँदूंगी तो कुलटा- कलंकिनी कही जाएँगी। बिगड़ेगा निर्जल व्रत, उपवास, भजन कीर्तन नहीं करेंगी साधू- संतो का चरणामृत नहीं लेंगी तो परलोक बिगड़ेगा। पुरुष नीति अनीति करने के लिए मुक्त है। लेकिन कुल की कीर्ति को बढ़ाने के लिए स्त्रियों का कर्तव्य है सीता ओर सावित्री बनकर रहे।

हमारा समाज स्त्री को मनुष्य के रूप में स्वीकार करे। इन तमाम धर्मों में मुस्लिम धर्मा के महिलाओं की स्थिति कुछ ज्यादा ही चिंताजनक और हास्यास्पद है। वो चाहे तलाक के रूप में हो, खतना के रूप में या फिर हलाला जैसी घोर निंदनीय प्रथा। इन तमाम रिवायतों को मुस्लिम महिला सदियों से ढोती आ रही है।

भगवानदास मोरवाल का 'हलाला' उपन्यास मुस्लिम स्त्रियों का मुस्लिम समाजद्वारा हुए शोषण को उन तमाम बारीकियों को उजागर करते हैं, जिससे स्वयं मुस्लिम स्त्रियाँ भी अपरिचित हैं। मुस्लिम समाज की 'हलाला' नामक बहुत ही सोचनीय रीति को भगवानदास मोरवाल जी ने उपन्यास का केंद्र बनाया।

'हलाला' यानी तलाक शुदा औरत किसी दु सरेमर्द से निकाह करे और फिर उससे तलाक या उसकी मौत के बाद ही वह पहले शौहर के लिए हलाल होती है। इसी का नाम हलाला है। अगर ऐसी औरत को अपने पहले शौहर के पास वापस लौटने के लिए दूसरे शौहर से निकाह के बाद उससे हम बिस्तर होना जरूरी है। दरअसल हलाला धर्म की आड में बनाया गया एक ऐसा कानून है, जिसने स्त्री को भोग्या बनाने का काम किया है। सच तो यह है कि हलाला मर्द को तथाकथित सजा देने के नाम पर गढ़ा गया ऐसा पुरुषवादी षडयंत्र है जिसका खामिजाया अन्ततः औरत को ही भुगतना पड़ता है। सजा भी ऐसी जिसे आदिम बर्बरता के अलावा कुछ न कहा जा सकता।

'हलाला' यह उपन्यास धर्म के नाम पर पुरुषोंद्वारा स्त्रियों पर होनेवाले शोषण को केंद्र में रखकर लिखा गया है। 'हलाला' मुस्लिम औरत के लिए क्यों आवश्यक है? क्या सिर्फ पुरुष ही तलाक दे सकता है औरत नहीं इन सभी प्रश्नों पर मोलवीवों और मुक्तिओं की अपनी अपनी राय है। इस बात को ठीक से समझने के लिए मुसलमानों की पारिवारिक स्थितियों के बारे में जानना बहुत जरूरी है। मुसलमानों में दो- दो, तीन- तीन औरते रखना साधारण सी बात है। फिर मुसलमान रिश्ते की बहनों में शादियाँ कर लेते हैं और अक्सर संयुक्त परिवार में रहना पसंद करते हैं। इसलिए पति-पत्नी में झगड़े होते रहते हैं और कभी पति गुस्से में आकर तलाक दे भी देता है। चूँकी स्त्रियाँ अल्ला की नजर में पैदायशी अपराधी होती हैं इसलिए कुराण में पति की जगह पत्नी को ही सजा देने का नियम है। यद्यपि तलाक देने के कई कारण और तरीके हो सकते हैं लेकिन सजा सिर्फ औरत को ही मिलती है। इसे विस्तार से प्रमाण सहित बतलाया गया है जो कुराण और हदीसों पर आधारित है।

अगर ऐसा मुस्लिम धर्मग्रंथों में है तो मानवीयता का पूरी तरह हनन किया गया है। देखा जाए तो हलाला का उद्देश्य पति- पत्नी सुलह करना नहीं बल्कि तलाक के बहाने मुस्लिम औरत वेश्यावृत्ति का शिकार हो रही है।

अपने पहले शौहर द्वारा तलाक दे दी गयी नजराना का उसके पड़ोसी व दू सरेमर्द डमरू यानी कलसंडा से हुए तथाकथित निकाह और इस निकाह के बाद फिर से तलाक देने की कौशिश के बावजूद नजराना को क्या उसका पहला शौहर नियाज और उसका परिवार उसे अपनाने के लिए तैयार हो जाएगा? हलाला उपन्यास में चित्रित नजराना एक ऐसी स्त्री को लिया है जो हस-मुख स्वभाव की है। इस तलाक का कारण डमरू को नसीबन इस प्रकार बताती है "वैसे यह सारा बीज या हरामी टटलू का बोया हुआ है। वाही की ही बेटा बहू पे गलत नजर। जब बहू काबू में न आयी तो ई अफवाह उडा दी के बाको चाल चलन ठीक न हो। ऐसा ढेड रावण सू हम कहान तलक बचती डोलें ई तो ऊ बात होगी के वही बहू को पीसनों वही की खाट आवे पिसनों, सत कत आवे खाटा"

हलाला उपन्यास की नजराना सीधे- सीधे पुरुषवादी धार्मिक सत्ता और एक पारिवारिक सामाजिक समस्या को धार्मिकता का आवरण ओढ़ा स्त्री के दैहिकी शोषण के खिलाफ बिगुल बजाने और स्त्री शुचिता को बचाये रखने की भरपुर कोशिश करती है।

भगवान दास जी के इस उपन्यास में एक नयापन दिखाई देता है, वह है मुस्लिम स्त्री चेतना। अगर स्त्रियों को लगातार दबाने की कोशिश की गयी तो वह अब शांत नहीं बैठेगी। आमना को जब उसका पति मारने की धमकी देता है। तब आमना जवाब इस प्रकार देती है कि "तू अबके हाथ तो लगा के देख..... दारी का ए कच्चो ना चबा आऊं तो।"

'हलाला' उपन्यास को पढ़ने से यह संकेत मिलता है कि स्त्रियों के अन्तर चेतना जगी है जो जवाब भी दे सकती है। उपन्यास में एक नया मोड़ तब आता है। जब हलाला के लिए किसी स्त्री को अनेक अंतरविरोधों का सामना करना पड़ता है। जिस में पहला है जिस घर में वह विवाहित रही है। दूसरा जहाँ वह हलाल होने जाती है और धर्म के ठेकेदारों द्वारा धर्म और शरीयत का हवाला देकर कई प्रकार से शोषण होता है। क्योंकि इन ठेकेदारों ने अपने सुविधा के लिए अब तक कई हलाला सेंटर भी खोल दिए हैं। जहाँ मनमाफिक धन उगाही करते हैं। साथ ही वह उनके मौजमस्ती का अड्डा भी होता है। क्योंकि हलाला के लिए सिर्फ दूसरा निकाह ही काफी नहीं है बल्कि उस वक्त तक औरत पहले शौहर के लिए हलाल नहीं हो सकती, जब तक वह दूसरे शौहर के साथ हम बिस्तर न हो। इन सबके बीच स्त्री कठपुतली बनकर नाचती रहती है।

यह कहां का नियम है जो गलती उसके पति ने तलाक करके किया उसका अंजाम स्त्री को भुगतना पड़ रहा है। फिर उसी घर जाने के लिए इतने जुल्म सहना होता है। लेकिन मजे की बात तो यह है कि जब दूसरे आदमी के साथ निकाह हो जाएगा तो स्थिति भिन्न हो सकने का डर बन जाता है। जैसे वह पुरुष अपने मर्जी से तलाक देगा। अब वह स्त्री कहीं की नहीं रह जाती है। वह कठमुल्लों दलालों और मौलवियों के बीच पिसती रहती है।

कल्लों जों अपने बहू का हलाला करवाना चाहती थी उसे जब मौलवीद्वारा जानकारी मिलती है कि उसकी बहू को हलाला करने वाले के साथ हमबिस्तर भी होना पड़ेगा तब वह भी उसे रखने को तैयार नहीं होती है। कल्लो का सर चकरा जाता है और कुछ समय के लिए उसका दिमाग काम करना बंद कर देता है। शौहर नियाजद्वारा बिना किसी जायज वजह के तलाक दी गई नजराना को उसके ससुरालवाले दोबारा बहू बनाकर अपने घर लाना चाहते लेकिन इसके लिए उन्हें शरिया कानून की वह शर्त पूरी करनी है जिसे हलाला कहा जाता है। इस शर्त को पूरी करने के लिए उनकी शादी करा दी जाती है। पड़ोस में रहनेवाले डमरू से चार भाईयों में सबसे छोटा डमरू अविवाहित है। काले रंग का होने के चलते उसे कलसंडा कहकर बुलाया जाता है। घर में उसकी ज्यादा कद्र नहीं है। तीन भाबियों में दो तो चाहती हैं कि उसकी शादी ही न हो ताकि जमीन जायदाद का एक और हिस्सा न करना पड़े। डमरू और नजराना का तलाक हमबिस्तर न होने के चलते नहीं हो पाता उन्हें एक और मौका दिया जाता है। अपने बच्चों के पास पहुँचने के मोहवश नजराना किसी तरह उसके लिए तैयार होती है, पर भोला- भाला डमरू इन्कार कर देता है। यह जरूर कहता है कि पंचों के सामने शर्त पूरी होने की बात स्वीकार कर लेगा।

जब हलाला की शर्त पूरी होने की बात पूरे गाँव में फैलती है तो नजराना की सास का उसे घर वापस लाने का इरादा बदल जाता है। लेकिन उसका पति नियाज उसे वापस लाना चाहता है। पंचों के सामने डमरू हलाला की शर्त पूरी करने की बात कहते हुए तलाक देने ही वाला होता है कि नजराना सबको शर्त पूरी न होने की बात बता देती है, साथ ही यह भी कि आगे वह डमरू के पास ही रहना चाहती है। वह पुरुषवादी सत्ता से कई तीखे सवाल पूछती है। उसकी ज्यादातियों को न सहने की घोषणा करती है। हलाला में स्त्री जीवन की नियति एवं उसकी कारुणिक स्थिति पर चिंता व्यक्त की है। पुरुष रचित एवं पुरुष समर्थक धार्मिक ग्रंथों की जकडन में नारी-जीवन पिसता जा रहा है। इस प्रकार भगवानदास मोरवाल जी ने विवेकपूर्ण यह सच्चाई बयान की है कि धर्म की आड में स्त्री को भोग्या एवं दसी बना दिया गया है। उसे जब चाहे तलाक दिया जा सकता है। बाह्य दृष्टि से हलाला मर्द को सजा देने की व्यवस्था है परंतु सजा भोगती है- स्त्री।

'जिंदगी परिवार, समाज आदि कोई नाटक नहीं है कि एक स्क्रिप्ट पर काम करना शुरू किया, कुछ दिन बाद नहीं पसंद आया तो दूसरा नाटक शुरू कर दिया या फिर एक नाटक खत्म हुआ तो दूसरे नाटक की तैयारी शुरू कर दे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि समाज में हलाला के आड में स्त्रियों का जबरदस्त शोषण किया जाता है। वह दो परिवारों के बीच पिसती रहती है। पहला वह जिस घर से पति के कारण अलग कर दी गयी। दूसरा वह जहाँ हलाल के लिए भेजी जाती है। अब यह कहा जा सकता है कि यह पुरुषवादी सत्ता और सामाजिक पारिवारिक

समस्या को धार्मिकता का आवरण ओढ़ा स्त्री के दैहिक के खिलाफ बिगुल बजाने और महिला शुचिता को बचाए रखने की कोशिश है। लेखक भगवानदास मोरवाल जी ने नजराना के माध्यम से मुस्लिम समाज के स्त्रियों की बदहाली को दिखाया है। इस समाज में न जाने कितनी नजराना जैसी स्त्रियाँ शोषण का शिकार हो रही हैं।

यह उपन्यास पाठक के सामने कई सवाल खड़ा करता है। अपने पहले शौहर द्वारा तलाक दे दी गयी नजराना का उसके पड़ोसी व दूसरे मर्द डमरू यानी कलसंडा से तथाकथित निकाह और यह निकाह के बाद फिर से तलाक देने की कोशिश के बावजूद नजराना को क्या उसका पहला शौहर नियाज और उसका परिवार उसे अपनाने के लिए तैयार हो जायेगा? हलाला की नजराना सीधे सीधे पुरुषवादी धार्मिक सत्ता और एक पारिवारिक सामाजिक समस्या को धार्मिकता का आवरण ओढ़ा स्त्री के दैहिक शोषण के खिलाफ बिगुल बजाने और स्त्री शुचिता को बचाए रखने की कोशिश का आख्यान है।

संदर्भ ग्रंथ :

- 1) उपन्यासकार भगवानदास मोरवाल- मधू खराटे
- 2) हलाला उपन्यास- भगवानदास मोरवाल
- 3) त्रैमासिक ई पत्रिका- अपनी माटी
- 4) हलाला धर्म की आड़ में मुस्लिम स्त्री के नायकीय जीवन की कथा- इन्द्रदेव शर्मा
- 5) www.apnimaati.com



हिंदी आत्मकथाओं में नारी विमर्श

प्रा. एम्. डी. नायक
शरदचंद्र पवार महाविद्यालय,
लोणंद, जि. सातारा

हिंदी साहित्य में आत्मकथा विधा अन्य विधाओं की तरह महत्वपूर्ण मानी जाती है। भारतीय स्तर पर दलित आत्मकथा लेखन की शुरुआत मराठी में हुई है। इस बात पर सभी समीक्षकों और लेखकों की सहमति है। सन १९९५ में प्रकाशित मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे' हिंदी की पहली आत्मकथा है। लेकिन ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' (१९९७) ने हिंदी दलित आत्मकथा को प्रतिष्ठित किया। इन दो आत्मकथाओं के अतिरिक्त कौसल्या बैसंत्री जी कि 'दोहरा शाप', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत', रुपनारायण सोनकर की 'नागफनी', नबेदुं महर्षी की 'मेरे जीवन की बाइबिल', डॉ. रमाशंकर आर्य की 'घूटन', सुशिला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' आदि आत्मकथायें महत्वपूर्ण मानी जाती हैं।

उपर्युक्त आत्मकथाओं में से सुशिला टाकभौरे जी की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' सन २०११ में प्रकाशित हुई। आत्मकथा के माध्यम से लेखक अपने जीवन की वेदनायें, यातनायें और कटू अनुभव विषद करता रहता है। सुशीलाजी की आत्मकथा एक दलित स्त्री की आत्मकथा है। एक दलित स्त्री के माध्यम से लेखिका ने अपने जीवन की यथार्थ सच्चाई और पुरुषी मानसिकता को उजागर करने का प्रयास किया है। आत्मकथा के प्रारंभ में लेखिका सुशिला टाकभौरे जी ने 'शिकंजे' का अर्थ बताया है। 'शिकंजा' यानी 'पंजा', जिसकी जकड़न में रहकर कुछ कर पाना मुश्किल होता है। शिकंजा याने कटघरा जिसमें कैद होकर बाहर आना कठिन हो। शिकंजे का अर्थ 'कोल्हू' भी है। लेखिका मनुवादी व्यवस्था के शिकंजे का शिकार हुई हैं। इस शिकंजे ने उसे जकड़कर रखा है। जिसका परिणाम पीड़ा, दर्द, झुंझलाहट, बेबसी आदि के सिवा कुछ नहीं। इस आत्मकथा में 'शिकंजा' लेखिका के पति के रूप में भी आया है। उनके पति ने जीवनभर उनको पीड़ा, दर्द, यातना के सिवा कुछ नहीं दिया।

पुरुषप्रधान समाजव्यवस्था में लेखिका के पति द्वारा उनका शोषण हुआ है। सुशिलाजी के पति उनसे २० साल बड़े हैं। पेशे से अध्यापक भी हैं। अध्यापक होते हुए भी भयंकर अहंकार और क्रोध उनकी विशेषताएँ हैं। छोटी-छोटी बात पर उनको मारते-पिटते भी हैं। लेखिका बचपन से सुसंस्कारित स्त्री थी। वह अपने पति को भगवान का दर्जा देते हुए उनकी हर आज्ञा का पालन करती हैं। पति के घर में एक कमरे में लगभग ७-८ लोग एक साथ रहते थे। लेखिका की स्त्री सुलभ इच्छा आकांक्षा, पति सुख उन्हें नहीं मिलता था, फिर भी लेखिका में संयम है। उन्हें पति से अपनापन, भावात्मक सहयोग नहीं मिला। वह पढ़ी-लिखी होते हुए भी पति पर परावलंबी हैं। कुछ दिनों के बाद पति के स्कूल में वह अध्यापक बनती हैं। उसके वेतन पर उसका अधिकार नहीं है। टिकट के लिए उसे पति से पैसे माँगने पड़ते हैं। उनके पति तटस्थ, निर्विकार रहते थे। इससे लेखिका अजीब-सा खालीपन महसूस करती थी। यहाँ पति-पत्नी में रिश्ता मालिक-नौकरानी जैसा था। स्कूल से आने पर पैर के जूते उतारने को कहना, मौजे उतारने को कहना आदि पति द्वारा आदेश भरा काम लेखिका को करना पड़ता था।

लेखिका के घर में पति के बाद उनकी ननद और सास लेखिका के प्रति ईर्ष्या रखते थे। एक बार उनकी ननद साफ शब्दों में कहती है कि "शीलाको हमारी सेवा करने के लिये लाए हैं।" उनकी ननद अपने भाई को उनको विरुद्ध भड़काकर झगडा करवाती रहती हैं। वह लगातार लेखिका पर जुल्म करती हैं। एक बार तो उनकी ननद ने उनपर चरित्रहीन होने का आरोप भी लगाया। ननद के शब्दों में — "कॉलेज में पढ़ी लड़कियाँ बदमाश होती हैं। कॉलेज के लड़कों के चक्कर में रहती हैं। पति अच्छा नहीं लगता।" इस प्रकार अनेक प्रकार के अन्याय, अत्याचार सहने के बाद लेखिका कुछ नहीं बोलती। लेखिका जब कॉलेज में अध्यापिका बनती हैं, तब उन्हें शोषण का एहसास होने लगता है। नागपुर में मराठी लेखिका कुमुद पावडे के संपर्क में आने से उन्हें एक नई दिशा मिलती है। वह विभिन्न सामाजिक आंदोलनों, चर्चाओं में भाग लेती हैं। आगे चलकर लेखिका प्राध्यापिका होने के साथ-साथ सामाजिक कार्यकर्ता भी बनती हैं, और अपने पर तथा अन्य महिलाओं पर होने वाले अन्याय, अत्याचार को उजागर करने का प्रयास करती हैं। इससे यह साबित होता है कि जब स्त्री शिक्षित होती है तो उसे हर बात का एहसास होता है। अतः शिक्षा ही समाज परिवर्तन का एकमात्र माध्यम है।

"शिकंजे का दर्द" इस आत्मकथा में सुशिला टाकभौरेजी की वेदना का चित्रण हुआ है। उन्होंने अनेक प्रसंगों द्वारा तथाकथित व्यवस्था का विरोध और विद्रोह भी किया है। साथ ही वह चाहती हैं कि समाज में व्याप्त जाति भेद, लिंगभेद समाप्त हो जाये। इसके लिए मनुद्वारा स्थापित विभिन्न दायरों को तोड़ना आवश्यक है। इस प्रकार प्रस्तुत आत्मकथा भारतीय दलित महिलाओं को पीड़ा, दर्द और यातनाओं से मुक्ति दिलाने के लिये प्रेरक का काम कर सकती है। इसमें कोई दोराय नहीं हो सकती। "शिकंजे का दर्द" यह आत्मकथा तमाम भारतीय महिलाओं को दर्द के शिकंजे से आज़ाद करने में सफल हो जायेगी।

आत्मकथा लेखिकाओं में कौसल्या बैसंत्री जी का नाम भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है। दलित आत्मकथा "दोहरा अभिशाप" का प्रकाशन सन २००९ में हुआ। "दोहरा अभिशाप" स्त्री संघर्ष की गाथा है। इस आत्मकथा में लेखिकाने अपने जीवन के लंबे संघर्षपूर्ण कड़वे-मीठे अनुभवों को जीवंत करने का प्रयास किया है। दलित समाज की सबसे महत्वपूर्ण कमजोरी शिक्षा का

अभाव है। लेकिन आज परिस्थितियों बदल गई हैं। आज दलित पुरुषों के साथ-साथ महिलायें भी शिक्षित हो रही हैं परिणाम स्वरूप अन्याय अत्याचार के खिलाफ बगावत करने के प्रेरणा शिक्षा से ही प्राप्त हो चुकी है।

प्रस्तुत आत्मकथा में लेखिका ने अपनी शादी के बारे में कहा है। लेखिका अपनी मर्जी से निर्णय लेती है। यह सब उनकी शिक्षा के कारण ही होता है। लेखिका अपनी पढ़ाई को लेकर हमेशा जागृत थी। उसमें उनके माता और पिता की भूमिका प्रधान थी। उनके माता-पिता ने अनेक समस्याओं को झेलकर अपने बच्चों को पढ़ाई के लिये प्रेरित किया था। लेखिका की शादी को लेकर उनकी माँ चिंतित नहीं थी। वह शादी का निर्णय लेखिका पर ही छोड़ती है। लेखिका जल्दी शादी नहीं करता चाहती थी लेकिन बढ़ती उम्र के कारण माता को परेशानी हो, लोगों के ताने न सहने पड़े इसलिये वह शादी करने का निर्णय लेती है। लेखिका को किसी लेखक, प्रोफेसर या वकील से शादी करके अपनी सामाजिक भूमिका अदा करनी थी, लेकिन एक दिन लेखिका का परिचय बिहार के रहनेवाले देवेंद्रकुमार बैसंत्री से होता है। देवेंद्रकुमार शादी-शुदा व्यक्ति थे। इसके बावजूद भी उनके द्वारा बार-बार पूछने पर लेखिका उनके साथ शादी करने का निर्णय लेती है। वैसे देखा जाय तो यह विवाह अंतर्धर्मीय विवाह था। लेकिन लेखिका जाति-पाँति-धर्म के बंधनों को तोड़कर यह निर्णय लेते हुए एक आदर्श उपस्थित करती है। लेखिका को अपनी बस्ती में शादी नहीं करनी थी, लेकिन माँ की खातिर वह बस्ती में ही शादी करानेवाले जज को बुलवाकर रजिस्टर मैरिज करती है। लेखिका की माँ बस्ती में ही शादी क्यों करना चाहती थी, इसकी भूमिका विषद करते हुए माँ कहती है —“हमारे उपर जो लोगों ने अत्याचार किया, हमारी प्रगति के मार्ग में काँट फैलाएँ वे बस्ती के लोग सोचेंगे कि दूसरी जाति में शादी कर रही हैं, इसलिए डरकर दूसरी जगह पर कर रही हैं। मैं उन्हें दिखाना चाहती थी कि मैंने कोई गलत बात नहीं की।” अतः माँ की भूमिका अच्छी थी लेकिन लेखिका की शादी के समय बस्ती के लोगों ने उनपर पथराव किया, जिससे उसके परिवार बहुत वेदनायें सहनी पड़ी। लेकिन इतना तो है कि उससमय आंतरांतीय और आंतरजातिय शादी करना भी दलित समाज में उतना आसान नहीं था, जो लेखिका ने करके दिखाया।

लेखिका ने शादी का जो निर्णय लिया था, उसके पीछे देवेंद्र का और उसका एक दूसरे के प्रति अमीव लगाव था। लेकिन आगे चलकर उसका यह निर्णय उसको बहुत महंगा साबित हुआ। लेखिका जीवनपर संघर्ष करती रही; शादी होने के बाद भी उसका संघर्ष खत्म नहीं हुआ। लेखिका का पति देवेंद्र अपने पति होने का फर्ज कभी अदा नहीं कर सके। उन्होंने लेखिका की भावना, इच्छा एवं खुशी की कभी भी कद्र नहीं की। लेखिका को एक-एक पैसे के लिए उसपर ही निर्भर रहना पड़ता था। घर में गलती से कोई मेहमान आता है, तो उसे चाय पिलाने के लिए भी घर में सामान लहीं रहता था। क्योंकि देवेंद्र सभी सामान अलमारी में बंद करके रखता था। जब लेखिका एक बच्चे की माँ बनने की स्थिति में थी, तब देवेंद्र अपने ही काम में मशगुल होकर दौरे पर निकल जाता है। पति का यह क्रूरतापूर्ण व्यवहार लेखिका को धक्का जैसा लगता है। ऐसी स्थिति में घर में काम करनेवाली स्त्री लेखिका को अस्पताल लेकर जाती है। लेखिका को लडका होता है। सुबह देवेंद्र के आने पर वह लेखिका को जनरल वार्ड से प्राइवेट वार्ड में शिफ्ट करता है और तीन रुपये रोज के हिसाब से तीस रुपये नौकर के पास देता है। लेखिका को जब होश आता है, तो उसे बताया जाता है कि उसके पति अपने काम से निकल गए हैं। ऐसे में अस्पताल का बिल २०० रु. बाता है, वो देने के लिए भी लेखिका के पास पैसे नहीं हैं। नौकर ही कही सं उधार लेकर पैसे जमा करता है और लेखिका को घर पहुँचाता है। अपने पति के इस दुर्व्यवहार से लेखिका क्रोधित होकर सवाल करती है कि —“क्या ऐसे पति से प्यार, श्रद्धा हो सकती है?” अतः एक बात साफ है नहीं चाहे बलित हो या सवर्ण, अन्याय अत्याचार के लिये उसीका इस्तेमाल समाज में बरसों से होता आया है। यहाँ लेखिका ने पुरुषी मानसिकता और प्रेम का ढोंग रचानेवाले पति महोदय पर करारा व्यंग्य किया है।

लेखिका कौसल्या बैसंत्री को सामाजिक कार्य करते हुए भी अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। लेखिका ने अखिल भारतीय महिला संस्था का मजबूत संगठन करने का निश्चय किया। इसी सिल-सिले में बाबासाहेब के एक निकट सहयोगी एवं प्रसिद्ध व्यक्ति के साथ उनकी मुलाकात हुई, लेकिन उस व्यक्ति ने लेखिका के साथ अभद्र व्यवहार किया, तब लेखिका ने उसे फटकार लगाई और दुबारा उसको घर न आने की चेतावनी दी। इसप्रकार लेखिका ने स्वयंवर होनेवाले अन्याय अत्याचार का विरोध तो किया ही है उसके साथ — साथ उनकी बस्ती में रहनेवाली महिलाओं पर होनेवाले अत्याचार को भी उजागर करने का प्रयास किया।

आज समाज में पुरुषी अहंकार ने नारी जीवन पूर्णतः ध्वस्त करने की ठान ली है। पुरुष जब अपराध करता है तो उसे सजा कोई नहीं देता, लेकिन नारी जब सिर्फ शक के घेरे में भी आती है तो उसे कड़ी से कड़ी सजा पुरुष देता है। बस्ती में रहनेवाला सखाराम भी इसी पुरुषी अहंकार का नमूना है। वह अपनी बेगुनाह पत्नी पर बदचारित्र्य का लांछन लगाता है। वह उसे अंधंगा करके गले में चण्डलों की माला पहनाकर, माथेपर सेद रंग की बिंदिया लगाकर उसे गधे पर बिठाकर पूरी बस्ती में घूमाता है। अतः उस औरत का अवमान, उसकी पीड़ा लेखिका अपने में देखती है। दलित समाज की नारी का भीषण दुःख, दर्द, शोषण आदि का चित्रण लेखिका ने अपने साहित्य में किया है। लेखिका का मानना है कि “सवर्ण और दलित पुरुषों की सोच में स्त्रियों को लेकर कोई इतर नहीं है। पुरुष प्रधान समाज औरतों का खुलापन बर्दाश्त नहीं करता। पति तो इस ताक में रहता है कि पत्नी पर अपने पक्ष को उजागर करने के लिए चरित्र हीनता का ठप्पा लगा दे। पुत्र, भाई, पति सब मुझ पर नाराज हो सकते हैं..... परंतु मुझे भी स्वतंत्रता चाहिए कि मैं भी अपनी बात समाज के सामने रख सकूँ।”

इसप्रकार लेखिका कौसल्या बैसंत्री ने ‘दोहरा अभिशाप’ इस आत्मकथा में खुद पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार के साथ-साथ अन्य दलित महिलाओं पर होने अन्याय को समाज के सामने रखने का प्रयास किया है।

सारांश :-

दलित आत्मकथाओं में आज तक पुरुष लेखक ही लिखते आये थे, कि उन्होंने किस तरह का जीवन भोगा है? लेकिन सुशीला टाकभैरे और कौसल्या बैसंत्री जैसी अनेक लेखिकायें भी अब लिख रही हैं कि दलित महिलाओं के साथ भी उसी तरह का जीवन आया है। शायद दलित लेखक अपने उपर होनेवाले अन्याय—अत्याचार को जितनी तन्मयता से लिखता है उतनी तन्मयता महिलाओं के साथ नहीं रख पायेगा; इसलिये दलित लेखिकाओं का उदय होना लाजमी है। सुशीला टाकभैरे ने पुरुषी अहंकार को 'शिकंजा' कहा है, तो कौसल्या बैसंत्री को नारी जीवन ही अभिशाप जैसा लगता है। कुल मिलाकर नारी संघर्ष की गाथा, छटपटाहट और आक्रोश उक्त लेखिकाओं की आत्मकथा में देखने मिलती हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

- १) इक्कीसवीं सदी के हिंदी साहित्य में स्त्री एवं दलित विमर्श — संपादक अशोक धुलधुले ।
- २) शिकंजे का दर्द — सुशीला टाकभैरे।
- ३) दोहरा अभिशाप —कौसल्या बैसंत्री।



मुस्लिम स्त्री विमर्श

डॉ.एस.जे.पवार प्राचार्य

प्रो. विद्या. एस. हिरेमठ एवं डॉ. के. ए. पाटील

बी.एल.डी.ई. संस्था श्रीमती बगारंम्मा सज्जन कला और वाणिज्य

महिला महाविद्यालय विजयपूर-586101 कर्नाटक

भारतीय समाज शादी के संस्कार को बहुत मानता है। माता-पिता तथा परिवारवाले चाहते हैं कि खास कर लड़की की शादी जल्द से जल्द निपट जाय, उन्हें की उम्र 22 हुई की नहीं तुरंत तब याने की लड़का देखने की प्रक्रिया चल पड़ती है। 25 तक किसी भी कीमत पर शादी हो जानी चाहिए। अगर नहीं हुई तो शक होने लगता है की लड़की में कुछ तो खोट है। इस्लाम धर्म की भी यह हालत है। लड़की बड़ी (बालिग) होते ही शादी की बात चलने लगती है। चाहें उसकी मर्जी हो या न हो। शादी दो व्यक्ति एवं दो परिवारों के बीच जुड़ने वाला आत्मीय संबंध है। पर समाज की कुछ कुरीतियों के कारण हमारे यहाँ इसका कुछ और ही रूप उभर कर आया है। लड़का जैसा भी हो शादी के बाद लड़की को उसका साथ निभाना ही पड़ता है। उसकी कमजोरी कमियों के साथ समझौता कर जीवन जीना ही पड़ता है। उसके पास दो रास्ते कभी नहीं होते हैं। सिर्फ एक ही रास्ते पर चलते रहना ही उसकी मजबूरी बन जाती है। पर 'शरियत' कुछ और ही कहता है।

इस धर्म ने औरतों को कई अधिकार से नवाजा है। 'शरियत' के अनुसार जब तक 'निकाह' में लड़की की मर्जी न हो तो या वह 'कुबूल' न करे तब तक उसका विवाह या निकाह नहीं माना जायेगा। निकाह के गवाह का भी महत्व है। इतनी पारदर्शिता दिखानेवाले निकाह के कई बार धोखा हो जाता है। कई बार लड़की की मर्जी के बिना निकाह हो जाता है। लड़की के बदले कोई भी हामी भर देता है। यहाँ सोचने की आवश्यकता है की ऐसा क्यों होता है? घरवालों की मजबूरी के कारण लालच के कारण भी ऐसी घटना अक्सर घट जाती है। उनकी घुटन उनकी तकलीफ उस अल्लाह को ही प्यारी होती है।

समाज में धर्म दिखाई नहीं देता। बल्कि धर्म में ही समाज घुल मिल गया है। मुसलमान धर्म ने औरतों को नूर माना है। पर उनके प्रति और ज्यादा अश्वस्थ होने की आवश्यकता है। फिर भी बदलाव की लहर उनकी ओर भी बहती आ रही है। शिक्षा का महत्व, अर्थात् जन की इच्छा ने स्त्रियों को चार दीवारी से बाहर निकाल दिया है। आज स्त्री अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाने का प्रयत्न कर रही है।

मुसलमान स्त्रियाँ कुछ बेहद पढ़ी लिखी हैं, तो दूसरी ओर पर्दे के पीछे रहकर घुटती जा रही है। शादी करना, झाड़ू-बर्तन में अपना जीवन बिता देना, हर साल एक बच्चा जनना यही कार्य हुआ है। मुसलमान परिवार के पुरुषों को अगर देखें तो कुछ लोग बदलाव चाहते हैं। पर आवाज उठाने से हिचकिचाते हैं। गुनाह का एहसास करवाया जाता है।

समाज से अलग कर दिया जाता है, समाज से अलग कर देने का डर ही शायद उस आवाज को दबा देता है। मुस्लिम परिवार का यह दूसरा बदला हुआ पहलू भी है। पिता बेटियों को प्यार दु लार के साथ पढ़ाने-लिखाने में और जीवन में बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। भाई अपनी बहनों को हर संघर्ष से बाहर निकालने का प्रयत्न करते हैं। पति स्वयं के साथ पत्नियों को भी समान अधिकार भी देते हैं, और उनके सम्मान को भी ऊँचा रखने का प्रयत्न भी करते हैं। पर जहाँ बदलाव नहीं है वहाँ विरोध भी नहीं है। अपने सारे गुणों को सीने में दफन कर शादी को निभाने में और बच्चों को जन्म देने में अपना जीवन भूल जाती है।

ऐसे कई प्रश्न हैं जिनके उत्तर न के बराबर हैं। पर प्रगति भी आवश्यक भारतीय मुस्लिम स्त्रियों की दशा क्या है? अब समय की माँग है की अब इसके बारे में विचार करें। हर सिकके के जैसे दो पहलु होते हैं, वैसे ही एक अच्छा दूसरा बुरा होता है। हमने बुरे पहलू का विवेचन किया है। अब उसके अच्छे पहलू का विवेचन बाकी है। महिलाएँ आज शोषण के खिलाफ आवाज उठाती हैं। इतना ही क्यों पतियों के नाम पर रोना नहीं रोती। खुद कमाकर अपना और परिवार का भार उठा रही हैं। उदाहरण के लिए समाजसेविका कमरुन्निसा ने दिल्ली की दस्तकार महिलाओं का जीवन सँवारा है। स्त्री का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं वह हर धर्म की 'बन्दिनी' है। दहेज के नाम पर शोषण आम बात है। आजादी के बाद मुसलमान परिवारों को दो हिस्सों में बाँट दिया गया। एक पढ़े-लिखे, जो संविधान को अच्छी तरह से समझते थे। दूसरा वर्ग कोल्हू के बैल की तरह ही पिसता दिखाई देता है। इसका निवारण कैसे किया जाये। हमारी प्राथमिक शिक्षा मजबूत हो। इसकी शुरुवात हर घर से होना आवश्यक है। धर्म का विरोध कर उस धर्म के गुणों को उभार कर उसे सही मार्ग पर ले जाने में ही बुद्धि मानी जाती है। यह हर धर्म, समाज व्यक्ति के लिए कह सकते हैं। सब कुछ अच्छा नहीं हो सकता बुरे की भी आवश्यकता है।

सब अच्छा ही रहा तो हम मनुष्य नहीं बनना अल्लाह या ईश्वर की उपाधि प्राप्त कर लेंगे।

नासिरा शर्मा का एक और चर्चित उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' (1989) मुस्लिम समाज की उस सच्चाई को उजागर करता है जहाँ स्त्रियों की स्थिति अपमानजनक और बदतर दिखाई पड़ती है। लेखिका इस उपन्यास में यौन समस्याओं के साथ-साथ जीवन के अनेक प्रश्न उठाया है। जो आज अनेक समस्या स्त्रियों का रास्ता रोकती है। जिसमें नायिका महरूख की दास्तान के माध्यम से दो खिड़कियाँ खुलती हैं,

जिनके छोटे-छोटे दुःख भी विचलित कर देती है। एक तर्फ एक परम्परा मुस्लिम परिवार तथा टकराव देखने मिलता है। परिवेशों गुजरती नायिका महरूख दुनिया की सच्चाई सत्य समझ आती है। तथा अकेला कर देती है एवं महरूख सशक्त ढंग से खड़ी होती है।

नासिरा शर्मा के इस उपन्यास में पुरुषवादी विचारधारना देखने मिलती है। पुरुषों की सोच औरतों के प्रति देखने मिलती है। महरूख के जन्म उसके परिवार में सुख तथा कई पुत्रों से लडकी पैदा नहीं हुवी थी महरूख के जन्म से परिवारवाले खुशी से झूमने लगते हैं, महरूख को बड़े लाडसे पालन पोषण होता है, महरूख का रिश्ता उसके खाला का लडका (रफत भाईजान) से तय होता है। उसकी ठीकरी की मंगनी हो जाती है। रफत मियां महरूख को दिल्ली ले जाता है वहा किसी को नहीं बताता की उसकी मंगनी महरूख से हुवी है उसकी भावी पत्नी महरूख है, इसके बदले रफत मियां महरूख को अपनी कजिन बताता है। दिल्ली में रफत पी.एच.डी. पढता है, महरूख को दिल्ली का वातावरण पसंद नहीं आता फिर भी अपने भावी पति रफत के लिये महरूख दिल्ली के रंग में रंगती है, महरूख रफत के साथ आगे की जीवन के बारे में सोचने लगती है शादी के सपने बुनती है। उसी वक्त रफत की पी.एच.डी. खत्म हो जाती है वह अमेरिका चला जाता है। कुछ दिन के बाद पता चलता है की एक विदेशी लडकी के साथ रहते है। महरूख टूट जाती है, उदासी जीवन जीने लगती है। महरूख अपने गाँव वापस चली आती है, एक अच्छी शिक्षिका बनती है। अपनी जिंदगी से आनेवाले पीढियों को एक बड़ी सिख और साहस देती है। महरूख के जरिए नासिरा शर्मा जी ने इस उपन्यास में स्त्री पुरुष की मन की बाते दोनों का फर्क समझाया है।

एक स्त्री मन के रिक्त स्थान को बड़े ही मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। औरत को कैसा होना चाहिए उसी की कहानी इस उपन्यास में समझाया गया है। नासिरा शर्मा जी महरूख के जरिए स्त्री को बता देना चाहती है की कोई भी रिश्ता समझौते की बुनियाद पर नहीं टिकता और इस बेस कीमती जिंदगी का सिर्फ एक के लिए खत्म करना ये नासमझी ही नहीं जुर्म भी है। हमें मर्द नहीं बनना है, न ही मर्द को औरत बनाना है। जरूरत है अपनी-अपनी जगह खड़े होकर अपने आपको समझने और दूसरे को समझाने की। याद रखो इंसान की जिंदगी एक बार मिलती है किसके लिए खत्म मत करो। आज कल समय में अनेक स्त्रियाँ अपना जीवन संघर्षात्मक ढंग से जी रही है। आज दहेज के कारण अनेक स्त्रियाँ अपनी जान दे रही है। कामकाजी स्त्रियाँ यौन उत्पीड़न से गुजरती है। हर क्षेत्र में स्त्रियाँ सुरक्षित नहीं है। स्त्री के साथ बलात्कार भी होता है उसके साथ-साथ वह कौमार्थ तथा सतीत्व ढंग की क्षति ही नहीं सहती बल्कि गहन भावनात्मक दशा मानसिकता झेलती है। हमारे समाज में अधिकार पुरुषों को है और कर्तव्य स्त्रियाँ निभाती है।

गीतांजलि श्री अपने उपन्यास भाई में लिखती है की एक पत्नी अपने पति के लिये लंबी उमर के लिये व्रत रखती है, उसकी नफरत प्रेम दोनों सहती है। फिर एक पति अपने पत्नि के लिये क्या करता है? प्रेम तथा अपनापन एक औरत एक पुरुष को देती है, पर पुरुष स्वार्थ की जिंदगी जिता है। आज कल की स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी है आर्थिक रिती से सशक्त भी है, फिर भी समाज में पुरुषों की मानसिकता बदलनी चाहिए।

संदर्भ सूची-

1. साहित्य के नये प्रतिमान-पृ.क्र.95,96,97
2. ठीकरी की मंगनी-नासिरा शर्मा संस्मरण-2010
3. स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास सम्पादक.डॉ.संजय गर्ग, संस्मरण-2014
4. http://www.rachanakar.org/212/02/blog_post
5. http://www.opnimaat.com/2013/11/blog_post

‘हलाला’ उपन्यास और मुस्लिम नारी विमर्श

प्रा. संपतराव सदाशिव जाधव
जयवंत महाविद्यालय, इचलकरंजी
त. हातकणंगले, जि.कोल्हापुर

किसी भी साहित्यकार का व्यक्तित्व एवं उसका कृतित्व सदैव सम्पन्न रहता है। साहित्यकार के कृतित्व पर उसके परिवार एवं परिवेश का प्रभाव होता ही है। अतः साहित्यकार के व्यक्तित्व का परिचय आवश्यक हो जाता है— “किसी की रचना पढ़ते समय जब हम लेखक के व्यक्तित्व से परिचित नहीं रहते तब उसका साधारण और व्यावहारिक अर्थ ही ग्रहण करते हैं, किंतु उससे परिचय प्राप्त करने पर उसकी रचना के अर्थ और प्रभाव में बहुत कुछ अंतर पड़ जाता है। मस्तिष्क की क्रिया में एक सजीवता आ जाती है।”¹ इसलिए भगवानदास मोरवाल के ‘हलाला’ उपन्यास का अध्ययन करने के पूर्व उनके व्यक्तित्व से परिचित होना अधिक समीचीन होगा। भगवानदास मोरवाल का व्यक्तित्व परिवेशगत स्थिति से निर्मित हुआ है। हिंदी के सुप्रसिद्ध आलोचक—शिखर डॉ. नगेंद्र का मत यह है कि “प्रत्येक साहित्यिक कृति का संबंध कृतिकार के व्यक्तित्व से है। कृतिकार का अपना रागात्मक जीवन और उसके आधार पर निर्मित जीवन—दर्शन कृति में अनिवार्यतः प्रतिफलित होता है। यह प्रतिफलन प्रत्यक्ष हो यह आवश्यक नहीं है। प्रायः यह अप्रत्यक्ष और प्रच्छन्न ही होता है।”² व्यक्तित्व का निर्माण परिवार के परिवेश से होता है। यह सामाजिक परिवेश पर निर्भर रहता है।

भगवानदास मोरवाल स्वभाव से सरल है। उदारता, उदात्तता, सादगी, विनयशीलता एवं मधुरभाषिता उनके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उन्होंने साहित्य—लेखन की प्रेरणा के संदर्भ में लिखा है कि मैं क्यों लिखता हूँ ? शीर्षक से अपना मत है, “मैंने तो एक लेखक के रूप में जो भी सीखा है या लिखा—पढ़ा है वह गैर पारंपरिक रूप से सीखा है। इसलिए मेरे लेखन में जो खुरदरापन परिलक्षित होता है वह एक ऐसे समाज का खुरदरापन है, जो इसकी तासीर के रूप में जाना जाता है। यानी — ‘ई है मेवात पहले घूँसा पीछे बात।’ मगर इस तासीर में वह मुलामियम भी छिपी हुई है जिसने मुझे लिखने के लिए प्रेरित किया। मेरी सबसे पहली पाठशाला मेरा यही लोक है। जिने मेरे शब्दों को तपाया। सबसे पहली मेरी वैचारिक प्रयोगशाला मेरी वह जाति है जिसे इस पृथ्वी का आदि कलाकार कहा गया है।”³ समकालीन हिंदी कथा—साहित्य में भगवानदास मोरवाल की एक विशिष्ट पहचान है। उन्होंने अपने कथा—साहित्य में मेवात की लोकसंस्कृति को आधार बनाते हुए अपनी लेखनी चलाई है। मेवात परिवेश में ‘काला पहाड़’ एवं ‘बाबल तेरा देस में’ तो कभी कंजर जाति को दृष्टिकोण में रखकर लिखा गया उपन्यास ‘रेत’। गत कुछ वर्षों से भारत में तेजी से पनपी एनजीओ संस्कृति का लेखा—जोखा प्रस्तुत करता ‘नरक मसीहा’ तथा हाल ही में प्रकाशित धर्म की आड़ में होनेवाले नारी—शोषण का वृत्तांत प्रस्तुत करता ‘हलाला’ उपन्यास है। लोकसंस्कृति एवं गाँव—देहात का सूक्ष्म एवं मार्मिक चित्रण उनके उपन्यासों की प्रमुख विशेषता रही है। इसीलिए उनके उपन्यासों में मेवात के ग्राम—जीवन का यथार्थ चित्रण परिलक्षित होते रहता है।

इस्लाम धर्म —

इस्लाम अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ ‘शांति में प्रवेश करना’⁴ होता है। अतः मुस्लिम वह व्यक्ति है जो ‘परमात्मा और मनुष्य के साथ पूर्ण शांति का संबंध’⁵ रखता है। अतएव, इस्लाम शब्द का लक्षणिक अर्थ होगा वह धर्म जिसके द्वारा मनुष्य भगवान की शरण लेता है। मनुष्यों के प्रति अहिंसा एवं प्रेम का बर्ताव करता है।

इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब थे, जिनका जन्म अरब देश के मक्का शहर में सन 570 ई. में हुआ था। इस्लाम धर्म के मूल कुरान, खुन्नते और हदीस हैं। कुरान वह ग्रंथ है जिसमें मुहम्मद साहब के पास ईश्वर के द्वारा भेजे गए संदेश संकलित हैं। हजरत मुहम्मद के जरिए भगवान का संदेश पृथ्वी पर पहुँचा, इसलिए वे पैगंबर कहे जाते हैं। मुहम्मद साहब रसूल हैं, क्योंकि परमात्मा और मनुष्यों के बीच उन्होंने धर्मदूत का काम किया।

‘ला इलाह इल्लल्लाह मुहम्मदरसूलल्लाह’ यह इस्लाम का मूल मंत्र है। जिसका अर्थ होता है— “अल्लाह के सिवा और कोई पजनीय नहीं है तथा मुहम्मद उसके रसूल हैं।”⁶ केवल अल्लाह को मानने से कोई मनुष्य पक्का मुसलमान नहीं हो सकता, उसे यह भी मानना पड़ता है कि मुहम्मद अल्लाह के नबी, रसूल और पैगंबर हैं। इसके बाद कुरान हर मुसलमान के लिए पाँच धार्मिक कृत्य निर्धारित करता है— कलमा पढ़ना, नमाज पढ़ना, रोजा रखना, जकात और हज।

मुस्लिम परिवार —

सामाजिक संस्कार—संस्कार मनुष्य द्वारा अपने बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक एवं धार्मिक विकास—परिष्कार के लिए की जानेवाली धार्मिक क्रिया है। मनुष्य का आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन विकास

विविध संस्कारों की संपन्नता से ही होता है। इस्लाम ने भी अन्य धर्मों की तरह इन सामाजिक संस्कारों का अपना महत्व प्रतिपादन किया है। सतवाँ, जन्मोत्सव, चिल्ला, अकीकह, खतना, शिक्षा, निकाह आदि।

निकाह मुस्लिम समाज की व्यवस्था व सुचारुता के लिए इस्लाम धर्म में निकाह को मुसलमान का आधा ईमान बताया है। समाज में भी विवाह का अपना विशिष्ट महत्व है— “तीन बातों के लिए देर मत करो— एक नमाज वक्त हो जाने पर पढ़ लेने में, दूसरी— शव (मृतक) को दफन करने में और तीसरी लड़की या लड़का युवा हो जाय तो उसकी शादी करने में।”⁷ हर मुसलमान मर्द—औरत से दांपत्य जीवन व्यतीत करने की आशा की जाती है।

तलाक (विवाह—विच्छेद)—

प्राचीन सभ्यता के आधार पर तलाक का अर्थ होता है—“खारिज करना या समाप्त करना। मुस्लिम समाज में तलाक के लिए कुरान शरीफ व हदीसों में खुदाई आदेशों का स्पष्ट निर्देश दिया गया है।

भगवानदास मोरवाल द्वारा रचित ‘हलाला’ उपन्यास में धर्म की आड़ में किए जानेवाले स्त्री—शोषण का वर्णन अंकित है। अपने गहरे कथात्मक अन्वेषण, लोक विमर्श और एक अनोखे विषय को दृष्टि में रखकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है। मोरवाल उपन्यास लिखने के पूर्व शोधात्मक कार्य करते हैं। कुरान की आयतों, मुस्लिम लों के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया यह उपन्यास एक अनुसंधानात्मक कार्य का परिणाम है। मोरवाल के पूर्व राही मासूम रजा एवं शानी जैसे उपन्यासकार हो चुके हैं। जिन्होंने मुस्लिम बिरादरी को दृष्टि में रखकर उपन्यासों का सज्जन किया है। उपन्यास ‘हलाला’ मेवाती लोक गंध को अपने भीतर समेटे हैं। इसमें उपन्यासकार विवाह संबंधों में हलाला जैसे विधान की चिंता में डूबे स्त्री—पुरुष संबंधों की व्यवस्था पर व्यावहारिक और यथार्थ संकट को प्रस्तुत करता है और मेवात क्षेत्र में रहनेवाले इस्लाम मतानुयायी मेव समुदाय की अपनी जीवनचर्या में हलाला जैसे विधान को परखता है।

धर्म के नाम पर स्त्री का शोषण, उसके अधिकारों का दमन करना आम बात हो गई है। वह दुनिया के किसी भी मजहब में हो। विशेषतः यह है कि महिलाओं पर इस प्रकार उटपटांग रिवायतों को जोर—जबरदस्ती लादा जा रहा है। इन्हीं रिवायतों को महिलाएँ स्वीकार करके आत्मसात करती हुई दिखाई देती हैं। मुस्लिम महिलाओं को आज भी डेढ़ सौ साल पुरानी रीति—रिवाजों को आत्मसात करना पड़ रहा है। वह चाहे तलाक के रूप में हो, खतना के रूप में हो, या फिर ‘हलाला’ जैसी घोर निंदनीय प्रथा के प्रति हो। इन तमाम रिवायतों की मुस्लिम महिलाएँ सदियों से स्वीकार करती आ रही हैं। भले ही दुनिया बहुत आगे बढ़ चुकी हो परंतु मुस्लिम महिलाओं की स्थिति आज भी ज्यों की त्यों टिकी हुई है। हालाँकि यह भी कहा जाता है कि “शरीयत स्त्री को इस्लाम में तमाम अधिकार दिए गए हैं। ऐसा वास्तव में है भी किंतु ये अधिकार कभी अमल में लाते हुए दिखाई दिए नहीं। अर्थात् ये सारे महिला अधिकार सिर्फ धर्म ग्रंथों तक ही सीमित होकर रह गए हैं। इन अधिकारों को व्यवहार में लाया नहीं गया। बल्कि मुस्लिम महिला को बताया तक नहीं कि उसे कुछ अधिकार भी मुहैया कराए गए हैं।”⁸ अगर वह अपने अधिकारों के बारे में जान लेगी तो कल अधिकार माँगने को खड़ी भी हो जाएगी। शायद यही वजह है कि आज के समय में यदि देखा जाय तो महिलाओं के प्रति देखने का दृष्टिकोण बदल जाएगा। सबसे खराब दृष्टिकोण मुस्लिम महिलाओं के प्रति ही है। हलाला निकाह मुस्लिम महिला शोषण की ही अगली कड़ी है।

वास्तव में ‘हलाला’ शब्द हलाल से बना है। जिसका अर्थ है ‘वैध’। दूसरे शब्दों में बता सकते हैं कि हलाल शब्द ‘हराम’ का विलोमार्थी शब्द है। हराम का अर्थ हुआ जो चीजें वर्जित हों और जो ना वर्जित हो उसे हलाल कहते हैं। इसी शब्द से निर्माण हुआ हलाला। तलाक के पश्चात् पत्नी को पति पर हराम मान लिया जाता है। इसी वजह से स्त्री को दोबारा ‘हलाल’ बनाने के लिए उसे ‘हलाला’ (वैधता) जैसी अग्नि—परीक्षा देकर अपने—आपको सिद्ध करना पड़ता है कि वह पुनः निकाह के लिए तैयार है। हालाँकि इस प्रथा का कोई ठोस आधार और कहीं कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नहीं मिलती है।

हलाला इस्लाम धर्म की एक ऐसी प्रथा है जो काफी निंदनीय कही जा सकती है। इसमें एक तलाकशुदा पत्नी को अपने पति से पुनः निकाह करने के लिए उससे पहले किसी दूसरे व्यक्ति से निकाह करना पड़ता है। इतना ही नहीं उसके साथ रात भी गुजारना पड़ती है। जैसे एक उदाहरण से स्पष्ट होता है कि “हजरत आयशा से रिवायत है कि ह. रफा करवी की पत्नी मोहम्मद स. के पास आकर बोली कि मैं रफा के पास थी तो उन्होंने मुझे तलाक ए बिता दे दी। पर उनके बाद मैंने अब्दुर्रहमान बिन जुबैर से शादी कर लिया और उनके पास ही हूँ। मगर कपड़े के फुनगे की तरह। मोहम्मद साहब ने कहा— क्या तुम रफा के पास जाना चाहती हो ? रफा की पत्नी ने कहा ‘हाँ’ तबि मो. साहब ने कहा— यह नहीं होगा जब तक तुम उसका और वह तुम्हारा जायका ना चख ले।”⁹ स्त्री निर्दोष होते हुए भी कालचक्र गति में उसे फसना ही पड़ता है, और काल का ग्रास महिला को ही बनना पड़ता है।

उपन्यास का कथ्य दो परिवारों में विभाजित है । एक परिवार है जमाल खाँ, कमाल खाँ, नवाब खाँ और उनकी बीवियाँ नसीबन, फातिमा और आमना है। दूसरा परिवार है खुदाबक्श, उसकी बीवी नजराना। नजराना उपन्यास की केंद्रीय पात्र भी है। उसके अतिरिक्त अन्य पात्रों में डमरू सीधा-सादा, परिश्रमी परंतु उपेक्षित है उसे कलसंडा नाम आहत करता है। उसका रंग-रूप काले सांड की तरह है ।

घर में सबसे ज्यादा चालाक आमना है । वह नहीं चाहती कि डमरू की शादी हो जाय, उसने फातिमा को हिदायत दी कि अगर घर में चौथी बहू ब्याहकर आती है तो जमीन-जायदाद में से उसको भी बटवारे का हिस्सा देना पड़ेगा। अभी हमारे कूल मिलाकर सिर्फ तीन ही हिस्से हैं। वे आगे चलकर चार हो जाएँगे। इस बात पर आमना एवं फातिमा विचार विमर्श करने लग जाती हैं कि चौथा हिस्सेदार न पैदा हो। डमरू उमर-दराज इन्सान हैं । इस उम्र में तो कोई लड़की इसे मिलेगी नहीं और मिल भी गई तो इसके पास रुकेगी नहीं । तभी आमना ने आशंका व्यक्त की कि डमरू में क्या कमी है। थोड़ा रंग-रूप नहीं है । बल्कि सबकुछ ठीक-ठाक है ।

उपन्यास कथावस्तु में कौतुहलता बनाए रखने के लिए कथा को खुदाबक्श के परिवार की ओर मोड़ देते हैं। खुदाबक्श उर्फ टहलू सेठ की बिचली बहू पर यह पंक्तियाँ सही मायने में बैठती हैं कि "थान पुराणों घी नयो और कुटुम-परिवार। उनको टोटो कहा करे, जिनकी हँसती पावें नाट ।"¹⁰ सुख हो या दुःख हारी हो या बीमारी यानी कैसे भी हालात हो, नजराना सदैव हँसती-मुस्कुराती रहती हैं। किसने उसके चेहरे पर उदासी नहीं देखी।

हलाला उपन्यास में भी यही सलाह दी गई कि नियाज के छोटे भाई अकरम से निकाह करवा दिया जाए । परंतु यह शंका व्यक्त की वह तो पहले से ही बाल-बच्चेदार और परिवारवाला है। तब यह रास्ता खोजा गया कि उसका निकाह स्थायी रूप से नहीं किया जा रहा है वह कुछ समय के उपरांत तलाक भी दिया जाएगा। संपूर्ण गाँव में चर्चा का विषय रहा है। अंतिम समय यह निर्णय लिया गया कि नजराना का विवाह कालसंडा अर्थात् डमरू से करवा दिया जाए तो बेहतर होगा। कल्लो ने नसीबन से जाकर यह बात कि 'अपणा डमरू कुछ दिनों के लिए उधार दे दे। उस समय नसीबन को समझ नहीं आ रहा था कि उधार देने का मतलब क्या है। तब कल्लो संपूर्ण बात को समझाते हुए कहा कि उनकी बहू नजराना का निकाह डमरू से करवा दे। पंद्रह-बीस दिन के पश्चात् उनका डमरू वापस लौटा दिया जाएगा। पड़ौसी खुदाबक्श और कल्लो की बात को उसका परिवार टाल नहीं सका । अब उसी की राह देखने का काम चल रहा था। डमरू अब गाँव का 'हिरो' बन चुका था- जिस दिन से डमरू जमाव से आया है, उसी दिन से उसे महसूस हो रहा है कि आसपास से गुजरती निगाहें मानों उसकी देह में घूसी जा रही हैं। उसकी समझ में नहीं आ रहा है कि आखिर ऐसा क्या है जिसे मोहल्ले की आँखें उसमें तलाश रही हैं। हारकर उसने अपने उसी आईने का सहारा लिया जिसे जमाती होने के बाद लगभग त्याग दिया था ।"¹¹ डमरू तो नजराना से मेरा निकाह हो रहा इस बात से बिल्कुल अनजान था । इसके बाद डमरू को एक बार पुनः सभी ने समझाया। अंत में डमरू को यह निकाह कबुल करना पड़ा ।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि इस्लाम में धर्म के नाम पर प्रायः ऐसी रिवायतें जन्म लेती रहती हैं । जो पूरी तरह पितृशक्ततात्मक इंतजाम की ओर संकेत करती हैं। उपन्यासकार ने हलापा उपन्यास के माध्यम से स्त्री-जीवन की नियति एवं उसकी त्रासदी का कारुणिक स्थिति पर चिंतन व्यक्त किया है । पुरुष रचित एवं पुरुष समर्थक धार्मिक ग्रंथों की जकड़न में नारी का जीवन पिसते हुए गुजरता है । इस पर बुद्धिवादी एवं विवेक की दृष्टि से विचार विमर्श एवं चिंतन होना बहुत जरूरी है । उपन्यासकार ने शुरू से अंत तक कौतुहलता बनाए रखने के लिए जो सजकता दिखाई है वह सराहनीय है। मेवात के मुस्लिम समुदाय के हर्ष-विषाद, सुखात्मक से अधिक दुःखात्मक पक्ष को ही ज्यादा महत्व दिया गया है । नजराना एवं डमरू ने एक मिसाल कायम की कि हलाला जैसे जुल्मी रिवायतों, कुप्रथाओं को रोका जा सकता है। ऐसी प्रथाओं के विरुद्ध विद्रोह किया जा सकता है । तभी स्त्री को समाज में कुछ ना कुछ दर्जा प्राप्त हो सकता है ।

संदर्भ सूची –

1. साहित्यिक निबंध – डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु, पृ. 16
2. उपन्यासकार भगवानदास मोरवाल – डॉ. मधु खराटे, पृ. 13
3. वही, पृ. 15
4. संस्कृति के चार अध्याय – रामधारीसिंह दिनकर, पृ. 237
5. वही, पृ. 237
6. वही, पृ. 237
7. हिंदी उपन्यासों में मुस्लिम समाज : आलोचनात्मक अनुशीलन – डॉ. सिराज बहोरा, पृ. 54
8. आलेख (हुश्न तवस्सुम निहाँ), पृ. 1
9. वही, पृ. 2
10. उपन्यासकार भगवानदास मोरवाल – डॉ. मधु खराटे, पृ. 13
11. हलाला – भगवानदास मोरवाल, पृ. 65

‘आना इस देश’ उपन्यास में मुस्लिम स्त्री विमर्श

डॉ.सरोज पाटील

असिस्टेंट प्रोफेसर

श्री.शहाजी छ. महाविद्यालय, कोल्हापुर

भारतीय साहित्य में अनेक सारे विमर्शों की तुलना में मुस्लिम विमर्श की चर्चा बहुत ही अल्पमात्रा में होती रही है। उसे अधिकांशतः अल्पसंख्यांक साहित्य माना गया। मुस्लिम विमर्श मुख्यतः मुसलमानों को जानने, समझने, परिभाषित करने की प्रक्रिया है। वह एक नजरिया है मुस्लिमों के प्रति देखने का।

सालों से मुस्लिम समाज भारतीय समाज का अंग बनकर आगे बढ़ता रहा। भारतीय समाज की तरह मुस्लिम समाज भी अनेक वर्गों और मतों में बटा हुआ है। उनके जीने के अपने नियम, परंपराएं, नियम हैं। मुस्लिम स्त्री शुरु से परंपरागत बंधनों में जीती रही है अतः उसकी स्थिति अन्य धर्मिय स्त्रियों से ज्यादा संवेदनशील है। मुस्लिम स्त्री विमर्श मुस्लिम स्त्री की इसी स्थिति पर चिंतन है। नासिरा शर्मा, इस्मत चुगताई, मेहरुन्निसा परवेज आदि लेखिकाएं मुस्लिम स्त्री के भावविश्व पर बड़ी मार्मिकता से चिंतन प्रकट करती रही है।

हमारे इतिहास पर दृष्टिक्षेप डालने पर यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं को हमेशा हाशिये पर रखा जाता रहा है। धर्म के नाम पर महिलाओं का शोषण होता रहा है। इससे मुस्लिम महिलाएं अछूति नहीं रही है।

लेखिका अंजू आर्या कहती है, “जब हमें मुस्लिम महिलाओं के मुद्दे को उठाना है तो पहले इनकी स्थिति को जानना जरूरी हो जाता है। यूं भी यदि किसी समाज या धर्म के बारे में जानना है तो सबसे पहले वहाँ की स्त्रियों को देखना चाहिए।” (पृ.८, साहित्य में मुस्लिम महिलाओं के मुद्दे) भले ही हमारे समाज में कुछ समुदाय खुद को उत्तर आधुनिक मान रहे हो पर समाज में ऐसा भी एक वर्ग है जो ठिक से आधुनिक जीवन के प्रति सजग नहीं हो पाया है। इसका प्रमुख कारण हमारी पितृप्रधान पुंजीवादी पुरुष सत्ता है जो भले ही उपर से उदात्त महसूस होती हो पर अंदर से बड़ी आत्मकेंद्रित है जिसने महिला वर्ग को अपने अधिकार में रखना अपना पुरुषार्थ माना है।

आज भी हम देखते हैं कि मुस्लिम समाज में ऐसी अनेक सारी प्रथाएं और कानून हैं जो मुस्लिम महिलाओं की तरक्की के मार्ग का अवरोध बनी हुई हैं। इन सभी प्रतिकुलताओं के बीच अत्यंत अल्पमात्रा में कुछ मुस्लिम परिवार और महिलाएं सभी अंध परंपराओं और प्रतिकुलताओं को नकारती आगे बढ़ रही हैं। अपना वजूद स्थापित करने के प्रयत्न में जुटी हैं। फिर भी सौ प्रतिशत वे सफल नहीं बन पाई हैं। कहीं न कहीं उन्हें अपने धर्म की विषम स्थितियां पीछे खींचती रही हैं।

डॉ.कृष्णा अग्निहोत्री लिखित ‘आना इस देश’ उपन्यास की नायिका पाकिस्तानी मुस्लिम सुरैया बिल्कुल इसी अवस्था में हैं, जो उच्चशिक्षित असाधारण प्रतिभा की अधिकारी होने के बावजूद अंततः बड़े दर्दनाक हादसे का शिकार होकर भारत की सरहद में दम तोड़ देती है। पाकिस्तानी मुस्लिम सुरैया भारत से पाकिस्तान जाकर बसे पिता नदिम की देखरेख में पली बड़ी हुई है। नदिम ने सुरैया को उंची तालिम देने के साथ साथ बड़ी अच्छी जिंदगी मुहैया कराई है पर सुरैया की जिंदगी से जुड़े हर महत्वपूर्ण मसले पर निर्णय का अधिकार तो हमेशा अपना ही रखा है।

“यद्यपि मुस्लिम महिलाओं को इस्लाम के द्वारा अनेक अधिकार मिले हैं, इसके बावजूद धर्म के नाम पर पुरुषों का उन पर अधिपत्य होता है।” (पृ.९, साहित्य में मुस्लिम महिलाओं के मुद्दे) मुस्लिम महिलाएं आज भी बंधन मुक्त नहीं बन पाई हैं। इन मुस्लिम महिला वर्ग से जुड़े मुद्दों पर चर्चा प्रस्तुत आलेख का लक्ष्य है।

धार्मिक बंधन —

आज के आधुनिक दौर में केवल सामाजिक ही नहीं बल्कि राजनितिक, आर्थिक, धार्मिक जीवन में स्त्री के लिए स्वतंत्रता अपेक्षित है पर यह बड़े खेद की बात है कि मुस्लिम महिलाएं आज भी मस्जिद में जाकर नमाज नहीं पढ़ सकती। फकीर या धर्म गुरु बनने की उन्हें धर्म इजाजत नहीं देता। इस बात पर नायिका सुरैया अपनी सहेली गीत के समक्ष खेद जताती है, “अभी तो महिलाएं मस्जिद में जाकर नमाज नहीं पढ़ सकती पीर फकिर बनने की उन्हें कुरान में इजाजत ही नहीं।” (पृ.१०, आना इस देश) घर परिवार की जिम्मेदारियां संभालते हुए, समाज का हिस्सा बनकर रहते हुए भी मुस्लिम स्त्री को धर्म के नाम पर उपेक्षित रखा जाता है। प्रार्थनागृह में उसे इश्वर की आराधना करने का अधिकार प्राप्त नहीं है और दूसरी ओर हम अपने आप को आधुनिक दौर के प्रतिनिधी मानते हैं यह कितनी बड़ी विडंबना है।

निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं का दोयम दर्जा —

पतिपत्नी दोनों मिलकर हर परिवार के सूत्र संभालते हैं अतः पारिवारिक निर्णयों में दोनों का बराबरी का हस्तक्षेप अपेक्षित है। वैसे तो हमारे समाज में महिलाएं दोयम दर्जे पर ही स्थापित हैं तथा अधिकांश मुस्लिम परिवारों में यह स्थिति बहुत ही गंभीर है।

सुरैया के पिता नदिम ने सुरैया को बहुत सारी सोहलियते दी थी, बड़ी जिंदादिल महिला की तहर वह अपना जीवन जी रही थी और उसे पूरा विश्वास था कि उसे अपना जीवनसाथी चुनने का अधिकार सहजता से प्राप्त होगा। परंतु मुस्लिम परिवार की सुरैया बहुत ही दुर्भाग्यशाली रही। उसके पिता ने सुरैया और उसकी माँ की इजाजत के बिना सुरैया का निकाह एअरफोर्स के

परवेज से तय कर दिया। परवेज सुरैया से दुगनी उम्र का व्यक्ति था, जिसकी पहली पत्नी दम तोड़ चुकी थी। पिता ने सुरैया और उसकी माँ द्वारा लाख विरोध किए जाने के बाद भी अपना निर्णय नहीं बदला। नदिम ने परवेज की बदचलनी को भी नजरअंदाज किया। उसे पुरुष होने के नाते इसमें कोई बड़ी खोट दिखाई नहीं दी। स्वयं नदिम की पत्नी को भी पति के इस रवैये से नाराजगी थी कि, “वो (परवेज) खुद अपनी भी और अन्य मर्दों की बदचलनी को ढकते हैं।” (पृ.१९, आना इस देश)

अंततः माँ बेटी का विरोध नजरअंदाज कर नदिम परवेज और सुरैया का निकाह कर देते हैं। उसे इस बात को लेकर थोड़ी सी भी ग्लानि महसूस नहीं होती कि उसने इस निर्णय में सुरैया को शामिल नहीं किया।

भारत विभाजन के बाद भारतीय सेना के नदिम ने पाकिस्तानी नागरिक बनने का निर्णय लिया तथा भारतीय सेना के महत्वपूर्ण कागजात पाकिस्तानी सेना के हाथों संपूर्ण कर पाकिस्तान में अपने लिए बड़ा ओहदा पाया परंतु भारत का त्याग कर पाकिस्तानी नागरिक बनना उसकी माँ तथा पत्नी को जरा भी पसंद नहीं था। पर नदिम ने उन दोनों महिलाओं की इच्छा जानने की जरा भी जरूरत नहीं समझी। अपनी मनमानी करते हुए वह गर्व से पाकिस्तानी नागरिक बना और परिवार की ये दोनों महिलाएं भारत आने के लिए जीवनभर तरसती रही वे पाकिस्तान को कभी भी दिल से अपना नहीं पायी इस प्रकार अधिकांश मुस्लिम परिवारों में यही स्थिति पाई जाती है। महिलाओं को निर्णय प्रक्रिया से अलग रखा जाता है। महिलाएं परिवारों की शोभा मात्र होती है।

बहुपत्नीत्व का शिकार महिलाएं –

एकपत्नीत्व आदर्श गृहस्थजीवन की नींव है। परंतु जहां मजहब ही बहुपत्नीत्व की इजाजत दे वहाँ स्त्री पर अन्याय जायज है। “उनके मजहब में चार बीवियां जायज हैं और तीन बार तलाक कह छुटकारा मिल जाता है, जबकि यह मर्द की परिभाषा है। ऐसा किन हालातों में जायज है यह वे नहीं समझते (पृ.१९, आना इस देश) मर्दों ने मजहब में दी इस छूट को अपने स्वार्थानुकूल स्वीकारा है।”

परवेज ने अर्धेड उर्म में दोबारा शादी का निर्णय लिया है जिस पर नदिम और परवेज दोनों में से किसी को भी आपत्ति महसूस नहीं होती। पुरुषों की ऐसी मानसिकता के चलते दम तोड़ देती है मुस्लिम स्त्री। स्त्री की इस विवशता पर सुरैया की मां तरनुम व्यंग्य करते हुए कहती है, “अब आप मर्दों को तो किसी भी उम्र में हमसफर चुनने का हक है पर महिलाओं को तो उम्र कैद ही मिलती है। जब तक कोई शादी के लिए हाथ न मांगे चुप रहो। (पृ.१८, आना इस देश)

पत्नी के इस व्यथाभरे शब्दों को नजरअंदाज कर नदिम परवेज के ही गुनगान में व्यस्त हो जाते हैं। आगे चलकर बदचलन परवेज से सुरैया की निभ नहीं पाती। परवेज द्वारा अपनी ही १४ साल की रिश्तेदार पर वहशाना हमला किए जाने के बाद सुरैया हमेशा के लिए परवेज का घर त्याग देती है। इसके पश्चात कुछ ही दिनों में परवेज एक और हसीना को फ्रांस निकाह पद लेता है। साथ में सुरैया को फोन भी करता है कि, ‘आ जाओ जान तुम्हारी जगह खाली है।’ (पृ.१८, आना इस देश) अर्थात् उसे तीसरी पत्नी के साथ दुसरी पत्नी सुरैया वापस लौटते तो दोनों पत्नियों के साथ गृहस्थी जायज है।

मुस्लिम धर्म की तलाक प्रथा पुरुषों को अपनी मनमानी करने की बहुत बड़ी छूट देती है। तीन बार मुख से तलाक कहने पर पति पत्नी का वैवाहिक जीवन खत्म हो जाता है, जिस पर महिला को न्याय मांगने की सहूलियत नहीं है। जिससे महिला आजीवन अपनी गृहस्थी बचाने के लिए पति से सहमी, डरी रहती है। तलाक से डरकर पति की गलतियों पर उसे टोकने का धैर्य वह बिल्कुल भी नहीं दिखाती। यह मुस्लिम महिलाओं की बहुत बड़ी विडंबना रही है हालांकि बदलते परिवेश में लंबी कानून लड़ाई के अंत में ३० जुलाई, २०१९ को भारत सरकार ने मुस्लिम महिलाओं को संरक्षण देनेवाला बिल पारित किया है। जिससे तीन बार तलाक कहनेवाले पति पर कानूनन कार्यवाही हो पाएगी। आशा है कि इससे मुस्लिम महिलाओं को राहत मिले।

खैर बदचलन पति के बंधनों से छूटी सुरैया मनबहलाव के लिए अपनी खाला के पास दुबई पहुंच जाती है। उसे सहज स्वस्थ बने कुछ ही दिन बीतते हैं कि उसके जीजा के पंजे खोल से बाहर निकलने शुरू हो जाते हैं। किसी न किसी बहाने वे सुरैया को कार से छोड़ने के बहाने सुरैया की तारिफ करते कंधा तो कभी गला छूते कहते, ‘जान तुममे और तुम्हारी आपा में कितना फर्क है। वो कठपुतली है और तुम भागती गुडिया। मैं तुम्हें बहुत सुखी रखूंगा। तुम निकाह के लिए हा भर कर दो।’ (पृ.२२, आना इस देश)

अपने ही घर में रह रही साली के सामने दूसरे विवाह का प्रस्ताव रखनेवाले इस जीजा के लिए यह उसकी सहज स्वाभाविक भावना का इजहार मात्र है। अर्थात् बहुपत्नीत्व पर उसे आपत्ती नहीं है। वह मुस्लिम पुरुष को अपने मजहब से प्राप्त अधिकार है। पुरुषों की ऐसी मानसिकता का शिकार होती रही मुस्लिम स्त्री की भावनाओं को सांत्वना देना बड़ा मुश्किल है।

मौलवियों की धार्मिक दखल अंदाजी का शिकार मुस्लिम महिलाएं—

वस्तुतः सच्चा धर्म वो है जो इन्सान को दुःखों से कमजोरियों से मुक्त होने का रास्ता बताएं। मुस्लिम धर्म के सूत्र अधिकांशतः मुल्ला मौलवियों के हाथों रहते हैं। उनके इशारों पर धर्म का कार्य चलता है। सच्चा धर्म कभी इन्सान को भयभीत नहीं बनता। पर मौला—मौलवी सामान्यतः जनमानस को धर्म के नाम पर भयभीत करते हैं। इनका सबसे अधिक शिकार बनती हैं मुस्लिम स्त्रियां। मौलवियों की ऐसी हरकतों पर सुरैया को आपत्ति है। वह समाज में सर्वत्र बहुत सारी विशम स्थितियां देखती हैं पर विषम स्थितियों पर मौलवियों की चुप्पी उसे बड़ी आपत्ती जनक महसूस होती है, “मारने का फतवा जारी करने में मौलवी आगे पर ऐसों (गरीब, बेगुनाह) की फिक्र कहाँ ?....कभी किसी के प्रेम की दांस्ता पता लगे कि सब (मौलवी) चौकन्ने हो जाते हैं। (पृ.३६, ३७,

आना इस देश) धर्म की आड में विचित्र बंधनों, नियमों का प्रयोग कर जनमानस पर अन्यास करनेवाले मौलवी समाजहीत के बारे में क्यों नहीं विचार करते इस पर सुरैया को आपत्ति है। क्योंकि उसकी दृष्टि में 'ऐसा कानून किसी धर्म को निखरता नहीं जहाँ समाज की भलाई न हो।' (पृ. ३६, आना इस देश)

उसे पाकिस्तान के कबाइली इलाकों में प्रेम के नाम पर छिड़नेवाली खूनी जंग जहाँ जंग से बचने के लिए लड़कियों का विवाह छोटी उम्र में कर स्त्री की भावनाओं से होते रहे खिलवाड से सक्त नफरत है। यदि वही विवाहित छोटी लड़की आगे चलकर अपने बालविवाह को भूलकर नये व्यक्ति से प्रेम करे तो उसे तत्काल मार डाला जाता है। इसमें मौलवियों को कोई आपत्ति महसूस नहीं होती। इसे वे मजहब के बने नियम मानकर महिलाओं पर हुकूमत चलाते हैं। मजहब के नाम पर सदियों से मुस्लिम स्त्री पर होते रहे अन्याय से सुरैया को हमेशा नफरत रही है।

निष्कर्ष —

अतःहा मुस्लिम महिलाओं में पर्दा प्रथा, परिवार नियोजन का अभाव, संपत्ति में अधिकार न मिलना, बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, तलाक, शिक्षा का अभाव, आर्थिक स्थिति, राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति आदि अनेक मुद्दे हैं जिसमें विषम स्थितियों के चलते महिलाएं डरी हुई, आतंकित हैं। लेखिका कृष्णाजी इन सबमें व्यापक परिवर्तन चाहती हैं। लेखिका ने 'आना इस देश' उपन्यास की उच्चशिक्षित, जिंदादिल नायिका सुरैया के जरिए मुस्लिम स्त्री जीवन में आवश्यक और अपेक्षित बदलाव की जरूरत पाठकों के सामने रखी है। लेखिका मानती है कि समाज में बदलते परिप्रेक्ष्य में मुस्लिम महिलाओं को अब अपनी परंपरा, अपना जीवन संघर्ष, अपनी जिद, और समाज में अपनी भागीदारी का इतिहास स्वतः लिखना होगा।

संदर्भ—

- साहित्य में मुस्लिम महिलाओं के मुद्दे : मंजू आर्या, साखी प्रकाशन, भोपाल, प्रथम संस्करण २०१६
- आना इस देश — डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण २०१४



डॉ. सादखा नवाब सहर की नावल निगार

डॉ. सब हा सम र सय्यद

उदु विभाग प्रमुख

नाईट कॉलेज ऑफ आर्ट्स अँड कॉमर्स, इचलकरंजी .

आज क युग म जिन महिला लखका न अपन फिक्क व फन क कारण अपन एक अलग स पहचान बनाइ है और श्वताआ का अपन तरफ आकषित करन म कामयाब हासिल की है इन म सादखा नवाब का नाम सब स उपर आता है। उदु म असमत चुगताइ और कुरैतुलऐन हैदर क बाद महिला लखका म बहात कम नाम राष्ट्र य स्तर पर उभर कर सामन आए है। असमत चुगताइ और कुरैतुलऐन हैदर कि अदब रवायात का आग बहान वाल महिला लखका म एक नाम डॉ. सादखा नवाब सहर का है।

डॉ. सादखा नवाब सहर मुंबई क एक खापाल स संबंध रखत है। उन की प्राथमिक शिक्षण मुंबई म हुइ उच्च शिक्षण भ मुंबई विद्याप ठ स ह प्राप्त की। मुंबई क एक कॉलेज स उदु प्राध्यापक क तौर पर शुरूआत करन वाल सादखा नवाब आज कल खापाल क एक कॉलेज म असासियट प्राध्यापक क तौर पर हिन्द विभाग म प्राध्यापक क तौर पर अपना काम अंजाम द रह है। हिन्द जबान व अदब क व्याख्यान म व्यस्त है। इस क बावजूद क व हिन्द की प्राध्यापक है लकीन पहल स ह सादखा नवाब न अपन लखान की भाषा उदु ह का बनाया। यह वजह है क अब तक उदु म ना सिफ इन क कइ काव्यसंग्रह और नावल सामन आचुक है। बलक आय दिन कविता व अदब दान्हा असनाफ म इन क लिखान राष्ट्र य व अंतरराष्ट्र य स्तर क बहुतक मॉगजिन व पुस्तका की जिनत बनत रह है। उन्हान अपन अदब क रयर की शुरूआत उदु काव्य स किया। सादखा नवाब एक अनक असनाफ फनकारा है। उदु क अदब, जिंदग , व्यक्त मत्व, डरामा निगार , तनज व मजा वगैरा म अजमाइ की और सिनफ म गहर नखुश छाड है। उदु क अलावा हिन्द म भ अपन लिखान किए वहाँ भ अपन अलग पहचान बनाइ उदु म कहान काइ सुनाव समताशा और जिस दिन स दा नावल है।

आज इकिसव युग म भ लडकी पैदाइश स ल कर मौत तक मद क जुल्म का शिकार हात है। इस बात स भ इनकार मुम्कीन नह क आज की औरत मद क कंद स कंदा मिला कर चल रह है यहाँ तक क वह चाँद पर पहाच चुकी है हर विभाग म प्रगत पथ पर है। लकीन ऐस महिलाए पुर मुल्क म शायद दस फिसद भ नह है। इस कि सब स बह वजह यह है क यहाँ क लागा की साच नह बदलत और हमारा समाज हमशा लडकी पर लडक का प्राध्यान्य दता है। यहाँ तक क उच्च शिक्षा भ लडकिया का दिलान क हम हक म नह हात। इस का हमशा बुर नजर दखत है यह हालात सिफ हमार दहात और छाट गांव ह क नह बलकी शहरा म भ ऐस खानदाना की कम नह जा इस युग म भ बटिया का बुर नजर स दखत है।

सादखा सहर इस युग की एक ऐस फिक्शन निगार है जा समाज मसायल का महसुस करत है, साचत है समजत है और फिर उन्हे एक शकल दकर श्वताआ क सामन पश करत है। सादखा नवाब सहर न अपन नावल कहान काइ सुनाव ममताशा म इस बात पर इसरार किया है क आज भ एकिसव सद म लडकी का इतन गिर हुइ नजरा स दखा जाता है।

मर पापा का लडकिया स बड नफरत थ। लडकी यान बट या स मै इन की पहल औलाद थ। मर जन्म पर वह त न महिना तक मुझ दखन नह आए। इनका बटा ह चाहिए था। दाद भ नाराज थ मगर मरा भाला भाला खुबसुरत चहरा दखकर वह अपन सार नजर यात का छाड कर मुझ प्यार करन लग। मर समज म कुछ नह आता क माँ और पापा की नफरत का सबब क्या था।

बटिया स माता पिता इस तरहा नफरत करत है क इन का इस दुनिया म आँख खालन स पहल ह मार दिया जाता है। यह कहाँ का इन्साफ है।

उदु म इन का पहला नावल कहान काइ सुनाव मताशा पढवान का दस रखत है। समाज म महिला क विराध की दास्तान बड ह हृदयस्पर्श है। मगर जब औरत इस थिम का बयान करत है इस की शिदत म बढहात्र हा जात है। कहान काइ सुनाव मताशा म सादखा नवाब न एक महिलाओं क दद व बबस का इस पर असर अंदाज बयान किया है क महिलाआ की एक पिक्चर आँखा म घुम जात है। लक्ष करन वाल असलुब की वजह स यह नावल और जिंदा गाष्ट निज बहात ह सत्यया का आरसा बनान क तखाज क लिए सांस लता हुआ महसुस हाता है।

कहान काइ सुनाव मताशा २०० म प्रसिद्ध हुआ है। कहान काइ सुनाव मताशा एक जिंदग का नावल है। इस म बचपन, जवान क द ना का अनक शिषका क ारा एक उत्कृष्ट कहान का बयान किया है। यह नावल एक औरत की दुख भर दास्तान बयान करता है। इस नावल की सन्ट्रल पात्र मताशा है जा जिंदग म पश आन वाल सब ह दुख-दद और गमा का सहत है।

नावल का ताना बाना एक लडकी की काशिश भर जिंदग की तलख कहान पर है। जिस क संबंध एक अच्छ घरान स है। मताशा क पापा उड शा म एक इंटर फेक्टर म फारमन थ। वह राजाना शराब प कर इस की माँ का बात-बात पर पिटा करत थ। पिता क दरराज शराब पिन और घर म गाल गलाज करन स इस की माँ तंग आ चुकी थ। जिस क कारण स पत और पत्न म आय दिन लडाइ हाना राज का बन

गया था। उन्हें अपन बटिया स नफरत थ । जब मताशा पैदा हुइ ता उन्होंने कइ दिना तक इस का मुंह नह दखा था। मताशा का भ व मारा करत थ। माँ भ इस स झगडा करत थ बचपन हि स मताशा माँ-बाप क जुल्म का शिकार हात है।

कहान काइ सुनाव मताशा जिंदग और ज वनशैल क ब च एक ना खत्म हान वाल टकराव की काक स जन्म मताशा की दास्तान जिंदग है। महिला की असल पहचान इस का जज्बा व इसार है। बट , बहन, पत्न और माँ क रूप म इस की कदर क बावजूद महिला आ क बार म मदां का दखन का अंदाज नफरत ह रहा है। मताशा की जिंदग धुप-छाँव है यह किस एक महिला की कहान नह बलक पुर समाज की तस्वर है। एक अच्छ समाज की चादर हटा कर इस क जंगल और जानवर किरदार का परदा उठात है। इस नावल म मताशा का पात्र सन्ट्रल हैसियत रखता है।

मताशा अपन माँ बाप की पहल संतान थ इस लिए सब का बट की उम्म द थ । इसलिए मताशा अपन माँ बाप की दुलार कभ नह बन पाइ लखक कहता है।

चार साल की आयु म इस की माँ जब मताशा क छात पर पैर रख कर इस मारना चाहत है ता इस की दाद इस बचात है। वह खुद पिद्रसर सिस्टम क तहत चलन वाल समाज का प्रतिनिध्व नह करत . (पृ. क्र. २०)

मासुम मताशा की समज स हि उपर है क इस की माँ इस इतना क्या मारत है? बार बार यह सवाल इस क छात स दिमाग म चुबता है जब मताशा कॉलेज जान लग है ता बाप इस अपन जिगर दास्त स मिलवाता है। जिस का नाम मारश्वर है जिस वह काका कहत है। मताशा की खुबसुरत पर इस आदम की नियत खराब हा जात है और एक दिन मौका पा कर वह जबरदस्त उस क साथ बलात्कार कर दता है। माँ-बाप का बट स काइ खास लगाव नह था इस लिए इस न यह बात अपन माँ-बाप स और बाकी सब स छुपाइ क कह सब इस ह गलत ना समझ। इस घटना क बाद मताशा मदा स सख्त नफरत करन लगत है। मदां स नफरत करन का एक और कारण भ था क इस का बाप इस की माँ क साथ हमशा मारपिट और बुरा व्यवहार करता था। वह अपन आँखा स बाप का अपन माँ पर जुल्म करत दखत है।

मताशा की दास्तान जिंदग बड अज ब है यह बद किसमत क जब जब जिंदग की बहार इस क लिए अपना दरवाजा खालत है कुछ ना कुछ ऐसा वजुद म आता है क वह दिल ह दिल म रह जाता है। सम र और मताशा क बिच का जहर फैलान की काशिश करता है। मताशा की जिंदग का मुश्कील सफर इस वक्त थाडा आसान हा जाता है जब इस की मुलाकात गौतम शाह स हात है। जा एक गुजरात व्यापार है। बहात ह नक और बड दिल क है। मताशा गौतम स अपन भाइ प्रसाद की मदत स मिलत है। गौतम मताशा की हर मुश्किल वक्त म मदद करता है। एक दिन वह इस अपन माज क तमाम घटनाए सुनाता है। मताशा इस की नक नियत और सादग स पहल हि प्रभावित थ इस क हालात सुनन क बाद मताशा का इस स हमदद हात है और वह गौतम स शाद का निणय कर लत है। गौतम शाद शुदा और पांच बच्चा का बाप था। यह बात वह अपन घर वाला का बतात है। पहल इस क भाइ बहात नाराज हात है। मताशा का बुरा भला कहत है, माँ भ परशान हात है आखिर काफि बहस व तक्रार क बाद सब राज हा जात है। मताशा शाद क बाद गौतम क पांच बच्चा की परवर श करत है और अपन जिम्मदार पुर इमानदार स निभात है। वह बट स बहन और बहन स पत्न बनत है और पत्न स माँ भ बन जात है। महिला क इस रूप म इस क अंदर काइ बदलाव नह हाता है बलकी वह वह एक हिन्दुस्तान महिला बन रहत है।

जिंदग म टकराव का रास्ता ग्रहन करन क बजाय वह समझाता का पथ स्विकार करत है। फिर चाह वह इस का पत हा, इस की अपत्य हा, इस क माँ-बाप, भाइ-बहन ह क्या ना हा, इस औरत की जिंदग एक संघष है। इस का राहत नह मिल पात मताशा अपन परशानिया का काइ समाधान का प्राप्त करण क लिए अनक जगह आल्ड खंडाला क जिवानिस और कभ बौध क नौदता म मर यम क दुवा म दाख ल हात है ता कभ मंदिर म पुजा करत है इतना सब कुछ करन क बावजूद मताशा का राहत नह मिलत ।

गौतम की मौत क बाद मताशा क लिए समय का चक्कर फिर स शुरू हा गया। शाद स पहल जिन कठ न प रस्थित या स वह गुजर रह थ एक बार फिर स वह प रस्थित यां थ पहल जा माँ और भाइ क लिए लडत थ अब अपन और अपन बट क हक्क क लिए उस लडना था। अपन बट पश क साथ काट और म्युनिसिपालट म अपन हक्क क लिए काशिश कर रह है।

नावल स लखक की साच का अंदाजा हाता है लखक न एक महिला की दद भर कहान का पश किया है। जा सिफ एक मताशा की ह नह बलकी हर महिला की कह अपन कहान मालुम हात है। मताशा की कहान दर तक पढनवाल क दिमाग पर असर करत है। नावल का पुर तरह पढन क बाद मालुम हाता है क यह नावल प रपुण है।

सादखा नवाब का नावल इस कसाट पर १००% खरा लगता है। नावल क्या है एक आबशार है। मताशा की जिंदग का आबशार - जा प रस्थित त या क मड पत्थरा स अपना सर फाडना जुल्म सितम सहकर अपना रास्ता अपन आप दुंडना। मताशा की इस दद भर जिंदग म हजार मताशाआ की जिंदग क दद है। क्या महिला का जन्म इस लिए हुआ? इस नावल म दद क थान खुल पड है। मताशा की माँ अपन पत क जुल्म सहत है।

मताशा क किरदार का प्रयाग कर ता इस म मनुष्य स ज्यादा फ रश्ता की सिफात है सबर क साथ सारा जहर खुद प जात है। यहाँ तक क जा लाग इस क जिंदग म काट डालत है उन क साथ भ वह अच्छा बरताव करत है। कशमकश और बदल की भावना इन्सान क रग

म है। लकीन मताशा भ ड म यह कह भ तश स बलखात नह दिखाइ दत इस स दिल व दिमाग, जज्बात और अखल म कह भ काइ दाव नह हाता।

इस तरह इन का दुसरा नावल जिस दिन स इस युग क दुय्यम दज क घटक क प रवार का संबंध है। जहाँ शिक्षण प्राप्त करने क बाद नौकर हर इन्सान की चाह हात है जैस ह महिला नौकर करने लगत है इस की प रवार का बाधा निमाण हान लगत है। नावल क शुरूवात ह ड्रामाई ढंग स हुइ है जितु का अपन दास्ता का घर बुला कर मौज मस्त करना शुरू म ह इन की बातचित स अंदाजा हा जाता है क माँ बट क बिच एक अंजान दुर है। सातव कक्षा म था तब इस की माँ घर छाड नान क घर चल गइ जितु का बडा भाइ भ एक महिन बाद माँ क पास चला गया। जितु क डड न मनका स शाद करना और जितु का ज्यादा वक्त अपन दास्त साहल क साथ गुजारना। नावल म छाट - छाट घटनाए है।

जितु ऊफ जितश की माँ पास्ट ऑफीस म नौकर करत है। वह अपन घर और बच्चा का हर तरहा स ख्याल रखत है। लकीन इस क बावजुद इस का पति इस स बवफाई करता है। दुसर फिर तिसर शाद कर लता है। इन प रस्थित या म कुटूंब तहस नहस हा जाता है। इस का प रणाम जितश पर पडता है। जा इस नावल का सन्ट्रल पात्र है। दिमाग व इमाशनल संभ्रमात म बच्च अपन लिए काइ सहारा दुंडत है।

जितश भ अपन माँ स बिछडन और बाप की माहबबत क कारण स्कुल क जमान स ह इस तरहा क इमाशनल सहार की तलाश म रहता है। इस इस क दास्त समझात है। इस तरहा तुम अपना ख्याल बना रह हा। जिंदग का काइ ध्य बना रखा है ता फाकस रहना चाहिए फालतू चिजा क लिए क्या इधर उधर भाग रहा है?

दुसरा की जिंदग भ खराब करगा और खुद की भ। फायदा क्या है। इतन सार स्तर पर तुझ दास्त क्या चाहिए? (पृ. क्र. २०६)

जितश का बचपन हि स खराब माहौल मिला। ना माँ का भरपूर प्यार मिला और ना बाप की माहबबत माता-पिता का प्यार ना मिल सकन क कारण स वह हमशा अहसास कमतर का शिकार रहा।

नावल की सब स बड खुब इस की गैर मामुल रवान है। जैस चंचल नद या छल छल बहत है। लख कान छाट - छाट शिषक दिए है। अगर नावल म उठाए गए समस्याआ का निराकरण कर ता व सब स सब आज की जिंदग स जुड हुए है। माँ बाप की दुर का बच्चा की सायकालॉज पर क्या प्रभाव पडता है। मकड क जाल जिस म वह उलझत ह जात है और जज्बात बच्च इन घटनाआ स बिलकुल ह टुट जात है। जितु भ एक सनसटिन्ह लडका है। जिस की जिंदग की गाड पटर स उतर जात है। इस का फल हाना, अच्छ नंबर स पास न हाना इन्ह प रस्थित या का प्रभाव इस पर पडता है। मै वह दिन भूल नह पाता जब मम्मा और डड क बिच टकराव शुरू हुआ था। जितु जब पढल बैठता है ता बित दिना की कडव याद इस क दिमाग का खुरचन लगत है। डड का माँ का बुर तरह मारना जितु की आत्महत्या की काशिश, शराब पिन लगना। डड का तिसर शाद करना। अलग घर म रहकर भ खुश न रहना जितु की टूजड यह है की माँ की राकटाक इस जरा भ नह भात है वह माँ का भ जल कट सुनाता है।

माँ की माहबबत ना मिलन क साथ साथ बाप की तरफ स भ काइ ध्यान न दन क कारण जितु क किरदार मं जा खिंड पड इस न इस का उमर भर परशान रखा। यह कारण था क उस न कम उमर लडकिया क साथ संबंध बनाया बैठा अगरच यह संबंध जिसमान नह थ लकिन जिसम क किस हद तक था। बचपन म पहल मिल, फिर जाहदा इस क बाद शिपल और फिर राण म दिलचस्प लि लकीन अपन तब यत क कारण इस लडकिया न जल्द ह जितु स रूख फर दिया।

नावल जिस दिन स म भ हम जितश की माँ का किरदार भ कह आज क दौर की महिलाआ की समस्याआ का पश करता है। जब महिला की बस बसाइ जिंदग म काइ मसला पश आजाए और इस का हल सह वक्त और सह तर क स न हा ता महिला टुट जात है। और इस का एक गलत निणय इस की सार जिंदग पर भार पड जाता है। जितश की माँ भ सहार की तलाश और भविष्य स परशान हा गइ है। यह आज क दौर की महिला की सब स बड समस्या है। लखिका न बहात ह अच्छ अंदाज म इस सामन लाया है। नवाब सादखा न नावल म जा तकनिक का प्रयाग किया है वह फन क लहाज स नावल का उंचाई पर ल गइ सादखा सहबा न अनक शिषक बना कर नावल म कहान का आग बढ़ाया है। इस क साथ नावल निगार म जा तकनिक का प्रयाग किया है वह यह है क इस नावल का आत्मच रत्र पर लिखा है। बलकी इसस ज्यादा इस बात का युं कहा जा सकता है क यादाश्ता क रंग म यह नावल लिखा गया है। इस लहाज स भ यह नावल नए पण की तरफ जाता है क नावल इस तकनिक पर नह लिख जात लखिका की पकड बहात ह मजबुत है। बशक लखिका का व्यक्तिमत्व किस प्रशंसा का माहताज नह सहार साहबा की गिन्त इन लागा म गिन जात है जा लाग अपन खुबिया का लाहा अपन काम स मनवाना जानत है।

‘हलाला’ में मुस्लिम स्त्री विमर्श

डॉ. श्रीकांत पाटील

हिंदी विभाग

कला, वाणिज्य आणि विज्ञान महाविद्यालय, कोवाड

तह. चंदगड, जि. कोल्हापुर-४१६५०८

महाराष्ट्र

भगवानदास मोरवाल हिंदी साहित्य के युवा पीढ़ी के चर्चित एवं विख्यात कथाकार हैं। उनका ‘हलाला’ (२०१६) उपन्यास वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में मुस्लिम समाज में प्रचलित ‘तलाक’ समस्या का बेबाक चित्रण है। इसमें कुरान की आयतों और मुस्लिम लों का सजीव चित्रण दिखाई देता है। साथ ही इस उपन्यास में लेखक ने धर्म की आड़ में मुस्लिम स्त्री शोषण का आख्यान का यथार्थ चित्रण किया है। हिंदी साहित्य में उषा प्रियवंदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, कृष्णा अग्निहोत्री, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, ममता कालिया आदि अनेक महिला साहित्यकारों ने स्त्री-विमर्श का यथार्थ चित्रण किया है। महिला साहित्यकारों के साथ-साथ पुरुष साहित्यकारों में रामदरश मिश्र, विष्णू प्रभाकर, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मिथिलेश्वर, भगवानदास मोरवाल आदि अनेक साहित्यकारों ने भी स्त्री विमर्श का यथार्थ चित्रण किया है।

प्राचीन विचारों और नवीन विचारों के बीच में न बैठने पर विमर्श का जन्म होता है। समता स्वातंत्र्य और बंधुता मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। जब समता और स्वातंत्र्य पर कोई प्रतिबंध लगाता है। तो मनुष्य के मने में विमर्श भावना का जन्म लेती है। वर्तमान परिवेश में व्यक्ति स्वातंत्र्य, आर्थिक स्वावलंबन राजनितिक जागरण तथा शैक्षिक चेतना के कारण नारी में आमूलाग्र बदलाव हुआ है। वर्तमान युग की स्त्री प्राचीन युग के समान परिवार तथा समाज के दबाव में न रहकर स्वतंत्रता से जीने लगी है। वह अन्याय-अत्याचार, शोषण कुप्रवृत्तियों तथा रुढ़ियों का विरोध करने लगी है। डॉ. किरणबाला अरोड़ी के मतानुसार, “ विद्रोही ही नारियाँ सबकुछ चुपचाप न सहकर उन सबका विरोध करती हैं। जो उनके मार्ग में आते हैं उनसे लड़ जाती हैं।” १ आज नारी अपने उपर आनेवाली ओच एवं मुसीबतों को मिटाने हेतु विमर्श के पक्ष में खड़ी हो रही है। आज सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि प्रभावों के कारण हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श के रूप में अभिव्यक्ति मिल रही है।

किन्नर विमर्श, बाल विमर्श, दिव्यांग विमर्श, दलित विमर्श, वृद्ध विमर्श, आदिवासी विमर्श, मुस्लिम स्त्री विमर्श आदि अनेक विमर्शों का प्रभाव आज हिंदी साहित्य में देखने को मिला रहे हैं। परंतु यह विमर्श समाज और मूल्यों के बदलाव के कारण हिंदी साहित्य में देखने को मिल रहे हैं। अतः भगवानदास मोरवाल द्वारा लिखित ‘हलाला’ ; २०१६ ई. उपन्यास में मुस्लिम स्त्री विमर्श निम्नलिखित हैं:-

‘हलाला’ का अर्थ है, “ तलाकशुदा औरत किसी दूसरे मर्द से निकाह करे और फिर उससे तलाक या उसकी मौत के बाद ही वह पहले शौहर के लिए हलाल होती है, इसी का नाम हलाला है।” २ उपर्युक्त विवेचन के साथ-साथ अतः भगवानदास मोरवाल ‘हलाला’ उपन्यास के संदर्भ में लिखते हैं, “ हलाला पुरुषवादी धार्मिक सत्ता और एक पारिवारिक सामाजिक समस्या को धार्मिकता का आवरण ओढ़ा स्त्री के दैनिक शोषण खिलाफ बिगुल बजाने और स्त्री शुचिता को बचाये रखने की कोशिश का आख्यान है। अपने गहरे कथात्मक अन्वेषण, लोक विमर्श और अछूते विषय को केंद्र में रखकर रचे गये इस उपन्यास के माध्यम से भगवानदास मोरवाल एक बार फिर उस अवधारणा को तोड़ने में सफल हुए हैं कि आजादी के बाद मुस्लिम परिवेश को केंद्र में रखकर उपन्यास नहीं लिखे जा रहे हैं।”

भारतीय संस्कृति पुरुषप्रधान होने से अक्सर पुरुष स्त्रियों पर हावी दिखाई देते हैं। और वे स्त्रियों के साथ अमानवीय व्यवहार करके उनका शोषण करते हैं। ‘हलाला’ उपन्यास की नायिका नजराना अपने ससुर हाजी खुदाबक्स से पीड़ित है। वे अपना हवस मिटाने के लिए दिन-ब-दिन नजराना का शोषण करते हैं। इसी कारण नजराना घर में महसूस नहीं रहती हैं। हाजी खुदाबक्स के बारे में फतिमा कहती हैं, “ सौ मूसान्ने खाके हाजी बणा होंडे हैं और करम ऐसा के बताते हार भी सरम आवे हैं। वैसे ये सार बीज या हरामी टटलू का बोया हुआ है। वाही की ही बेटा बहू पे गलत नजर... ई तो झ बात होगी के वही बहू को पीसणी, वही ससुर की खाटा। निपटत आवे पीसणो, सरकत आवे खाटा। इक ई घर ही तो हमारे आसरो है, वाहे भी छोड देई तो हम कहान जौए जब हम अपना घरन में ही महफूज ना हैं तो और कहाँ होगी.... ।” ४ यहाँ ससुर हाजी खुदाबक्स अपनी हवस मिटाने के लिए नजराना को अक्सर शिकार बनाता है।

आज भी मुस्लिम समाज में ‘हलाला’ जैसे सामाजिक कु-प्रथा को मुल्ला और मौलवी जैसे लोग बढ़ावा दे रहे हैं इसका मार्मिक अंकन ‘हलाला’ उपन्यास में हुआ है। ‘हलाला’ यह मुस्लिम समाज की एक गंदी सामाजिक कु-प्रथा है। मुस्लिम समाज के ढोंगी और पांखड़ी धर्मगुरुओं ने धर्म की आड़ में मुस्लिम स्त्री का शोषण करते हैं। लेखक के शब्दों में, “पहले शौहर के पास वापस लौटने के लिए दूसरे शौहर से निकाह के बाद उससे ‘हम बिस्तर’ होना जरूरी है। दर असल हलाला धर्म की आड़ में बनाया गया

एक ऐसा कानून है, जिसने स्त्री को भोग्या बनाने का काम किया है। सच तो यह है कि हलाला मर्द तो तथाकथित सजा देने के नाम पर गढ़ा गया ऐसा पुरुषवादी षडयंत्र है जिसका खामियाजा अन्ततः औरत को ही भूगतना पड़ता है।”^५

आज गाँवों में अन्याय और अत्याचार करना समाज की आदत सी बन गई है इसका यथार्थ चित्रण ‘हलाला’ उपन्यास में मिलता है। विवेच्य उपन्यास में चित्रित हाजी

खुदाबक्स अपने बहु नजराना को हमेशा बुरी नजरों से देखता है। साथ ही उसे कुलटा, वेश्या और चरित्रहीन का आरोप लगाकर उसे घर से बाहर निकालते हैं तब फतिमा कहती है, “ बहू काबू में ना आयी तो ई अफवाह उड़ादी के वाको चालना-चलन ठीक ना है ऐसा डेड रावणन सू हम महान तलक बचती डोले....।”^६ यहाँ लेखक ने हाजी खुदाबक्स द्वारा बहु नजराना पर किये जानेवाले अन्याय अत्याचार का चित्रण किया है।

आज गाँवों में किसी भी समस्या का निवारण पंचायत से ही की जाती हैं इसका मार्मिक अंकन ‘हलाला’ उपन्यास में मिलता है। उपन्यास का नायक नियाज पत्नी नजराना को तलाक देता है। तलाक की बात हवा ही तरह पंचायत में पहुँचती है। बाद में पंचों ने नजराना को फिर से पती घर जाने को कहते हैं। इस संदर्भ में मधु खराटे लिखते हैं, “ तीन बच्चों की माँ नजराना को उसका शौहर तीन बार तलाक कह कर तलाक दे देता है। परंतु जब नियाज एंव नियाज का परिवार अपनी भूल सुधाकर नजराना को तलाक दे देगा और फिर से उसका निकाह नियाज से होगा। परंतु दूसरे निकाह के बाद नजराना तलाक नहीं चाहती है और नारी अस्तित्व एंव अस्मिता की एक मिसाल कायम करती है।”^७ यहाँ नजराना में नारी अस्तित्व के कारण उनमें विमर्श की भावना दिखाई देती है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि भगवानदास मोरवाल ने ‘हलाला’ उपन्यास में मुस्लिम समाज में प्रचलित तलाक समस्या का मार्मिक अंकन किया है। कुराण की आयनों और मुस्लिम लों के कारण मुस्लिम स्त्री को अनेक अन्याय-अत्याचार सहना पड़ता है। ‘हलाला’ यह मुस्लिम समाज की एक गंदी सामाजिक कु-प्रथा है। मुस्लिम समाज के ढोंगी और पांखड़ी धर्मगुरुओं ने धर्म की आड़ में मुस्लिम स्त्री का शोषण कर रहे हैं। अतः यह कहना उचित होगा कि ‘हलाला’ उपन्यास में भगवानदास मोरवाल जी ने धर्म की आड़ में मुस्लिम स्त्री का दैहिक शोषण और मुस्लिम स्त्री की यातना को वाणी देने का सफल प्रयास किया है।

संदर्भ संकेत

१. डॉ.किरणबाला अरोडा – साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में नारी , पृ. १७४
२. हलाला, प्लैप की सामग्री से
३. भगवानदास मोरवाल – ‘हलाल’ के प्राक्कथन से उद्धृत
४. वही – हलाला, पृ. ७७
५. भगवानदास मोरवाल – ‘हलाल’ के प्राक्कथन से उद्धृत
६. वही – हलाला, पृ. ७७
७. डॉ. मधु खराटे – भगवानदास मोरवाल , पृ. २०

आना इस देश-उपन्यास में चित्रित मुस्लिम नारी सुरैया की त्रासदी

डॉ. शाहीन एजाज जमादार

हिंदी विभाग प्रमुख,
मिरज महाविद्यालय, मिरज

भारत विभाजन की समस्या एक ऐसी समस्या है जिसको आज भी कोई सुलझा नहीं सका। आजादी का अतुलनीय आनंद और बँटवारे का अभूतपूर्व सदमा- १९४७ का साल एक साथ ये दोनों चीजें दे गया। आज ७२ साल बाद भी बँटवारा तीन दक्षिण एशियाई राष्ट्रों की जिन्दगियों में जिन्दा है। यह कोई अतिशयोक्ति न होगी कि यह अभी भी हमारे सामूहिक राजनीतिक विमर्श के साँचे में समाया हुआ है। १९४७ के साम्प्रदायिक विद्रोह की प्रेत-छाया दक्षिण एशिया की राजनीति पर मँडराती रहती है। और भारत या पाकिस्तान के मुख्तलिफ धार्मिक समुदायों के बीच फूट पाडनेवाले हर हिंसक घटनाक्रम का उप-पाठ निर्मित करती है। निस्सन्देह भारत, पाकिस्तान की राजनीति आज तक बँटवारे के बोझ से उबर नहीं पाई है।

विभाजन के दौरान ठीक-ठिक कितने लोग मारे गए कोई नहीं जानता। कितने विस्थापित और कितने बेदखल हुए; नहीं पता। मौत के बारे में दो से तीस लाख के बीच, अलग-अलग तरह के अनुमान हैं। कंजुस अनुमानों के अनुसार सन १९४७ के विभाजन में पाँच लाख से दस लाख के बीच औरत, मर्द और बच्चे जिंदगी से हाथ धो बैठे ७० हजार से ज्यादा महिलाओं के साथ बलात्कार हुये और तकरीबन एक करोड़ बीस लाख लोग अपने घरों को छोड़कर भागे। साथ ही १९४६ से १९५१ के बीच लगभग ६० लाख हिंदू और सिख भारत आए, और ६० लाख के करीब मुसलमान पाकिस्तान गए। इस तरह हिंसा और विस्थापन एक मन्द, दीर्घकालिक प्रक्रिया रही। भारत का विभाजन न सिर्फ उपनिवेशवाद की पैदा की हुई महानतम त्रासदियों में से एक है, इसने अपनी तरह के अनोखे बहुसांस्कृतिक उप-महाद्वीप की सहजीवी संस्कृतिक में हमेशा के लिए दरार भी डाल दी। संक्षेप में हमें कहना होगा कि भारत और पाकिस्तान दोनों विभाजन की आधी रात की सन्तानें हैं।

इस घटना का असर आज भी दोनों देशों में दिखाई देता है। इस पर भारत-पाकिस्तान में अनेक फिल्मों, लेख तथा कहानियाँ उपन्यास लिखे गए। हिन्दी के बहुत सारे उपन्यासकारों ने इस यथार्थ को भोगा भी था। जैसे, राही मासूम रजा, भीष्म सहानी, सआदत हसन मंटो इ. इन्होंने इस विभाजन की त्रासदी को यथार्थ रूप में प्रस्तुत भी किया है।

आना इस देश यह उपन्यास भी विभाजन की समस्याओं पर ही लिखा हुआ है। लेकिन कृष्णाजी ने नारी जीवन की मर्म भेदी त्रासदी पर केन्द्रस्थ किया है। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र सुरैया एक मुस्लिम नारी है। जो पाकिस्तान की रहनेवाली है। पाकिस्तान से आयी सुरैया एक हिन्दू युवक अबीर से प्रेम करने लगती है। और उनका प्रेम सम्प्रदाय, समाज, धर्म और देश की नुकीली दीवारों के बीच लहलुहान होने की अभिशाप है। सुरैया सुशील, सुंदर एवं पढ़ी-लिखी नारी है उसने उर्दू अदब के साथ अरबी भी पढ़ा है, ग़लिब से लेकर नये शायरों का भी अध्ययन किया है। साहित्य के संदर्भ में उसके विचार इस प्रकार के हैं, जैसे- "न तो पाकिस्तान में पढ़ाया गया शेकसपियर भारत से अलग और ना ही ब्राउनिंग।"^१ सुरैया शिक्षा को एक आँख से देखती है न की किसी सरहद की सीमा में बांधना चाहती है। सुरैया एक आधुनिक नारी है। वह ड्राइविंग के साथ रेडियों पर गाती भी है। ऐसी खुबसूरत, जिंदादिल सुरैया का विवाह उससे दुगुनी उमर के परवेज के साथ होता है। परवेज ऐअरफोर्स में काम करता है। वह अमीर है। सुरैया की जिंदादिली से उसे नफरत है। वह उसे सताता भी है। अपने पति की वहशाना हरकत देख सुरैया उससे निजात पा लेती है। वह अपने नवजात बच्चे के साथ अपने मायके आती है। लेकिन अचानक उसके बच्चे की मृत्यु हो जाती है। इस हादसे से वह अपने आप में खोई रहने लगती है। उसकी यह हालत देखकर उसके पिता उसे उसकी खाला के पास दुबई भेज देते हैं। लेकिन वहाँ भी उसकी खालाजाद बेहन का पति उस पर बुरी निगाह रखता है। इस से तंग आकर वह कभी-कभी नशा भी करती है। उसी दरम्यान उसकी मुलाकात डॉ. गीत से होती है। दोनों अच्छे दोस्त बन जाते हैं। सुरैया की ड्राइव देखकर गीत उससे यह कहती है, "मुतरमा आप बाढ़या ड्राइव करती हैं, वहाँ महिला ड्राइवर हैं नहीं। आप क्यों नहीं इंस्पेक्टर के लिए अपलाय कर देती।"^२ गीत की सलाह से ही वह ६ महिने की ट्रेनिंग के बाद इंस्पेक्टर बन जाती है। वह अपनी पहली तनख्वाह अपनी माँ और दादी को देती है। तब दादी उससे कहती है कि, इतने रुपये तेरे आबा तेरे हाथ खर्चे के लिए देते थे। उस पर सुरैया कहती है कि, "नहीं दादी जान! वहाँ बैठे-बैठे मैं खाना पका, जेवर पहनकर जिन्दगी दहशत में नहीं गुजराना चाही।"^३ यहाँ सुरैया के यह विचार उसकी खुदारी को दर्शाते हैं।

सुरैया एक सजग नारी है। वह रहम दिल भी है। समाज में फैले हुये धार्मिक, राजनैतिक आर्थिक भेद भाव से उसे सख्त नफरत है। साथ ही दोगली राजनीति के भी खिलाफ है। धर्म पर राजकारण करनेवाले नेता तथा उनके बहकावे में आनेवाली आज की पीढ़ी इसके लिए भी उसे सहानुभूति है। ऐसे ही एक तांगेवाले की आर्थिक स्थिति को जानकर सुरैया उसे पाँचसौ का नोट देते हुए कहती है कि, "चाचा इस बार ईदी पर अपने लिए जोडा मेरी ओर से बनवा लेना।"^४ उसी प्रकार जब वह ताजमहल देखने जाती है वहाँ गेट पर खड़ा दस साल का लडका जमाल से भी वह सहानुभूति दिखाती है।

सुरैया पति परवेज के छेड़ने पर आपने आप को अकेला महेसूस करती है। उसकी नानी तथा माँ भारत के राजस्थान के रामपुर गाँवसे है। उसकी माँ, नानी की इच्छा के अनुसार वह गीत के साथ भात आती है। तब उसकी मुलाकात अबीर से होती है। अबीर एक हिंदू युवक है जिसकी मनु से शादी निश्चित हो चुकी है। फिर भी दोनों में प्यार हो जाता है। दोनों की जाति, देश अलग होने पर भी दोनों तन-मन से एक हो जाते हैं। लेकिन उनका प्यार हिंदुस्तान-पाकिस्तान की सीमाओं का शिकार बन जाता है। दोनों देशों के राजनैतिक सम्बंध बिघड़ने पर उनका विसा पास नहीं होता और विसा खत्म होने पर वह साथ नहीं रह सकते। और उनका प्रेम सम्प्रदाय, समाज, धर्म और देश की नुकीली दीवारों के बीच लहलुहान होने को अभिशाप है। अबीर को मनु से विवाह के लिए विवश होना पड़ता है। अबीर ने सामाजिक वर्जनाओं की जकड़न के संदर्भ में पाया है कि हमारे समाज में 'वही' मनुष्य मूल्यवान है जो प्रेम नहीं करता। अबीर के विचार में प्रेम पर किसी का वश नहीं होता, वो तो फूल में सुगंध की तरह, दुध में उबाल की तरह, छुपा होता है और मथने पर मक्खन उतर आता है। सुरैया मानती है कि, "मुहब्बत को कोई मिटा नहीं सकता अबीर। क्योंकि जजबात न तो हिन्दू होते हैं न मुसलमान।"^५ संक्षेप में कृष्णाजी ने प्रेम को नैतिक वर्जनाओं से परे रखा है, सुरैया और अबीर का देह-ससर्ग इसका प्रमाण है, लेकिन वे हर तथ्य पर भी जोर देती कि प्रेम 'अमरसंगीत' है जिनकी आत्माओं की तार जुड़ जाते हैं, वे कब अलग होते हैं। वे तो मीठे सूर बन जाते हैं। पूरा उपन्यास इन्हीं मीठे सुरों को बचा लेने का आव्हान है, आदमी-आदमी के आत्माओं को जुड़े रखने का उदाहरण है।

राजनीतिक के बिगड़ते हालात और विसा खत्म होने की दशा में सुरैया को पाकिस्तान रेल के रास्ते जाना पड़ता है। लेकिन बीच रास्ते में ही कुछ दरिन्दे वहशी लोग उस पर बलात्कार करते हैं, उसे अपने कमरे में बंद कर कई दिनों तक भूखा भी रखते हैं। इन सब परिस्थितियों के चलते सुरैया अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है। और पाकिस्तान और हिंदुस्तान की सरहद पर पागल होकर केवल अबीर को खोजती है। जब अबीर को उसके पाकिस्तान न पहुँचने की इतला मिलती है तो वह उसे खोजने की कोशिश में सरहद तक जाता है। वहाँ उसे सुरैया एक पूर्ण रूप से पगली मिलती है, "जैसे ही लाइट पड़ी तो अबीर ने देखा की उसकी पूरी देह में फोड़े थे। कपड़े फटे व चेहरा गंदा। देर तक अबीर उसे घूरता रहा और वो पागल अबीर को घूरती रही। दस क्षण बाद वो मुस्कराई। मुझे अपने देश आने दो ना।"^६ इस प्रकार कहते हुये वह भारत की सीमा तरफ भागती आकर बेहोश हो गयी। एक सुन्दर, जहीन, नाजनीन का भयावह अंत होता है। प्राण निकलने के समय उसका एक हाथ पाकिस्तान की धरती पर तो दूसरा हिंदुस्तान की जमीन पर होता है। मंटो के "टोबा टेकसिंह का पागल" नो मैस लैण्ड पर गिरा था। सुरैया की इस नियति पर एक गंभीर टिप्पणी है कि युद्ध हो, झगड़े हो बेचारी औरत उसकी शिकार हो जाती है। देश-देश में फल-फूल रहे आतंकवाद को भी औरत की दुर्गति और बर्बादी के लिए जिम्मेदार ठहराया है। जिस सुरैया ने भारत और पाकिस्तान को अपने प्रेम के द्वारा एक नजर से देखा था आज वही देश के दरिंदो ने उसे मार दिया था। उसके विचार विशाल थे। वह कहती है कि; "देखना अबीर नयी पीढी भारत व पाकिस्तान की सीमा को चमकीली हवादार बना देगी और दोनों देश के युवा इन हवा व फिजा में खुशी हर्ष व आनंद का मजा लेंगे।"^७ इन विचारों में जीनेवाली सुरैया दोनों देश के सीमा के बीच अपना दम तोड़ती है।

इस उपन्यास का विजन व्यापक है। इसमें नारी की मुक्ति की चेतना मीडिया द्वारा अपसंस्कृति परोसने से किशोरों की विकृत मानसिकता, साम्प्रदायिकता, फसाद, आतंकवादी, अमानवीयता, आदि अनेक पक्ष समाहित है। लेखिका को विश्वास है कि एक दिन धर्मांध लोग इंसानियत के वजूद को अपनायेंगे और इस दरार को मिठायेंगे।

संदर्भ सूची:

१. आना इस देश- डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, प्रा. अमन प्रकाशन, पृष्ठ क्र. १५
२. वही, पृष्ठ क्र. २१
३. वही, पृष्ठ क्र. २१
४. वही, पृष्ठ क्र. ३४
५. वही, पृष्ठ क्र. ५६
६. वही, पृष्ठ क्र. ८६
७. वही, पृष्ठ क्र. ६१
८. कृष्णा अग्निहोत्री- सम्पूर्ण साहित्य का मूल्यांकन, प्रा. अमन प्रकाशन, कानपुर
९. आलोचना (त्रैमासिक) अंक-५६

हिंदी के विकास में हिंदी सिनेमा का योगदान

प्रा.डॉ. उत्तम लक्ष्मण थोरात
आदर्श कॉलेज, विटा
जि.सांगली (महाराष्ट्र)

भाषा के प्रचार-प्रसार और विकास के लिए पारंपारिक शिक्षा के साथ मनोरंजन की अभिव्यक्ति की आवश्यकता महत्वपूर्ण होती है। इसको पूरा करने का काम सिनेमा के संगीत और चित्रिकरण करनेवाले कमेंरे ने बखुबी किया है। आज तक दुनिया में जिस भाषा का बोलबाला रहता है, उसी भाषा को सिखने की परंपरा रही है। वैश्वीकरण के दौर में दुनिया के व्यापारी हिंदी सीखना चाहते हैं, उन्हें विश्व के विकसित भारतीय बाजार में व्यापार करना है। कुछ वर्ष पहले भारत की विशाल संपदा ने विदेशियों को अपनी ओर आकर्षित किया, अब व्यापारी जरूरत ने फिर एक बार विश्व के लोगों को हिंदी की ओर आकर्षित किया है। हिंदी के बेहतर शब्दचयन और भाषा का परिष्कृत रूप हिंदी सिनेमा में पाया जाता है।

सिनेमा जनसंचार का सशक्त माध्यम होने के कारण विश्वके समस्त विचार संवेदनाओं को नजदिक लाने का कार्य करता है। इसके साथ ही सिनेमा सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक समस्याओं पर प्रकाश डालने में सहाय्यक है। "सिनेमा चौसठ कलाओं का सुंदर समन्वय करनेवाली स्वयं पैसठवी कला है जो ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, सामाजिक संघर्ष क्रांति, उत्थान और पतन, निर्माण और विनाश, प्रगति और दुर्गति को प्रतिबिंबित करनेवाली विधाओं में सिनेमा का सर्वोच्च स्थान है।" नवविचार और नवकल्पनाओं को समाज के कोने-कोने तक पहुँचाने का प्रयास सिनेमा करता है। समाज में उठनेवाली प्रत्येक लहर का प्रतिनिधित्व करनेवाला सिनेमा नवीनता का संचालक रहा है।

विश्व के अन्य भाषा-भाषियों के लिए हिंदी सिनेमा एक शिक्षक के रूप में मददगार साबित हुआ है। जिन्होंने व्यावसायिक तौर पर हिंदी को अपनाया है उन्होंने हिंदी को अच्छी तरह सीखा और समजा है। हिंदी सिनेमा बनाने के लिए सत्यजीत रे ने हिंदी भाषा सीखी, वैसे ही कैतरीना कैफ ने हिंदी सिनेमा में अभिनय करने के लिए हिंदी सीखी और हिंदी सिनेमा का सुपरस्टार अभिनेत्री बनी। हिंदी सिनेमा लोकप्रिय बनने के लिए उसका कथानक महत्वपूर्ण होता है। हिंदी सिनेमा के कथानक की जरूरत हिंदी उपन्यासकारों के समृद्ध उपन्यासों ने पूरी की है। इसमें प्रेमचंद, आचार्य चतुरसेन, कमलेश्वर, अमृता प्रीतम, महाश्वेता देवी, मन्नू भंडारी, भीष्म साहनी, अमृतलाल नागर, धर्मवीर भारती आदि उपन्यासकारों ने उपन्यास लिखे हैं। इनके उपन्यासों के नाम पर अथवा परिवर्तित नाम पर हिंदी सिनेमा बने हुए हैं। "उनमें आर.के. नारायण की 'गाईड', विमल मित्र की 'साहब, बीबी, और गुलाम' शरत चंद्र की 'देवदास' राजेंद्र सिंह की 'दस्तक', विजयदान देथा की 'पहेली' भगवीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' इप्पा लाहिडी की 'नेमस्ते' गुलशन नंदा की 'कटी पतंग' काजल, झील के उस पार, सावन की घटा, शर्मिली, नील कमल खिलौना, नया जमाना, दाग, जोशीला, अजनबी, भँवर, महबूबा, नजराना आदि, कमलेश्वर की आंखी, राम-बलराम, मौसम, सौतन की बेटी, द बर्निंग ट्रेन आदि चर्चित फिल्में बनी हैं। हाल ही में लोकप्रिय हुई फिल्म 'पद्मावत' मालिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत महाकाव्य पर बनी हुई है।

प्राचीन काल से लेकर हिंदी साहित्य ने हिंदी सिनेमा के विकास में चार चांद लगाए हैं और हिंदी सिनेमा ने हिंदी भाषा को विश्व भाषा बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। "साहित्य और सिनेमा का रिश्ता लगभग हर दौर में कायम रहा है। भले ही इस रिश्ते में उँच नीच का दौर चलता रहा हो। सिनेमा असरदार माध्यम है और साहित्य भी अपना प्रभाव छोड़ता है। विविध खामियों और विरोधाभासों के बावजूद साहित्य और सिनेमा एक दूसरे के पूरक हैं। आजकल दर्शकों की बदली हुई रुचि के अनुसार कथानक में भी बदलाव आया है। अब युवा दर्शकों को ध्यान में रखकर सिनेमा बन रहा है। साहित्यकारों ने यह ध्यान रखना आवश्यक है कि साहित्य एक कला है और सिनेमा उद्योग है।

भारत के साथ विश्व के फिल्मकार हिंदी भाषा में फिल्म बना रहे हैं या किसी अन्य भाषा से हिंदी में डब करके सिनेमा उद्योग का विस्तार कर रहे हैं। सिनेमा के माध्यम से दुनियावाले अपने उत्पादनों की ओर हिंदुस्थान के उपभोक्ताओं

को आकर्षित कर रहे हैं। विकसित देशों के विकसित शहरों का पर्यटन विकास हेतु चित्रिकरण के माध्यम से अपने शहरों का विज्ञापन कर पर्यटकों को आकर्षित कर रहे हैं।

विश्वभर में हिंदी सिनेमा ने जितना हिंदी भाषा का प्रचार - प्रसार किया है, उतना भारत सरकार की अन्य किसी योजना ने नहीं किया है। यह बात भाषा के मर्मज्ञ मान्य कर चुके हैं। भाषा के प्रचार -प्रसार में अन्य प्रयासों की अपेक्षा हिंदी सिनेमा अधिक मात्रा में कार्य कर रहा है। हमारी हिंदी भाषा भारत के साथ विश्व में अधिक लोकप्रिय करने का कार्य हिंदी सिनेमा ने किया है। इसका परिणाम विदेशों के सिनेमाघरों में हिंदी फिल्मों के लिए भीड़ लगती है। विदेशों के म्युजियम में हिंदी फिल्म अभिनेता और अभिनेत्रियों के मोम के पुतले सम्मान के साथ खड़े किए गए हैं। हिंदी सिनेमा के साथ हिंदी गीत और गजल गायकों के विदेश में होनेवाले शो के लिए सभागृह में अभूतपूर्व भीड़ उमड़ती है। इसके साथ ही हमारे देश के प्रधानमंत्री विदेश जाकर सम्मान के साथ हिंदी में भाषण देते हैं और विदेशी उनको सुनने के लिए बड़ी मात्रा में उत्साह से एकत्रित आते हैं।

हिंदी सिनेमा अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में लोकप्रियता की दृष्टि से बहुत आगे निकल चुका है। हिंदी भाषी कलाकारों के साथ अहिंदी भाषी और विदेशी कलाकार भी हिंदी सिनेमा में अपना स्थान बनाने के लिए प्रयत्नशील है। हिंदी सिनेमा में पैसे लगानेवाले लोग यह स्वीकार करते हैं कि हिंदी भाषा में सिनेमा बनाने के कारण हमें भारत के साथ विदेशों में नाम और दाम दोनों मिल चुके हैं। यह सभीयों ने मान्य किया है कि हिंदी सिनेमा ने हिंदी को दुनिया के कोने - कोने में लोकप्रिय भाषा बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सिनेमा की भाषा आम लोगों की भाषा है। हिंदी सिनेमा ने अपनी शब्दावली प्रांतीय, स्थानीय भाषा के साथ देश विदेश की भाषा के शब्दों को स्थान देकर हिंदी भाषा को अधिक समृद्ध किया है। हिंदी सिनेमा से प्रभावित होकर हिंदी भाषा शहरों से लेकर देहातों, कसबों तक के लोग टुटी - फुटी क्यों न हो बोलने लगे हैं। ये सभी भाषा के प्रचार - प्रसार के कार्य को आगे बढ़ाने वाले राही हैं। हिंदी भाषा को हिंदी सिनेमा ने विश्व के कोने - कोने तक पहुँचाया है।

पहले सिनेमा के माध्यम से हिंदी भाषा विश्व के कोने - कोने में जा पहुँची और अब हिंदी भाषा के कारण हिंदी सिनेमा विश्व में लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचा है। आज हमारे देश में मनोरंजन का सर्वाधिक प्रचलित साधन भारतीय सिनेमा है और उसमें ६० प्रतिशत फिल्में हिंदी भाषा में बनाती हैं। विश्व में बननेवाली हर चौथी फिल्म हिंदी होती है। भारत की सर्वप्रथम १९३१ में बनी सवाक फिल्म 'आलमआरा' आर्देशिर ईरानी ने हिंदी में बनाई थी। हिंदी भाषा देश -विदेश की संपर्क भाषा होने के कारण हिंदी सिनेमा को अच्छे दिन आ गए हैं। हिंदी भाषा और हिंदी सिनेमा दोनों भी हमारे देश को अनेकता में एकता की ओर ले जानेवाले जिवंत उदाहरण हैं।

संदर्भ -

१. हम लोग - संपा. संजय भारद्वाज - वार्षिक अंक - २०११
२. रोजगारोन्मुख हिंदी - संपा.डॉ. गणेश ठाकूर
३. आजकाल साहित्यिक पत्रिका - भीष्म साहनी साक्षात्कार - १९९३

हिन्दू-मुस्लिम समन्वय के लिए मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान

उस्मान सत्तारमियाँ शेख

शोधार्थी

अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय हैदराबाद. 500007

“आप लोगों ने तो उर्दू को भी मुसलमान कर लिया...आप जान का डर पैदा कर रहे हैं। डर की यह फस्ल हमीं को कटनी पड़ेगी इसीलिए मैं बहुत डरता हूँ...जो कुछ मैंने देखा है, वह आपने नहीं देखा है। इसीलिए जो कुछ मैं देख सकता हूँ, वह आप नहीं देख सकते। नफ़रत और खौफ की बुनियाद पर बनने वाली कोई चीज मुबारक नहीं हो सकती। पाकिस्तान बन जाने के बाद भी गंगौली यहीं हिंदुस्तान में रहेगा और गंगौली फिर गंगौली है तब अगर गयवा अहीर, लखना चमार और छिकुरिया भर ने आपसे पूछा कि उन्होंने तो कभी आपसे दुश्मनी नहीं की थी, फिर आपने पाकिस्तान को ओट क्यों दिया, तो आप क्या जवाब देंगे?” (‘आधा गाँव’, राही मासूम रजा पृ. 251)

आज जिस समय में हम जी रहे हैं वह समय दिलों में दूरी नफ़रत, शक, भय और अपने कलयुग रूपी गुणों को लेकर मनुष्य जाति में अवतरित हो गया है, यह समय साझा संस्कृति/विरासत को समाप्त करने की कगार पर खड़ा है। आज भी भारतीय राजनीति अपने राजनीतिक स्वार्थ के कारण हिन्दू-मुस्लिम समाज के दिलों को भिन्न-भिन्न करना चाहती है। जब दोलों में दुःख उत्पन्न हो जाये तो इसे मिटाने का दायित्व एक सजग रचनाकार का होता है, इसीलिए हिन्दू-मुस्लिम रचनाकारों ने दिलों को जोड़ कर समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है। हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल से ही मुस्लिम रचनाकारों की एक लंबी परंपरा दिखाई देती है। नहीं भक्तिकाल के अंतर्गत ‘सूफी काव्यधारा’ इस बात का प्रमाण है कि वे समन्वय में अटूट विश्वास रखते थे क्योंकि इनके माध्यम से कहीं गई प्रेम कहानियों में हिन्दू समाज के देवी देवताओं का चित्रण मिलाता है और इन सूफी रचनाकारों के काव्य को हिन्दू-मुस्लिम दोनों वर्ग के लोग बड़े ही चाव से पढ़ते हैं। ईश्वर की भक्ति करने के लिए किसी विशेष धर्म का होना अनिवार्य नहीं है इस बात की झलक रसखान में दिखाई देती है जो मुसलमान होते हुए भी कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं हिंदी साहित्य के इतिहास में समन्वय को बड़े ही शिद्दत से प्रस्तुत करने वाले रचनाकारों में हैं- आमीर खुसरो, रसखान, रहीम, राही मासूम रजा, अब्दुल बिस्मिल्लाह मंजूर एहतेशाम, शानी, नासिरा शर्मा, तसलीमा नसरीन, बदिउज्जमाँखां, अब्दुल हुसैन फैज अहमद फैज आदि रचनाकार हैं जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिमों के टूटे हुए दिलों को एक करने का प्रयास किया है सन् 1857 ई. का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में भारत की हिन्दू-मुस्लिम जनता ने पहली बार अंग्रेजों की हुकूमत के खिलाफ मिलकर लड़ाई लड़ी है तब उनका एक ही उद्देश्य था कि भारत को अंग्रेजों से मुक्त लेकिन अंग्रेजों को ज्ञात हो गया था कि अगर भारत में राज करना है तो हिन्दू और मुस्लिम जनता जो कि एक है उसे विभाजित करना चाहिए इसीलिए उन्होंने ‘फूट डालो, राज करो’ की नीति अपनाई जिस भारत के एकता की दुहाई संसार भर के देशों में दी जाती है वह भारत सन् 1947 ई. में धर्म, भाषा एवं जाति के आधार पर विभाजित हो गया और भारतीय मुसलमानों के लिए छोड़ दिया डर, शक, भय, असुरक्षा, नफ़रत जैसे भयानक शब्द भारत विभाजन के पश्चात जरूरत थी कि भारतीय मुसलमान जो अपने नए मुल्क पाकिस्तान की बजाय भारत में ही रहना स्वीकार कर लिया था, उनकी सुरक्षा का प्रश्न क्योंकि भारत की जनता (विशेष कर बहुसंख्यक समाज) विभाजन का प्रमुख कारण मुसलमानों को ही मानती थी हिन्दू और मुस्लिम समाज के दिलों में नफ़रत, हिंसा की वजह से देश की हवाएं गरम हो रही हैं और इनके चिंगारी में जल रहा है भारतीय मुसलमान इस स्थिति में भारतीय संविधान और साहित्यकार यत्न करते हैं, जिन्होंने नफ़रत की आग को कम करने का प्रयास किया है।

धर्म अपने मूल चरित्र में मानव विरोधी नहीं होता वह मनुष्य को सही मार्ग में लाने के लिए मदद करता है भारत स्वतंत्र होने के पश्चात हिंदी साहित्यकारों ने हिन्दू-मुस्लिम जनता के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास है राही मासूम रजा हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध रचनाकार हैं उनका प्रसिद्ध उपन्यास ‘आधा गाँव’ जो गाजीपुर के गंगौली के इर्दगिर्द घुमाता हुआ दिखाई देता है लेकिन इस गंगौली जैसे भारत में सैकड़ों मुस्लिम बहुल गांवों का सटीक चित्रण इस उपन्यास में दिखाई देता है इतना ही नहीं इस उपन्यास का पात्र फुन्नन मियाँ तो हिंदी साहित्य में अपने विचारों के कारण विशिष्ट स्थान रखता है। फुन्नन मिया कोई बड़े ज्ञानी, नेता, संत, विद्वान, समाजसुधारक नहीं है फुन्नन मिया तो वह है जिनके पास फलसफों, तारीखों का कोई जखीरा नहीं है, वह पड़े लिखे नहीं है, देश दुनिया की बहुत सी बातें वह नहीं जानते उन्हें यह भी नहीं पता कि इस देश में हिन्दू-मुस्लिम दो जातियों के लोग हैं, देश में मुसलमानों के लिए नए राष्ट्र की मांग की जा रही है लेकिन ‘आधा गाँव’ के मुस्लिम अपना गंगौली छोड़कर नए मुस्लिम बहुल राष्ट्र में नहीं जाना चाहते हैं। उनका मन गंगौली में लग गया है वे ठाकुर कुंवरपाल पाल सिंह परशुराम तथा झिंगुरिया आदि हिन्दू भईयों के साथ रहना

चाहते हैं और उसका इन हिन्दू भाइयों पर विश्वास है गंगौली अपने-आप में हिन्दू मुस्लिम समन्वय का प्रतिक दिखाई देता है क्योंकि तन्नु अलीगढ़ से आये काली शेरवानी से कहता है कि "मैं मुसलमान हूँ लेकिन मुझे इस गाँव से मुहब्बत है, क्योंकि मैं खुद यह गाँव हूँ मैं नील के इस गोदाम, इस तालाब और इन कच्चे रास्तों से प्यार करता हूँ क्योंकि यह मेरी ही मुख्तलिफ रूप हैं मैदाने-जंग में जब मैमौत केबहुत करीब आ जाती थी तो मुझे अल्लाह जरूर याद आता था, लेकिन मक्कए-मुअज्जमाया कर्बलाए-मुअल्ला की जगह मुझे गंगौली याद आती है" राही मासूम रजा का सम्पूर्ण साहित्य साम्प्रदायिकता के विरुद्ध है उनके साहित्य में हिन्दु स्तानी-संस्कृति और उसकी साझी विरासत की झलक मिलती है। राही हिंदी में प्रेमचंद यशपाल, भीष्म सहानी, तथा मुक्तिबोध की परम्परा में हैं जो एक बड़े रचनाकार होने के साथ-साथ चिन्तक भी है। इनके साहित्य का प्रमुख उद्देश्य देश और अखंडता, एकता, साझी विरासत की रक्षा को बढ़ावा देना है क्योंकि वर्तमान समाजदेश के बड़े तबके को शक, नफ़रतसे देख रहा है इसीलिए इनके दिलों को साफ करने का कार्य हिंदी साहित्य के रचनाकारों का है इसीलिए राहीउन शक्तियों एवं प्रवृत्तियों का विरोध करते हैं जिनमें भारतीय जनता की एकता को तोड़ने वाले तत्व निहित होजैसे धर्म, संप्रदाय, जातिवाद, भाषा के आधार पर भारतीय जनता को बंटाना आदि का विरोध राही के साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। साझासंस्कृति की विरासत की झलक इनके साहित्य में दिखाई देती है। 'आधा गाँव' उपन्यास का पात्र कम्मो के समक्षअलीगढ़ से आये मुस्लिम युवक जो गाँव में नए राष्ट्र पाकिस्तान के लिए ओट मांग रहे है तब उनका सामनाकम्मो से हो जाता है वैचारिक मतभेद बढ़ जाने के बाद युवक गुस्से में कम्मोके कहता है कि "ठीक है, लेकिन जब हिन्दू आपकी माँबहन को निकाल ले जायं तो फ़र्याद न कीजियेगा।" तभी कम्मो उस युवक पर आग बबूला हो जाता है और वह यहजनता है कि गंगौली गाँव में हिन्दू-मुस्लिम समाज सदियों से एक साथ रह रहे हैं और उस युवक की बात को गलत साबित करने के लिए वह राह चलते हुए चमार से कहता है कि "ई लोग अलीगढ़ से हममें ई बताये आये हैं कि हिंदुस्तान आजाद हो जइहे त तू लोग हमरे की माँबहन को निकाल ले जइहो।...अरे, राम-राम चमार बिलकुल घबरा गया। वह अलीगढ़ वालों की तरफ मुड़ा, आप लोग त लिक्खन-पढ़ल बुझाताड़ी। तनी सोचीं कि हमनी के जीयत कोउ मियां लोगन की बहन-मतारी की तरफ देख सकेला? आप लोगन से आच्छा त हमरा चमरवे है। कम्मो ने कहा जो माँ-बहन के निकाल लिये जाने की बात सुनके राम-राम करे लगा।" राहीमासूम रजा ने जिस गंगौली गाँव का चित्रण किया है वह गाँव समन्वय का प्रतिक है क्योंकि इस गाँव में हिन्दू-मुस्लिम मिलकर प्रत्येक त्यौहार का आनंद लेते हुए दिखाई देते है।

राहीकादूसरा उपन्यास 'टोपी शुक्ला' अपने आप में समन्वय की विराट चेष्टा लेकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत होता है इस उपन्यास का समय टोपी औरराही का होते हुए भी हमारा और तम्हारा भी समय है। इस उपन्यास की कहानी तीन प्रमुख पात्र- बलभद्र नारायण शुक्ला (टोपी शुक्ला), इफ्फन और इफ्फन की पत्नी सकीना के इर्द-गिर्द घुमती हुई दिखाई देती है इस उपन्यास के माध्यम से राही मासूम रजा यह दिखने का प्रयासकरते हैं कि मित्रता में धर्म का स्थान नग्न हो जाता है। टोपी शुक्ला, इफ्फन और सकीना की दोस्ती बहुत ही गहरी हो जाती है। इफ्फन केघर टोपी का आना-जाना निर्विरोध चलता ही रहता है चाहे इफ्फन घर पर हो या न हो इतना ही नहीं बल्कि सकीना टोपी को लेकर फिल्म भी देखने जाती है। जब इफ्फन नौकरी के बहाने परिवार सहित जम्मू जाता है, तब भी टोपी को इफ्फन, सकीना, शबनम की याद आती थी। अतः कहा जा सकता है कि 'टोपी शुक्ला' का परिवेश हमारा अपना परिवेश दिखाई देता है। आज भी मुस्लिम परिवेश को देख कर लोगों के मन में नफ़रत, भय, शंका दिखाई देती है राही ने 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में जिस मुस्लिम समाज के शिनाख्त और उनके प्रति नफ़रत और हिंसक प्रवृत्ति को जिस शिल्प के साथ पाठकों के समुख प्रस्तुत किया है कि जब टोपी शुक्ला अपनी काली शेरवानी से सज्जधजकर ट्रेन से अपने गाँव की ओर जाते है तभी ट्रेन में पंडित जी खाना खा रहे है और वह पंडित से आग्रह करता है कि थोडा खिसक के बैठ जाए लेकिन पंडित टोपी की बातों को अनसुना करता है तभी सामने बैठे तोंदवाले सज्जन ने कहा कि "इस तरह ऐठना हो तो पाकिस्तान जाओ" यह बात टोपी की समज में आ गई थी कि उसे वह यात्री मुस्लिम समज रहा है तभी टोपी कहता है कि "मैं हिन्दू हूँ टोपी ने कहा। मैं बलभद्र नारायण शुक्ला हूँ और चलिए मान लिया कि मैं शेख सलामत हूँ तो क्या हुआ? ये बेंचें यात्रियों के बैठने को लगी हैं। मैं बाबा का खाना छीन तो नहीं रहा था। आप ही लोग मुसलमानों को भारत-विरोधीदल में धकेल रहे हैं। क्या शेरवानी मुसलमान है? यह तो कनिष्क के साथ आई थी। यह पायजामा भी कनिष्क ही का है।...हिन्दू-मुस्लिम का भेदभाव झूठा है बेटा पंडित जी ने कहा यह तो भगवान की लीला है।" राही मासूम रजा के पात्र भारत देश से बड़ी मोहबत करते है क्योंकि उनका मानना है कि इसी भारत देश में इनका बचपन बीता, पूर्वजों की यादें, उनकीकब्र, हैं और इनसेजिन्ना साहब हमेंभारत देश से अलग नहीं कर सकते उन्हें जितना मुस्लिमों पर विश्वास है उतना ही हिन्दुओं सभी जो लोग पाकिस्तान जा चुके है उनके संदर्भ में सईदा कहती है कि "मगर पाकिस्तान से कोई वापस नहीं आता-तो क्या पाकिस्तान मृत्यु-देश है?" राही मासूम रजा की सबसे बड़ी विशेषता यह कि उनके साहित्य में समन्वय, मुस्लिम जनता का अपने देश के प्रति देशप्रेम

साम्प्रदायिकता का विरोध, साझा संस्कृति की पैरवी की गई है। राही के समग्र साहित्य में हमें समन्वय के बिंदु नजर आते हैं राही के समग्र उपन्यास 'हिम्मत जौनपुरी', 'ओस की एक बूंद', 'दिल एक सादा कागज', असंतोष के दिन आदि उपन्यासों में हिन्दू-मुस्लिम समाज के बीच समन्वय किसी-न-किसी पात्र के माध्यम से देखा जा सकता है।

मंजूर एहतेशाम का प्रसिद्ध उपन्यास 'सुखा बरगद' का पात्र परवेज का काफी समय पाकिस्तान और अमेरिका में रहकर भारत वापस लौट आता है तब सभी को हैरत होती है कि जहाँ मुसलमान पाकिस्तान और अमेरिका जाना चाहता है वहीं परवेज को भारत में बसना पसंद है। परवेज अपने अनुभवों को व्यक्त करते हुए कहता है कि मुसलमानों के लिए हिंदुस्तान ही बढ़िया राष्ट्र साबित हो सकता है खासतौर से पाकिस्तान या दुसरे इस्लामी देशों के मुकाबले कहीं बेहतर घर है। अतः कहा जा सकता है कि मंजूर एहतेशाम ने अपने साहित्य के माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम समन्वय को बढ़ावा देने का कार्य किया। 'सुखा बरगद' का सुहेल अपने-आप में राही के पात्र फुन्नन मियां, कम्मो, टोपी शुक्ला की सहज ही याद दिलाता है। उसका भारत से और यहाँ के हिन्दू भाइयों से इतना लगाव है कि वह अपने पूर्वजों के निर्णय को उचित कहते हुए कहता है कि "हमारे बाप बेवकूफ नहीं थे जो सन 47 में यहाँ रहना तय किया। अगर सिर्फ कमाई देखी जाए तो उन जितने पढ़े-लिखे लोगों के लिए एक नए मुल्क में कहीं ज्यादा संभावनाएँ थीं लेकिन अजनबी मुसलमानों के बीच चाहे वह अरब के हो, चाहे पाकिस्तान के जीने और मरने से बेहतर अपने से हिन्दुओं के बीच जीवन बिताना था। मंजूर एहतेशाम का पात्र उस मुल्क से नफरत करता है जो मुल्क धर्म जातिमजहब, औरशक के आधार पर विभाजित हो गया हो, उनका पात्र भारत में हिन्दूओं के बीच ही अपने-आप को सुरक्षित महसूस करते हुए दिखाई देता है क्योंकि मंजूर एहतेशाम समन्वय में विश्वास रखने वाले लेखक है इसी कारण उनका पात्र घुस्से में कहता है कि "उस मुल्क से हमदर्दी कैसी, जिसे तुमने आज तक देखा नहीं? और इस गुनाह के एहसास से भी कैसे इनकार किया जाए कि हमदर्दी थी।" विभाजन के पश्चात मुस्लिम जन-जीवन की गहरी जानकारी रखने वाले तो पाकिस्तान जा चुके थे लेकिन राही, शानी, अब्दुल बिस्मिल्लाह जैसे बड़े साहित्यकार अपने कथा-साहित्य के माध्यम से टूटे हुए दिलों को मिलाने का कार्य कर रहे थे, इनके इस नेक काम में यशपाल, भीष्म साहनी, विभूतिनारायण राय, कामतानाथ, रवीन्द्र कालिया और कमलेश्वर जैसे रचनाकारों ने सांप्रदायिक तत्वों का विरोध एवं समन्वय के सिद्धांत का समर्थन किया है। मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म इंसानियत है विभाजन के पूर्व और बाद में कई हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए इनके बीच वैचारिक मतभेद देखे जा सकते हैं लेकिन यही धर्म आज इस देश में अमन और शांति के साथ रहने के पीछे गाँधी, मौलाना आजाद, अब्दुल कलाम जैसे बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों के योगदान को भुला नहीं जा सकता।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य के रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम समन्वय के बिंदुओं को रेखांकित किया है। भारत देश की महान संस्कृति का गौरवगान, तथा हिन्दू-मुस्लिम त्योहारों का चित्रण इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। इन रचनाकारों की रचनाओं को पढ़कर पाठक के मन में बैठी रूढ़ एवं मुसलमानों के प्रति उनकी परंपरावादी दृष्टिकोण में अमूल परिवर्तन दिखाई देता है, तथा उनके मन में एक-दुसरे के प्रति अपने-पन की भावना जागृत होती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. आधा गाँव, राही मासूम रजा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 250
2. वहीं, पृ. 240
3. वहीं, पृ. 240
4. टोपी शुक्ला, राही मासूम रजा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 108
5. वहीं पृ. 109
6. आधा गाँव, राही मासूम रजा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 284
7. सुखा बरगद, मंजूर एहतेशाम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 92
8. सुखा बरगद, मंजूर एहतेशाम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 81

मीरा कांत के नाटक 'गली दुल्हनवाली' में मुस्लिम स्त्री विमर्श

सौ.विद्या शामराव चौगले
शोधछात्रा, शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर

सिद्धहस्त नाटककार मीरा कांत ने नाटकों के साथ कहानी, उपन्यास और लंबी कविताएँ आदि विधाओं का भी सफलतापूर्वक लेखन किया है। इन विधाओं के माध्यम से वह विभिन्न विमर्शों पर लेखनी चलाती रही हैं। मीरा कांत एक ऐसी लेखिका हैं जिन्होंने पुरुषों के दर्द को मुखरित किया है। स्त्री विमर्श में भी स्त्री-की स्थितियों के विभिन्न कोनों को उजागर करती रही हैं। समाज के हर तबके की स्त्री का दर्द बयान करती रही हैं। चाहे वो स्त्री उच्चवर्गीय, मध्यमवर्गीय तथा निम्नवर्गीय हो। अमीर हो या गरीब, पढ़ी-लिखी तथा अनपढ़, महारानी हो या दासी तथा वेश्या, माँ, बहन, पत्नी स्त्री का हर रूप उनके लेखन का विषय रहा है। उनकी यही विशेषता उनके 'तीन अकेले साथ-साथ' इस नाटक संकलन में अधोरेखित होती हैं।

मीरा कांत के इस नाट्य संकलन में तीन एकल नाटक हैं जो उनकी ही तीन कहानियों के नाट्य रूपांतर हैं। इस नाट्य संकलन में 'गली दुल्हनवाली' 'धामपुर' और 'कागजी बुर्ज' इन तीन कहानियों के कायान्तर हैं। लेखिका ने इस नाट्य संकलन की 'भूमिका' की जगह 'कायान्तर' लिखा है जिसमें अपनी इन तीन कहानियों के इस नये रूप के बारे में लिखती हैं " मेरे लिए यह मेरी कहानियों का नया अवतार है, जैसे कोई बिना मृत्यु को प्राप्त हुए ही वस्त्र (वसन) बदलकर पुनः जन्म ले ले।" मीरा जी के यह तीन नाटक कथानक, पात्र तथा परिवेश की दृष्टि से भिन्न हैं किंतु इनमें एक समान धागा भी है और वह है स्त्री मन और उसका दर्द। परिवेश कौनसा भी हो तथा स्त्री कौनसे भी जाति-धर्म से हो पितृसत्ताक संस्कृति में उसकी स्थिति में कोई फर्क नहीं है। वह हर हाल में तथा हर समय घर, दिल तथा प्रेम की देहलिज से कभी-भी जब जी चाहे बाहर होने के लिए मजबूर होती है। फिर वह 'कागजी बुर्ज' की गोपा होगी, 'धामपुर' की प्रभा बुआ और नित्या होगी तथा 'गली दुल्हनवाली' दुल्हन हो। ये तीनों एकल स्त्री के अंतःमन की परतों को हल्के से खोलते हुए आगे बढ़ते हैं।

'तीन अकेले साथ-साथ' इस संकलन-त्रय का पहला नाटक है 'गली दुल्हनवाली'। इस नाटक के केंद्र में एक स्वाभिमानी, जिद्दी, दृढ़ व्यक्तित्ववाली, प्रतिकूल परिस्थितियों तथा जिंदगी की थपड़ों से विद्रोही बनी नगीना अर्थात् दुल्हन की कहानी है। जो परिस्थितियों के सामने हार नहीं मानती उल्टा चेतकर उठती है। अपनी जिंदगी खुद ही सँवारती है। ".....'गली दुल्हनवाली' एक ऐसी जीवत वाली औरत की कहानी है, जो विपरीत परिस्थितियों को स्वीकार कर भी उसके आगे सहज समर्पण नहीं करती है....।" नगीना रज्जाक जैसे खुदगर्ज, कसाई की दुल्हन बनकर कसाई मोहल्ले में आती है और दुल्हन ही बनकर रह जाती है। उसका अपना नाम तक मिट जाता है। रज्जाक एक ऐसा इंसान है जो इंसानियत के नाम पर धब्बा है। हैवान है वह। अपने नाम, काम और बर्ताव से भी कसाई है। दुल्हन को अपने पति के इस रूप से घृणा होती है। पति के इस घिनौने रूप के बारे में वह चिढ़कर कहती है, " मेरे को नासूर हो। जाने कैसा कसाई है। अरे कसाई भी दूसरी बार हलाल करने से पहले छुरा साफ करता है। अल्लाह-ओ-अकबर पढ़ता है। ये नामुराद तो साँस लेने की मोहलत भी नहीं देता। बस एक साथ हलाल के बाद हलाल के बाद हलाल।" रज्जाक दुल्हन को केवल एक देह मानकर उसे हर समय नोचता रहता है। उस जैसा गोश्त का व्यापारी और कर ही क्या सकता था। दुल्हन तो हर समय मार खाने और पिटने के लिए मजबूर थी। मार-पीट, सुलगती बीड़ी का दाग, कभी भी ठंडी रातों में, कड़ी धूप की दोपहर में घर से बाहर होना उसका नसीब बन गया था। उसका घर, मोहल्ला, गली उसके नाम से जानी जाती थी 'गली दुल्हनवाली' पर वह उस घर तथा गलीसे कभी-भी बाहर की जा सकती थी। दुल्हन अपने इन दुःखों के बारे में कहती है, "..... मुझे तो लगता है कि हम औरतों का दर्द खत्म तो क्या कम होने का भी नहीं। मरा सोने के भाव की तरह बढ़ता ही जा रिया है।"

लेकिन इन पुरुषी अत्याचारों को सहती, चुप बैठी औरत जब उसके बच्चों तक इसकी आँच आने लगती है तब चंडी का रूप धारण कर लेती है। उसकी सहनशीलता ही उसकी ताकद बन जाती है। वह विद्रोह कर उठती है। दुल्हन स्वयं अनपढ़ है लेकिन बच्चों को पढ़ाना चाहती है। अपने लड़कियों और लड़कों को स्कूल में भेजने की वजह से कितनी मार खाती है और कितनी बार घर से बाहर होकर सड़क हा सहारा लेती है। लेकिन इन अत्याचारों की आग जब अपनी सीमाओं को छोड़ उसकी नन्हीं लड़कियों की तरफ बढ़ती है तब उसकी सहनशीलता जैसे फुट पड़ती है। चौदह बरस की नरगिस का निकाह रज्जाक जब अंधे उग्र के दो बेटियों के अबू अकबर से तय करता है तब दुल्हन काली का रूप धारण कर उसका विरोध करती है। दुल्हन के विरोध पर रज्जाक उसे मारता है तब दुल्हन भी अपना घुटना उसकी जाँघ पर मारती है और उसे ताक़िद देती है, 'बाज आ जा..... ये रिश्ता नहीं होगा।..... किसी किमत पर नहीं। हरगिज नहीं।"

दुल्हन के इस विरोध और दृढ़ता पर उसे घर से घसिटे हुए बाहर किया जाता है। अब भी दुल्हन का सहारा सड़क का किनारा बनता है। अपने बच्चों को लेकर कड़ी धूप में बैठी दुल्हन को एक आदमी आकर गली दुल्हनवाली का पता पुछता है। तब दुल्हन के अंदर की चेतना जाग उठती है। वह कहती है, "मैंने उस दिन सोचा कि घर ही नहीं साली गली भी मेरे नाम से ही

जानी जाती है गली दुल्हनवाली..... वाह री दुनिया। एक मरदुआ पीटकर गली से बाहर करता है और दूसरा उसी गली को मेरा नाम देता है। मेरे अंदर उफान-सा आ गया.....सच कहती हूँ उबल पड़ा कुछ..... अरे घर मेरा..... गली मेरी.....ये होता कौन है मुझे बेदखल करनेवाला । जब देखो पीटता है! मैं पिटती हूँ इसीलिए ना! मैंने कहा-उठ दुल्हन! उठ जा अब !⁶ दुल्हन का यह उठना सच में उसकी बेबसी तथा बदतर स्थितियों से उठना साबित होता है। दुल्हन जो उस समय उठती है तब मन में एक क्रांती लेकर उठती है। उस समय से दुल्हन घर से बाहर नहीं की जाती। रज्जाक को दुल्हन बाहर करती है। जब रज्जाक बलप्रयोग से दुल्हन को बस में करना चाहता है तब खुद भी पिटता है। दुल्हन अकड़ के साथ रज्जाक को दम देती है, “सुन ले आज इंसान बनकर रहेगा तो घर में इंसान पाएगा। वर्ना एक लगाएगा तो अब दो खाएगा।”⁹ दुल्हन अब रज्जाक के साथ मार-पीट का हिसाब बराबर रखने लगती है। दुल्हन अपने इस बदले रूप पर गर्व महसूस करती है। वह कहती है“..... वो दुलत्ती मारने को होता है तो मैं भी एक रैपटा दिखा देती हूँ बस फौरन घर से बाहर की राह लेता है” गर्व से कहती है, “ हँह कसाई की बीवी हूँ..... कोई अफसर की नहीं!”

औरते पिटती है क्यों कि वे सहन करती हैं। सही समय पर किया गया प्रतिरोध महत्वपूर्ण है। नाटककार यहाँ दुल्हन के माध्यम से स्त्री को अपनी अंतर की शक्ति से परिचित करना चाहती हैं। उसे बचानेवाला और कोई नहीं वही स्वयं हैं। स्त्री अगर अपनी स्थितियों से दो हाथ स्वयं करे। अपनी स्वयं की शक्ति, क्षमता को जानकर इस पुरुषी मानसिकता से लड़े तो जीत तो नहीं हासिल कर पाएगी तथा कुछ अद्भुत स्थितियों उसके लिए पैदा होगी ऐसा तो नहीं। लेकिन कुछ ढंग की जिंदगी तो प्राप्त कर सकेगी। इन बदतर स्थितियों से उभरकर मनुष्य जैसी जिंदगी तो पा सकती है। इसीलिए स्त्री को किसी की राह देखने की आवश्यकता नहीं कि कोई आकर उसे बचाएगा। आवश्यकता है कि उसे स्वयं जागृत होने की, अपनी शक्ति, क्षमता और संभावनाओं के साथ। कविता भारत कहती है,“..... जब समस्याएँ हमारी है और रोजाना ही दो-चार होना है तो क्यों किसी तारणहार का इंतजार करे? क्यों कही करुण पुकार की जाए? कोई पुकार, कोई इंतजार, कोई गुहार खुद से क्यों नहीं? खुद की क्षमता से इन्कार क्यों?स्त्री स्वयं ही अपनी ‘तारणहार’ हैं।

यहाँ पर और एक बात दर्ज करने से नाटककार नहीं चुकी है कि हमेशा औरतों को घर गृहस्थी के कामों में लगाया जाता है। जो हर किसी के लिए महत्वपूर्ण भी है। लेकिन उसका कोई दाम नहीं दिया जाता । स्त्री सुबह से रात देर तक इन कामों में लगी रहती है। जब अधिकारों की बात आती है तब उसकी कमाई पर उँगली उठाई जाती है। पुरुष कमाकर लाता है तो वह अधिकार भी जमाता है। घर की स्त्री के साथ गुलाम जैसा बर्ताव किया जाता है। इस बात की ओर भी संकेत किया गया है। रज्जाक की कमाकर लाने की बात का दुल्हन मुँह तोड़ जबाब देती है, “मैं कमाकर लाता हूँ..... जब चाहे पीटूँगा।” रज्जाक के इन अहंभरे शब्दों का जवाब देते हुए दुल्हन कहती है, “..... तो मुझे क्या रंडी समझ रखा है। अरे मैं तेरे बच्चे पैदा करती हूँ तेरा घर देखती हूँ तेरा हरामी पेट भरती हूँ।”¹⁰

यहाँ पर स्त्री विमर्श का और एक महत्वपूर्ण कोन दुल्हन की माँ के बहाने सामने लाया गया है। जब कोई भी स्त्री गलत तथा रुढ़ी-परंपराओं के विरोध में कदम उठाती है तब उस स्त्री को कोसा जाता है ‘कुलटा’ ठहराया जाता है लेकिन उसके पिछे का कारण जानने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। दुल्हन की माँ जब गैर मर्द के साथ भाग जाती है तब यही होता है। समाज में बदनामी और रज्जाक की गंदी गालियों से बेजार दुल्हन भी पहले माँ को कोसती है। लेकिन वह अपने दिल में एक ठंडक सी महसूस करती है। बचपन में भूखी रह घर के कामों को निपटाती कटोरी अर्थात दुल्हन की माँ का निकाह तेरह साल की उम्र में पैंतीस बरस के अडेड के साथ किया जाता है जिसकी तीन औलादे पहले से है जो कटोरी से भी बड़ी थी। दुल्हन का अब्बू हर रोज माँ को पिटता था। हर रोज भरपेट रोटी के साथ लाते और घूँसे खाने मिलती थी। दुल्हन अपनी माँ की स्थिति के बारे में कहती है, “अपनी आँख से देखा है मैंने अम्मी को पिटते। बिला नागा रोज। जैसे ऊपर वाले ने तय करके भेजा हो कि शादी के बाद सब कामों से निबट कर खाविन्द से हर रोज पिटना हर बीवी का अब्बल दर्जे का फर्ज है। ऐसे जहन्नुम से अगर वो भाग गयी तो क्या बुरा हुआ?”¹¹

स्त्री बचपन से लेकर उसकी मृत्यु तर दुसरो की मर्जी से जीती रहती है। जो कुछ अच्छा है वह घर के लडकों को । पेटभर खाना भी उसके अपने उसे नहीं देते। शादी से पहले दादा, पिता, भाई, शादी के बाद पति और बेटे के हिसाब से जीना पड़ता है। जैसे उसे कोई मन तथा भावनाएँ न हो। पहले तो उसके ही खून के लोग उसे दुय्यम दर्जे की जिंदगी देते है एक बेटी होने के नाते। तो फिर जिनसे कोई खून का रिश्ता नहीं होता उनसे एक अब्बल दर्जे की न सही लेकिन थोड़ी सहूलियत की जिंदगी की कैसे आशा की जा सकती है। स्त्री जीवन का यह कड़वा सच जो रोजमर्रा की जिंदगी में आम बन गया है उसे भी यहाँ आधोरेखित किया गया है।

नाटककार यहाँ पर स्त्री जीवन की ऐसी कितनी बातों को उजागर करती है जो समाज में आम ही मानी जाती रही हैं। पुरुषों की हैवानियत के कितने निशान उसके शरीर पर आते और जाते रहते हैं। लेकिन मन पर लगे दर्द के ये निशान कैसे मिट सकते है? वह तो यादों के साथ उठते ही रहते है। और सामने आती है कोई ‘दुल्हन’। लेखिका दुल्हन के माध्यम से स्त्री के अंतर्मन में दबे दर्द को खोलती है। स्त्री चाहे किसी भी जाति-धर्म से तथा तबके से हो उस पर होने वाले अत्याचार कम-अधिक रूप में एक जैसे ही होते हैं। क्यों कि अत्याचार करनेवाले पुरुष की कोई जात नहीं होती वह पुरुष ही होता है। इस नाटक के

माध्यम से स्त्री को केवल एक देह मानने की वृत्ति पर कटाक्ष करती हैं। स्त्री की इन अत्याचारों को झेलने की मानसिकता जो पुरुष वर्चस्ववादी समाजद्वारा जबरदस्ती बनाई गई है पहले उसे तोड़ना होगा और यह स्वयं स्त्री ही कर सकती हैं। स्त्री पहले अपने मन में ठान ले कि वह इन अत्याचारों को क्यों सहन करे। वह भी एक मुनष्य है। जब स्त्री यह विचार मन में पाल-पोसकर बड़ा करेगी तभी वह इस रोज के मरने से मुक्ति पा सकेगी। नाटककार दुल्हन के माध्यम से यही क्रांती स्त्री मन में उद्घाटन करने का प्रयास करती हैं तथा ऐसे क्रांतीकारी स्त्री मन की ओर संकेत करती हैं।

संदर्भ :

१. कांत मीरा, 'तीन अकेले साथ-साथ' 'कायान्तर' स्वराज प्रकाशन.
२. नविता, 'गहन संवेदना और ठोस यथार्थ की जमीन पर खड़ी कहानियाँ', समकालीन भारतीय साहित्य, नवंबर-दिसंबर २००६'
३. कांत मीरा, 'तीन अकेले साथ-साथ' (नाट्य संग्रह) 'गली दुल्हनवाली', स्वराज प्रकाशन. पृ.३०
४. वही पृ.२०
५. वही पृ.३६
६. वही पृ.४०
७. वही पृ.४१
८. वही पृ.४१ /४२
९. भारत कविता, 'तीन अकेले साथ-साथ,' नटरंग जून २०१४ पृ.१२२
- १०.कांत मीरा, 'तीन अकेले साथ-साथ' (नाट्य संग्रह) 'गली दुल्हनवाली' स्वराज प्रकाशन. पृ.४१
- ११.वही पृ.२८



सूरजपाल चौहान की कहानियों में दलित विमर्श

प्रा. डॉ. संजय गणपती भालेराव

सहा. प्राध्यापक हिन्दी विभाग

शरदचंद्र कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, नायगांव बा. जि. नांदेड.

वर्तमान युग विमर्शों का युग है। विमर्श का अर्थ है- विचार या चर्चा। आज मानव समाज के समक्ष स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यांक जैसे कई मुद्दे हैं जो चर्चा का विषय बने हुए हैं। आज हम बड़े गर्व के साथ कहते हैं कि, हमारा देश विकास के मार्ग पर आग्रसर है, किन्तु हम यह भूल रहे हैं कि आज भी हमारे समाज का एक वर्ग ऐसा है जो हजारों साल पुरानी परंपराओं के साथ जीवन जी रहा है- वह वर्ग है 'दलित'। आज भी विकास की किरणें उन तक नहीं पहुँच पायी हैं। दलितों का इतिहास नया नहीं है लेकिन उनको लेकर जो भी हलचल सुनाई या दिखाई दे रही है, वह आधुनिक काल में ही। स्त्रीवादी साहित्य और आदिवासी साहित्य के बाद दलित चेतना से युक्त साहित्य भी अब भारतीय साहित्याकाश में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है।

हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं की तरह हिंदी कहानी के क्षेत्र में भी दलित जीवन को केंद्र में रखकर लेखन किया जा रहा है। अर्थात् हिंदी कहानी साहित्य भी दलित जीवन से जुड़े हुए विविध पहलुओं को उजागर करने का प्रयास कर रही है।

भारतीय समाज में दलितों की स्थिति को सब बखूबी जानते हैं। दलित समाज में शोषण, अत्याचार, जुल्म की घटनाएँ बढ़ती ही जा रही हैं। सच तो यह है कि समाज में एक बड़े वर्ग को जातिवादी व्यवस्था के तहत सदियों तक दबाकर रखा गया है। सदियों से दलित समाज का दमन एवं शोषण किया जाता रहा है। दलितों के साथ अवैध व्यवहार किए गए हैं, लेकिन अवैध व्यवहार के प्रति दलित समाज में विद्रोह पैदा हुआ है। यह विद्रोह साहित्य के माध्यम से प्रकट हो रहा है।

प्रेमचंद के कथा साहित्य में दलित जीवन को आधार बनाकर कहानी लिखने की परम्परा शुरू होती है। बेशक गैर-दलितों के लेखन में दलितों की यातना और दुर्दशा का चित्रण है, किन्तु संघर्ष और चेतना के स्वर का नितान्त अभाव है। हिन्दी में दलित लेखकों द्वारा कहानी लिखने की शुरुआत आठवें दशक में होती है। जिनमें मोहनदास नैमिशराय और ओमप्रकाश वाल्मिकि जैसे कहानीकार हैं। यह साहित्यकार अपनी कहानियों में समाज के यथार्थ रूप को चित्रित करते हैं। उनके द्वारा लिखित साहित्य प्रतिरोधी, संघर्षशील हैं। २१ वीं सदी तक आते आते कहानीकारों की एक बहुत ही बड़ी सूची बन गई है। जिनमें मुख्यरूप से मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मिकि, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह बेचैन, सूरजपाल चौहान, अजय नावरिया, रत्नकुमार सांभारिया और महिला कहानीकारों में सुशीला टाकभौर, रजतरानी मीनू, कावेरी, कुसुम मेघवाल आदि को भी देखा जा सकता है। सूरजपाल चौहान दलित साहित्य के एक महत्वपूर्ण कहानीकार हैं। जिनके कहानी साहित्य ने हिन्दी दलित कहानी विधा को एक नयी दिशा की ओर मोड़ दिया।

सूरजपाल चौहान बहुआयामी व्यक्तित्व हैं। वे आत्म आलोचक कथाकार हैं। बहुत ही कम समय में इनकी कहानियाँ हिन्दी दलित कहानीओं में अपनी जगह बनाई है। एक बात जो सूरजपाल चौहान को अन्य दलित साहित्यकारों से अलग करती है। इसके बारे में भारत तलवार जी कहते हैं- "अपनी ही जाति, समुदाय और समाज के प्रति एक तीखी आलोचनात्मक दृष्टि सूरजपाल की कहानियों को दूसरे कहानीकारों से अलग करती है।" सूरजपाल चौहान की 'बहुरूपिया', 'बदबू' और 'नया ब्राम्हण' कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

सूरजपाल चौहान की 'बहुरूपिया' कहानी वाल्मिकि समाज और जाटव समाज के बीच के वैमानस्य और जाति-भेद को उजागर करती है। इस कहानी के माध्यम से दलितों के उत्थान के लिए काम करनेवाली सरकारी अनुदार पात्र संस्थाओं के असली चेहरे को भी देखा जा सकता है। कहानी का नायक खुद लेखक सूरजपाल चौहान हैं। सूरजपाल १४ अप्रैल के दिन बाबासाहब आम्बेडकर के विचारों को वाल्मिकि समाज में प्रसारित करना चाहते हैं और इसी अवसर पर उन्होंने कहानी पाठ करने से पहले बाबासाहब के विचारों को समाज के सामने रखा। लेकिन बची में ही एक अघेड उग्र का व्यक्ति अपनी कमीज की बाजू ऊपर चढाते हुए कहता है- "तू किसी चमार का दीखै, तभी इतनी देर सू चमार-राग अलापे जा रहा है, अरे महा मूरख, हमारे गुरु तो महर्षि वाल्मिकि स्वामी हैं, हमें आम्बेडकर से का लेनो-देनो, बन्द कर अपनी यू बकवासा।" अतः दलित जातियों के बीच यह विरोध भाव देख सकते हैं। यह निम्न समझे जाने वाली जातियों आपसी भेदभाव में ऐसे फसी हुई है जैसे गुठ के साथ मखिवा। इसी जाति अंतर्गत विरोध को कहानीकार ने सामने लाने का प्रयास किया है। सिर्फ समाज ही नहीं वह भी लोग जो जाति के विकास के लिए संस्थाएँ चलाते हैं उनकी भी कहानीकार ने पोल-खोल की है।

दलित जातियों के अंतर्गत भेदभाव का उदाहरण देते हुए लेखक एक प्रसंग बताते हैं, कि वाल्मिकि सामाज्य के अंदर महर्षि वाल्मिकि जयन्ती मनाने वाले लोग महर्षि का कैलेंडर छपवाते हैं और स्मरणिका में दलित साहित्य में नाम पर हिन्दू धर्म संबंधी आलेख छापते हैं। उसमें डॉ बाबासाहब आम्बेडकर का कोई भी आलेख नहीं छपता। इसका विरोध करने पर वाल्मिकि समाज का नेता रामसेवक कहता है- "विशाल जी, वाल्मिकि समाज में डॉ बाबासाहब आम्बेडकर की बातें करना मुर्खता है, आखिर, डॉ

बाबासाहब ने हम वाल्मिकियों के लिए किया ही क्या है? जो कुछ किया है चमारों के लिए ही किया है।" सवर्ण तो डॉ बाबासाहब के बारे में यह कहते हैं कि डॉ बाबासाहब ने उनके लिए क्या किया है। किन्तु जिस समाज के लिए डॉ बाबासाहब ने अपने जीवन को जलाया है वह समाज भी उनके त्याग से अपरिचित ही है। दलित समाज में भी डॉ बाबासाहब की छवि को मलिन किया गया है यह बात भी कहने में सुरजपाल हिचकते नहीं हैं। रामसेवक केवल पैसा कमाना चाहता है जाति के नाम पर उसे समाज से कुछ लेना देना नहीं है। भले ही समाज अंधविश्वासों में पड़ा रहे या अज्ञानता के अंधकार में। रामसेवक जैसे कई नेता आज भी हमारे समाज को गुमराह कर रहे हैं। रामसेवक ही नहीं तो आज के सामाजिक कार्यकर्ताओं के असली रूप को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास सुरजपाल चौहान करते हैं।

दलित समाज के उध्दार के लिए कई लोगों ने सामाजिक संस्थाओं की दूकानें खोली हैं। उन दूकानों के माध्यम से हर साल कई सारे निधीओं को जमा किया जाता है। यह सरकारी निधीयों समाज तक तो नहीं पहुँचती लेकिन इन गद्दार नेताओं के जेबों को गरम जरूर करती है। वाल्मिकि समाज का नेता रामसेवक कहता है-" मैं प्रत्येक वर्ष वाल्मिकि जयंती मनाने व स्मरणिका प्रकाशित करवाने के कार्य में पच्चीस-तीस हजार रुपये विभिन्न सरकारी, गैर-सरकारी संस्थाओं से कमा लेता हूँ आप बतायें कि पूरे वर्ष लेखन-कार्य में जुटे रहने पर कितना कमा लेते हैं? दो हजार, तीन हजार या अधिक से अधिक पाँच हजार।" इससे एक बात का पता चलता है कि दलित जातियों के नाम पर बनी संस्थाएँ भ्रष्ट हैं और इसमें भ्रष्टाचार होता रहा है। इस बात की ओर अबतक दलित कहानीकारों की दृष्टि नहीं गई न ही इन संस्थाओं के बारे में कोई लिख कर, इसका इतनी सफाई से भांडाफोड़ किया हो। किन्तु, सुरजपाल चौहान ने इस कहानी के माध्यम से अपने सर्जनात्मक, आक्रोशित स्वर को यथार्थ की भूमि पर खड़ा करके बदलाव के नए आयाम स्थापित किए हैं।

सुरजपाल चौहान की दूसरी कहानी 'बदबू' दलित कहानियों में काफी चर्चित कहानी है। विवेच्य कहानी में सुरजपाल जी ने दलित स्त्री की पीड़ा का यथार्थवादी चित्रण किया है। 'संतोष' कहानी की प्रमुख नायिका है। जो अपने जाति की पहली लड़की थी जिसने हाईस्कूल की परीक्षा सत्तर प्रतिशत अंक लेकर उत्तीर्ण की थी। उसकी इच्छा होती है कि वह आगे की पढ़ाई करे किन्तु परिवार के लोग इस बात के विरुद्ध खड़े होते हैं। पर संतोष के करबे का पंडित मंगतराम संतोष के पिता को समझाते हैं कि-"किशोरिया, तेरी छोरी पढ़ने में होशियार है, पूरे स्कूल में अव्वल आयी है, मेरी छोरी के संग उसे भी शहर भेज दे, उसके रहने और पढ़ाई का खर्चा भी मैं देता रहूँगा, बस तू एक बार हाँ कर दे।" यह कहने बावजूद भी संतोष के पिता उसे पढ़ने नहीं देते और उसकी शादी म्यूनिसिपैलिटी में सफाई का काम करनेवाले नवी फेल लड़के से कर देते हैं। यहाँ सुरजपाल यह कहना चाहते हैं कि, सभी सवर्ण जाति के लोग एक जैसे नहीं होते उनमें कोई ऐसा भी है जो अवर्णों से स्नेह रखता है। परिस्थितियों के बदलाव को समाज स्वीकार रहा है। इस बात को लेखक ने बीना संकोच कहानी में स्पष्ट किया है। कहानी का दूसरा पहलू यह भी है कि, कुछ समाज अपने आप को बदलना ही नहीं चाहता वह अपने आप को परंपराओं के जंजिर से बांधे हुए हैं। दलित समाज के इस यथावत बने रहने के आयाम को प्रस्तुत करने का साहस केवल सुरजपाल चौहान में है।

सुरजपाल चौहान की नायिका संतोष सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह करती नजर आती है। संतोष के विरोध के बावजूद एक कम पढ़े लिखे लड़के से शादी होने के बाद वह ससुराल में जाति परंपरा से चले आ रहे मैला ढोने के कार्य के करने से मना कर देती है। तब पति और सास-ससुर उसपर अत्याचार करते हैं। यहाँ तक की समाज पंचायत भी बुलाते हैं। और जाति पंचायत संतोष के विपक्ष में न्याय देती है। जब संतोष नहीं कहती है तो उसे मारा जाता है। यहाँ सुरजपाल चौहान के इमानदारी की दाद देनी पड़ेगी की उन्होंने दलित समाज के सच को बखुबी अभिव्यक्त किया है। वहाँ औरते कहती है-"ऐसा लगे कि भंगिन नहीं कोई पण्डिताईन है, अरे, सास के साथ काम पर नहीं जाएगी तो क्या सारे दिन पलंग तोड़ेगी।" यहाँ दलित समाज के स्त्रीओं के मानसिक अपाहिजपण को बताने का प्रयास किया गया है। भले ही औरत देह से कमजोर होती है किन्तु आपने हौसलो के प्रति वह कभी कमजोर नहीं होती। इस का ज्ञान संतोष के चरित्र को पढ़ने के बाद होता है। शिक्षा के ग्रहण के बाद जो बदलाव संतोष में आया इसे जिस प्रकार सुरजपाल ने कहानी में व्यक्त किया है वह बहुत ही उल्लेखनिय है।

सुरजपाल चौहान की कहानियों पर एक सटीक टिप्पणी दलित साहित्य के लेखक एवं विचारक श्री बजरंग तिवारी ने की है, वे कहते हैं-"सुरजपाल चौहान द्वारा रचित कथानायकों की दो श्रेणियाँ हैं-एक वे जिनमें संघर्ष का मुद्दा है, अपनी स्थिति को समझने और उसका सामना करने का धैर्य है। दूसरे, वे जो अपनी हीनताबोध से मुक्त नहीं हो सके हैं, जा सवर्णों की जमात में शामिल होकर अपनी जात छुपाते हैं।" इस बात का प्रमाण देनेवाली कहानी है 'नया ब्राम्हण'। यह कहानी दलित समाज के अंतरजातीय मतभेद और जातिभेद को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती है। दलित समाज में ऐसे कई तत्व हैं जो दलित समाज को उपर उठने नहीं देते, उसे नीचे खींचते रहते हैं। कहानी में मुख्य पात्र हैं विधवा 'अतरो' उसका बेटा 'मंगलू' और उसकी पत्नी 'कमली'। मंगलू को सरकार द्वारा 'आरक्षण कोटा रोस्टर' भरने के अभियान में नौकरी लग जाती है। उसके बाद उसमें बदलाव आने लगता है। वह अपने ही समाज का उपहास करने लगता है। अपने में कुछ सुधार होने के कारण अपने परिवार, रिश्तदार और मित्रों से दूरी बनाए रखने का प्रयास करता है। एक दिन घर आये जगमेर ताउ से भी वह उलटी सीधी बातें बोल देता है। जगमेर कहते हैं-"भैया, खूब तरक्की पर बढ़तो जा, बाबा साहेब का तोपे आशीर्वाद बनो रहे। तब मंगलू बे-अदबी से कहता है-मैं तो यहाँ तक अपनी मेहनत से पहुँचा हूँ, बाबा साहब आसमान से उतरकर मुझे नौकरी देने नहीं आये, अरे कैसा बाबा, काहे का

बाबा?" मंगलू अमानुष तब हुआ जब वह अपनी पत्नी से धोके से तलाक के पेपर पर हस्तक्षर करवा लेता है, और अपने ऑफिस की सेक्रेटरी इन्दु शर्मा से ब्याह कर लेता है। तब कमली आवेश में आकर उसे गालियाँ देती हुई कहती है-"तेरी अम्मा कूँ भी तो अंग्रेजी ना आवे, वाकूँ भी छोड़ दे, रांड कौ कोई कूँ कुछ समझे ही नायें, पढ़-लिख गयीं तो पानी कूँ पप्पा कहन लगौ, मेरी ससुरी कै कीड़े पड़ के मरेगौ।" अबतक का दलित साहित्यकार इन कमजोरियों को नजर अंदाज करता रहा है कि दलित समाज के उन दलित ब्राम्हणों को पाठकों के समक्ष लाये और उन्हें नंगा करे। वीर भारत तलवार कहते हैं-"दलित समाज को कल्पित रूप से हमेशा गौरवान्वित करने और उसको अपने शोषकों से हमेशा जीतते हुए दिखाने वाली साहित्यिक कला के बजाए दलित समाज का यह यथार्थ, उसकी ये कमजोरियाँ और उसकी ये पिछड़ी हुई परम्परावादी चेतना कहीं ज्यादा बड़ी सच्चाई है, जो दलित समाज को बहुत आगे नहीं जाने देती है और बदलावों को रोकती है।"

निष्कर्षतः सुरजपाल चौहान ने अपने कहानीयों के माध्यम से सवर्ण समाज और दलित समाज की कमजोर कड़ियों को खोलने का अथक प्रयास किया है। अच्छे और बुरे दोनों ही पक्षों को निपक्ष भाव से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर पाठकों को उन पात्रों के अलोचक बनने का मौका दिया है। दलित चेतना की सार्थकता दलित समाज की हर बातों को उजागर करने में है। हर दलित रचनाकार इतना ही सजग होकर लिखेगा तो समाज का कोई भी पक्ष अछुता नहीं रहेगा। सुरजपाल चौहान ने अपने कहानीयों द्वारा दलितों को हालातों से लड़ने की प्रेरणा दी है। शिक्षा के महत्व को समझाया है। अपने अस्तित्व के लिए लड़ने की शक्ति दी है। इनकी कहानियाँ लोगों को सही दिशा दिग्दर्शन करने में सफल हुई है। इनका यह योगदान बड़ा ही महत्वपूर्ण और सराहनीय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- ०१) नया ब्राम्हण कहानी संग्रह- सुरजपाल चौहान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-११०००२, प्रथम संस्करण, २००६
- ०२) दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र- ओमप्रकाश वाल्मिकि, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली-११०००२, द्वितीय संस्करण, २००८
- ०३) दलित साहित्य समग्र परिदृश्य- संपादक, डॉ मनोहर भंडारे
- ०४) दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर-विमल थोरात



रुपनारायण सोनकर के साहित्य में चित्रित विविध आयाम

डॉ. साताप्पा शामराव सावंत

अध्यक्ष, हिंदी विभाग. {स्नातकोत्तर}
विलिंगडन महाविद्यालय, सांगली.

प्रस्तावना-

भारतीय समाज व्यवस्था की नींव वर्ण व्यवस्था के विशिष्ट महल पर खड़ी है। आज भारतीय संविधान ने हाशिए पर रहने वाले शोषित, पीड़ित सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले दलित समाज को मानव के रूप में जीवन जीने का सुअवसर प्रदान किया है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के संविधान निर्माण के अथक प्रयासों के कारण दलित समाज के जीवन में ज्ञान रुपी सूर्य की किरण उनकी झुग्गी झोपड़ियों में पहुंच गयी। "शिक्षित बनो, संघटित बनो और संघर्ष करो" के आंबेडकरी चिंतन के न्यायसूत्र ने दलित लोगों को शिक्षा, राजनीति आदि क्षेत्रों में संवैधानिक अधिकार प्राप्त हुए। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के अनुरोध दलित समाज की समकालीन पीढ़ी ने शिक्षा के पावन क्षेत्र में प्रवेश किया। शिक्षित बनकर दलित लोगों ने अपनी व्यथा, वेदना दलित साहित्य के माध्यम से अपने साहित्य में प्रतिबिंबित करने का भरसक प्रयास किया। इस परंपरा में मराठी के दिग्गज दलित साहित्यकारों के साथ-साथ मोहनदास नैमिशराय, डी. आर. जाटव, के. आर. निर्मल, लक्ष्मीनारायण सुधाकर, श्यौराजसिंह बैचेन आदि प्रमुख हैं, इनमें रुपनारायण सोनकर का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। सोनकर के साहित्य में दलित विमर्श के विविध आयाम दिखाई देते हैं। जिन पर निम्नलिखित प्रकार से प्रकाश डाला जा सकता है।

१. दलितों के नगर प्रवेश का समर्थन- [१]

भारतीय समाज व्यवस्था में दलित समाज का स्थान सदियों से हाशिए पर रहा। लेकिन भारतीय संविधान के कारण दलित लोगों को भारतीय समाज व्यवस्था के मुख्यधारा में शामिल होने का सुअवसर प्रदान किया गया। डॉ. आंबेडकर कालीन उनके तत्कालीन राजनीतिकज्ञ मोहनदास करमचंद गांधी ने परंपरागत सनातनी भारतीय व्यवस्था का कठोर समर्थन करते हुए भारतीय ग्रामों की ओर चलने का नारा दिया था जब कि, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने औद्योगिकरण की मांग की ओर ध्यान देते हुए समस्त भारतीय दलित जनता को नगर प्रवेश का समर्थन किया। जिसका जोरदार समर्थन समस्त दलित लेखकों ने अपने साहित्य के माध्यम से करने का सफल प्रयास किया। "नागफणी" आत्मकथा में रुपनारायण सोनकर ने लिखा है- "दलितों को देहातों से शहरों की ओर पलायन करना चाहिए क्योंकि देहातों में उनके साथ छुआछूत, जातिवाद, असमानता, सबसे ज्यादा बसती जाती है। पुरानी पीढ़ियों संकीर्ण, पुरातन और परंपरावादी है। देहातों में दलितों को दोयम दर्जे का नागरिक समझा जाता है। देहातों में अधिकतर दलित गरीब होते हैं। सवर्णों द्वारा दलितों के साथ जानवरों जैसा व्यवहार करना आम बात है। शोषण क्रूरता, सवर्ण दलितों के साथ सदैव करते हैं। सवर्ण अपने गुंडई के कारण दलित औरतों का मान-सम्मान नहीं करते और उनकी इज्जत लूटते हैं। दलितों को इन वेदनाओं से तभी छुटकारा मिल सकता है। जब शहरों में आकर बस जाते हैं।" १ प्रस्तुत आत्मकथा में सोनकर जी ने दलितों के नगर प्रवेश का जोरदार समर्थन किया है। इस पक्ष पर बल देते हुए उन्होंने लिखा है- "शहरों में पढ़े-लिखे सवर्णों में अब छुआछूत नहीं दिखाई पड़ती है। हाँ, उनके विचारों में परिवर्तन आया है। व अब दलितों के साथ बैठकर एक टेबल पर खाना खाते हैं, शराब पीते हैं। अब पहिचानना बहुत मुश्किल है कि, कौन सवर्ण है और कौन दलित।" २.

२. दलित-सवर्ण एक साथ भोजन. [२]

भारतीय संविधान के कारण दलित लोगों के जीवन में एक नया मोड़ आया। मानो मानव के रूप में जीवन जीने का उन्हें घोषणा पत्र मिल गया। आज औद्योगिकरण के चलते और आज वैज्ञानिक युग में शिक्षा का बढ़ता प्रचार-प्रसार के कारण सनातनी भारतीय परंपरागत सनातनी मान्यताएँ कालबाह्य नजर आ रही हैं। जिसके कारण श्रेष्ठ, वरिष्ठ जाति और निम्न तथा हीन जाति आदि दकियानुसी मान्यता कालप्रवाह में नामशेष होती दिखाई दे रही है। जिसका प्रतिबिंब दलित साहित्यकारों के अपने साहित्य में दिखाई देता है। रुपनारायण सोनकर द्वारा लिखित "डंक" उपन्यास में लेखक ने लिखा है- "यह दलितों के सामाजिक उत्थान के हिसाब से बहुत ही क्रांतिकारी कदम है। जब किसी दलित के यहाँ शादी-ब्याह होता है, वह गोंव के सवर्णों को बकायदा निमंत्रण पत्र भेजता है। गैर-दलितों के लिए किसी एक गैर-दलित के यहाँ खाना बनवाया जाता है। सभी गैर-दलित वहीं पर खाना खाते हैं। लेकिन पढ़े-लिखे नौजवान पीढ़ी सामाजिक परिवर्तन के लिए और आगे कदम बढ़ाती है। अब चाहे मेहतर, भंगी ही क्यों न हो यदि उसके यहाँ बकरे या सूअर का गोشت बनता है तो गैर दलित अघेड या नौजवान पीढ़ी उस मेहतर या भंगी के घर में जमकर गोشت खाते हैं और शराब पीते हैं।" ३.

३. विद्रोह.-

दलित जीवन के विविध क्षेत्रों में विद्रोह दिखाई देता है। यह विद्रोह व्यक्तिगत, पारिवारिक, समाज, धर्म, संस्कृति, राजनीति, अर्थ, शिक्षा, आदि विविध क्षेत्रों से संबंधित आयामों में विद्रोह का भाव कूट-कूटकर भरा हुआ है। इस विद्रोह के कुचक्र में दलित समाज और दलित नारी का चहुतरफा शोषण होता है। इस पक्ष का चित्रण सोनकर द्वारा लिखित "नागफणी" आत्मकथा में

मिलता है। इसके बारे में उन्होंने लिखा है-“जो आदमी दलित जाति में पैदा होने के कारण अपमानित हो जाता है। जब उसकी बहन, माताओं, को कलंकित करने की कोशिश की जाती है एवं उसके समाज का आर्थिक व धार्मिक आधार पर शोषण किया जाता है। तब वह अत्याचारियों बलात्कारियों और शोषण करने वालों के खिलाफ एक ज्वालामुखी बनकर फूटता है। उस ज्वालामुखी में सभी अत्याचारियों को भस्म कर देता है।” ४. इस शोषण के प्रति विद्रोह का भाव दिखाई देता है। सोनकर ने अपने समस्त साहित्य के माध्यम से दलित लोगों में विद्रोह के प्रति अपने तेवर बुलंद करने का कार्य किया है। उन्होंने अपनी आत्मकथा नागफणी में लिखा है-“दलित इंसान है जानवर नहीं। आप लोग उच्च जाति के आधार पर दलितों पर अमानवीय अत्याचार करना बंद करें। दलित स्त्रियों की इज्जत करना सीखो। सदियों से तुम लोग दलित स्त्रियों की इज्जत -आबरु लुटते हो। शर्म करो। चुल्लू भर पानी में डूब मरो।” ५.

४. दलितों द्वारा परंपरागत व्यवसाय का परित्याग-

धर्म का आधार लेकर स्वार्थी समाज व्यवस्था के ठेकेदारों ने दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जिसके कारण उनका जीवन पशुओं से बदतर रहा है। लेकिन विविध समाज सुधारकों के अथक प्रयास और डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के द्वारा प्रदत्त संविधान के माध्यम प्राप्त अधिकारों से दलितों लोगों में अस्मिता प्रज्वलित करने का कार्य आंबेडकरी आंदोलन का परिपाक कहा जा सकता है। जिसके कारण दलितों को समाज व्यवस्था के माध्यम से प्राप्त पारंपरिक व्यवसाय को त्यागने का आवाहन किया गया। जिसका सकारात्मक प्रतिसाद दलित समाज के माध्यम से आंबेडकरी आंदोलन का मिला। विवेच्य पक्ष का चित्रण सोनकर द्वारा लिखित “डंक” उपन्यास में दिखाई देता है। इसके बारे में उन्होंने लिखा है-“पहले सभी चमार मरे हुए जानवरों को उठाया करते थे। पढ़े-लिखे चमार भाइयों ने अपने घरवालों से मरे जानवरों को उठाने से मना करवा दिया। उन्होंने इस प्रथा को छोड़ दिया। अब कोई भी चमार मरे हुए जानवरों को नहीं उठाता है। स्वर्ण अपने मरे हुए जानवरों को स्वयं उठाते हैं।” ६.

५. दलितों के लिए शिक्षा वरदान-

भारतीय समाज व्यवस्था ने धर्म का जाड़ा पहनकर दलितों को जान-बूझकर मानवाधिकारों से वंचित रखने का काम किया है। इस कुचक्र में दलितों की हजारों पीढ़ियों का नामशेष हुआ। लेकिन भारतीय संविधान ने समस्त दलित, वंचित समाज को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्राप्त हुआ। जिसके कारण दलितों के जीवन में एक नई प्रकाश की किरण आ गई। रुपनारायण सोनकर ने “डंक” उपन्यास में इस पक्ष का सकारात्मक चित्रण करते हुए लिखा है-“गाँवों में कुछ परिवर्तन हो रहे हैं। दलितों के भी अब पक्के घर बनने लगे हैं। जिन दलितों ने पढ़ना और पढ़ करके नौकरी करना शुरू किया है, उन लोगों ने अपने-अपने घरों को पक्का बनवा लिया है।” ७

६. दलित जीवन विकास के प्रति सकारात्मक सुझाव-

रुपनारायण सोनकर ने अपने समस्त साहित्य में दलित जीवन का चहुतरफा चित्रण काफी प्रभावी रूप में किया है। उन्होंने एक ओर अपने दलित जीवन को दुख, दर्द को अपने साहित्य में बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया है, तो दूसरी ओर दलित जीवन विकास में आने वाले विविध आयामों का सुंदर चित्रण पाठकों के सामने रखने की कोशिश की है। उन्होंने दलित जीवन को सुधारने तथा उसमें विकासात्मक पाए जाने वाला परिवर्तन प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने साहित्य में ऐसे पात्रों, घटनाओं, प्रसंगों के माध्यम से सूचित किया है कि, दलितों के विकास से ही भारत का विकास संभव है।

निष्कर्ष-

रुपनारायण सोनकर के साहित्य में दलित जीवन के अनुशीलन करने पर प्राप्त निष्कर्ष इस प्रकार प्रस्तुत किए जा सकते हैं। रुपनारायण सोनकर वर्तमान दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उन्होंने हिंदी दलित साहित्य में अपना अलग स्थान अर्जित किया है। उन्होंने कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, नाटक, एकांकी आदि विधाओं पर प्रचुर मात्रा में लेखन कार्य किया है। उन्होंने उपरविवेचित विधाओं में दलित जीवन के विविध आयामों एक अनोखे धरातल पर उठाया है। उन्होंने अपने दलित साहित्य में दलित जीवन के विविधों का चित्रण प्रस्तुत किया है। सोनकर के उपन्यासों में दलितों के नगर प्रवेश का समर्थन किया है। वे प्रस्तुत संदर्भ में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों का समर्थन करते हुए दलितों के नगर प्रवेश का समर्थन करते हैं। जहाँ पर जाति, छूआछूत आदि अमानवीय परंपरागत सनातन प्रथा दलित समाज के विकास में अवरोध बनती दिखाई देती है। इसलिए सोनकर इस प्रथा का विरोध करते हैं। सोनकर के साहित्य में विवेचित आयामों के आधार पर कहा जा सकता है कि, शिक्षा और औद्योगिकरण तथा अन्य कारणों से दलित -स्वर्ण एकसाथ बैठकर भोजन करते हैं। जो समाज के विकास के लिए अत्यंत महनीय भूमिका अदा करता है। दलित साहित्य जिस विद्रोह का समर्थन करता है। उस विद्रोह का भी सोनकर ने जोरदार समर्थन किया है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, शैक्षिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में पाए जाने वाले दलित विद्रोह का समर्थन सोनकर ने विविध पात्रों, घटनाओं तथा प्रसंगों के विशेष उपलक्ष्य में किया है। दलितों को भारतीय समाज व्यवस्था के ठेकेदारों ने अपनी बपौती समझकर और धर्म का आधार लेकर हीन, अमानवीय परंपरागत व्यवसाय करने के लिए मजबूर किया था। जिसे त्यागने के लिए डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने जोरदार आंदोलन चलाया था। जिसका समर्थन सोनकर ने अपने साहित्य के माध्यम से किया है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के शिक्षित बनो, इस विचार से प्रेरणा लेकर दलित समाज की तत्कालीन प्रथम पीढ़ी ने शिक्षा प्राप्त करने का कार्य किया। जिसे समाज के तथाकथित ठेकेदारों ने नकारा था। जिस शिक्षा के कारण दलितों के जीवन में आमूलाग्र परिवर्तन उस

शिक्षा को सोनकर ने दलितों के लिए वरदान माना है। दलित जीवन में आए सकारात्मक परिवर्तन का जिक्र अपने साहित्य में सोनकर ने किया है।

संदर्भ स्रोत-

१. रुपनारायण सोनकर-नागफणी-पृ. ११३.
२. वही वही पृ. ११४.
३. रुपनारायण सोनकर - डंक- पृ. ५८.
४. रुपनारायण सोनकर - नागफणी- पृ. १०६.
५. - वही -वही पृ. १०८.
६. रुपनारायण सोनकर - डंक- पृ. ५८.
७. रुपनारायण सोनकर - डंक- पृ. ४३.



हिंदी कविता में दलित चेतना

डॉ. शहनाज महेमुदशा सय्यद

बलवंत कॉलेज, विटा
तहसिल. खानापुर, जि. सांगली

भारतीय समाज की परिस्थिती तीव्र गती से परिवर्तित हो रही है। समाज के सभी क्षेत्रों में विकास हो रहा है, तकनीकी उपलब्धियाँ बढ़ रही हैं, परंतु इन सब के बीच मानव मन का असंतोष भी अत्यधिक बढ़ गया है। साहित्य का सृजन मनुष्य की मानसिक, भावनिक और सामाजिक जरूरतों की सहज उत्पत्ति है। साहित्य समाज के निर्माण कार्य का महत्वपूर्ण अंग है। इसीलिए इसमें मनुष्य के विचार, उसकी भावनाएँ, समाज के साथ संबंध, व्यवस्था से अपेक्षाएँ, उत्तरदायित्व और प्रसंगवश समाज के लिए प्रेरक, जागृतीपरक विचारों की अभिव्यक्ति होती है।

“भारतीय समाज में बहुजातियाँ देखने को मिलती हैं। ‘दलित’ शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है, जो समाज व्यवस्था में सबसे नीचे की पायदान पर होता है। वर्ण व्यवस्था के तहत जिसे अछूत श्रेणी में रखा है। जिसका दालन या शोषण हुआ है।” दलित शब्द की उत्पत्ती ‘दल’ धातु से हुई है। जिसका अर्थ है तोड़ना, हिस्से करना, , रौंदा हुआ, अविकसीत, अछूत, आदिवासी, भूमिहीन, मजदूर आदि। आज दलित शब्द का प्रयोग हिंदू समाज व्यवस्था के अंतर्गत शूद्र मानी जाने वाली जाति के लिए रूढ़ हो गया है। सबसे पहले श्रीमती एनीबेसेण्ट ने इस वर्ग के लिए ‘डिप्रेस्ड कास्ट’ शब्द का प्रयोग किया था। बाद में स्वामी विवेकानंद और रानडे ने ‘दलित’ शब्द का प्रयोग किया। महात्मा गांधी जी ने इनके लिए ‘हरिजन’ शब्द का प्रयोग किया, जिसे आज निषिद्ध कर दिया गया है। भारतीय संविधान में इस वर्ग को ‘अनुसूचित’ कहा गया है। नामदेव ढसाळ जी कहते हैं-“अनुसूचित जातियाँ, बौद्ध, श्रमिक, भूमिहीन, कृषक एवं भटकनेवाली सभी जातियाँ दलित हैं।” डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी जी कहते हैं- “ दलित साहित्य आंदोलन मात्र दलित मुक्ति का ही साधन नहीं है। अपितु यह साहित्यिक आंदोलन में स्वाभिमान सम्मान को विकसित करने का एक क्रांतिकारी कदम है।” बाबुराव बागुल जी कहते हैं-“केवल समाज सुधार से अस्पृश्यता नष्ट नहीं होती, अस्पृश्यता को नष्ट करना है तो केवल समाज बदलने से कुछ होने वाला नहीं, इस लिये राजकीय, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानसिक परिवर्तन आवश्यक है।” दलित साहित्य समाज सापेक्ष है। साहित्य की मूल संवेदना के साथ-साथ दलित साहित्य मनुष्य की स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व की भावना को सर्वोपरी मानता है।

हिंदी दलित कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि गौतम बुद्ध, कबीर, रैदास, सेना, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, मलकुदास से लेकर आधुनिक महात्मा फुले, राजर्षि शाहू, डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर के विचारों से प्रभावित है। आधुनिक काल में यह परंपरा हीराडोम तथा अछूतानंद तक आई है। सितंबर १९१४ की ‘सरस्वती’ पत्रिका में हीराडोम की कविता ‘अछूत की शिकायत’ प्रकाशित हुई। यहाँ से अनेक प्रतिनिधि कवियों ने दलित जीवन पर कविताएँ लिखी, जिनमें निराला, नागार्जुन, धूमिल, मुक्तिबोध आदि हैं। दलित साहित्य के केंद्र में मनुष्य है। मनुष्य की समता, स्वतंत्रता, बंधुता का यह साहित्य है। अर्थात् मनुष्य के वंश, वर्ण एवं जाति श्रेष्ठत्व का विरोध करनेवाला साहित्य ही दलित साहित्य है। दलित काव्य साहित्य का उद्देश्य दलितों में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिवर्तन कर भारतीय समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्थापित करना है। दलित कविता मनुष्य को बाँटनेवाले, भेदभाव उत्पन्न करनेवाली वर्णव्यवस्था पर करारा प्रहार करती है। इस कविता का स्वर सामाजिक न्याय की माँग करता है। साथ ही यह कविता समता, स्वतंत्रता, बंधुता तथा न्यायवादी दृष्टिकोण को अपनाने के कारण बढ़ती जातिगत विषमता तथा भेदभाव का उन्मूलन करने का आधार है। इसके तेवर चाहे कितने ही तीखें या विद्रोही क्यों न हो किन्तु उसकी दृष्टि रचनात्मक और प्रगतिवादी है। इसलिए वह ध्वंस भी करती है तो नवनिर्माण के लिए, और कुरेदती भी है तो रचनात्मकता के बीज दूँढ़ने के लिए। यह साहित्य जीवन के यथार्थ को महत्वपूर्ण स्थान देता है। इस साहित्य में वह बारूद है जो वैचारिक क्रांति फुँककर मनुष्य को नवजीवन में ढालता है। सदियों से अपमानित, शोषित, नरकिय जीवन जीने के लिए अभिशप्त समाज में अस्मिता, सम्मान, स्वाभिमान की खोज करना दलित साहित्य की विशेषताएँ हैं।

दलित कविता युगों-युगों से सताये हुए लोगों की अमानवीय पीड़ा की अभिव्यक्ति है। जो मुक नहीं है, इसमें नकार, विद्रोह निषेध, तथा संघर्ष की आग है। जो क्रांति की चिंगारी बनकर धधक रही है। नागार्जुन जी का समाज के उस वर्ग के प्रति अत्यंत सचेत एवं जागृत दृष्टिकोण है, जिन्हें सदियों से अन्याय अत्याचार सहने के लिए मजबूर किया गया है। जो निरंतर भूखे, प्यासे, अपमानित जीवन जी रहे हैं। जिन मनुष्य को सदियों से मनुष्य बनकर जीने का अधिकार तक नहीं दिया गया है। अपने काव्य के माध्यम से दलितों में क्रांति और विद्रोह की भावना निर्माण करते समय उनका स्वर तीव्र हो जाता है, और वे कहते हैं-

“तो उठो

मन और तन की समूची ताकत लगाकर
विघ्न बाधा के पहाड़ों को गिरा दो,

ढहा दो अमंगल के,
अशुभ के उन हेतुओं को ध्वस्त कर दो।”⁴

दलितों के जीवन में अधिक बदलाव आया हुआ नहीं है, दो जून की रोटी प्राप्ति के लिए भी निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। दुनिया में आज भी ऐसे वर्ग हैं जो, बिना किसी कष्ट के भरपेट खाकर सो जाते हैं, और उनकी जूठन पर अनेक लोग जीवन व्यापन करते हैं। दलितों के पूर्वजों को भी अपना जीवन दूसरों की जूठन खाकर ही गुजारना पड़ा था और आज के दलितों को भी कर्मों बेस ऐसा ही जीवन व्यापन करना पड़ रहा है। ‘बदलेगा कुंठित मानस’ इस कविता में चापलूसी, चाटूकारिता पर करारा व्यंग्य करते हुए कवयत्री डॉ. सुशीला टाकमारे कहती हैं-

“होते रहे जेवनार प्रतीक्षा में खुश होते।
टूट पड़ते थे जूठन पर भूख से मजबूर तब।”⁵

भारतीय समाज जीवन में जाति यह एक ऐसा अभिशाप है, जहाँ आकर मनुष्य की मनुष्यता परास्त हो जाती है। मनुवादी वर्ण व्यवस्था के फलस्वरूप उत्पन्न जाति-व्यवस्था यह व्यक्ति के विकास में बाधा बन जाती है। समाज में जो सवर्ण- अवर्ण के भेद हैं, इस भेद की वजह से सवर्ण- अवर्ण को जिस कुत्सा अवमान या अपमान की दृष्टि से देखते हैं, यह संवेदनशील व्यक्ति के लिए ‘धुँधआते कड़वे तम’ के समान है। इसी बात को लेकर ‘ओमप्रकाश वाल्मीकि’ अपनी ‘जाति’ इस कविता में बड़ी ही प्रखरता से कहते हैं-

जाति अदम्य सभ्यता का नुकीला औजार है
जो सड़क चलते आदमी को कर देता है छलनी
एक तुम हो जो अभी तक इस ‘मादरचोद’ जाति से चिपक हो
न जाने किस हरामजादे ने तुम्हारे गले में
डाल दिया है जाति का फन्दा जो न तुम्हें जीने देता है न हमें”⁶

उपरी तौर पर प्रस्थापित समाज व्यवस्था में समानता और भाईचारे के लिए नरंतर नारे लगाए जाते हैं। परंतु वास्तव में देखा जाए तो अनेक प्रश्नों के उत्तर आज भी निरुत्तर ही हैं, जिस में यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि क्या सही मायनों में समाज में भाईचारे की यह भावना समाई हुई है, व्याप्त है, और जवाब है शायद नहीं। क्योंकि आज समाज में जाति-पाति, छुआछूत के बंधन शीथिल जरूर हुए हैं परंतु उनका अस्तित्व समाज मन में जरूर है। इसलिए यह बराबरी, समता, समानताबोध और भाईचारे के नारे कवि को झूठे प्रतीत होते हुए दिखाई देते हैं। इसलिए जयप्रकाश लीलवान कहते हैं-

“वैसे भी जोर-जबरदस्ती का
नकली भाईचारा किसी को
भला कब तक मंजूर हुआ करता है ?”⁷

परिवर्तन संसार का नियम है। कल तक जो था वह आगे भी रहेगा ऐसा नहीं होता है। भारत में हमेशा सवर्णों ने दलितों पर, जमिंदारों ने भूमिहिनों पर, अमीरों ने गरिबों पर अन्याय किया, उनका शोषण किया है। लेकिन शोषण का यह सिलसिला अधिक समय नहीं चलेगा। दबे, कुचले हुए लोग अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ेंगे, क्योंकि जनता की आवाज अब उठ रही है। जमाना जरूर बदलेगा। भलेही आज न हों लेकिन कल जमाना बदलेगा। क्योंकि आज तक इस देश में राजनीति के माध्यम से, दलाली के माध्यम से जो कमाते आ रहे थे, उनका जोर नहीं चलेगा, जो कमजोर है वह इकट्ठा होंगे और उनका बल बढ़ेगा। सदियों की यह वेदना लावा बनकर फूटेंगी। अब मूक होकर अत्याचार सहने की अपेक्षा दलित परिस्थितियों से जूझना सिख गया है। ‘अधिकार युद्ध’ कविता में श्री.लक्ष्मीनारायण सुधाकर कहते हैं-

“यदि मिले नहीं अधिकार हमें तों, ईंट से ईंट बजा देंगे।
अन्यायी अत्याचारी के शोणित से नदी बहा देंगे।”⁸

दलित कवि मनुष्य और समाज की मुक्ति का आकांक्षी है। सवर्ण समाज ने दलितों का अपरिमित शोषण करके उन्हें पशुवत जीवन जीने के लिए अभिशप्त कर दिया है। किंतु आज दलितों में चेतना जाग उठी है। वे शिक्षित होकर अभिजन और उनके साहित्य की असलियत को समझने लगे हैं। ‘गूंगा मत समझों’ कविता में सूरजपाल चौहान कहते हैं-

“फिर मैं / तुम्हारे रचे शब्दों के/सीने पर चढ़कर /
बजाऊंगा डंका/ विजयश्री का/क्योंकि /
अब मैं गूंगा/ नहीं हूँ।”⁹

निष्कर्ष -

अतः स्पष्ट है कि दलित कवियों की कविताओं में अभिव्यक्त चेतना के मूल में परंपरा के प्रति विद्रोह, पक्षपाती मान्यताओं का अस्वीकार, अत्याचार के खिलाफ आक्रोश मुखर हुआ है। साथ ही शोषण से मुक्ति, जातिव्यवस्था का विरोध, अमानवीय अत्याचार से संघर्ष की भावना बलवती होकर प्रकट हुई है। अपनी स्थिती के प्रति होनेवाला अज्ञान और गिड़गिड़ाहट से आगे बढ़कर यह वर्ग विद्रोह और संघर्ष के माध्यम से अपने अधिकार पाने के लिए जुट गया है। जिसके मूल में समतामूलक समाज की स्थापना और सामाजिक सुचारु व्यवस्था और शान्ति की कामना विद्यमान है।

संदर्भ :-

१. मानक हिंदी कोश संपादक-रामचंद्र वर्मा खंड -३ पृ.३५
२. हिंदी साहित्य में दलित अस्मिता डॉ कालिचरण स्नेही पृ.८८
३. दलित साहित्य रमणिका डॉ. गुप्ता पृ.३२
४. दलित साहित्य उद्देश और वैचारिकता बाबुराव बागुल
५. नागार्जुन: चुनी हुई रचनाएँ-२ (हरिजन गाथा) सं. शोभाकान्त मिश्र पृ.१५०
६. हमारे हिस्से का सूरज डॉ. सुशीला टाकभौर पृ.१२३
७. समय की आदमखोर धुन जयप्रकाश लीलवान पृ.१०६
८. बयान -दलित अस्मिता विशेषांक मार्च -एप्रैल २००७
दलित कविता का उद्भव और विकास जयप्रकाश कदम पृ.६७
९. क्यों विश्वास करूँ सूरजपाल चौहान पृ.१५



दलित चेतना के परिदृश्य में 'सूअरदान'

प्रा.डॉ. शेख मुख्त्यार शेख वहाब

(हिंदी विभागाध्यक्ष)

कला महाविद्यालय, बिडकीन,

ता. पैठण, जि. औरंगाबाद

आज भी भारत में दलितों को अछूत ही माना जाता है। मनुकालीन विचारधारा आज भी उतनी ही ज्वलन्त है, जितनी उसके प्रारम्भिक काल में थी। भारत की मानसिकता उसके जातिगत भेद भाव में झलकती है। जिस देश का लोकतंत्र जातीयता के आधार पर चुनाव जीतता हो उस देश में समानता की भावना संभव नहीं है। जातिगत भेदभाव मिटाकर जब तक समाज में समता स्थापित नहीं होती तब तक हमारे विकास का कोई अर्थ नहीं है। 'सूअरदान' एक ऐसे ही ज्वलन्त विषय को उजागर करता है जो वर्तमानकालीन समाज को उसके पिछड़ेपन की याद दिलाता है। रुपनारायण जी सोनकर ने इस उपन्यास के माध्यम से न केवल दलितों की समस्याओं का उद्घाटन किया बल्कि तमाम समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया है।

'सूअरदान' रुपनारायण सोनकर द्वारा लिखित एक बहुचर्चित उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास सन 2010 ई. में सम्यक प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ है। यह उपन्यास दस अध्यायों में विभाजित है। लेखक ने 'सूअरदान' उपन्यास में मुख्य रूप से दलितों की पीड़ा, त्रासदी, परेशानी, गुलामी आदि के माध्यम से पतनोन्मुख मूल्यों का चित्रण किया है। आज मनुष्य मानवता से कटकर तानाशाही की ओर जा रहा है, वह अपने नैतिक मूल्य भूल रहा है।

लेखक ने उपन्यास की कथा 'सिंहासनखेड़ा गाँव को केंद्र' में रखकर समाज के उन मुद्दों को उठाया है, जो प्रगतिशील राष्ट्र के लिए कलंक है। इस गाँव का मुखिया (ग्राम प्रधान) सत्यानारायण त्रिपाठी, हाईस्कूल के प्रधानाचार्य जितेन्द्र यादव और प्राईमरी हेल्प सेंटर के डॉ. जोरावर सिंह आदि मिलकर सिंहासनखेड़ा गाँव में ऐसा भयावह साम्राज्य स्थापित करते हैं, जिसकी जड़ें बहुत मजबूत हैं। गाँव में ग्रामस्थों के लिए सुख-सुविधाएँ लाने की बात तो दूर बल्कि मिलकर गाँव वालों का शोषण करने के नए-नए तरीके ढूँढते रहते हैं। यदि गाँव का मुखिया (सत्यानारायण त्रिपाठी) ही हिंसात्मक प्रवृत्ति का है, उसका प्रत्येक कार्य हिंसा के बिना पूरा ही नहीं होता। उसीकी वजह से गाँव में अब गुण्डागर्दी, मारकाट, शोषण और भ्रष्टाचार आदि आम बातें हो गयी हैं। समाज के तमाम युवकों को सही रास्ता दिखाने का क्षेत्र एकमात्र शिक्षा क्षेत्र है। किंतु वर्तमान में शिक्षा के मंदिर में भी भ्रष्टाचार फल-फूल रहा है। गाँव के स्कूल के प्रधानाचार्य जितेन्द्र यादव और गाँव का मुखिया स्कूल के लिए आये हुए फर्नीचर के पैसों का घपला करते हैं और आपस में बाँट लेते हैं। गाँव का मुखिया सत्यानारायण त्रिपाठी कहता है – "दवाइयों का टानिक पीने के बाद मुझे नींद आगयी। स्कूल के लिए जो पैसा फर्नीचर खरीदने के लिए दिया गया था, तूने हम तीनों के घर में लगवा दिया। तुझे मैं सफल प्रिंसिपल होने का पूरा क्रेडिट देता हूँ।"¹ (सूअरदान – रुपनारायण सोनकर, पृ.30) जब तक हमारे देश में सत्यानारायण त्रिपाठी, डॉ. जोरावर सिंह जैसे लोग हैं तब तक शिक्षा क्षेत्र में परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं हो सकती।

वर्तमान समय में देश में नैतिक मूल्यों का तेजी से पतन हो रहा है। यही कारण है कि देश में महिलाओं के खिलाफ यौन उत्पीड़न और उनके शोषण की घटनाएँ तेजी से बढ़ रही हैं। नारी के प्रति घृणित व्यवहार करने वाले उनकी घटिया मानसिकता और निकृष्ट सोच को ही स्पष्ट करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में गाँव का मुखिया सत्यानारायण त्रिपाठी को अपनी करुण यातना एवं असहायता को प्रकाशित करते हुए दुख भरे शब्दों में कहती है – "तुम हमारी जैसी दलित लड़कियों की इज्जत-आबरू से खेलते हो। तुम हमारे साथ कउने भलाई थोड़े करत हआ। तुम हमार इज्जत लूटत हो। हमार माँ-बाप असहाय है। गरीब है, कमजोर है। तुम हम सबका डराय धमकाय के हमका अपनी रखैल बना लिए।"³ (सूअरदान-रुपनारायण सोनकर, पृ.31)

उपन्यास की दलित सुनयना की जैसी हालत, है वैसी ही देश में कई सुनयनाओं की हालत है। इस संदर्भ में मोहनदास नैमिशराय का मत है कि प्रतिवर्ष हमारे देश में – "बलात्कार झेलनेवाली महिलाओं की संख्या दो-तीन करोड़ से भी उपर पहुँच गई है।"⁴ (आज का हिंदी साहित्य – सं.डॉ. यशवंतकर, पृ.सं.41) विशेषतः गाँवों में दलित नारी की इज्जत से खेलना आम बात रही है। इक्कीसवीं सदी में हिंदी उपन्यासकारों द्वारा दलित नारी के यौन शोषण को लेकर अनेकों उपन्यास लिखे हुये परिलक्षित होते हैं। किंतु 'सूअरदान' उसमें से एक उपन्यास है। इस उपन्यास को पढ़ने पर अनायास मन में प्रश्न खड़ा होता है कि इस तरह के उपन्यास क्यों लिखे जाते हैं? इसके मूल में दो प्रयोजन परिलक्षित होते हैं – एक यह कि समता और न्याय की दुहाई देनेवाले संविधान को अमल में लाकर आधी सदी बीती, फिर भी हमारे समाज ने जातिभेद को तिलांजली न देकर अपनी

जातिगत श्रेष्ठता के अहं को बरकरार रखा किन्तु दलित नारी से यौन संबंध बनाए रखने में परहेज नहीं किया, इस मानिकता की चेतना जागृत कर दलितों को साहस और शक्ति का अहसास दिलाना—सकारात्मक परिवर्तन के लिए, यौन शोषण से मुक्ति के लिए। दलित नारी के यौन शोषण का चित्रण इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासकार रूपनारायण सोनकर कृत 'सूअरदान' में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। किन्तु इस उपन्यास की उपलब्धि यह है कि इसमें विरोध और विद्रोह भी नजर आता है जिसे दलित चेतना का परिणाम कहना होगा।

सुनयना गांव के मुखिया सत्यनारायण त्रिपाठी को अपनी करुण यातना एवं असहायता को प्रदर्शित करते हुए वेदना भरे शब्दों में उनसे होने वाले बलात्कार रूपी अत्याचार को शब्दबद्ध करती है तो सत्यनारायण त्रिपाठी ऊपर से डाटते फटकार लगाते हैं और अपने बाहुबल के साथ अपनी हुकुमशाही प्रवृत्ति का परिचय देते हैं। अपनी मुँछें ऐंठते हुए कहता है – "जो ताकतवर है वही सभी चीजों का भोग करता है। ऐसा सभी युगों में होता आया है। तुम सुंदर हो। अति सुंदर हो। मैं इस गाँव का राजा हूँ। हर चीज पर मेरा हक पहले है।"⁵ (सूअरदान—रूपनारायण सोनकर, पृ.63) समाज में सबसे अधिक अत्याचारित—शोषित, पीड़ित दलित—नारी ही रही है। पूँजीपति वर्ग की वासना का शिकार दलित नारी ही बनी है। जो देश नारी का आदर नहीं करता वह कभी महान नहीं हो सकता। देश में मूल्य पतन का मुख्य कारण यह है, कि हमने शक्ति की इन सजीव (स्त्री) प्रतिमाओं के प्रति आदरभाव नहीं रखा। जिस समाज में स्त्रियाँ दुखी जीवन व्यतित करती हैं, उस परिवार या देश की उन्नति नहीं हो सकती। नारी मनुष्य की जन्मदात्री है। उसे सुरक्षा, सुविधा, सम्मान, स्नेह एवं प्रेम समाज से मिलना चाहिए, तभी वह समाज उन्नति का मार्ग पा सकेगा।

सोनकर ने 'सूअरदान' में दलितों के प्रति स्वातंत्र्य, समता, बंधुता आदि मूल्यों की माँग की है। संसार में सभी को समता का अधिकार मिलना चाहिए। जब पुजारी दयाशंकर को एड्स की बीमारी हुई तो पूरे गाँव वालों ने कोहराम मचा लिया। कोई भी पुजारी को छूना पसंद नहीं करते थे। त्रिपाठी ने सिंहासनखेड़ा के गाँव वालों के मन में भय भर दिया था कि यह बीमारी छू लेने से होती है, और इसका कोई इलाज नहीं है। सभी लोग त्रिपाठी के हाँ में हाँ मिला रहे थे। इसी गाँव का नवयुवक संकटा प्रसाद चिकवा जो प्रशासनिक अधिकारी की नौकरी से वी.आर.एस. लेकर अपने गाँव सिंहासनखेड़ा आया था। उसने त्रिपाठी के सामने ही पुजारी दयाशंकर का हाथ पकड़कर गाँव वालों को यकीन दिलाया कि, यह बीमारी छूने से नहीं होती। मिस हैरी सिल्वा जो पिगरी फार्म की सदस्य के रूप में कार्य करती है। उसने बताया कि वैज्ञानिकों ने इसके रोकथाम के लिए दवाइयाँ और इंजेक्शन खोज लिए हैं। पुजारी जी का इलाज हो जाएगा। पुजारी की पत्नी श्यामा संकटा प्रसाद चिकवा से कहती है – "बहुत-बहुत धन्यवाद बेटा। तुमने इन निर्दयी लोगों से पुजारी जी को बचा लिया। जाति, धर्म कुछ नहीं होता है। मानवता ही सब कुछ होती है। विपत्ति के समय अपनी जाति वाला सत्यनारायण त्रिपाठी कहाँ काम आया? बेटा! तुम काम आए। तुमने इंसानियत दिखाई। पुजारी जी को छूने से भी डरते हैं। तुमने उनको छू कर दिखाया। बेटा! तुम सदैव खुश रहो।"⁶ (वही, पृ.81) दलितों को प्राचीनकाल से ही घृणा के भाव से देखा जाता है, छुआछूत की भावना के कारण उनके हाथ का कोई कुछ खाते नहीं थे। लेकिन लेखक ने बड़ी कलात्मकता के साथ पुजारी दयाशंकर तथा संकटा प्रसाद चिकवा आदि के माध्यम से मानवता का संदेश दिया है। उच्चवर्ग वाली पुजारी की पत्नी श्यामा कहती है, जाति, धर्म कुछ नहीं होता बेटा मानवता ही सब कुछ होती है। यह बात इसी की परिचायक है।

उच्चवर्गीय सामाजिक व्यवस्था ने ऐसा जाल बिछाया जिसमें भोली-भाली जनता आसानी से ठग जाती है। इनकी प्रतिभा को उभरने से पहले ही रौंद दिया जाता था। जिसमें आर्थिक निर्बलता एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। 'सूअरदान' उपन्यास में रामचन्द्र त्रिवेदी, सज्जन खाटिक, घसीटे चमार, सलवंद यादव इन चार लोगों का सिंहासन खेड़ा गाँव में पिगरी फार्म है। इसमें से रामचन्द्र त्रिवेदी ब्राह्मण है, बाकी तीन दलित हैं। इनका पिगरी फार्म देश-विदेश में चर्चित है। उन्होंने इस गाँव के आस-पास के सभी पढ़े लिखे लोगों को उनकी योग्यता नुसार नौकरी पर लिया था। इतना ही नहीं सभी जाति के लोग सुअरों के लेड़ा साफ करने के लिए रखे गए। इस कार्य को करने में कोई अपमानित नहीं बल्कि सम्मानित हो रहे थे। लेखक का मानना है कि जाति व्यवस्था नष्ट करने के लिए ब्राह्मणों की लड़कियों से दलित लड़कों की शादी करनी चाहिए, तभी जाति व्यवस्था नष्ट हो सकती है। "अन्तर्जातिय विवाह करना होगा। गाँवों से पूर्णतः जातिवाद, छुआछूत मिटाना होगा।"⁷ (वही, पृ.148)

पुजारी दयाशंकर की तीनों बेटियों को पिगरी फार्म में उनकी योग्यतानुसार दो को सहायक मैनेजर और तिसरी को एकाऊण्टेन्ट की नौकरी दी गई है। मिस हैरी सिल्वा को मैनेजिंग डायरेक्टर बनाया, जो पिगरी फार्म के पार्टनर की बचपन की दोस्त थी। इस गाँव में सवर्णोंद्वारा पुजारी दयाशंकर को तीनों बेटियों की करतूतें बतायीं। पिगरी फार्म के चारों लोगों के साथ मिस हैरी सिल्वा और पुजारी की तीनों बेटियों की प्रेम कहानी समझायी और भांग के साथ-साथ जातिवाद का जहर उसमें घोलकर गाँव वालों को पिला दिया। आज भी हमारे देश में जातिवाद का नशा, सभी नशे से ज्यादा चढ़ता है। उपन्यास में कामता प्रसाद बिष्ट कहते हैं – "सारे आम सज्जन खाटिक, घसीटे चमार और सवलंत यादव ने पुजारी जी की बेटियाँ को विदेश ले जाते हैं। कैसा घोर

कलयुग आया है।⁸ (वही, पृ.81) व्यापार की दृष्टि से पिगरी फार्म के चारों पार्टनर अमेरिका, इंग्लैण्ड, थाईलैण्ड, चाइना और अन्य देशों की यात्राएँ बारी-बारी से करने लगे। एक बार रामचंद्र त्रिवेदी मिस हैरी सिल्वा और अन्य तीनों पार्टनर पुजारी दयाशंकर की तीनों लड़कियों को लेकर विदेश गए। तो गाँव के कुछ लोगों ने एवं धूर्त तीनों ब्राह्मणों (मार्कण्डेय अग्निहोत्री, कामता प्रसाद बिष्ट, सीताराम भट्ट) ने पूरे गाँव भर में खुसर-फुसर करने लगे। सीताराम भट्ट कहते हैं— "पुजारी अँधा है जो अपनी बेटियों को नौजवान दलितों और पिछड़ी जाति के आदमियों के साथ विदेश भेज देता है बड़ा अनर्थ हो रहा है।" (वही, पृ.82)

इतना ही नहीं सवर्ण और दलितों के बिच के अंतर को प्रदर्शित करते हुए दलित नारीयों का भोग ब्राह्मण समाज कैसे करता आया है इस संदर्भ में उपन्यास में मार्कण्डेय अग्निहोत्री कहते हैं — "मैं होता तो तीनों लड़कियों को जान से मार देता। यदि वे मेरी बेटियाँ होती। ब्राह्मणों की शान, प्रतिष्ठा और इस पुजारी की बेटियों ने गर्त में मिला दिया है। पहले ब्राह्मण, दलितों, पिछड़ों की खूबसूरत लड़कियों और औरतों को रखल बनाकर रखा करते थे। मेहतरों की नव-विवाहित पत्नियों के साथ सुहाग रात पहले ब्राह्मण मनाया करते थे।" (वही, पृ.82) इन्हीं तीन ब्राह्मणों के मंतव्य से स्पष्ट होता है कि दलितों के प्रति इनका देखने का दृष्टिकोण कैसा है। आज भी दलित नारी को भोग की वस्तु माना जाता है।

जब पुजारी दयाशंकर अंतिम सांस ले रहा था तो सत्यनारायण त्रिपाठी, कामता प्रसाद बिष्ट, मार्कण्डेय अग्निहोत्री, सीताराम भट्ट इन ब्राह्मणों ने कपटी चाल चली। पुजारी दयाशंकर को गाय दान करने के लिए विवश किया। लेखक के शब्दों में — "मरने के बाद मृत व्यक्ति के लिए काल्पनिक भवसागर की बात करना मिथ्या है। झूठ है। फरेब है। यदि मुझे दान करना पड़ा तो मैं प्यार, भाईचारा, सांप्रदायिक सद्भावना, समानता, देश-प्रेम, जानवरों और मानवों के प्रति लगाव का दान करूँगा।। पुरा संसार प्रदूषण मुक्त रहे, इस उद्देश्य का दान करूँगा। प्रत्येक नागरिक देश की रक्षा करे, इस संकल्प का दान करूँगा।" (वही, पृ.160)

आज भी हम रूढ़ियों को मानते हैं, जैसे ब्राह्मणों को गाय दान करने से हमें स्वर्ग मिलेगा नहीं तो नरक में जाना पड़ेगा। यह तय करने वाले तो ब्राह्मण ही हैं। जब सूअर के दो-तीन बच्चे पुजारी के बिस्तर के पास आ गए। क्योंकि इन सूअर के बच्चों को पुजारी पिगरी फार्म में देखभाल करते थे। संभालते दुलारते थे। एका-एक माहौल बदल गया, मार्कण्डेय अग्निहोत्री ने पुजारी का हाथ सूअर के बच्चे के ऊपर रखकर जान चली जाती है, यह देखकर मार्कण्डेय, कामताप्रसाद, सीताराम भट्ट आदि चिल्लाये! अनर्थ हो गया। पुजारी ने 'गोदान' के बदले 'सूअरदान' कर दिया।

अंततः कहा जा सकता है कि सोनकर जी ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से स्पष्ट किया है कि दलितों को समाज की मूलधारा में लाने से ही गाँव का विकास और देश का विकास हो सकता है, किसी विशिष्ट वर्ग के हाथों में सत्ता देकर नहीं। दलित लड़कियों एवं महिलाओं को समाज में सम्मान देना चाहिए। उन्हें समाज में समानता और मानवता का अधिकार होना चाहिए। उन्हें समाज में समानता और मानवता का अधिकार होना चाहिए। दलितों की पीड़ा, शिक्षा क्षेत्र में हो रहे भ्रष्टाचार आदि बातों को सोनकर ने बड़ी कुशलता के साथ उपन्यास में चित्रित किया है।

ISSN 2349-638X

www.aiirjournal.com

सूर्यबाला कृत कौन देस को वासी : वेणु की डायरी में चित्रित सामाजिक जीवन और संघर्ष

डॉ. बी. संतोषी कुमारी

सहायक प्रोफेसर, पी.जी. विभाग
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास
चेन्नई — ६०००१७

मनुष्य समाज का अभिन्न अंग है। समाज में रहकर ही उसका भरण पोषण होता है। सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य को अनेक नियमों का पालन करना पड़ता है और समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। ऐसी समस्याएँ सामूहिक होती हैं। उन समस्याओं में प्रमुख हैं औद्योगिक, वैश्वीकरण, उदारीकरण आदि। समाज व्यक्तियों से बनता है इसका शब्दिक अर्थ ही मानव समूह है। साधारणतया व्यवस्थित समूह को समाज कहते हैं। “समाज से अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत एवं नियामक व्यवस्था से है जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित्त जाने अनजाने कर लेते हैं।” वस्तुतः संसार दो तरह के समाज होते हैं। समूहवादी समाज और व्यक्ति केंद्रित समाज। प्रवासी भारतीयों का सामाजिक जीवन की समस्याएँ अपने समाज से अधिक जटिल और कठिन होती हैं। अपने विकास के लिए उसे प्रवास के सुलभ या कठिन नियमों का पालन करना पड़ता है। यह नियम परिवार का यथार्थ सिर्फ पति-पत्नी ही नहीं बल्कि बच्चे और साथ में जुड़ी कई पीढ़ियाँ हैं।

पारिवारिक विघटन :

पारिवारिक विघटन का मुख्य कारण मनःस्थिति में भेद या मदभेद से है। यह मतभेद अहम् को त्यागने से ही संभव है। परिवार व्यवस्था पर पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से तथा महानगरों में औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप आघात होते हैं। ‘कौन देश की वासी : वेणु की डायरी’ में यह स्पष्ट रूप से दिखता है। वेणु की शादी के पश्चात् मेधा गृहस्थी में प्रवेश के साथ छोटी-छोटी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

प्रवासी जीवन व्यक्ति की सामाजिक सोच को रेखांकित करती है। उसके जीवन में बदलाव उसके पारिवारिक संबंधों में भी दिखता है। स्थान में बदलाव वहाँ के सभ्यता संस्कृति का प्रभाव परिवार में पड़ता है। यह पारिवारिक विघटन का कारण बन जाता है। यह तब आरंभ होता है जब परिवार की परंपरा का खंडन होता है, धीरे-धीरे इसका प्रभाव परिवार के लोगों के व्यवहार और आवभाव पर पड़ता है। अगर पश्चिमी सभ्यता के रहना एक उपलब्धि है तो दूसरी तरफ यह एक अभिशाप का भी कारण बनता है। उनका सामाजिक बंधन बन जाता है और इनका पालन-पोषण करना पीढ़ियों से इन व्यक्तियों का कर्तव्य भी बन जाता है।

‘कौन देश की वासी : वेणु की डायरी’ में जब वेणु और मेधा शादी कर विदेश चले जाते हैं, तब वे वसु का जन्मदिन भूल जाते हैं। माँ से बात करने पर मेधा बड़े सलीके से बात संभालती है कि — “हाँ-हाँ, फोन लगाया था न वसु के हॉस्टल में दो-तीन बार, उनकी बर्थ-डे पर भी ... नहीं लगा — बहुत ज्यादा बात कर भी नहीं सकते न, वेणु ने कभी बताया नहीं आप लोगों को, तीन-चार डॉलर लग जाते हैं हर बार फोन करने, फिर भी हम लगाते ही हैं।”

यहाँ पहली बार वेणु और परिवार वालों के पारिवारिक विघटन की नींव पड़ती है। वसु और परिवारवाले बड़े प्यार से वेणु और मेधा की खातिरदारी करते हैं मगर मेधा ऐसा उत्साह नहीं दिखाती है। वसु को यह बात बहुत बुरी लगती है। वह क्रोध में अपनी माँ से पूछती है — “क्यों चाहते हैं कि हमारे साथ उठे-बैठे, हँसे-बोले, हमें जाने, हमें सुने, अपनी कहे? ऐसी कोई कोशिश वे क्यों नहीं करते? दो दिन तक सोई। थकान मिटाई। तीसरे दिन शॉपिंग पर निकल गई।”

परिवार वालों के एक लंबे समय के इंतजार के बाद मेधा का सबसे दूरी रखना या सबसे घुलने-मिलने की इच्छा न दिखाना, घरवालों को तकलीफ पहुँचाती है। इसी बीच मेधा का अपने माता-पिता के घर जाना और वेणु का अकेले बहनों के ससुराल जाना, मुख्यतः वृन्दा के घर। एक बड़ी समस्या का कारण बनती है। वह अपने भाई से पूछती है — “कैसे हो दादा? तुम तो आए भी मेधा भाभी तो आई ही नहीं ... यहाँ सभी लोगों को बहुत हैरानी हुई। यहाँ आती तो उन्हें कोई परेशानी नहीं होती।”

वृन्दा के शादी के बाद पहली बार वेणु का बहन के घर, मेधा के बिना जाना पारिवारिक विघटन का मुख्य कारण बनता है। दूसरी तरफ मेधा की उम्मीद है कि वेणु सिर्फ उसका ही रहे, परिवारवालों के संग मेल-मिलाप उसे

पसंद नहीं है। वह एक दिन क्रोध में बोल पड़ी — 'तुममें 'तुम' हो ही कहाँ वेणु? तुममें पिचहत्तर प्रतिशत तो तुम्हारी माँ ही वास करती है न।'

बदलते परिप्रेष्य में प्रवासी स्त्रियों की मनःस्थिति :

आज के बदलते सभ्यता—संस्कृति का प्रभाव समाज पर सीधे पड़ता है। इस समुदाय में पुरुष के साथ—साथ नारी की प्रगति प्रमुख है। प्रवासी नारियों को उस समाज की ज़रूरत के अनुरूप खुद को ढालना पड़ता है। वहाँ पुरुष और स्त्री कंधा—से—कंधा मिलाकर चलते हैं। आज की आर्थिक विषमता के कारण स्त्री को कार्यक्षेत्र के साथ—साथ परिवार को सम्भालने की जिम्मेदारी भी होती है। अतः उसकी परिस्थिति मकड़ी की जाले की तरह उलझती जाती है। अतः आज उनका जीवन भावात्मक स्तर पर न रहकर भौतिक हो गया है। शादी के बाद वेणु और मेधा एक दिन वेणु के मित्र विकास से मिलने जाते हैं। विकास की दस साल की बच्ची है उसकी पत्नी मनीषा अस्पताल में काम करती थी। बच्ची ईशा से अलग दिनभर माँ की दशा दयनीय थी वह मेधा से कहती है — “मैं ही नहीं, सभी वर्किंग वुमेन यही करती है। मैंने माँ बनना बेशक चाहा था लेकिन इस शर्त पर नहीं कि बड़े से काले हैंडबैग में दूध निचोड़ने वाली मशीन लिए एक वार्ड से दूसरे वार्ड मरीजों के बीच घूमते रहो और जैसे ही ममता का स्रोत उमड़ता हो जल्दी से रेस्तरूम में जाकर मशीन से दूध निचोड़ना शुरू कर दो, वी आर वर्सी दैव काउज ... बच्चा पैदा किया लेकिन उसे तृप्तिभर भी अपना दूध तक नहीं पिला पाते हमने खुद से चुने ये विकल्प।” वहीं दूसरी तरफ प्रवासी जीवन की चकाचौंध से प्रभावित मेधा अपने पति वेणु से मणि खरीदने की इच्छा जताती है, तो वेणु के नकारने पर वह गुस्से में कहती है।

“तैश खाने की ज़रूरत नहीं। इतनी नादान नहीं हूँ मैं। सच तो यह है कि तुम्हारे घरवालों ने तुम्हें एक खूँटी बना दिया है। जिस पर जब वे चाहें अपनी ज़रूरतों, इच्छाओं, लालसाओं के लबादे टाँग सकते हैं — वेणु।” नारी का यह मनोभाव समय समय पर परिस्थिति के अनुसार बदलता है। बेटु के जन्म के बाद मेधा फूल पेड़ एम्पलॉथी और एरिया इनचार्ज हो जाती है। वह वेणु से कहती है — “नाउ लेट मी एन्जॉय — अपनी मेहनत की अर्निंग अपने बच्चे पर खर्च कर रही हूँ और कहाँ कितना खर्च करना है, इसकी समझदारी मुझे है।”

मेधा किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहती और अपने बच्चे का खर्च खुद ही उठाना चाहती है। मेधा का फार्मा कंपनी में नौकरी लग जाने के बाद कभी—कभी उसे रात का खाना बाहर खाना पड़ता था। वेणु के पता लगाने पर उसे सूचना मिलता है कि — “फार्मा कंपनी वालों की पार्टी चल रही है। मेधा का डिनर वहीं है, सारी वह बॉस के साथ थीं, फोन नहीं कर पाई।”

परिवार को छोड़ देर रात तक बाहर रुकना एक नारी के लिए चुनौती से कम नहीं थी, उसके उत्साह को देख माँ कहती है — “मेधा के लिए बेटू को छोड़कर एलफेड एंड कंपनी के हरकारे की तरह एक हॉस्पिटल से दूसरे हॉस्पिटल, मेडिकल सेंटर, फील्ड एरिया में दौड़ते रहना सही है, लड़ीकी विवाहित और माँ होते हुए भी अति उत्साह और प्रतिस्पर्धा से।”

नारी का यह मनोभाव समय समय पर परिस्थिति के अनुसार बदलता है। बेटु के जन्म के बाद मेधा फूल पेड़ एम्पलॉथी और एरिया इनचार्ज हो जाती है। वह वेणु से कहती है — “नाउ लेट मी एन्जॉय — अपनी मेहनत की अर्निंग अपने बच्चे पर खर्च कर रही हूँ और कहाँ कितना खर्च करना है, इसकी समझदारी मुझे है।”

मेधा किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहती और अपने बच्चे का खर्च खुद ही उठाना चाहती है। मेधा का फार्मा कंपनी में नौकरी लग जाने के बाद कभी—कभी उसे रात का खाना बाहर खाना पड़ता था। वेणु के पता लगाने पर उसे सूचना मिलता है कि — “फार्मा कंपनी वालों की पार्टी चल रही है। मेधा का डिनर वहीं है, सारी वह बॉस के साथ थीं, फोन नहीं कर पाई।”

परिवार को छोड़ देर रात तक बाहर रुकना एक नारी के लिए चुनौती से कम नहीं थी, उसके उत्साह को देख माँ कहती है — “मेधा के लिए बेटू को छोड़कर एलफेड एंड कंपनी के हरकारे की तरह एक हॉस्पिटल से दूसरे हॉस्पिटल, मेडिकल सेंटर, फील्ड एरिया में दौड़ते रहना सही है, लड़ीकी विवाहित और माँ होते हुए भी अति उत्साह और प्रतिस्पर्धा से।”

स्त्री पुरुष का अनूठा संबंध : हमारी भारतीय परंपरा के अनुसार परिवार एक मंदिर है। उसमें निवास करते पति—पत्नी दोनों देवी—देवता के समान हैं। आजकल पति—पत्नी दोनों कार्यरत होने के कारण आपसी तर्क—वितर्क स्वाभाविक है। इस पारिवारिक कलह से बचने का उपाय आपसी तर्क वितर्क को छोड़ एक—दूसरे को उसकी गलती के साथ स्वीकार करना है।

वेणु और मेधा एक आदर्श पति-पत्नी है। मेधा प्रवास के जीवन स्तर को देख मुग्ध हो जाती है और मंहगे आभूषण खरीदने की माँग करती है — “इनफ वेणु ! बहु कहानियाँ गढ़ चुके। मेरी रूबी के एक पेंडेंट और इयररिंग खरीद लेने से तुम्हारा घर लुटा जाता है? बैकफ्ट हुए जा रहे हो तुम?”

फिर वेणु उसे बड़े प्यार और धीरज के साथ समझाता है कि “घर हवा में नहीं बना करते मेधा और न ‘हक’ को हठ में बदला जा सकता है। ‘घर’ और ‘हक’ इतने छोटे शब्द नहीं है। बहुत गहरे शब्द है। सॉरी, मेरा इरादा दिल दुखाने का बिलकुल नहीं है।” पति-पत्नी के आपसी सामंजस्य के बाद दोनों की मनःस्थिति में परिवर्तन आता है। मेधा वेणु की बात को स्वीकार करती है।

भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति में भेद :

किसी देश की संस्कृति उस देश या समाज की आत्मा होती है। समय के साथ समाज में बदलाव आते रहते हैं। लेकिन संस्कृति का विकास उतना सरल नहीं। यह प्रणाली बहुत लंबा समय लेती है। संस्कृति में भिन्नता के कारण मनुष्य खुद को समाज के अनुरूप जब बदलने में सक्षम नहीं होता है तब विघटन का कारण बनता है। वेणु का मित्र प्रशांत अमीलिया के साथ रहता था। दोनों की शादी नहीं हुई मगर दोनों साथ रहते थे। प्रशांत के घरवाले प्रशांत की शादी के लिए ज़िद करते हैं वेणु परेशान हो कर बोलता है — “प्रशांत प्राजी। यह बैकग्राउंड, लाइफ स्टाइल या कल्चर जो भी कह ले, तेरे साथ ज्यादा दिन चल नहीं पाएगा। अमीलिया अकेली नहीं आएगी तेरे पास। वह अपने साथ पूरी संस्कृति और बैकग्राउंड लाएगी। बहुत विपरीत तौर-तरीके वाली दुनिया बसी है अमीलिया के साथ। वह चाहे कितनी भी अकेली फील करे, रोज लेकिन उस दुनिया से टूटकर अलग नहीं हो सकती। चाहे तो भी। क्योंकि वह उसी दुनिया की पैदावार है, तू उस दुनिया से कभी जुड़ नहीं पाएगा, न स्वीकार पाएगा। बहुत दिनों तक खुश भी नहीं रह पाएगा। यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ।” मगर प्रशांत अमीलिया व अपना पा रहा है व छोड़ ही पाने में सक्षम है।

वेणु जब शुरुवाती दिनों में अमेरिका आता है तब अपनी सभ्यता संस्कृति को समझाने हेतु अपने मित्रों के साथ जुलूस के नारों की तरह रट्टा लगाते — “तुम्हारा कर्म—एम पढ़ाई; तुम्हारी कोशिश जमकर रगड़ाई तुम्हारा उद्देश्य डॉलर कमाई; तुम्हारी दुनिया — माता पिता बहन भाई तुम्हारा त्योहार — राखी बँधवाई; नो शादी, नो सगाई।” एक तरफ वेणु अपने भारतीय संस्कृति का पालन कर खुश है, तो दूसरी तरफ उसका बेटा बेटु अमेरिकन पाश्चात्य संस्कृति को अपनी संस्कृति मान कहता है — “वही तो डैड! आप किस जमाने के पुराने, जकड़न भरे दकियानूसी समाजों की बात कर रहे हैं। वे सारे विरोध आज गलत प्रमाणित हो गए हैं। जब एक खुले मुक्त जीवन का विकल्प हमारे सामने है तो हम आपके तमाम सारे निषेधों और वर्जनाओं वाली घुटक—भरी सुरंगों में क्यों जाना चाहेंगे?”

बेटु के ऐसे व्यवहार से चिंता में वेणु अपनी माँ से कहता है कि पिछले हफ्ते आस्ट्रेलियन क्लाइंट डोरोधी ने बाई तर्जनी में पड़ी रिंग दिखाई और कहा — “जानते हो वेणु, यह क्या है? यह इटननिटी—रंग है। हमारी सोसाइटी में जब कोई पति-पत्नी आठ दस वर्ष साथ रह लेते हैं और फिर भी विवाह नहीं टूटता तब पति अपनी पत्नी को उपहार स्वरूप यह अँगूठी उसे पहनाता है।” वेणु सोचता है, आठ वर्ष साथ गुजारे, ‘इटननिटी’ तक नाप आए और एक हमारा समाज है, जहाँ हमारी पीढ़ी तक जन्म-जन्मांतरों की कल्पना मामूली बात है।

प्रवासी हदों की मानसिक स्थिति :

आज की आर्थिक व्यवस्था मनुष्य को सिर्फ धन कमाने को ही उत्प्रेरित करती है। वह अपना संपूर्ण जीवन अच्छे खान-पान, रहन-सहन और सामाजिक सम्मान अर्जित में व्यतीत करता है। अपने बड़े-बूढ़ों, माता-पिता के लिए उनका कर्तव्य अधिक मायने नहीं रखता है। बुढ़ापे में या तो वह बच्चों भी अलग उनकी सुख-समृद्धि की चिंता में व्यतीत करता है, या प्रवास में रहकर उनके प्यार और देखभाल के लिए तरस जाते हैं।

वेणु अपने बेटे के जन्म लेने के बाद माता-पिता को अमेरिका बुलाता है। मेधा की नौकरी के कारण बेटे का ध्यान रखने के लिए उनकी जरूरत पड़ती है। मेधा का सुझाव था कि मम्मी-पापा को अलग-अलग छः-छः महीने के लिए बुलाया जाए, इससे पूरा एक साल निकल जाएगा। मगर वेणु अड़ गया और कहा — “लेट्स बी ह्यूमन! माँ-पापा साथ ही आएँगे।” इस पर मेधा ने कहा — “मैंने कितनी बार कहा मम्मी जी, पापाजी हमारे प्रॉब्लम नहीं समझेंगे तो कौन समझेंगे? जैसे जब आप लोगों को जरूरत पड़ी, वेणु ने वृन्दा की शादी में अपनी हैसियत से कहीं ज्यादा खर्च किया ही था। “उसी तरह आप लोग भी तो हमारे प्रॉब्लम समझेंगे।”

मेधा अपनी जरूरत के लिए बुजुर्गों को सालभर तक अलग करने को बुरा नहीं समझती। ऐसे ही एक दिन माँ ने खाना बनाया था, मेधा बाहर से खुद के लिए चिकेन पैक करवा कर लाई थी। तब वेणु ने कहा — “माँ के हाथों के चने

कमाल के हैं मेधा। एक्सक्यूसिवली सीक्रेट रेसिपी हैं उनकी” तब मेधा ने हँसते हुए जवाब दिया — “बेशक! लेकिन माँ के हाथों के टच से चने टिकन तो होने से रहे न। और मेरा मन इस समय चिकेन खाने का है।” मेधा ने बिना सोचे माँकी भावनाओं को बड़े सहज ढंग से चोट पहुँचाई। वहाँ अपने बेटे के परिवारवालों के मदद के लिए रहकर भी उसकी अनुभूति और आंतरिक पीड़ा का ख्याल तक न होता। सारे सुख—सुविधा के बावजूद उनके मन:स्थिति दयनीय होती है।

भारतीय पुरुषों का बदलता आंतरिक संबंध एवं व्यवहारिक मूल्य : पिछले कुछ दशकों में पारिवारिक संबंध में बहुत बदलाव आ गया है। आज परिवार के बीच का प्यार, एकता और स्नेह कम होता दिखता है। यहाँ रक्त संबंध फीके पड़ते दिख रहे हैं। आजकल बच्चों के लिए माता—पिता बोझ बन गए हैं संयुक्त परिवार में रहने वाले हमेशा होते छोटे—मोटे संघर्ष के कारण अपने कर्तव्य से मुक्ति चाहते हैं।

साशा के जन्म के बाद, कुछ महीने तक माँ—पापा साथ रह घर का और साशा का पूरा ध्यान रखें, अचानक वसु के चिकेन पॉक्स की खबर के बाद दोनों वापस भारत लौटते हैं। तब वेणु महसूस करता है — “अब तक उनके भरे—भरे से कमरे को पूरा खाली देखने की आदत पड़ गई है और आश्चर्य — मुझे सूनेपन से ज्यादा एक हल्कापन सा महसूस होता है। अपनी तरह से अपने हाल पर रह पाने की राहत। असल में माँ की दृष्टि हमेशा मेरे साथ—साथ लगी से ज्यादा महसूस मेरे वजूद से चिपकी हुई होती थी।”

वह पुत्र जो अपने माता पिता से दूर जाने की बात सोच कर घबराता था। आज उसकी अनुपस्थिति उसे राहत देती है। कुछ समय बाद एक दिन वेणु के पिता की मृत्यु की खबर आती है। वेणु जैसे स्तब्ध रह जाता है और फिर सोचता है — “इस तरह, सोचूँ तो मेरे लिए वे पहले भी कहाँ थे। पिछले चौदह सालों में मुश्किल से चौदह महीने ही उनके साथ रह होऊँगा। उसके अतिरिक्त पिता कहाँ थे मेरे लिए? बाएँ पैर अपंग हुए छः—सात महीने होने को आए। कई बार जाकर देख आने का प्लान भी रहा। लेकिन बस अभी नहीं, अगली बार, अगले महीने टालता रहा। ज़्यादा ज़रूरी कामों को निपटाने में देरी हो गई। इतनी प्रतीक्षा का समय उनके पास नहीं था। सोचता हूँ, मेरे लिए पिता का अमेरिका में न होने, या दुनिया में न होने का फर्क क्या बहुत ज्यादा मायने रखता है।” इसके बाद वेणु दो हफ्ते रहा मग खवह पूरा उक्ता रहा था। वह उबरकर सोचता “काश, मैंने मुखाग्नि दी होती तो इस पूरे आयोजन में मेरी कुछ तो सोचता होती।”

वेणु का अपने माता—पिता के प्रति बदलती सोच खोखले होते आंतरिक संबंध को प्रदर्शित करती है। अंततः इस शोक घना के बाद जब वेणु वापस अमेरिका निकलना चाहता है, तब अपनी माँ से कहता है “तो तुम्हें इस घर में अकेली नहीं छोड़ सकूँगा।”

वेणु की बात सुन माँ धीरे से कहती है — “तेरे साथ आऊँगी तो इतने वर्षों का जुटाया मेरा सम्मान छूट जाएगा। तेरा घर चाहे जितना सुंदर भव्य हो, उस घर में ये स्मृतियाँ नहीं होंगी। और मेरी तो सबसे अनमोल संपदा यही न। तो यहीं इसके साथ ही क्यों न रहा जाए?” ऐसा कह माँ रह जाती है। फिर वेणु का कुछ प्रयास नहीं होता है। वेणु इसे स्वाभाविक रूप से ले लेता है। अतः ये आर्थिक मूल्य ही जीवन की आधारशिला समझे जाते हैं। मानव मूल्य आज विलुप्त होते नज़र आ रहे हैं। आज लोगों की मानसिकता इतनी खोखली हो चुकी है कि आत्मीयता जैसे खो चुकी है।

प्रवासी भारतीय की भारत के प्रति सोच :

प्रवासी भारतीयों की समस्याएँ अनेक रंगों में और रूपों में होती है। भारत प्रगति की ओर अग्रसर है मगर अमेरिका इसकी चोटी पर है। आर्थिक व्यवस्था एक मूल कारण है, जो प्रवासियों को बाँध कर रख देती है। वेणु का मित्र सौमित्र अपने स्थानीय अभिभावक चंद्रा अंकल के यहाँ डिनर के लिए अपने दोस्तों को निमंत्रित करता है। चंद्रा अंकल अमेरिका में एक ऐशोआराम की जिंदगी व्यतीत करते हैं, अपने देश के प्रति बहुत मोह है मगर बच्चों के कारण वापस जाने में असमर्थ है। वे हमेशा सौमित्र के पिता से कहते हैं — “भाई साहब! यह देश यहाँ रहने की इतनी लाभदायक शर्तें मुहैया करता है कि वापस जाने का कोई वाजिब और तार्किक कारण आप तलाश ही नहीं पाते।”

अतः जो यहाँ वर्षों रहने के आदि है उनके लिए भारत वापस जाना कल्पना के परे है। वे इसकी उन्नति के वशीभूत हो जाते हैं। वेणु की नौकरी मिलने के बाद जब वह घर वापस आता है, उसे पूरे परिवार का और रिश्तेदारों का भरपूर प्यार मिलता है। वह उन लम्हों को समेटकर रखता है और क्षणभर सोचता है अगर मैं रुक जाता तो क्या होता। फिर उसे लगता है यह शाब्दिक छलावा है। उसे अपने पिता के गर्व से बोली बातें याद आती है — “वृन्दा की शादी तय होने के दौरान ज़रूरत पड़ी तो बुलाऊँगा तुझे ... तुम्हें। आएगा न? जानता हूँ, एक रिटायरमेंट के करीब वाले पिता की बेटी और अमेरिका में रह रहे भाई की बहन वाले के प्रस्ताव का वनज में अंतर होता है।”

वेणु समुदाय में मिले उसके पहचान को खोना नहीं चाहता। बस भाई अमेरिका में ही इस कारण वृन्दा को अच्छे से अच्छा वर का प्रस्ताव आ रहा था। इससे पूरा परिवार प्रभुल्लित था। वेणु भी बहुत गर्व महसूस कर रहा था। यह

मर्यादा प्रवासियों को वापस आने की बड़ी बाधा सिद्ध होती है। वेणु की पत्नी मेधा को अमेरिका में रहते-रहते, वहाँ ही व्यवस्था से बहुत प्रेम हो गया है। उसे भारत की व्यवस्था से खास लगाव नहीं और वह कहती है – “पारखी कहो, पारखी। हरगोविंद खुराना से लेकर अमृत्य सेन, नायपॉल और सुनीता विलियम्स तक अगर इंडिया में रहे होते न, तो इंडिया की गंदी राजनीति, भ्रष्टाचार और नियम-कानून की धज्जियाँ उड़ाती शासन व्यवस्था में कभी अपनी मंज़िल तक नहीं पहुँच पाते।”

मेधा को भारत की कानून व्यवस्था, राजनीति सब ढोंग लगती है। उसे लगता है भारत में किसी भी उन्नति आसान नहीं, और न ही किसी के हुनर को मर्यादा मिलती है। वेणु का बेटा भारतीय संस्कृति और उसकी परंपरा से अछूता है। वह उसे बिल्कुल पसंद नहीं करता क्योंकि वह अमेरिकन संस्कृति में पला बढ़ा है। जब पिता भारतीय संस्कृति की मिसाल देते हैं तब बेटु कहता है – “और आप क्या समझते हैं, इंडिया दूध का धुला है? यहाँ का सारा ‘एफ्लुएंट’ नॉन स्टॉप इंडिया ही तो जाता रहा है। चूल्हे हिल गई है आपको, सो कॉल्ड भारतीय संस्कृति को।”

बेटु की भारत की तरफ अच्छी नहीं थी मगर कुछ ही दिनों में जब उसकी एक अच्छी नौकरी मिली उस कंपनी का मैनेजर को भारत और उसकी परंपरा से बहुत प्यार था। वह भारत में एक शाखा खोलना चाहता था। उसका उत्तरदायित्व बेटु को देना चाहता था। बेटु के मना करने पर वह कहता है “यह स्वीकारोक्ति भी तुम्हारे ब्लड में प्रवाहित ‘हिन्दुस्तानियत’ की पुष्टि करती है।” अतः मार्टिन योगी भारतीय परंपराओं को बहुत मर्यादा देता था, भारत के पुराणों, उपनिषदों का कायल था।

युवाओं की बदलती सोच :

आज के नवयुवक जो विदेश में उच्च शिक्षा, नौकरी व व्यापार के लिए जाते हैं, वहाँ की भौतिक चमक दमक से आकर्षित होकर अपने जीवन को नरक बना देते हैं। अपने लक्ष्य में ध्यान केंद्रित कर, संस्कृति से जुड़े लोगों का जीवन अनुपम होता है। बहुत से नवयुवन अपने कर्तव्य को भूल कहीं भीड़ में लुप्त हो जाते हैं। कुछ लोगों का जीवनव सार्थक होता है परंतु परिवार के प्रति स्नेह, निष्ठा और कर्तव्य की प्रस्तुति के तरीके बदल जाते हैं या धीरे-धीरे कम हो जाते हैं।

वेणु अपना पूर्ण जीवन परिवारवालों के लिए न्यौछावर करता है मगर विवाह के पहले और उसके बाद उसकी मुख्यता में बदलाव आता है। जिस वेणु के लिए परिवार से अलग होकर प्रवासी जीवन शुरू करना सबसे बड़ी समस्या थी, धीरे-धीरे वह उसका आदि हो जाता है। वह सोचता है – “अच्छा, मान लो, कोई कहता ही तो क्या रुक जाता मैं? नहीं न!

समझादारी जाने में ही है।

एक सर्वसम्मत स्वीकार।

मैं खुद भी तो लौटने को सोचकर ही तो आया था।

फिर भी, कोई कहता, लोगों की मुँह से सुनता तो मुझे अच्छा लगता।

अजीब है यह मन। कहना कुछ चाहता है, सुनना कुछ और।”

अतः उसे प्रवासी जीवन पसंद आने लगा है। फिर वेणु की शादी के बाद अपनी माँ को फोन करने का सिलसिला भी धीरे-धीरे कम होता जाता है। अब तक जो वेणु घर वालों से कुछ पल बातें करने को तरसता था। अब वेणु को इसकी मुख्यता कम होती दिखती है। शादी के बाद कुछ लंबे समय के बाद माँ ने फोन किया तो माँ की आवाज दूर लगती है और वह शब्दों की काँट-छाँट करता है। वह कहता है –

“ठीक हूँ ठीक है हम दोनों ... कहते-कहते मैं भी ठिठक गया हूँ – हम दोनों ठीक है माँ – तुम बताओ, कैसे हो तुम? पापा के टखने वाला प्लास्टर तो अभी नहीं खुला होगा न? अच्छा—! खुल गया। इधर मुझे फोन करने में देर हो गई – वसु, वृन्दा, विशाखा दीदी की क्या खबर है?”

धीरे-धीरे रिश्तों की प्रमुखता कम होती जाती है। शादी के बाद आर्थिक रूप से भी वेणु की परिवार के लोगों के लिए प्रमुखता कम होती जाती है। वृन्दा के शादी के समय वेणु ने अपने पिता के फंड से कुछ पैसे उधार लिए थे, जो अब तक बाकी है। वेणु सोचता है – “पापा के फंड वाले पच्चीस हजार रूपए अभी बाकी है। लौटाना चाहा था इस बार, लेकिन मेधा की डायमंड रिंग उसे पसंद जो आ गई।”

वेणु के मन में अब माता-पिता और परिवार के लिए प्रेम है मगर प्रवासी युवाओं की सोच में निश्चित ही बदलाव आता है। वेणु के पुत्र बेटु पूरी तरह से प्रवासी सभ्यता का प्रमाणित रूप है, वह अपने पिता से कहता है –

“इट्स अ बिट सिली डैड आपकी परंपरा मेरी कैसी हो सकती है? आप इंडिया में पैदा हुए, मैं अमेरिका में. ...।” अतः आज के युवाओं की सोच चिंतनशील है, और सभ्यता संस्कृति की कगार पर है।

सामाजिक और व्यवहारिक मूल्य :

मानवीय परिस्थितियाँ मानव की अनुकूल या प्रतिकूल भी हो सकती है। अनुकूल परिस्थितियाँ सामंजस्य और प्रतिकूल परिस्थितियाँ द्वंद्व के लिए प्रेरक सिद्ध होती है। यह उपन्यास में चरित्र चित्रण का अच्छा औज़ार के रूप में काम आता है। आजकल मानवीय संबंधों का नैतिक मूल्य घटता जा रहा है, इस कारण अनौपचारिक मानवीय परिस्थितियाँ उद्धित हो रही है। वेणु अमेरिका में आते ही एयरपोर्ट में उसके सीनियर लड़के रिसीव करने आ गए और अपने अपार्टमेंट में ही ठहराया वे एयरपोर्ट में और हाथ मिलाकर बोले, “इंडियन स्टूडेंट एसोसिएशन से। ... कोई परेशानी नहीं होगी। रिलैक्स।” वे सीनियर्स वेणु का साथ में ठहराकर उसे अपार्टमेंट ढूँढ़ने में भी मदद करते हैं।

मेधा और वेणु के शादी के बाद जब वे अमेरिका में अपने अपार्टमेंट पहुँचे तब वेणु के दोस्तों ने पूरे घर की सफाई कर हफ्ते भर का खाने—पीने का जुगाड़ करके रखा था। हफ्ते के अंत में शनिवार को वेणु मेधा को सुबह उठाता और कहता है — “इसलिए कि अब खाने के लाले पड़े हैं। घर की मालकिन की तरह चूल्हा—चौका संभालिए। नमक, तेल, लकड़ी का बंदोबस्त कीजिए। दोस्तों की खातिरदारी कब तक चलेगी।” यहाँ वेणु के दोस्तों का सहयोग नववधु को पूरी सहूलियत देता है। वह वेणु को, उसके घर को और आस पास महौल की समझने में मदद करती है।

दूसरी तरफ वेणु की छोटी बहन वसु जो कुलीग सुहास जोशी की पत्नी की एक्सीडेंट में मृत्यु के बाद चार साल की छोटी बेटी प्रिया को अकेली न छोड़ पा रही थी। वह लोकमर्यादा सब भूल उस बच्ची के लिए सुहास के घर रहती थी, वसु माँ से कहती — “किसी दुखी व्यक्ति का दुख बाँटने की कोशिश ही तो कर रही हूँ माँ ... तुम्हीं ने तो सिखाया है — दूसरों का दुख बाँटने का सुख” अतः बड़े मार्मिक ढंग से मानवीय मूल्यों को दर्शाया गया है।

प्रवासी भारतीय स्त्रियों के मन में विदेशी स्त्रियों के प्रति सोच :

स्थान के परिवर्तन से मनः स्थिति में परिवर्तन नहीं होता। भारतीय नारी देश में हो या प्रवासी उसकी सभ्यता—संस्कृति हमेशा उसके साथ रहती है। बदलते परिवेश के अनुरूप उसकी वेशभूषा व रहन—सहन में थोड़ा आता है।

वेणु के शादी के बाद प्रशांत और अमीलिया को अपने घर रात के खाने के लिए निमंत्रित करते हैं। प्रशांत और अमीलिया एक दूसरे को पसंद करते और साथ—साथ रहते हैं, पर उनकी शादी नहीं हुई है। अमीलिया विदेशी है। अमीलिया भारतीय संस्कृति से बिल्कुल अनजानी है और प्रशांत पंजाब में पला— बढ़ा पूरे संस्कृति का धुला। प्रशांत के माता—पिता उसे भारतीय रिश्ते के लिए मजबूर करते हैं। प्रशांत परेशान होकर वेणु से सलाह लेने आता है। अमीलिया विकसित समाज में जन्मी है जो अपने प्राथमिकता और अपना जीवन खुद (प्राइवसी) के लिए जीती है। उसे देख मेधा कहती है — “हुँह! क्या होता है यह व्यक्तिगत जी? जीवन, व्यक्ति, संबंधों का वह पक्ष, जिसे बाहर करने से हमारे सामाजिक स्टेटस पर झेंप आती है। वरना खुशियाँ तो हम जी भरकर लुटाते हैं। व्यक्तिगत की संदूकची में बंद करके नहीं रखते।”

भारतीय स्त्रियों को खुलकर बातचीत करने की आदत होती है। मेल—मिलाप में संकुचन नारियों (भारतीय) की इच्छा नहीं होती। दूसरी तरफ वेणु के अंकल लोकेंद्र जो अमेरिका में रहते हैं। वे वेणु के रिश्तेदार हैं। लोकेंद्र कम उम्र में विदेश आ गए। यहाँ उनकी शादी एक विदेशी महिला से होती मगर उसकी खराब आर्थिक व्यवस्था आदते, बर्ताव के लिज उसे छोड़ दूसरी शादी कर लेती है। अब एक बेटी सूजी है जो उसका ध्यान रखती है। लिज कभी कभी आकर उसे देख जाती है और संतुष्ट है। जब माँ ने उनकी यह बात सुनी तो बोल उठी “तुम्हारे कहने से? क्या मिल गया तुम्हें? जिंदगी तबाह हो गई इस उम्र में” अतः भारतीय स्त्रियों की सोच संकुचित है।

प्रवासी भारतीय स्त्रियों के प्रति भारतीय स्त्रियों की सोच : प्रवासी भारतीय स्त्रियों के प्रति भारतीय स्त्रियों की सोच सदा महत्वपूर्ण विषय रहा है। भारतीय स्त्रियाँ सभ्यता संस्कृति में पली बढ़ी होती है, अतः संस्कृति और समाज में विभिन्नता के कारण प्रवासी भारतीयों के लिए हमेशा एक अलग सोच होती है। वे उन्हें भौतिक और आधुनिक वस्तुओं के आदि समझती है, या उन्हें बहुत खास मानकर चलती है।

वेणु के बेटे के जन्म के बाद माँ—पापा छः महीने के लिए उनके साथ बेटु का ध्यान रखने आते हैं। मेधा को अपनी कमाई पर बहुत गर्व होता है। वह बहुत स्वावलंबी हो गई थी। उसकी मेहनत और कौशल पर माँ ने कहा — “लेकिन तू जैसी धुन की पक्की बेटा, जहाँ भी रहती, अपना हक हासिल करके रहती।” माँ को मेधा के सामर्थ्य पर

गर्व हैं। वेणु और मेधा शादी के बाद भारत आते हैं। मेधा वेणु के घरवालों के साथ समय व्यतीत करने में अधिक लगाव नहीं दिखाती है। घरवाले बड़ी आकांक्षाओं के साथ मेधा को परिवार के साथ सम्मिलित करना चाहते हैं। मगर सब व्यर्थ जाता है। वसु इस बर्ताव से बहुत दुखी होती है। माँ उसे बहुत समझाने की कोशिश करती और कहती – “तू जरा समझने की कोशिश कर वसु। उसके और हमारे स्टैंडर्ड में बहुत बर्फ है। वह संपन्न परिवार में पली-बढ़ी है। हर परिवार के अलग रहन-सहन, अपने शौक, तरीके होते हैं – खाने-पीने, घूमने-फिरने के और फिर हम लोगों के साथ रही है कहाँ ... जाना ही कितना उसने हम सबको।”

अतः भारतीय स्त्रियाँ हमेशा प्रवासी स्त्रियों को सामान्य न समझकर खास नज़रिए से देखती हैं।

अतः मनुष्य समाज के विभिन्न चक्रों में फँसा होता है। सामाजिक प्राणी होने के कारण उसे समाज की सारी परंपराओं को निभाना पड़ता है। वेणु की डायरी में एक प्रवासी जीवन की शुरुआत, उन्नति और दूसरी पीढ़ी का विकास दर्शाया गया है। इस तरह वेणु का परिवार भारत में और प्रवास में उसकी पत्नी, बच्चों का जीवन विवरण दिखता है। इस उन्नति में उनके माता-पिता का योगदान, प्रवास में उसकी पत्नी का सहयोग आदि दर्शाया गया है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि कौन देस को वासी :वेणु की डायरी में प्रवासी सामाजिक जीवन और उसमें व्याप्त संघर्ष को बड़े ही सुंदर ढंग से दर्शाया है।

संदर्भ ग्रंथ

- १.सूर्यबाला प्रवासी भारतीय की समस्याएं एवं संवेदनाएं पृ. ६८
- २.सूर्यबाला कौन देस को वासी वेणु की डायरी पृ. १६८
३. एम.एस जैन आधुनिक भारत का इतिहास
४. प्रवासी संसार : अप्रैल—जून २००५



प्रवासी साहित्य में भारतीय संस्कृति

डॉ. गोरखनाथ किर्दत

यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय,
इस्लामपुर

आज विश्व के सभी प्रमुख देशों में प्रवासी भारतीय हैं। अमरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, हालैंड, न्यूजीलैंड, फ्रान्स, कनाडा आदि देशों में शिक्षा, चिकित्सा, अभियांत्रिकी आदि क्षेत्रों में विशेषज्ञ के रूप में हो, या व्यवसाय हेतु गए हो, सुरीनाम, फिजी, मॉरिशस त्रिनिदाद ब्रिटिश गयाना में शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत उनके खेतों में गिरमिटिया मजदूरों के रूप में। भारतीय मूल के नागरिक पूरे विश्व में फैले हैं। इन्होंने विदेशों को अपनी कर्मभूमि बनाया है। उनके द्वारा लिखा गया साहित्य ही प्रवासी भारतीय साहित्य है। प्रवासी भारतीय जो संवेदनशील थे उन्होंने अपनी समस्याओं, अपने आस-पास घटित घटनाओं, विचारों, दृष्टिकोण तथा मान्यताओं को साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया। पराई भूमि में अपनी अस्मिता को सहेजने का प्रयास किया।

हिंदी साहित्य में प्रवासी साहित्य का वैचारिक प्रारंभ प्रेमचंद की कहानी 'ये मेरी जन्मभूमि' (१९०३) से माना जा सकता है। इनकी एक अन्य कहानी 'शुद्धा' भी मॉरिशस के गिरमिटिया मजदूरों के जीवन पर आधारित है। पं. तोताराम १८६३ में शर्तबंदी मजदूर की तरह फिजी गए तथा २१ वर्ष के बाद भारत लौटकर 'फिजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष' (१९१५) नामक कहानी लिखी जिसने भारत के प्रबुद्ध वर्ग का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया।

प्रवासी साहित्य का उद्भव भारतीय प्रवासी नाम से हुआ जो इंडियन डायस्पोरा का हिंदी रूपांतर है। डायस्पोरा का अर्थ है वह बिखरी हुई आबादी जो अलग-अलग क्षेत्रों में जा बसती है। बीसवीं शताब्दी में विदेश गमन करने वाले लोगों की संख्या काफी बढ़ गई। इसके साथ ही प्रवासी भारतीयों ने साहित्य के माध्यम से भारतीयता की अस्मिता को सुरक्षित रखने की कोशिश की है। इनमें अभिमन्यू अनंत, रामदेव धुरंधर, सुधा ओम ढीगरा, अंजना संधीर, इला प्रसाद, उषादेवी कोल्हटकर, राजश्री, वेदप्रकाश 'बटुक' श्यामनारायण शुक्ल, सुषम देवी, मिश्रीलाल जैन, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, सुरेंद्रनाथ तिवारी, नरेश भारतीय, निखिल कौशिक, उषा प्रियंवदा, उषा राजे सक्सेना, कृष्ण कुमार, अचला शर्मा, नीला पॉल, सुमनकुमार घई, अश्विन गौधी, अनिल जनविजय आदि प्रमुख साहित्यकार हैं।

प्रवासी भारतीय जो संवेदनशील थे उन्होंने विदेश में अपने प्रवास के दौरान परिवेश से व परिस्थितियों से प्रभावित होकर अलग-अलग विषयों में साहित्य की रचना की। यही से प्रवासी हिंदी साहित्य का अरंभ हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारी संख्या में विकसनशील और अविकसित देशों में शिक्षित और अशिक्षित परिवार के लोग विकसित देशों की ओर पलायन कर चुके हैं। इसी शृंखला में बहुत सारे परिवार भारतीय उपमहाद्वीप से प्रवासी बनकर आये; कुछ पूरब से कुछ पश्चिम से शरणार्थी बनकर पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के मुक्ति पर आधारित दर्शन और सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों की धरती पर प्रतिरोषित भारतीय समुदाय को जो धक्का पहुँचा उसका चित्रण भारतीय मूल के हिंदी साहित्यकारों ने किया है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा, व्यवसाय, लोकसेवा, धार्मिक संस्थानों में विप्रेषण महिलाओं की योग्यता के आधार पर पुरुषों से बराबरी के अधिकार माँगने की प्रक्रिया एवं आंदोलन चल पड़ा। यह खूली सोच एवं उदारवाद और आजादी के अधिकार की माँग से प्रभावित होता रहा है। प्रवासी हिंदी लेखक अपने लेखन के माध्यम से देश-विदेश की संस्कृति के बीच समन्वय का काम करते हैं। प्रवासी हिंदी लेखक भारतीय होने के कारण वे एक तरफ हिंदी प्रचार-प्रसार विदेशों में कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता से भी वहाँ के लोगों का परिचय करवा रहे हैं। हिंदी की अंतराष्ट्रीय पहचान बनाने में प्रवासी हिंदी रचनाकारों का योगदान महत्वपूर्ण है।

डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार "प्रवासी साहित्य ने हिंदी को नई जमीन दी है और हमारे साहित्य का दायरा ललित विमर्श और स्त्री विमर्श की तरह विस्तृत किया है।" अभिमन्यू अनंत के साहित्य में इसकी झलक देखने को मिलती है। इनके उपन्यास, कहानी और कविताओं में भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी प्रवृत्ति, सदाचार, संयम, त्याग, समाज कल्याण और विश्व बंधुत्व की भावना दृष्टिगत होती है। अभिमन्यू अनंत ने 'गांधी जी बोले थे' उपन्यास में सत्य का प्रयोग स्थिति, घटना चिंतन आदि के रूप में किया है। 'लाल पसीना' उपन्यास के स्वामी जी सत्य की प्रतिमूर्ति हैं। वे गाँव के लोगों को उनकी निर्धनता, शोषण, विवशता और बेबसी का अहसास दिलाते हैं। साथ ही अपने चारों ओर फैले अज्ञान के घने अंधेरे को दूर करने की प्रेरणा भी देते हैं। 'और पसीना बहता रहा' उपन्यास में पक्षपाती इतिहास का विरोध करते हुए मजदूरों की संघर्ष गाथा और इमानदारी से लिखे इतिहास की माँग करते हैं। 'शेफाली' उपन्यास की नायिका गरीबी और वर्ण भेद के कारण वेश्या वृत्ति की ओर कैसे अग्रसर होती है इसका चित्रण किया है। शेफाली अपनी मित्र मिला तथा सिलवी की दोस्ती से ही वेश्या बनती है। भैतिक सुख सुविधा कैसे स्वच्छंद यौनाचार को बढ़ावा देती है इसका वर्णन करते हुए उपन्यास की नायिका कहती है - "मैंने वह पहली गोली मुफ्त में ली थी, दूसरी बार गोली मुफ्त की ही थी। हों तिसरी बार मैंने खरीदी थी। हमारे कॉलेज की बहुत सारी लड़कियाँ ड्रग लेती थी।" विकसनशील देशों में यह समस्या नारी जगत में तेजी से बढ़ रही है।

‘एक बीघा प्यार’ उपन्यास में मानवीय सभ्यता का दर्शन होता है तो ‘तिसरे किनारे पर’ उपन्यास में हिंदू और मुसलमानों के बीच के सदभाव को प्रस्तुत किया है। ‘जम गया है सूरज’ का धरमेन खेत में काम करने वाले मजदूरों के प्रति दया का भाव रखता है। उसी तरह ‘लहरों की बेटी’ उपन्यास की दुलारी भी दया की मूर्ति है। वह प्रत्येक जरूरतमंद की सहायता करती है। ‘घर लौट चलो वैशाली’ उपन्यास में किशोर वर्ग की मानसिकता का चित्रण मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास में हिंदू लड़की द्वारा मुस्लीम दोस्त से विवाह उपरांत उठी समस्याओं का सामना करना, अकेलापन तथा दास्ता को झेलना और अंतः अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु अपने मार्ग का चुनाव करने की हिम्मत रखना आदी बातों का जिक्र किया है। उपन्यास का नायक हसन अली अपनी पत्नी वैशाली को विवाह के कुछ वर्षों बाद धार्मिक पाखंडों से बांधना चाहता है। यहाँ तक कि बेटी सोनी का नाम बदल कर सलमा कर देता है। वैशाली अपनी अस्मिता को पहचानती है। इससे स्पष्ट है कि आज नारी अस्मिता का अर्थ बदल गया है। वह सिता, अनुसया, अहिल्या, नहीं बनना चाहती बल्कि वह अपने अस्तित्व के लिए लड़ना चाहती है।

प्रवासी भारतीय रचनाकारों के साहित्य में भारतीय संस्कृति का मूल रूप यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है। विदेशों में विस्थापित होने के बावजूद भी जीवन मूल्य और जीवन शैलीयों के टकरावों के बाद भी समन्वय की भावना उनमें प्रबल है। इस लिए लिखते हैं -

“मेरे देश के जंगल में एकही घाट पर
पनी पीते हैं हिरन और...सूअर
खेलते हैं एकही क्लब में, न्यायाधीश और जूर्म के मसिहा सतरंज के खेल
पूजारी के घर से लौट आती है वेश्या
बनकर निष्कलंकिनी साध्वी
बिल्ली शेर बन जाती है रातोंरात मंत्री के घर की दहलीज लॉघ आने के बाद
मेरे देश के बाजार में बिकते हैं सुबह शाम
सच और झूठ एक ही ओर एक ही दाम।”

भारतीय संस्कृति सभी प्राणी मात्रा की मंगल कामना चाहती है -

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्त निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा करिष्वद् दुःख भागभवेत्॥

अर्थात् सभी सुखी रहे सभी कल्याण के दर्शन करे और किसी को भी कोई दुःख प्राप्त न हो यही कारण है कि प्रवासी हिंदुस्तानी आज भी भारत की उन्नति से खुश होते हैं तथा जब कभी भारत में भूकंप, सूखा, बाढ़, अथवा अन्य कोई प्राकृतिक आपदा आती है तो मदद के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। अपनी भाषा और संस्कृति जो उनकी भारतीयता की अस्मिता है गर्व से उसे सुरक्षित रखते हैं।

संदर्भ :-

- १) अक्षरम संगोष्ठी, अप्रैल-जून २००६, पृ. ६
- २) अभिमन्यू अनंत - शेफाली पृ. ५६

प्रवासी स्त्री समस्याओं की यथार्थ कहानी : स्विमिंग पूल

प्रा.एस.के.आतार

हिंदी विभागप्रमुख,
आर्ट्स अँड कॉमर्स कॉलेज,
नागठाणे।

हिंदी साहित्य में वर्तमान काल में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, बाल विमर्श, दिव्यांग विमर्श आदियों के साथ साथ प्रवासी विमर्श भी चर्चित है। भारतीय मूल के हिंदी लेखक विदेशों में किसी कारणवश बसते हैं और वहाँ रहकर जो सृजनात्मक साहित्य लेखन करते हैं उसे प्रवासी हिंदी साहित्य कहा जाता है। वर्तमान काल में हिंदी के अनेक ऐसे प्रवासी पुरुष लेखकों के साथ-साथ स्त्री लेखिकाएँ भी हैं जो मुख्यतः स्वतंत्रतापूर्व काल में सूरीनाम, मॉरीशस, गुयाना, त्रिनिनाद, दक्षिण आफ्रिका, फिजी आदि देशों में तो स्वातंत्र्योत्तर काल में जर्मनी, कनाडा, अमरिका, पोर्तुगाल, फ्रान्स, डेन्मार्क आदि देशों में जा बसे। इन रचनाकारों में सुधा ओम ढींगरा, सुषमा बेदी, अर्चना पैन्थूली, उषा राजे सक्सेना, पूर्णिमा वर्मन, पुष्पा सक्सेना, कीर्ति चौधरी, उषा प्रियवंदा, शैला अग्रवाल, रमा जोशी, वायु नायडू, स्नेह ठाकूर, नीरा त्यागी, कादम्बिरी मेहरा, दिव्या माथुर, इला प्रसाद, तोषी अमृता आदि अनेक महिला प्रवासी लेखिकाएँ हैं जो विदेश में रहकर हिंदी लेखन कर रही हैं।

इनमें से सुषमा बेदी प्रवासी कहानीकारों में एक प्रमुख सशक्त हस्ताक्षर हैं। जिनके लौटना, नवभूमि की रसकथा, गाथा अमरबेल की, मैंने नाता तोड़ा, मोर्चे, पानी केरा बुदबुदा, कतरा दर कतरा आदि उपन्यास तो चिडिया और चील, यादगार कहानियाँ, तीसरी आँख, सडक की लय आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनके कथा साहित्य में प्रवासी समाज की समस्याओं का चित्रण मिलता है। उनमें प्रमुख रूप से प्रवासी स्त्री समस्याओं का चित्रण मिलता है। साथ ही शैक्षिक, आर्थिक, असुरक्षितता, धार्मिक अंधविश्वास, पीढिगत अंतर, नारी समस्या, नैतिक मूल्यों की टकराहट आदि विभिन्न प्रकार की समस्याएँ शामिल हैं।

सुषमा बेदी की 'स्विमिंग पूल' इस कहानी की नायिका अमरिका के युनिवर्सिटी के स्विमिंग पूल स्विमिंग करने जाया करती थी। उस समय वहाँ की लड़कियाँ औरतें स्विमिंग कम कपड़ों में स्विमिंग करती हैं। स्विमिंग के बाद गुसलखाने में नंगी होकर आपस में बेशरमी सी बातें करती हैं। हंसी, खिलखिलाती हैं और साथ ही अपने सारे बदन पर साबुन मलती और अपने गुप्तांगों को भी खुलेआम खोल-खोल के साफ करती हैं। यह सब चित्र देखकर नायिका को उनके साथ स्विमिंग करते समय और गुसलखाने में नहाते समय भी काफी संकोच होता है। फिर नायिका को अपना अतीत याद आता है। वह कहती है, "मुझे याद है माँ के साथ अमृतसर के सरोवर में स्नान किया था तो मैं अपनी फ्रॉक में ही थी माँ ने बाकायदा अपना जम्पर और पेटीकोट पहन रखा था। मैंने कभी माँ को नंगा नहीं देखा। यहाँ तक की अपनी बहनों को भी आज तक नंगा नहीं देखा। वर्ना बड़ी दीदी की शादी के पहले सालों हमने साथ घर पर बिताए। पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि वे हमारे सामने कपड़े बदलें या माँ ने कभी हमारे सामने कपड़े बदले हो। यहाँ तक की मेरी हमउम्र बहन को भी कभी नंगा नहीं देखा। यूँ हम एक ही कमरे में साथ रहते थे पर ऐसा सिखाया गया था कि कभी बदलने भी पड़े कपड़े या तो दूसरा कमरे से बाहर निकल जाये या आप गुसलखाने में जाकर बदलें या फिर दूसरे की ओर से आँख मूंद कर ही कमरे में बदले। इस सिखलायी के हम पक्के कायल थे।" स्पष्ट है भारतीय संस्कार बचपन से ही हुए थे भारतीय और अमरिका की स्त्री की इस संदर्भ की मानसिकता की तुलना नायिका मन ही मन करती है साथ ही अपने आप को वह गहराई में कुरेदती है।

नायिका बहुत सालों से अमरिका में रहती है। फिर भी वह स्विमिंग पूल में नहाते समय सहज नहीं होती ऐसी उसे लगता है। अमरिका की लड़कियों के बारे में वह कहती है, "यहाँ अमेरिका में तो लड़कियाँ सडकों पर भी बरायनाम कपड़े बेखटके पहनती हैं और पूल में बिकनी पहनना कोई बात ही नहीं और फिर लड़कियों की उपस्थिति में नहाने की बात पर तो उनके दिमाग में मेरे जैसा खयाल आना ही असंभव बात होगी। मुझे इतनी परेशानी क्यों है मैं भी तो इतने सालों से यहाँ रह रही हूँ यह बदलाव मुझमें सहजता से क्यों नहीं आता?" लेकिन नायिका उसी स्विमिंग पूल में हिंदुस्तानी महिला के सामने नहाने संकोच महसूस करती है उसके मन में प्रश्न उठता है कि एक हिंदुस्तानी महिला के सामने नंगा नहाने में उसे मुश्किल क्यों आती है? नायिका का एक पाकिस्तानी मित्र है वह भी नायिका की तरह अमरिका के उसके अनुभव कथन करता है। इस संदर्भ में नायिका कहती है, "मुझे अपने साथ काम करनेवाले एक पाकिस्तानी मित्र की बात याद

आयी। कुछ जिम (व्यायामशाला) की बात उठी तो कहने लगा कि मैं तो जिम जाता ही नहीं। साले सारे आदमी नंगे नहाते हैं। मुझसे तो यह देखा नहीं जाता। न ही मैं खुद किसी आदमी के सामने कपड़े उतार सकता हूँ। तब मुझे समझ में आया कि यह सिर्फ मेरी समस्या नहीं थी। हम जो भारतीय उपमहाद्वीप में बड़े हुए सबमें इस तरह की ग्रंथियाँ होती हैं।" लेकिन अंत में अमरिकी महिलाओं के सामने नहा लेने में नायिका ने समझौता कर लिया है क्योंकि अगर स्विमिंग पूल में तैरना है तो यह सब झेलना ही पड़ेगा। क्योंकि वहाँ के जो रस्मोरिवाज है वैसे ढलना ही पड़ेगा अर्थात् नहाने को लेकर जो ग्रंथियाँ भारतीय स्त्री में पैदा हुई हैं उन ग्रंथियों को कम करने की सकारात्मक कोशिश भी वह करती है। इस बारे में वह कहती है, "जैसा देस वैसा भेस" अंत में जब भारतीय महिला और नायिका उसी स्विमिंग पूल में नहाने के बाद एक दूसरे के सामने लौकर की ओर बढ़ने लगे तब दोनों ने एकदूसरे को नंगा देख लिया और उसके बाद दोनों में वार्तालाप हुआ। तब नायिका कहती है, "ऐसा महसूस हुआ कि आज हम एक दूसरे के व्यक्ति से परिचित हो रहे थे। जिस्म कहीं हम होते हैं पर वह हम से अलग होता है। अलग हस्ती रखता है। वह हमारा होता है पर वह हम जिस्म नहीं होते। अगर हम नंगे होते हैं तो हमें लगता है जैसे कि वे हम नहीं कि वह पूरे हम नहीं होते। यहा जो कुछ भी था जिस्मों से बाहर था। यह हम दो इन्सानों का जुड़ना था। डॉ.कमलकिशोर गोयनका कहते हैं, "अमरिका में कहानी और उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति में महिला लेखिकाओं का वर्चस्व है। संभवत इसका कारण यह है कि प्रवासी भारतीय महिलाएँ जिस प्रकार स्वदेस परदेश तथा दो भिन्न संस्कृतियों के दवंदव में जीती हुई घर गृहस्थी को संचालित करती हैं वह उनमें अनुभवों एवं संवेदनाओं को कथा एवं पात्रों में पिरोकर अभिव्यक्त करती रही है।"

इस प्रकार सुषमा बेदी की 'स्विमिंग पूल' इस कहानी में प्रवासी भारतीय स्त्रियों के अंतर्द्वंद्व को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। प्रवासी भारतीय स्त्रियों को विदेशों में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उन समस्याओं का यथार्थ चित्रण अपनी इस कहानी के माध्यम से किया गया है।



21वीं सदी के काव्य में प्रवासी भारतीय साहित्य विमर्श

श्याम कुमार दास

एम.ए (हिन्दी) एम.फिल. (हिन्दी)

पता : 36 ए टी घोष रोड

पोस्ट – गरीफा जिला – उत्तर 24 परगना

पश्चिम बंगाल

प्रवासी भारतीय साहित्य का संबंध ऐसे साहित्य से है जिसे प्रवासी लोगों द्वारा लिखा गया है। इन्होंने अपने प्रवासी जीवन के दौरान अपने द्वारा भोगी गई अनुभूतियों, अपने आस-पास की समसायाओं एवं विभिन्न घटनाक्रमों को अपनी लेखनी के माध्यम से अपनी कविताओं, कहानियों एवं उपन्यासों इत्यादि में स्थान दिया। इस साहित्य के अंतर्गत आलोचनात्मक साहित्य की अपेक्षा रचनात्मक साहित्य अधिक लिखा गया। आज के वर्तमान दौर में प्रवासी भारतीय साहित्य विमर्श समकालीन दौर का प्रमुख विषय बन गया है। वैसे तो प्रवासी साहित्य लेखन की परंपरा काफी प्राचीन है किन्तु 21वीं सदी में इसे विशेष स्थान मिला है।

प्रवासी साहित्य मुख्य रूप से कविता, कहानी एवं उपन्यास इत्यादि विधाओं में लिखा जा रहा है परंतु कहानी को इस विमर्श की प्रधान विधा कहा जा सकता है। प्रवासी भारतीय हिन्दी साहित्यकारों में मुख्य रूप से सुषम देवी, जाकिया जुबैरी, नीना पॉल, दिव्या माथुर, जया वर्मा और उषा राजे सक्सेना जैसी प्रवासी लिखिकाओं एवं कैलाश भटनागर, गुलशन गंगाधर सिंह सुखलाल, अवंतस कुमार और चंद्र मोहन भंडारी जैसे कवियों का नाम उल्लेखनीय है। केवल कथा वस्तु के माध्यम से भी हम इसे विस्तृत रूप में जान सकते हैं।

प्रवासी भारतीय साहित्य के अंतर्गत जिन रचनाओं का जिक्र किया जाता है उनमें सुषम बेदी का हवन और मैंने नाता तोड़ा उपन्यास, कहानी संग्रह चिड़ियाँ और चील, नीना पॉल का उपन्यास तलाश, काफी चर्चा में रही हैं इसके अलावा काव्य जगत में कैलाश भटनागर की कविता परदेश की नगरी, गुलशन गंगाधर सिंह सुखलाल की कविता पासवर्ड, अवंतस कुमार की का से कहूँ, चन्द्र मोहन भंडारी की मेरे हिन्दोस्तां, मेरे वतन, कैसा जमाना आया यारो आदि जैसी कविताएं भी काफी चर्चा में रही हैं।

प्रत्येक व्यक्ति की एक हार्दिक इच्छा होती है कि जिस मिट्टी पर उसका जन्म हुआ है, जिस मिट्टी पर पला-बढ़ा है वह उससे हमेशा जुड़ा रहे किन्तु जीवन के विविध पड़ाव में एक मोड़ ऐसा भी आता है जहां हमें अपनी मिट्टी, जमीन से अलग होना पड़ता है और कहीं दूर जाकर बसना पड़ता है जिसे हम प्रवासी जीवन जीना कहते हैं। इसी संदर्भ में वर्तमान साहित्य में कहा गया है – “प्रवासी वह व्यक्ति है जो निश्चित समय के लिए अपना देश छोड़कर बेगाने देश में रहता है और समय बीत जाने के पश्चात अपने देश लौट आता है।”¹

समकालीन दौर की बढ़ती प्रतिस्पर्धा, जीवन के बीते काल की अपेक्षा भविष्य को बेहतर बनाने हेतु उच्च शिक्षा, अच्छी आमदनी की तलाश में व्यक्ति को जन्मभूमि से दूर अज्ञान जगह को कर्मभूमि के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। कर्मभूमि, जहां वह शारीरिक मानसिक एवं भाषायिक स्तर की अनेक समस्याओं का सामना करते हुए अपनी पहचान स्थापित करता है फिर भी प्रवासी होने के परिचय से कभी मुक्त नहीं हो पाता। भारतीय मूल के कैलाश भटनागर ने ऑस्ट्रेलिया में अपने निवास के दौरान एक कविता की रचना की यथा – “परदेश की नगरी”- ये परदेश की नगरी है / ये परदेश की महानगरी है/ आप आये हैं आपका स्वागत है/ ये नगरी किसी को बुलाती नहीं है / आने के लिए रोकती नहीं है लेकिन किसी को भी ये नगरी /वो नहीं रहने देती /बड़ी निर्मम है ये नगरी/ ये काटती है पहले जड़ों से आपको/ छीन

लेती है गाँव घर / माँ बाप, भाई-बहन/ रिश्ते नाते दया अपनापन/ नहीं रहने देती ये नगरी आपको इंसान/ बना देती है मशीन/”²

परदेश की नगरी कहीं न कहीं हमसे हमारे पुराने रिश्ते छीन लेती है और हमें संवेदना विहीन कर मशीन में तब्दील कर देती है फिर हम भी मशीनी रफ्तार में शामिल हो जाते हैं और अतीत की नगरी खंडहर सी प्रतीत होने लगती है। गुलशन गंगाधर सिंह सुखलाल की कविता “पासवर्ड” आज की भागदौड़ वाली ज़िंदगी का जीवंत दस्तावेज़ प्रस्तुत करती है। सुबह उठते ही हम मोबाइल ऑन करने के लिए पासवर्ड डालते हैं। ऑफिस पहुँचते ही गेट पर पासवर्ड डालते हैं। पैसे निकालने के लिए ए.टी.एम में पासवर्ड डालते हैं। इस तरह पूरे दिन मशीनों के सानिध्य में काम करते हुए जब रात को वापस घर तक पहुँचते हैं तो थकान के कारण सो जाते हैं और हमें अपने सगे संबंधियों से बात करने के लिए भी समय नहीं मिलता यहाँ तक कि बीबी बच्चे, माता-पिता भी उसकी दुनिया से अलग होने लगते हैं यथा “जिंदगी में बेमानी हो चली / कुछ भावनाओं को / दिल के जिस फोल्डर में रखा था /उसका पासवर्ड मैं कहीं भूल गया।”³

प्रवासी पुरुष के साथ नारी की स्थिति एवं संस्कृति में परिवर्तन देखे गये। पुरुष अगर परदेश में है और भारतीय नारी से विवाह कर उसे परदेश ले जाता है तो वहाँ नारी की मनः स्थिति द्वंदात्मक हो जाती है। एक तरफ नया रहन-सहन, नई संस्कृति को अपनाने में हिचक तो दूसरी तरफ पुरानी संस्कृति को बचाने की कोशिश दिखती है यथा “मैं तेरे पास हूँ, परदेश में हूँ, खुश भी हूँ/ मगर ख्याल तो हरदम वतन में रहता है।”⁴ इस दाम्पत्य से उत्पन्न नई पीढ़ी दोनों संस्कारों को ग्रहण करती है जिससे एक हाइब्रिड संस्कृति का जन्म होता है। इस हाइब्रिड संस्कृति से उत्पन्न पीढ़ी ने अपनी पुरानी संस्कृति को पूरी तरह से भुला दिया है। ऊषा वर्मा (ब्रिटेन) लिखती है- “कौन छीन ले गया ?/ हमारी संवेदनाओं को / हमारे प्यार को / जो तुम्हारे प्रति समर्पित था/ बिना बताये धीरे – धीरे छूट गया / वह अतीत / एक चमकती लकीर के पीछे भागा/ भागा तो / पर मिला एकाकीपन/ कांपते पारे सा/मन का सूनापन/ विकल्पों का विस्तार/ बचा एक रस जीवना”⁵ इस कविता में भारतीय जीवन की मिठास गायब है यहाँ परदेश के एकाकीपन, अजनबीपन को दिखाने का प्रयास है जो समय के साथ और बढ़ता जा रहा है। भारतीय रिश्तों की प्यार वाली खुशबू, मौसमों का बेशुमार कोलाहल परदेश में नहीं है वहाँ का जीवन एक रस है।

भारतीय मूल के अधिकांश लोग मॉरीशस, अमेरिका इंग्लैंड में प्रवासी जीवन व्यतीत करते हैं इसके अलावा अन्य देशों में भी भारत के लोग रहते हैं और वहाँ की संस्कृति में रच-बस गये हैं किन्तु अपने देश की कसक उनमें व्याप्त है जो उनकी रचनाओं में विविध रूपों में प्रकट होती है जैसे कैनेडा के अवंतस कुमार ने “का से कहूँ” कविता के माध्यम से अपनी प्रवासी जीवन की अनुभूति को बताने का प्रयास किया है। ऑस्ट्रेलिया से विजय कुमार सिंह मेरा देश कविता में लिखते हैं कि यदि कहीं स्वर्ग है तो वह भारत भूमि में ही है, मेरे देश में ही है। पूर्व भारतीय राजदूत चंद्रमोहन भंडारी ने विभिन्न देशों का भ्रमण करते हुए अन्य देशों की अपेक्षा अपने देश को उत्कृष्ट बताया और

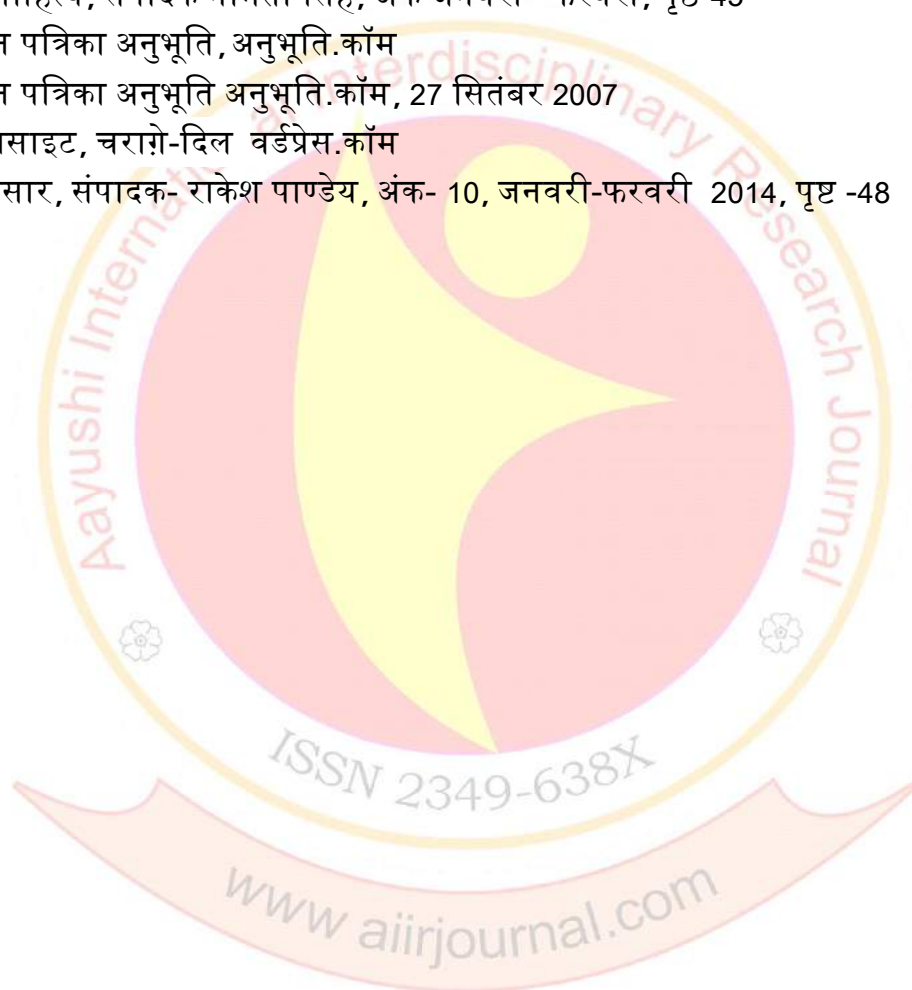
मेरे हिन्दोस्तां, मेरे वतन, कैसा जमाना आया यारों जैसी कविताएं लिखी। मेरे हिन्दोस्तां कविता में लिखते हैं कि सात रंगों का भारत देश एकता का चमन है इसकी तहजीब दुनिया में मशहूर है, आसमाँ इसका कदम चूमता है। सत्य और अहिंसा पर आधारित यह बुद्ध की धरती है यहीं इस धरती पर हर भाषा, वर्ण, धर्म के लोग समता को लेकर चलने वाले हैं ऐसा कोई और देश नहीं केवल अपनी भारत भूमि है।

प्रवासी साहित्य एक नया साहित्य बोध है। यह अपने साथ विश्व साहित्य का एक नया रूप लेकर समाज एवं साहित्य जगत को कई रूपों में प्रभावित कर रहा है। आज प्रवासी भारतीय साहित्य पूरे विश्व में अत्यधिक रुचि के साथ पढ़ा जा रहा है। प्रवासी हिन्दी साहित्य देशी और विदेशी अनुभूतियों, भावनाओं से परिपूर्ण एक ऐसा साहित्य है जो कई संस्कृतियों को जोड़ने का एक अनूठा कार्य कर रहा है। आज के

भूमंडलीकरण के दौर में प्रवासी भारतीय साहित्य एक नई पूंजी के रूप में साहित्य जगत में अपनी पहचान बनाने में सफल है। प्रवासी भारतीय साहित्य ने हिन्दी भाषा को विश्व में एक नई पहचान दिलाने में भी अहम भूमिका निभा रहा है। प्रवासी हिन्दी साहित्य प्रवासी भारतीय के जीवन संघर्षों, अपने देश तथा अपने आत्मीय लोगों से बिछड़ने की पीड़ा, देशी –विदेशी संस्कृतियों के टकराव और उससे पनपी पीड़ा को व्यक्त करता है। यूं तो प्रवासी भारतीय साहित्य काफी लंबे समय से साहित्य जगत में विद्यमान रहा है परंतु इसने 21वीं सदी में अपनी अनूठी पहचान बनायी है। स्पष्ट शब्दों में कहे तो आधुनिक समय में भारतीय हिन्दी साहित्य में प्रवासी भारतीय साहित्य द्वारा दिये जा रहे योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। यह हिन्दी साहित्य की अमूल्य कुंजी है जो हिन्दी और हिन्दी साहित्य जगत के लिए नई राह बना रही है और हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य को पूरे विश्व तक पहुँचाने का कार्य कर रही है।

संदर्भ सूची:

1. वर्तमान साहित्य, संपादक नमिता सिंह, अंक जनवरी –फरवरी, पृष्ठ-45
2. ऑनलाइन पत्रिका अनुभूति, अनुभूति.कॉम
3. ऑनलाइन पत्रिका अनुभूति अनुभूति.कॉम, 27 सितंबर 2007
4. हिन्दी वेबसाइट, चरागे-दिल वर्डप्रेस.कॉम
5. प्रवासी संसार, संपादक- राकेश पाण्डेय, अंक- 10, जनवरी-फरवरी 2014, पृष्ठ -48



मनोव्यस्था खंडकाव्य में व्यक्त विचार

डॉ. युवराज माने

श्री.आर.आर.पाटील महा.सावलज.

(महाराष्ट्र)

प्रस्तावना –

‘प्रवासी भारतीय हिंदीसाहित्य’ को आज हिंदीसाहित्य संसार में एक विमर्श की भांति देखा जा रहा है। प्रवासी भारतीय हिंदीसाहित्य संसार के कोने - कोने में बसे हुए हैं। मॉरिशिस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद एण्ड टॉबैगो, अमेरिका, इंग्लैंड, ऑस्ट्रेलिया, नीदरलैंड, नॉर्वे, जापान, चीन, डेनमार्क आदि देशों में ‘प्रवासी भारतीय हिंदीसाहित्य, विकास पा रहा है। इन साहित्यकारों में प्रमुख नाम है- महाकवि हरिशंकर ‘आदेश’। पिछले छः दशकों से उनका कार्य क्षेत्र त्रिनिदाद एंड टॉबैगो (वेस्ट इंडीज), अमेरिका, कनडा रहा है। महाकवि ने लगभग 300 पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें महाकाव्य, खंडकाव्य, अनुवाद, तीस नाटक, एकांकी, बालसाहित्य और भारतीय संगीत राग पर आधारित पुस्तकें दिखाई देती हैं।

प्रवासी भारतीय साहित्य का इतिहास-

‘प्रवासी भारतीय साहित्य’ आज एक विमर्श के रूप में विकास पा रहा है। ‘प्रवासी’ शब्द ‘प्रवास’ शब्द का विशेषण है। साहित्य समाज का दर्पण होता है, पर प्रवासी भारतीय साहित्यकारों के मानस पटल पर चित्रित चित्र हैं। जो ये चित्र चितरे हैं, वे वह हैं जहाँ कभी उनके पूर्वज रहा करते थे और उन्हें वह विरासत में मिले हैं। यह इतिहास लगभग 185-190 वर्षों का है। इनके मूल कल के गर्भ में हमें दिखाई देती है। “भारतीय सपूतों को गिमिटिया मजदूर के रूप में उपनिवेशी शासकों के द्वारा शताब्दी पहले भारत की पावन धरती से मॉरिशिस, सूरीनाम, फिजी, गयाना, त्रिनिदाद द्वीपों में गन्ने की खेती करवाने के लिए बंधुआ मजदूर के रूप में लाया गया था। इन मजदूरों को अलग अलग भूखंडों पर धान की तरह फेंक दिया गया।”¹(डॉ. कल्पना गवली (संपा.), 2018) ये जो गिमिटिया मजदूर सम्पूर्ण भारत से थे पर उन में बिहार, उत्तरप्रदेश के लोगों की संख्या अधिक थी। ये लोग जाते समय विरासत में भारतीय पावन मिट्टी के साथ यहाँ के संस्कार, रीति-रिवाज, परंपरा के साथ महाभारत, रामायण और रामचरित मानस आदि धार्मिक ग्रंथों को भी साथ ले गये थे। और वह भाषा भी जिसमें अपनेपन की महक थी। संसार में इन्हीं गिरमिटिया बंधुआ मजदूरों के कारण ही हिंदी का प्रचार एवं प्रसार हुआ। ‘हिंदी के प्रवासी साहित्य ने अपने एक रचना संसार रचा जो चाहे छोटा ही था। परन्तु उसने एक अलग साहित्य-संसार की रचना की जो पूरे विश्व में निरंतर फैलता गया और हिंदी के प्रवासी साहित्य का एक बिम्ब निर्मित हुआ तथा उसका परिदृश्य वैश्विक बन गया।”²(कमल किशोर गोयनका, 2011)

प्रवासी साहित्य का अर्थ

स्वतंत्रता के बाद डॉ. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी जी ने प्रवासियों को ‘भारतवंशी’ यह नाम दिया। “हिंदीशब्द ‘प्रवासन’ की तुलना में ‘डायस्पोरा’ शब्द प्राचीन हैं यह शब्द मूलतः ग्रीक भाषा का है। डायस्पोरा या Diaspora को ग्रीक भाषा के Diaspora शब्द से लिया गया है। संधि -विच्छेद करने पर यह शब्द: Dio और sperien जिसका अर्थ “बीजों को बोना, छितरना या बिखेरना, फैलाना” आदि है।”³(रामचरण जोशी (संपा.) 2014.) हिंदी भाषा को केंद्र में रखकर डॉ. श्यामधर तिवारी जीने इन्हे चार श्रेणियों में विभाजित किया है-

1. प्रारम्भिक कल – पूर्व प्रारंभिक काल या भाषा – संरक्षण – काल – 1834 से 1900 तक
2. उत्तर प्रारंभिक काल - या प्रेरणा – 1900 से 1935

3. मध्यकाल या संघर्षकाल –1935से1968 तक

4. आधुनिक काल या विकास काल 1968 से आज तक⁴(कमल किशोर गोयनका,2011)

मनोव्यवस्था खंडकाव्य में व्यक्त विचार–

विचार मानव जीवन को महान बना देता है। विचार दो प्रकार के होते हैं। एक सद्विवेक तो दूसरा अविवेक। सद्विवेक विचार मानव को मरणोपरांत जीवित रखते हैं, तो अविवेक विचार दूसरों के साथ अपना भी नुकसान कर देते हैं। विचार का अर्थ बताते हुए है, “सांकेतिक प्रक्रियाओं की सहायता से ‘विचार’ जगतका मानसिक एकलाप है। स्मृति, कल्पना एवं तर्क के सहयोग से समस्याओंको हल करने में विचारों का उपयोग होता है। विचार के प्रमुख लक्षण अनुसंधान और अविष्कार है।”⁵(डॉ.बलदेव बंशी-2002), विचार उसे कहते हैं – “किसी विषय पर गंभीरता के साथ सोचना”⁶(कालिका प्रसाद-2011) मनोव्यवस्था खंडकाव्य है। महाकवि ने शाहजहाँ के माध्यम से समस्त मानवी जीव के वियोग को प्रस्तुत किया है।

शाहजहाँ के विरहो जावेन में क्षणिक विश्राम की बेला समीप आ गयी थी। अपने वल्लभा मुमताज के याद में यमुना के तीर बनाया ‘ताजमहल’ जिसका अनुपम सौंदर्य देख ‘विधु’ भी इर्षित हो उठा। ऐसे ‘ताज’ के देखने के लिए शहंशाह शाहजहाँ अधीर हो उठते हैं। शहंशाह के हृदय में अगाध प्रणय की अभिलाषा उमड़ उठी है। जिसमे वो दीवाने हो उठे। अपने नृप की दीवानगी देख उनके दिवान बोल उठे – जहाँपनावहाँ जाने का यह उचित समय नाही है, श्रीमान आप कल प्रातःप्रस्थान करें। नृप अपने आप को रोक नहीं पा रहे हैं। वे शोकाकुल मुद्रा में कहते हैं मैं अभी जाना चाहता हूँ। कहीयमुना की लहरें अपने साथ मेरे ‘ताज’ को भी बहा न ले जायें। जीवन की क्षणभंगूरता को बया करते शहंशाह शाहजहाँ कहते हैं-

“अपने धूमिल जीवन-स्वर से / थी कह रही पुकार-पुकार।

“नश्वर हैं ये जीवन प्राणी, / क्षण भंगुर है यह संसार ।”(हरिशंकर आदेश)

शहंशाह हो या फ़कीर खुदा के पास जाते समय न हाथी होता है, न घोडावहां तो पैदल ही जाना पड़ता है, पर यह शमशान घाट के मुर्दे हमेशा अपनी शानो-शौकत, बल, घर-परिवार, खानदान पर गर्व करते रहते हैं। उनके दिमाग में हमेशा यही बात रहती है की मेरे जैसा कोई नहीं, पर असल बात यह है की यह मिट्टी कातन और मिट्टी का मन एक दिन मिट्टी में ही मिल जाता है। नादान मनुष्य को इस पर हमेशा अभिमान रहता है।

“ओ मिट्टी के पुतले मत कर, / नश्वर जिवन पर अभिमान ।

एक दिन यूँ ही मिट्टी में, / मिल जाना होगा नादान ।”(हरिशंकर आदेश)

जो इस संसार में आता है, उसका इस संसार जाना अनिवार्य है। यही सृष्टि का नियम है, यही विधाता का भी नियम है। अमर कोई नाही है। विगत जन्म के रुण चुकाएँ बिना इस संसार को कोई अलविदा नहीं कर सकता। किसी को भी पता नहीं होता की काल के गर्भ में क्या है? पर इस नश्वरता को छोड़ अपने ‘अहम्’ में मानव ‘स्व’ को भूल जाता है। और ‘अहंकार’ में जीवन के गुलशन को विराने में बदल देता है। जीवन के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए महाकविकहते हैं-

“अमर नहीं कोई इस जग में, / विजित हो सका कभी न काल ।

कभी न जान सका कोई भी, / आने वाले कल का हाल ।”(हरिशंकर आदेश)

सिकंदर जो असीम संपत्ती का और असीम राज्य का मालिक था। वो भी जाते समय खाली हाथ ही गया था। कफ़न के आलावा कुछ साथ नहीं ले जा सका, तो आम आदमी की क्या औकात। बीबी, बच्चे, परिवार शानो-शौकत केवल दफ़न भूमि तक ही साथ देती हैं। जीवन में जो भी कमाया उसमे से एक छदाम भी साथ नहीं जाता। सब-का-सब यही पर रह जाता है। अकेलाजिव आया था और जायेगा भी अकेला ही। न शरीर की सुंदरता साथ होती है, न यौवन साथ रहता है। रहता है तो केवल-अन-केवल सच्चा प्यार “प्रेम देह की भूक नहीं हृदय की उपासना

है। आत्मा का धर्म और जिंदगी का सार है। (डॉ.मोनिकादेवी शर्मा (संपा.) 2019.)⁷ मुमताज के जाने से शाहजहाँ का जीवन वीरान हो चूका है। अब उसे शेष जीवन से अनुराग नहीं है। कोकिल के मधुर स्वर बिन उपवन शून्य होता है, वीणा बिन राग शून्य होता है। उसी प्रकार मुमताज बिन शहंशाह शाहजहाँ का जीवन शून्य हुआ है। उनके हृदय में अनुराग की 'साध' अवशेष नहीं है। पस्तुत पंक्तियों में महाकवि के शून्य जीवन के प्रति मनोव्यथा दिखाई देती है।

"इस जीवन से शेष रहा है, / मुझे न अब किंचित अनुराग।

उपवन शून्य हुआ कोकिल बिन, / शून्य हुआ वीणा बिन राग।" (हरिशंकर आदेश)

मुमताज शहजहाँ की प्रेमकथा आज एक मिथक के रूप में प्रसिद्ध है। मुमताज शाहजहाँ के रोम-रोम में बसी है। चिर निद्रा में सोयी अपने भार्या के कब्र के समीप शाहजहाँ विलाप अलापता रहता है। उनकी प्रेमकथा को अमर करने का समाधि पर जलते दीप कर रहे हैं। इस अमर प्रेमकथा का प्रतीक 'ताजमहल' सारे संसार को इनके प्रीत की कहानी बताता है। मुमताज और शाहजहाँ मिट गए पर उनके अमर प्रेम की निशानी यमुना के तट पर आज भी संसार को उनके अस्तित्व की याद दिलाता है। महाकवि लिखते हैं-

"शहजहाँ मिट गया, किन्तु, / मिट सके न उसकी प्रीत अपार।

ताजमहल बन खड़ी हुई है, / उसकी मनोव्यथा साकार।" (हरिशंकर आदेश)

सारांश-

मनोव्यथा खंडकाव्य में मुमताज और शाहजहाँ की अमर प्रेमकथा का चित्रण है। पर इस प्रेम कथा में संयोग की वियोग की मात्रा अधिक दिखाई देती है। महाकवि कहते हैं- 'यदि संयोग है तो वियोग भी, मिलन विरह विधि का व्यापार।'

मानवी जीवन की क्षणभंगुरता और मानव का के रूप सौंदर्य और यौवन पर नाज करना तथा अस्मि संपत्ति के पीछे भागते आत्मिक सुख खो देना आदि विचार प्रस्तुत खंडकाव्य के माध्यम से महाकवि पाठकों के सामने रखते हैं। महाकवि हरिशंकर 'आदेश' मानवीय संवेदना के कवि है। उनके महाकाव्य, खंडकाव्य, या अन्य साहित्य कृति में मानव जीवन को केंद्र में रखा है। शाहजहाँ की संवेदना समस्त मानव जीव की संवेदना दिखाई देती है। और इस संवेदना को बड़ी ही गंभीर विचारों के साथ महाकवि ने पाठकों के सामने रखी है।

संदर्भ – ग्रन्थ

1. डॉ. गवली कल्पना (संपा.) हिंदी प्रवासी कथा साहित्य (भाग-2), माया प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2018. (अपनी बात से)
2. गोयनका कमल किशोर, हिंदी का प्रवासी साहित्य, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2017. पृ. 47.
3. रामशरण जोशी, राजीव रंजन, प्रकाश चंद्रयन, प्रशांत खत्री, भारतीय डायस्पोरा: विविध आयाम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014. पृ. 27.
4. डॉ. वंशी बलदेव, आधुनिक हिंदी कविता में विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002. पृ. 22.
5. डॉ. कलिका प्रसाद (संपा.) बृहत् हिंदी शब्दकोश, ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी : पुनर्मुद्रण, जून 2011 पृ. 1036.
6. डॉ. मानेयुवराज 'मनोव्यथा खंडकाव्य में व्यक्त विरह वेदना' (संपा.), डॉ. मोनिकादेवी, 'विभिन्न परिस्थितियों में झूझती नारी' माया प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2019.

आदिवासी नारी समाज की व्यथागाथा 'अल्मा कबुतरी'

डॉ.विठ्ठल शंकर नाईक
श्रीमती आकाताई रामगोंडा पाटील
कन्या महाविद्यालय, इचलकरंजी

प्रस्तावना:

भारतीय समाज व्यवस्था:

भारतीय समाज का एक घटक आदिवासी है। जिसे आदीपुत्र, बनवाी, जंगल के राजा, जंगल का निवासी, गिरीजन कहा जाता है। डॉ.रमणिका गुप्त ने भारत का मूल पहल निवासी आदिवासी को माना तो प्रभाकर मांडे ने वनों, जंगलों, पहाड़ों, घाटियों में रहनेवाली जनजाति को आदिवासी कहा है। आदिवासी पिछड़ा अप्रगत उपेक्षित है मगर अपनी परंपरा नारी सुरक्षा प्रकृति पूजा, सामुहिकता उसकी विशेषता है। आदिवासी साहित्य एक नई संकल्पना बनी है। बिहार, झारखंड, नागालैंड, उडिसा, महाराष्ट्र, उत्तराखंड में रहनेवाली ये लोग हैं। खानखदान, बांध, बिजली केंद्र के कारण जंगल नहीं रहे परिणामतः आदिवासी का विस्थापन होने लगा। उदारीकरण, नागरीकरण बाजारवाद का शिकार आदिवासी है।

हिंदी उपन्यास में राजेंद्र अवस्थी का 'जंगल के फूल', शानी का 'शालवनो का व्दीप' शिवप्रसाद का 'शैलूष', राकेश का 'जंगल के आसपास', गुरुदत्त का 'बनवासी', महाश्वेता का 'जंगल के दावेदार' सुरेशचंद्र का 'वन तरी' संजीव का 'जंगल जहाँ शुरू होता है', मैत्रेयी का 'अल्मा कबुतरी', श्री प्रकाश का 'ग्लोबल गॉव की देवता' आदि कई उपन्यास महत्वपूर्ण हैं जिसमें आदिवासी समाज का चित्रण किया है।

सवर्णोंद्वारा मानसिक शोषण :

सवर्ण समाज 'कबूतरा' जनजाति के साथ छुआछूत का व्यवहार करता है। इसकी भयंकर यातनाओं से पिछड़ी जातियों को गुजरना पड़ता है। स्कूल का मास्टर राणा को नल को हाथ लगाने नहीं देता, राणा को प्यासा रहना पड़ता है। मास्टर ने धमकी दी है कि अगर तू नल को छुएगा तो सिपाही आकर तुझे पकड़ लेंगे। मास्टर ने सुझाव दिया, प्यास लगे तो तालाब से पीकर आ। तालाब का पानी अत्यंत गंदा रहता है, राणा को मजबूर होकर वहाँ का पानी पीना पड़ता है। सवर्ण लोग आदिवासी जनजातियों को अछूत मानकर उनका शोषण करते हैं।

कबूतरा जनजाति घूमतू है। जंगलों में भटकते हुए जीवनयापन करते हैं। परिणामतः जहाँ पेट भर सकता है वहाँ डेरा डालते हैं। आज यहाँ तो कल कहीं हांगे उसका उन्हें पता नहीं है। परिणामतः इनके बच्चे शिक्षा से हरदम दूर रहे हैं गाँवों के पास खेती में डेरा डालकर रहनेवाले गूँतिया अपने बच्चे को स्कूल नहीं भेजते। इस उपन्यास की बालक राणा अपनी माँ को स्कूल में भेजने का अनुरोध करता है लेकिन उसकी माँ उसे परंपरागत व्यवसाय चोरी करना या शराब बनाकर बेचना सिखाने की कोशिश करती है। राणा पढ़ना चाहता है और माँ कदमबाई सोचती है, बच्चा बिगड़ गया। कबीले की परंपरा के अनुसार चोरी करने की कला सीखना आवश्यक होता है। कदमबाई निराश हुई। बेटे की जिद पूरी करने के लिए गाँव के स्कूल में दाखिला लिया लेकिन अंत में वह भी कबूरा बनकर रह गया।

कबूतरी जाति का मुख्य व्यवसाय चोरी करना है। पुरुष चोरियाँ करते हैं और स्त्रियाँ शराब बेचने का काम करती हैं। दोनों कार्य अवैध होने के कारण कानून से और पुलिस से बचने के लिए ये सभी लोग इकट्ठे हो जाते हैं उपन्यास में जंगलिया को चोरी के इल्जाम में पुलिस पकड़कर ले जाती है, तब कबीले का सरमन मुखिया आकर कदमबाई को हैसला और सुरक्षा देता है। उसके बेटे राणा को अपने साथ ले आकर चोरी करने की कला सिखाना चाहता है।

अत्यंत कठिनाइयों में जीवन जीने की मजबूरी के कारण इनके परिवार सवर्ण समाज से सर्वथा भिन्न है। इस जनजाति के परिकर्मा में आपसी घनिष्ठता दिखाई देती है। कानून, पुलिस तथा नभ्य समाज से बचने के लिए एकता का भाव इनमें दिखाई देता है।

सभ्य लोगों की अमानवीयता का शिकार:

कबूतरा जनजाति की नारियाँ मजबूरी से जीवन बिताते हुए दिखाई देती हैं। जैसे 'भरी कबूतरी' को लिया जा सकता है जो अपने बेटे रामसिंह को पढा लिखाकर बड़ा आदमी बनाने के लिए देह व्यापार करती है। इसजाति की स्त्रियों के साथ सभ्य लोग व्यभिचार के अतिरिक्त सोच ही नहीं सकते। इसलिए वह स्वेच्छा से वे व्यापार करती हैं जिसमें उसे ग्लानि या पश्चाताप नहीं है। तो केवल एक स्वप्न अपने पुत्र नरसिंह को शिक्षा देकर इस समाज के योग्य बनाना है। यह भूमी कबूतरी भले ही देह व्यापार करती हो, लेकिन अपना संबंध जोड़ती है रानी पद्मिनी और रामा, प्रताप से शिवाजी और झाँसी की राणी से।

दूसरी आत्मा की बात की जाए तो वह जिंदगी के अनेक धपेड़ों तथा कटु अनुभवों से गुजरकर हर स्थिति घटना को अपने संघर्ष की सीढ़ी बनाकर उस स्थान पर पहुँचती है वहाँ शायद ही कोई कबूतरी पहुँची हो। क्योंकि आत्मा जिस जीवन प्रक्रिया से गुजरती है वह काफी हद तक भयावह है। सुरजभान द्वारा उस पर जिस प्रकार से बलात्कार होता है, वह सचमुच अमानवीय है। यहाँ नहीं इसके बाद उसे कोठरी में बंद करता है, कई बार विवसत्र करता है। उसकी बॉह पर 'अल्मा कबूतरी' गोंद देता है ताकि कोई भी पुरुष हवस मिटाने के लिए उसपर झपट पड़े, दबोचने से संकोच न करे' यह वर्णन दिल दहला देता है। लेकिन उसके जीवन में शायद कुछ और ही लिखा था इसलिए जब नत्थू द्वारा उसे धोखे से श्रीराम शास्त्री के हाथों में बेचकर उसे उसी नकर में पहुँचा दिया जाता है, तो अल्मा उससे बदला लेने के लिए सबकुछ सहन करती है। उसके द्वारा दिया गया पत्नी का दर्जा अपनाती है। और मौका पाते ही उसे मौत के घाट उतारकर उसकी मृत्यु के पश्चात विधानसभा की सीट के लिए प्रत्याशी बनती है।

लैंगिक शोषण:

विवाहोत्तर, प्रेमसंबंध, व्यभिचार, शरीर विक्रय इस जनजाति में खुले रूप में दिखाई देता है। प्रश्न यह है कि कबूतरा या अन्य किसी जाति को बुरा कहनेवाले सभ्य वास्तव में कितने सभ्य है देह को पेट बनाकर जिनेवाले अपराधी है या उनकी असहायता का फायदा उठाने वाले अपराधी? यह प्रश्न विचार करने के लिए बाध्य करता है।

आदिवासी जातियों की स्त्री को शारीरिक शोषण सभी स्तर पर किया जाता है। अल्मा कबूतरी में भी सवर्ण समाज के पुरुष कबूतरी स्त्रियों को वासना की नजर से देखते हैं। पुलिस बस्ती पर हमला कर गर्भवती जमुनी की जाँघ में डंडा घुसाती है। यह नहीं देखते कि वह गर्भवती है। पुलिस जाने के बाद बस्ती के लोग मिलकर उसका अत्यंत संस्कार करते हैं। शारीरिक शोषण, अत्याचार का निरंतर बलि उन्हें चढाया जाता है। अल्मा श्रीराम शास्त्री के साथ संबंध रखने के लिए तैयार नहीं होती है। जवानी रहते हमने दस दस आदमियों को खुस रखा है। तू एक में मरी जा रही है, अरी मुख आदमी की खुसी ही हमारी जिंदगी' अल्मा को समझाकर वह श्रीराम शास्त्री के कमरे में उसे भेजती है। आदिवासी स्त्रियों पर सवर्णों ने हरदम बुरी निगाह रखी है। आदिवासी जनजातियों में बलात्कार जब होते हैं, न तो कोई स्त्री आत्महत्या करती है न ही मान लिया जाता है कि उसका सर्वस्व लूटा है। इसका मतलब यह नहीं है कि बलात्कार को वहाँ सामाजिक स्वीकृति है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में भूरी, कदमबाई और अल्मा, तीनों स्त्रियाँ अलग अलग परिस्थितियों में पुरुष के हवस का शिकार होते हुए भी जिंदगी से नाराज होकर आत्महत्या नहीं करती बल्कि बलात्कारित भूरी तथा कदमबाई पेट में पलनेवाले नाजायज संतान को जन्म देने का निश्चय करके कज्जा से प्रतिशोध लेने की ठान लेती है।

प्रतिशोध की भावना:

उपन्यास में वीरसिंह की पत्नी भूरीबाई एक ऐसी साहसी स्त्री है जो पति के साथ हुए अमानवीय अत्याचार का बदला लेना चाहती है। भूरी के प्रति वीरसिंह को न्याय मांगने के अपराध स्वरूप मौत की सजा दी जाती है। सब लोगों ने मिलकर वीरसिंह को जिंदा पटक पटक कर मारा, भूरी पति की मृत्यु से सकते में आ जाती है। वह अपने बेटे रामसिंह को पढ़ाने का निश्चय करती है और अपना शरीर दौव पर लगाती है। भूरी समझा रही थी 'बेटे का उजाले भरा रास्ता माँ की देह से गुजर रहा है' रामसिंह को हर कीमत चुकाकर अपराध की जिंदगी से दूर रखा। उसे पढा लिखाकर बाईज्जत जिंदगी देनी चाही। पर वीरसिंह की तरह रामसिंह भी सभ्यता के विषधर की शिकार बना। वह कबूतरा बनकर ही जीने को अभिशप्त हुआ।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास की दूसरी महत्वपूर्ण स्त्री है कदमबाई। कदमबाई के पति जंगलिया को धोखे से कज्जा संभ्रांत लोग मरवा डालते हैं। जब कदमबाई अपने पति का इंतजार कर रही होती है तो मंसाराम कज्जा छल से कदमबाई से शरीर संबंध करता है और परिणाम होता राणा का जन्म आमतौर पर कबूतरी कज्जा लोगों का पेट नहीं रखती, रूखरी खाकर खेत में बहा आती हैं, परंतु प्रतिशोध की आग में जल रही कदमबाई राणा को जन्म देने का ठानती है। वह कज्जा समाज से टकराती है और प्रतिशोध लेती है।

उपन्यास की नायिका अल्मा है जो कबूतरी जनजाति की है। परंतु उसके पिता रामसिंह ने उसे 'कबूतरा' जैसे बड़ा नहीं किया बल्कि अपनी बेटी अल्मा को पढाया लिखाया। रामसिंह ने अपराध की दुनिया को तिलांजलि देकर सभ्य जीवन जीना चाहा, वह पढ लिखकर मास्टर बना। कबूतरों को मुक्ति की राह दिखाते दिखाते एक दिन रामसिंह खुद पुलिस और डाकुओं के चक्रव्यूह में फँस गया और यातनाएँ भोगनी, पड़ीं अल्मा को जिसे तिप ने परियों की मीठी कहानी और 'सरफरोशी की तमन्ना' का गीत सुनाकर पाला वही अल्मा पिता की मृत्यु के पश्चात दुर्जन के यहाँ गिरवी रखी गई। दुर्जन से सुरजभान के हाथों बिकी। उसके हाथों नोची खसोटी जाकर अफसरों को परोसने के लिए तैयार की गई। धीरज की मदद से वहाँ से आजाद हुई तो सुरजभान के प्रतिद्वंद्वी श्रीराम शास्त्री के शरण में चणई गइ इस तरह अनेक नरपशुओं के हाथें बरबाद होती रही अल्मा पशुओं से भी बदतर जिंदगी जीने को बाध्य होती है, पर हार नहीं मानती। अपने प्रेमी राणा के साथ राजकमारी की तरह बिदा होने का सपना देखेवाली अल्मा हर कदम पर घायल होती रही और घर बसाने का उसका सपना अधूरा ही रह गया।

कबूतरी जनजाति सवर्ण जाति लोगों के भेदभावपूर्ण नीति का शिकार है। उन्हें अछूत मानकर मंदिर में प्रवेश नहीं मिलता उन्हें छुआ तक नहीं जाता। रोजी रोओ की फिक्र में भयंकर तनाव में कबूतरा जनजाति के लोग अपना जीवनयापन करते हैं। परिणामतः मर्द और स्त्रियों तथा बच्चों में नशाखोरी पाई जाती है। उपन्यास में जब राणा चोरी करने के लिए मना करता है तब मैं उसे शराब पिलाकर भेजना चाहती है। शराब पीना और बेचना कबूतरों में इज्जत का धंधा माना जाता है।

राजनीति को खिलौना :

शिक्षा, राजनीति से कोसोदूर ये जनजातियाँ आज राजनीति का भी खिलौना बन गई है। त्ता प्राप्ति के लिए नेता पिछड़ी जातियों से भी संबंध प्रस्थापित करते हैं। श्रीराम शास्त्री ने कबूतरा जनजाति की अल्मा के साथ राजनीतिक फायदा देखकर विवाह किया। चुनाव के समय अल्मा के जरिए वोट मिल कसते हैं। यह हिसाब उन्होंने किया। कबूतरा वोटों की संख्या पचास हजार है। अल्मा श्रीराम शास्त्री का सारा हिसाब चुकता करती है और बबीना विधानसभा की जो सीट खाली हुई है शास्त्री के मृत्यु के बाद उसके लिए प्रत्याशी के रूप में खड़ी होती है।

अल्मा के माध्यम से कबूतरा जनजाति का ताना बाना मैत्रेयी ने बुना है। उपन्यास की कथवस्तु के साथ भाषा शैली, मुहावरे, शब्द भांडार सभी पर मैत्रेयी का विलक्षण अधिकार हैं।

निष्कर्ष :

अतः आदिवासी जनजाति का जीवनयापन, उनपर होनेवाले अत्याचार, उनका सर्वर्णों द्वारा इस्तेमाल, शोषण देखकर पाठक अंतर्मुख द्वारा इस्तेमाल, शोषण देखकर पाठक अंतर्मुख होकर, विचार करने के लिए मजबूर होता है कि स्वतंत्रता के बाद भी आदिवासियों की यह स्थिति है अतः अल्मा कबूतरी उपन्यास लिखकर उनके प्रति होने वाले अन्याय को समाज के सामने लाने का साहसी प्रयास मैत्रेयी पुष्पा ने किया है। इस उपन्यास को 'इंडिया टुडे' के सर्वेक्षण में १९८६ से २००९ इन तेईस वर्षों में सर्व श्रेष्ठ रचना में के रूप में स्थान दिया है।

'अल्मा कबूतरी' आदिवासी जनजीवन पर लिखा श्रेष्ठतम उपन्यास है।

संदर्भ सूची :

- १ अल्मा कबूतरी - मैत्रेयी पुष्पा, पृ. क्र. ३६०
- २ अल्मा कबूतरी - मैत्रेयी पुष्पा, पृ. क्र. ७५
३. डॉ. रमणिका गुप्ता-आदिवासी कौन, -राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली. २००८, पृ. -०५



२१ वी सदी की हिंदी उपन्यासों में वर्णित किन्नर विमर्श

सहायक प्रा. रोहिता केतन राऊत
एस.ई.एम.ट्रस्ट, एम.बी.हॅरीस कॉलेज ऑफ आर्ट्स,
नालासोपारा (प.)

हमारा पूरा समाज दो स्तंभों पर खड़ा है - पुरुष और स्त्री। लेकिन हमारे समाज में उन पुरुष और स्त्री इन दो लिंगों के अलावा एक अन्य प्रजाति का अस्तित्व मौजूद है, जो न पुरुष है न स्त्री। वह न संबंध बना सकता है और न ही गर्भ धारण कर सकता है। विश्व के लगभग सभी समाजों में स्त्री और पुरुष दो लिंगों को ही सृष्टि का आधार स्तंभ माना जाता है। समाज के तृतीय लिंगी किस तरह समाज के विकास के केंद्र से हाशिये पर जीवनयापित करते हैं, समाज में हिजड़ा समुदाय की स्थिति अत्यंत दयनीय है। किन्नर हिंदी के दो शब्दों “ कि” और “नर” से मिलकर बना है। जिसका तात्पर्यहिमाचल कि किन्नर जनजाति से नहीं है बल्कि उस वर्ग से है जो पूर्ण रूपसे न स्त्री है और न पुरुष परंतु, वस्तुतः जिसे जनसामान्य की भाषा में ‘हिजड़ा’ कहा जाता है। किन्नरों के उद्भव व अतीत संबंधों में अनेक अन्तकथाएँ प्रचलित हैं। विदम्बना यह है कि हाशिये पर पड़े हिजड़ा समुदाय के लिए न तो आंदोलन होते हैं न साहित्य में विमर्श।

मानव जीवन का सार्थक व सुष्ठु चित्रण होने के कारण उपन्यास गद्य का सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। जो मेरे मन के अधिक निकट है। इसलिए प्रस्तुत शोधआलेख में हिंदी उपन्यासों में चित्रित ‘किन्नर विमर्श एक भावनिक संघर्ष’ को व्यक्त किया है। साहित्य में समय -समय पर कहानियों, नाटकों, एवं उपन्यासों में थर्ड जेंडर पात्र आते रहते हैं। जिनकी आजतक कोई सजग लेखनी उन्मुख नहीं हुई।

हिंदी साहित्य में वास्तव में सन २००९ में किन्नर विमर्श की शुरुवात नीरजा माधव जी का उपन्यास यपदीप से माना जा सकता है। इस उपन्यास में हिजड़ों के जीवन का रुबरु चित्रण प्राप्त होता है। ‘यपदीप’ उपन्यास का कथानक हिजड़ा नाजबीबी के इर्दगिर्द घूमता है। वह उस उपन्यास की नायिका है। जब ये उनका जन्म हुआ तब से लेकर घरवाले परेशान हैं क्योंकि बच्चा हिजड़ा है। फिर भी माँ उनसे बहुत प्यार करती है। वह पढाई में तेज थी। लेकिन आठवी कक्षा में पढने वक्त कुदरत की करिश्मा के कारण आगे वह पढ नहीं पायी क्योंकि उस समय उसमें स्त्रीयोजित शरिरांग के साथ दाढी और मुँछ भी आ गए। वह दिल से टूट गयी। समाज उसको देखकर हँसने लगा। समाज के भय से तंग आकर माँ-बाप हमेशा सोच रहे थे कि इसका क्या हरे? फिर उन्हें स्वयं इस बात का नतीजा हो गया कि यहाँ पड़े रहने से कोई फायदा नहीं, सिर्फ अपमान के सिवाय उसको अपने घर में कुछ नहीं मिलेगा। इसी विचार से वह हिजड़ों की दुनिया में हिजड़ों की बस्ती में चली गयी। पहले उसका नाम नंदरानी था। हिजड़ों की बस्ती में आ जाने के बाद उसका नाम नाजबीबी रखा गया।

इस उपन्यास में हिजड़ों के गुरु का नाम महताब गुरु है हिजड़े जो कुछ कमाते हैं उस का एक हिस्सा अपने गुरु को देते हैं। एक दिन नाजबीबी और उनके साथी शहर में शादी के लिए शगुन उतारने के लिए जाते हैं। उस वक्त नाजबीबी और उनके साथियों ने मिलकर प्रसव पीड़ा में तड़प रही पागल औरत की मदद की। प्रसुति के बाद वह पागल औरत मर जाती है। उस नन्हें बच्चे को अपनाने में वहाँ के लोग तैयार नहीं हुए। यह देखकर हिजड़े कहते हैं - “अरे हम हिजड़े हैं, हिजड़े इन्सान है क्या मुँह फेर ले.”

-१ इस तरह से लेखिका कहना चाहती है कि इन्सान से अधिक हमदर्दी हिजड़े रखते हैं। नाजबीबी और उसके साथी उस नन्हें बच्चे को अपनाते हैं और पाल-पोसकर बड़ा करते हैं। इस तरह की बच्ची का हिजड़ों के साथ रहना कानूनन अपराध है। अगर यह बात पुलिस जान गया तो स्वतः हो जाएगा पुलिस उन्हें जीने नहीं देंगे. नाजबीबी उस बेटी का पुरा खयाल रखती है। जब नाजबीबी उस बच्ची को भर्ती कराने के लिए स्कूल जाती है तो उन्हें देखकर अध्यापिका और छात्राएँ कानाफूँसी कर रहीं थी तब नाजबीबी उनसे

बिनती करती है कि "जब हम धंधे पर नहीं होते, बहनजी तो इस तरह का मजाक हमारे सीने में गोली की तरह लगता है। हम आसमान से तो नहीं टपकते हैं ना? आप की तरह किसी की माँ की कोख से जन्में हैं। हांड माँस का शरीर लिए हमें तो अपने आप दुख होता है। इस जीवन पर आप लोग भी दुःखी कर देते हैं"- २.

अपने घर से पराया हो जाना कितना दुःखदायक है। पीडा को भी नाजबीबी सहती है। एक बार हिजडे ने अपने परिवार से नाता तोड़ दिया तो दुबारा वह अपने घर के लिए मना था। घर से भागने के बाद नाजबीबी अर्थात् नंदरानी को अपने माँ बाप कि याद आती है। लेकिन मैया और भाभी के गुस्से के कारण वह घर नहीं जाती। फोन करके घर कि हालत पुछती थी। माँ के मृत्यु के समय नाज घर आयी तो भाभी ने उसे भगा दिया तथा श्चमशान घाट पहुँचनेपर उसका वहाँ आना मैया को पसंद नहीं था। मैया ने उसको ऐसे भगाया कि दुबारा रिश्ते के नाम यहाँ लेकर मत आने कि सलाह भी दिया। यह सुनकर पिता कहता है "भगवान ने इस के साथ अत्याचार किया है तु तो न कर." ३) पर नंदरानी रोती हुई कहती है। "मै कभी तुम्हारी जिदंगी मे दखल अंदाज नहीं कर दूँगी मैय्या। बस अब पापा ही बचे है उन्हे संभालकर रखना।"(४) इस तरह से हिजडे के रूप में जन्म लेने में उनका कोई भी कसूर न होते हुए भी सामाजिक तथा भावनिक पीडा से उन्हे गुजरना पड़ता है।

किन्नरों की पीडा की कुशल अभिव्यक्ति की अगली कडी में 'गुलाम मंडी' आता है। निर्मला भुराडिया ने जटिल विषय को अपने लेखन का केंद्र बनाकर गहनतम संवेदना के स्तर गुलामी के दंश को कुशलता से अभिव्यक्त किया है। इस एक ज्वलंत विषय के बहाने उन्होंने कोशिश की है कि इसके आसपास और साथ-साथ की जो विकराल समस्याएँ है उन्हे भी बानी दे। 'गुलाम मंडी'मे समाज के सर्वाधिक तिरस्कृत वर्ग किन्नर से लेकर जिस्म फरोशी और मानव तस्करी की भयावह दुनिया को भी उकेरा है। 'गुलाम मंडी' उपन्यास अपने नाम के अनुरूप मनुष्यता की 'गुलाम मंडी'लैटिन अमेरिका की दासप्रथा की याद दिलाता है। गुलाम मंडी उपन्यास का कथानक तीन महिला पात्रो कल्याणी, जानकी (जेन) और अंगुरी के बीच घूमना है। कल्याणी का बचपन से बुढापे की दहलीज तक खुद को सुंदर बनाए रखने के लिए चिकित्सा का सहारा लेती है। उपन्यास के केंद्र में दुसरी समस्या जानकी अर्थात् जेन के माध्यम से मानव तस्करी की उठायी है। आर्थिक रूप से कमजोर होना लक्ष्मी और जानकी के लिए आभिशाप बनता है। तीसरी केंद्रीय समस्या तीसरे जेंडर के अंतर्गत ट्रांसजेंटर और ट्रांस सेक्सुयल हिजडा, समुदाय से जुडी है। यह समुदाय समाज के तय शुदा स्वांचो में नहीं आता है, इसी कारण समाजद्वारा लंबे समय तक बहिष्कृत और उपेक्षित रहा। इस अभ्यास में अंगुरी के माध्यम से लेखिका इस समाज की समस्या को केंद्र में लाती है। सत्ता चाहें पुंजी को या पितृसत्ता की वह अपने स्वार्थ के लिए जीती है। उपयोग और उपयोगिता की तर्ज पर जिसने एक पुरे समुदाय को ही मुखधारा से अलग कर दिया है। अंगुरी का व्यक्तित्व समाज की इसी उपेक्षा को सामने लाता है और मनुष्यता के तकाजे पर मनुष्य होने के अधिकार की मांग करता है। उपन्यास के अंश में कल्याणी द्वारा अंगुरी के गुरू के कौवा पालने पर, कल्याणी के मन में उठे प्रश्नों का जबाब देने हुए कल्याणी है-"हमारी जात के तो थे ही है। हमारे संगे वाले। तुम लोग उनको दूर दुराते हो, हम मोहब्बत से पालते है।" इस पर कल्याणी का कहना था कि श्राद्ध के दिनों में तो हम भी कौवो को खीर-पूरी खिलाते है। इस प्रकार अंगुरी अपने समाज के सच के जरिए अपनी तुलना कव्ये से करते हुए कहती है-"श्राद्ध के दिनों में ही न स्वास्थ रहना है न तुम्हारा आडे दिन में जो कही कव्वा आकर बैठ जाए न तुम पर, तो नहाओगी - धोओगी अपशकुन मनाओगी । जैसे ना तुम्हारे जो तो शादी ब्याह हो तो नाचेगी गाएगी, शकुन पाएगी, मगर यु जो रास्ते में आ पडी ना हम, तो हिजडा कहकर धिक्कारोगी।"-७. इसप्रकार अंगुरी के शब्द केवल उसके नहीं बल्कि पुरे समुदाय को पीडा को बचा करती है।

प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली' उपन्यास में वे उस 'तीसरी ताली'की बात करते है जिसे समाज में मान्यता नहीं मिली है। इसमें तमाम सच उभरकर सामने आये है। यह कहानी गौतम साहब और आनंदी आंटी की है जिनके घर बच्चा होने पर आये किन्नरों को दरवाजा नहीं खोलते है, इस डर से कि कही वे

उनके बच्चे को उठकर न जे जाए। बच्चा होने पर खुशी के स्थान पर शोक मनाया जाता है। ऐसे बच्चे के पैदा होने का केवल अंत आत्महत्या के रूप में परिणीती किन्नर जीवन का एक और सच उपन्यास के माध्यम से हमारे सामने आता है। आर्थिक विषमता के चलते किन्नरों को भीख मांगनी पड़ती है। "मैं मर्द रहूँ, औरत रहूँ या फिर हिजड़ा बन जाऊँ इससे किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता, पेट को आग तो न जाने बड़े-बड़ों को क्या क्या बना देती है।"-८. इस प्रकार यह उस दुनिया की कहानी है जिसे न तो जीने का अधिकार है और न ही समय समाज में रहने का।

चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं.२०३ नालासोपारा' समाज से बहिष्कृत और तिरस्कृत किन्नरों की जिंदगी के विविध पहलुओं को उकेरने की एक कोशिश है। मुंबई की रक्तवाहिनी लोकल इन के वेस्टर्न उपनगर का लगभग आखिरी स्टेशन है 'नालासोपारा'। उपन्यास का नायक विनोद उर्फ बिन्नी अपनी माँ को पोस्ट बॉक्स के पते पर चिट्ठियाँ लिखता है। वह अपनी प्राणों से प्रिय माँ के बीच संवाद के लिए चिट्ठियाँ क्यों? ये दूरियाँ समाज ने बनायी हैं, जिसे ना चाहते हुए भी बा और बिन्नी मजबूर हैं। विनोद हिजड़ा है लेकिन उसकी परिवर्तिता एक आम बच्चे की तरह होती है। बा का लाडला बेहद होशियार उसे लेकर माँ के सपने हैं, सपने तो विनोद के भी हैं पर सब बिखर जाते हैं, टूट जाता है परिवार विनोद अपना परिवार छोड़कर हिजड़ों के बीच रहने को मजबूर हो जाता है, वह बिन्नी जरूर बनता है, पर अपने मूल्यों से किसी तरह से कोई समझौता नहीं करता। अपने जीवन के उतार चढ़ाव की पल-पल जानकारी माँ को चिट्ठियों के माध्यम से देता है। माँ का जबाब जब आता है। उससे भी वह जुझना है। एक अधुरेपन और कशमकश में होने के बावजूद उसका संकल्प है कुछ बनने का, अपनी बिरादरी लोगों को समाज में इज्जत दिलाने का। विनोद की जिंदगी बदलते - बदलते रह जाती है। वह पूरी नहीं हो पाती बिन्नी के साथ साथ कही हम भी टूटने हैं और हार हमारी भी होती है। इस तरह चित्रा मुद्गल ने बा और बिन्नी की मर्मस्पर्शी रिश्ता बहुत संजीदगी से पेश किया है।

किन्नरकथा चमदीप, तीसरी ताली, गुलाम मंडी, पोस्ट बॉक्स नं. २०३, नालासोपारा इन उपन्यासों एक किन्नर होने का दर्द क्या होता है? उस नरकीय जीवन में व्याप्त घृणा, अपमान, घुटन और इससे बाहर निकलने की बैचेनी क्या होती है इसका सफल चित्रण किया गया है। इन सबसे मुक्ति की कामना करता यह समाज आज अपने सम्मान और अधिकारों की मांग के लिए अपनी झोली फैलाए खड़ा है। जिसे हमारे समर्थन की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में और भी उपन्यासों के आने की दरकार हमें है जिससे किन्नरों के वास्तविक जीवन को हम पहचान पाएँ, ताकि उनके दुःख दर्द, उनकी पीड़ा को समझकर हम उनके अधिकारों तथा सम्मान हेतु समुचित प्रयास कर सकें। यही इस आलेख का उद्देश्य भी है।

संदर्भ

१. चमदीप - नीरजा माधव, सुनील साहित्य सदन, प्रकाशन नई दिल्ली, (२००९) पृष्ठ क्र.१२
२. वही, पृष्ठ क्र. ५०
३. वही, पृष्ठ क्र. १४
४. वही, पृष्ठ क्र. १४
५. गुलाम मंडी- निर्मला भुराडीया, साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली, (२०१६) पृष्ठ क्र.६९
६. वही, पृष्ठ क्र. ७१
७. तीसरी ताली- प्रदीप सौरभ, , वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, (२०११) पृष्ठ क्र.३९
८. पोस्ट बॉक्स नं. २०३, नालासोपारा, लेखिका - चित्रा मुद्गल
९. हिजडे कि व्यथा- सपना मांगलिक, hindi.webduniya.com

किन्नर विमर्श

प्रा.डॉ.सौ. शकंतुला प्रताप वाघ

अध्यक्ष

हिंदी विभाग प्रमुख

कला, वाणिज्य व विज्ञान

महाविद्यालय पलूस

धरती पर स्त्री और पुरुष की तरह किन्नर एक जाती है। ऐसा माना जाता है कि ग्रह दशाओं के कारण भी किन्नरों के जन्म के कारण माने जाते हैं। २१ वीं सदी में मेडिकल सायन्स अपनी अलग राय रखता है। सभ्य समाज में किन्नरों को कोई महत्व का स्थान नहीं है। वर्तमान समय में इसे थर्ड जेंडर के नाम से पहचाना जाता है। किन्नर सृष्टी के अविभाज्य घटक है।

किन्नर ये स्वर्ग के गायक या गाने बजाने का पेशा करनेवाली एक जाती मानी जाती है। जैसे गंधर्व है वैसे ही किन्नर गाने का काम करते हैं। प्राचीन काल में किन्नर प्रदेश का उल्लेख होता है। किन्नर हिमालय के क्षेत्रों में बसनेवाली एक मनुष्य जाती का नाम माना जाता है। जिसके प्रधान केंद्र हिमवत् और हेमकूट माने जाते हैं। वाल्मिकि रामायण में भी किन्नरों का उल्लेख हुआ है। राजा इला को मिला महादेव का शाप है कि वह स्त्री बनकर रहेगा तो राजा महादेव से बिनती करता है, तो महादेव कहते हैं, क पुरुष बनने के सिवाय कोई भी माँगो देवी पार्वती उन्हें वरदान देती है, तो राजा इला एक महिना पुरुष और एक महिना स्त्री बनना मान्य करता है।

ऐसी मान्यता है, कि कैलाश किन्नरों का प्रधान निवास स्थान है। वहाँ वे महादेव की सेवा करते हैं। किन्नर यक्षों और गंधर्वों की तरह नृत्य और गायन में प्रविण होते हैं। उनके सैकड़ों गण होते हैं, और चित्ररथ उनका प्रधान अधिपति माना जाता है। किन्नर बुध ग्रह के प्रतिक माने जाते हैं। उनका आशिर्वाद शुभ माना जाता है। किसी के घर में नया मेहमान आने की उन्हें खबर मिलती है, तो वे वहाँ जाकर दुर्वा, देते हैं। उनकी हम कोई सहायता करते हैं, तो भी वे दुर्वा देते हैं। उनकी दुर्वा शुभ मानी जाती है।

महाभारत के शांति पर्व में भीम ने किन्नरों के बारे में कहा है, किन्नर बहुत सदाचारी होते हैं। महाभारत काल में अर्जुन ने उलूपी नामक एक नागकन्या से विवाह किया था। उलूपी और अर्जुन का पुत्र इरावत है। महाभारत का युद्ध शुरू हुआ तब विजय प्राप्ति के लिए पांडवों ने महाकाली की पुजा की तो उस पुजा के लिए किसी युवराज की बलि देना अनिवार्य था। कोई राजकुमार सामने आने के लिए तैयार नहीं हुआ तो इरावत बलि जाने के लिए तैयार हुआ। इरावत ने एक शर्त रखी कि वह अविवाहित बड़ी नहीं जायेगा। एक दिन के लिए वह शादी करना चाहता है। सभी के सामने एक नयी समस्या निर्माण हो गयी। कृष्ण ने मोहिनी रूप लेकर इरावत से एक दिन के लिए शादी की। दूसरे दिन इरावत की बलि दी गयी तो मोहिनी ने विधवा का विलाप किया। वधु का शृंगार उतार दिया।

वर्तमान समय में भी आज तमिलनाडू के कुवगाव में तमिला नये साल के प्रथम पौर्णिमा के दिन किन्नर शादी करते हैं। १८ दिन कि रस्में होती हैं १७ वे दिन शादी होती है। १८ वे दिन वधु विधवा होती है। एक रात के लिए वे शादी करते हैं। दूसरे दिन इरावत की मूर्ति को गाँव में घुमाकर तोड़ दिया जाता है। वधु किन्नर एक विधवा की तरह विलाप करता है।

भारतीय संविधान में उन्हें किन्नौरा और किन्नर से संबोधित किया है। वर्तमान समय में शिक्षा और राजनीति में किन्नरों का प्रवेश हुआ है। आनंद की बात है कि कई किन्नर विधायक बन चुके हैं। कई महिला किन्नर डॉक्टर बन चुकी हैं, अध्यापक बन चुकी हैं। परिवर्तन सृष्टी का नियम है, रायपुर जिले के छग गाँव में १५ किन्नरों की शादी हो गयी है। यह १५ दुल्हे कोई डॉक्टर हैं, तो कोई इंजिनियर हैं। पढ़े लिखे लोगों में परिवर्तन आ रहा है।

किन्नर अपने देवता अर्जुन को मानते हैं। अर्जुन महादेव के भक्त थे। इसी कारण किन्नरों के ईश्वर भी महादेव ही मानने चाहिए। वर्तमान समय में किन्नरों पर कई फिल्में बनी हैं। आशा करते हैं कि उनका उन्हें अधिकार मिले।

मधु कांकरिया की कहानी में भूमंडलिकरण
(लोड शेंडिंग के संदर्भ में)

प्रा.डॉ. बी.एस बलवंत
हिंदी विभागप्रमुख
दहिवडी कॉलेज दहिवडी
ता. माण .जि. सातारा

मधु कांकरिया हिंदी साहित्य की प्रसिद्ध कहानीकार, उपन्यासकार, यात्रा साहित्यकार हैं। उनकी रचनाओं में सामाजिक संवेदना और रोजमरा जिंदगी की समस्याओं का चित्रण मिलता है। अब तक नौ कहानी संग्रह और सात उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। इसके अलावा लेखिका की रचनाओं में सामाजिक, राजनीतिक, किसान जीवन, साहित्यिक विसंगति, संस्कृति, महानगर की घुटन, युवाओं की समस्याएँ, नारी व्यथा का बेबाक चित्रण, भूमंडलिकरण के कारण मानवी जीवन पर हुआ असर आदि को लेखिका ने साहित्य के केंद्र में रखा है। मधु कांकरिया ने हिंदी साहित्य के लिए जो योगदान दिया है, इसके लिए अलग-अलग संस्थाओं की ओर से अबतक जैसे कथाक्रम सम्मान 2008, हेमचंद्र स्मृति साहित्य सम्मान 2009, शिव कुमार मिश्र स्मृति सम्मान आदि पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

मधु कांकरिया लिखित ' चिडिया ऐसी मरती है' सन 2011 में प्रकाशित कहानीसंग्रह है। प्रस्तुत कहानी संग्रह में कुल मिलाकर 12 कहानियाँ संग्रहीत हैं। सभी कहानियों में विविधता है, और विविध समस्याओं का चित्रण भी मिलता है। 'चिडिया ऐसी मरती है' इस कहानी संग्रह की अंतिम कहानी है, — जिस कहानी का नाम है — "लोड शेंडिंग" प्रस्तुत कहानी मानव जीवन में आए चढ़ाव — उतार का अंकन करना कहानी का विषय है। संकलित कहानी संग्रह का नाम ' चिडिया ऐसी मरती है' कहानी संग्रह के बारे में लेखिका का मानना है। जैसे आज हम एक ऐसे कठिन समय में जी रहे हैं, जहाँ कोमलता, सुंदरता, और संवेदनशीलता को बचाये रखना कितना कठिन लेकिन लाजिमी है, मधु कांकरिया का नया कहानी संग्रह इस बात का सबसे अलग उदाहरण है। चिडिया कोमल होती है, पशु- पक्षी, प्रकृति की सुंदरता और मनुष्य के कोमल भावों पर आज चारों तरफ से खतरा मंडरा रहा है। सत्ता, पूँजी, बाजार, विचारधारा, और राष्ट्र, राज्य में दमन व उत्पीड़न से हर दिन ये नष्ट हो रहे हैं। मधु कांकरिया इन सबको बचाना चाहती हैं, ताकि इसके द्वारा मनुष्य और सभ्यता बचेगी।

आज के युग में मानवी विचारधारा में बड़ा बदलाव आया है। आज विचारधारा राजनीतिक के सहारे मनुष्य सत्ता हथियाना चाहता है। प्रस्तुत कहानी में कहानी लेखिका राजनीतिक स्टैंड के साथ सामने आती हैं, और अपने विचारों से व्यवस्था में हस्तक्षेप करना चाहती हैं। अपने अनुभव के आधार पर समाज में स्थित प्रेम, सत्ता, राष्ट्र, धर्म और अन्य क्षेत्रों में व्याप्त रूढ़ियों अंधविश्वास आदि को पहचानती हैं। वह सत्ता, व्यवस्था, समाज और संबंधों की संवेदनशीलता को बचाये रखने का आग्रह करती हैं।

प्रस्तुत कहानी संग्रह की कहानियाँ स्त्री सशक्तीकरण के संदर्भ में समाज का दृष्टिकोण बदलना चाहती हैं। वह पितृसत्ताक समाज और धर्म से मुक्ति चाहती हैं, ऐसा नहीं तो शरीर से भी मुक्ति असंभव है। धर्म और दकियानूसी विचारों से स्त्री को मुक्ति मिलेगी तब कही जाकर कल्पना के विचारों को वास्तव में अपने हक का बयान करने का मौका मिलेगा इसीलिए मधु कांकरिया की कहानी वास्तव स्थिति पर प्रकाश डालती है।

' लोड शेंडिंग' कहानी की कथा शेयर बाजार से संबंधित है, जिसमें साधारण तौर पर लाखों, करोड़ों शेयर खरीदे और बेंचे जाते हैं। स्टॉक एक्सचेंज की हॉट लाईन पूरे बाजार की, चेतना कानों में

समेटती हैं। ऐसे बाजार में सब की आँखों का नूर बना और जबरदस्त फटाकेबाज सवा पाँच फुट का लडकीनूमा लडका, उम्र, 28 साल का युवा योगेश हैं। मार्केट में उसका आना आँधी तुफान जैसा है। कोरिया के उद्योगपति किम वी चूंग को अपना गुरु मानता है। 'श्रम और बुद्धि से रोजी रोटी कमानेवालों का शेयर मार्केट नहीं है। मिनटों में लाखों कमाने और मिनटों में लाखों गँवानेवालों का है।' पृष्ठ 163 शेयर मार्केट की तेजी योगेश को भावविभोर कर देती है। स्टॉक एक्सचेंज का मार्केट बंद हो जाने के बाद भी भीतर का मार्केट चलता रहता है। जिसमें कई घंटों से इंतजार करने वाली, पत्नी का पति के साथ सिनेमा देखने का सपना टूट जाता है। मार्केट के चढ़ाव – उतार के कारण ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है। ऐसे में योगेश की स्थिति गरम इस्त्री जैसी होती है। इसके विपरीत योगेश के पिताजी का स्वभाव था। घाटे में भी दिमाग फ्रिज में रखे दही की तरह ठंडा – शांत। इस तेजी मंदी के खेल में पत्नी बच्चे, मित्र, साहित्य, संगीत के लिए कोई स्थान नहीं है। जैसे – 'यह स्टॉक एक्सचेंज किसी के बाप का नहीं', यहाँ बाप भी मरा पड़ा हो, तो भी पहले चेक भिजवाना पड़ता है। पृष्ठ 166

'लोड शेंडिंग' कहानी में योगेश के दोस्त राजीव और शुभाशिश की स्थिति अलग नहीं है। वह कम्प्यूटर ऑपरेटर हैं, कलकत्ता में नौकरी करता है। बिहार के राँची शहर में पला बढ़ा है। बढ़ती मंहगाई के कारण और घटती आमदानी के कारण वह मजबूर है। शादी के तुरंत नौ दिनों के बाद पत्नी से दूर आया है। पत्नी एक छोर पर और वह दूसरी छोर पर वह विरह की आग में जलता है।

दूसरी ओर कलकत्ता शहर में लोड शेंडिंग के कारण कई समस्याओं सामना करना पड़ता है। कभी जनरेटर दगा देता है। तो दूसरी ओर मोमबत्ती की रोशनी में काम कैसे करे?

टॉर्च की रोशनी से आँख के कोने मिचमिचाने लगते हैं। इस प्रकार की विलक्षण अनुभूति में कोई भी साथ नहीं है। जीवन में उसने कभी पत्नी, माँ, बहन, को फुरसत से देखा नहीं। संक्षेप में प्रस्तुत 'लोड शेंडिंग' कहानी भूमंडलीकरण के कारण मानवी जीवन में हुए परिवर्तन की ओर कहानी लेखिका समाज का ध्यान खिंचना चाहती है। अर्थात् 21 वीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में विविध विमर्श का अहसास होता है। यह कहानी हमें सोचने के लिए विवश करती है।

संदर्भ सूची –

1. लोड शेंडिंग – मधु कांकरिया
2. चिड़िया ऐसी मरती है – मधु कांकरिया
3. बादलों में बारूद – मधु कांकरिया
4. प्रतिनिधि कहानियाँ – मधु कांकरिया

संजीव जी के फांस उपन्यास में किसान और आदिवासी चेतना

गणेश दुंदा गभाले
आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज
नागठाणे

संजीव जी ग्रामीण भारत के कथाकार है। उनका ग्रामीण साहित्य नवचेतना निर्माण करता है। साहित्य समाज सच्चा रूप दिखाता है इसी कारण उनके हर शब्द से प्रामाणिकता की तस्वीर बनती है। साहित्य मानवी जीवन का लेखा*जोखा प्रस्तुत करता है। हिंदी साहित्य किसान और आदिवासीयों की नई पहचान बना रहा है। समाज मनुष्य का केंद्रबिंदु है। जहां मानव सभ्यता का विकास होता है। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही स्वार्थवश शोषकों का निर्माण हुआ। भारतवर्ष में धर्म, अंधविश्वास एवं अशिक्षा का फायदा लेकर शोषकों ने किसान, दलित और आदिवासी जनजमातीओं पर अन्याय अत्याचार किये है। भारत देश की विशेषता है कि सभी धर्म, जनजाति * जमातीयों एकसुत्र में बंधे हुए है। आज के समय में भी उनपर अन्याय हो रहा है। उनका दमन हो रहा है। वे अपने अधिकारों से वंचित है। उनके मूलभूत अधिकारों को उच्चवर्गद्वारा छिना जाता है। जिसके कारण आदिवासियों को कई समस्याओं का पीडाओं का सामना करना पड़ता है। वे अपने आदिम विश्वासों, कुप्रथाओं, पुराने रीतिरिवाजों, अशिक्षा, दुर्गम भुखंडों, वनांचलों में रहने आदि के कारण सामाजिक और आर्थिक रूप से अविकसित है। फिर भी किसानों ने कठिन परिश्रम से प्रकृति से जुझने की ताकद पैदा की है।

इक्कीसवीं शताब्दी में किसानों और आदिवासीयों के जीवन की वास्तविकता, यथार्थता एवं अंतर्विरोधों का उपन्यासों में चित्रण हो रहा है।

'फांस' के निर्भीड उपन्यासकार संजीव जी ने किसानों और आदिवासीयों के जीवन का यथार्थ उजागर किया है। स्वातंत्र्योत्तर कालीन किसानों और मजदूरों की समस्याओं का फांस उपन्यास में सच्चा अंकन किया है। इसमें सामाजिक राजनीतिक आर्थिक स्थिति भी लक्षित है। देशभर में लगभग पिछले दो दशकों से बढ़ रही किसानों की आत्महत्याओं के प्रश्नों को उठाया है। यह उपन्यास महाराष्ट्र के यवतमाल जिले के बनगांव का चित्रण किया है। इसमें आंध्र प्रदेश और कर्नाटक के किसानों सहित भारत के उन सभी किसानों की कहानियाँ शामिल हैं जो जीएम बीजों का इस्तेमाल करते हैं। इन बीजों को लेने के लिए किसानों को फुसलाया जाता है और उन्हें कर्जा लेने के लिए मजबूर किया जाता है। जब प्रकृति साथ नहीं देती और फसल खराब होती है तो मानों किसान फांस की ओर अपने आप खिंचे चले जाते हैं। इस उपन्यास से ज्ञात होता है कि सचमुच ही किसान और आदिवासी समाज का यथार्थ यह उपन्यास बता रहा है।

उपन्यास की शुरुआत में ही समाज की विकृत प्रवृत्ति सामने आती है जो दबे कुचले निर्धन परिवारों की लड़कियों पर कई प्रकार के बंधन लगाते हैं। प्रेमचंद जी के बाद संजीव जी ने किसानवर्ग का बहुत ही संवेदनशील मुद्दा उठाया है। प्रस्तुत उपन्यास में एक छोटी लड़की सांस्कृतिक कार्यक्रम के बाद अपनी सहेली मंजुला के साथ उसके गांव क्या गई तुफान आ गया मानो बहुत बड़ा अनर्थ हो गया बला साथ आ गई। लड़कियां शिक्षित होने पर गांव के बड़े लोग कहते हैं- 'और पढाओं इन मुलुगियों को जैसे बैरिस्टर बनेगी',⁹

इस प्रकार गांव के लोगों के दबाव में आकर उसके पिता ने उसे पाठशाला जाने से मना कर दिया। आज भी ऐसे कई गांव देहाती इलाके हैं जिनमें लड़कियों को पढ़ाना गलत मानते हैं। लड़का लड़कियों का तो भेदभाव जोरों पर है।

संजीव जी के कथा साहित्य में ग्रामीण भारत की सच्ची तस्वीर दिखाई देती है। जैसे कि किसान के लिए गाय, बकरी सब परिवार के सदस्य होते हैं। गाय बेचने की जब नौबत आती है तो परिवारजनों से विरोध होता है। जब लालू बैल कीचड़ में फँसता है तो प्रेमचंद जी के दो बैलों की कथा कहानी की याद आती है।

उपन्यास में आदिवासीयों की त्रासदी का चित्रण करते हुए संजीव जी ने विकास के नाम पर छीनी जानेवाली जमीनों के प्रश्नों को उजागर किया है। आदिवासीयों की यह विडंबना है कि वे जिस जंगल में रहते हैं उस जंगल के पेड़ों के पत्तों को तोड़ने का अधिकार भी उन्हें नहीं है। स्थानिय बड़े लोग और सरकार की मिलीभगत के कारण आदिवासीयों पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार किये जाते हैं। आदिवासीयों को प्रताड़ित करने का ज्वलंत उदाहरण फांस उपन्यास में दृष्टिगोचर होता है। कुछ सरकारी अधिकारी गलत काम करते हैं तो गांव की औरते उन्हें पीटती हैं जब उनपर मुकदमा चलता है तो पेशी हो पर उनको समझाया जाता है कि-

'आप लोगों को मालूम नहीं कि बिना परमीशन के आप जंगल के किसी पेड़ को छू भी नहीं सकते न बांस न बल्ली।'^२

जब फैसला सुनाया जाता है तो भीड़ में से नीडर आदिवासी जवाब देते हैं कि 'और जो सुअर भालू बंदर खाते हैं, परमीशन लेते हैं?...'

इस बात पर क्रोधित होकर सरकारी कर्मचारी उल्टे देहाती को ही डाँटता है कि-' बहस मत करो, सरकारी कर्मचारी गुराया।'^३

जब सरकारी कर्मचारी देहाती लड़कियों के आबरु पर हात डालते हैं इस बात से समझदार ग्रामीण परेशान होकर कहता है- 'और हम आपके सिपाही को अपनी मुलगीयों के साथ मनमर्जी करने देते वो ठीक था? मुलगी ने मुंह नोंच लिया तो गलत हो गया?'^४

किसान वर्ग अपने लड़कियों हुए अन्याय के खिलाफ आवाज उठाता है और विद्रोह करता है। इस उपन्यास में सुनिल काका ऐसा पात्र है जो ग्रामीण लोगों का ढाँढस बांधता है। उन्हें कर्जे से मुक्ति दिलाने का प्रयास करता है-

'खबरदार जो किसी ने कर्ज लिया खबरदार जो किसीने आत्महत्या की तरफ कदम बढ़ाएं। कोई भी खुद ब खुद यमराज के पास नहीं जाएगा।'^५

किसान मोहन बाघमारे जब कर्जा लेने के लिए अधिकारी के पास जाता है तो वे देखते हैं कि अधिकारी बहुत ही गंदी तरीके से वह गरीब किसान के साथ वार्तालाप कर रहा है। उसके वार्तालाप से पाठक का मन पसीज जाता है। उसे कर्जा न मिलने पर एक बैल की जगह स्वयं हल चलाता है। बैंको में जो प्राथमिक सुविधा है उनके लिए आसानी से कर्जा नहीं मिलता और जो अय्याशी की चींजे होती हैं उन्हें आसानी से कर्जा मिल जाता है।

अशिक्षित लोगों को पंडित निरंजन देवगिरी प्रायश्चित सुनाते हैं और अनपढ़ गवार किसान मान भी लेते हैं। जैसे- 'प्रायश्चित का एक ही उपाय है, बैल के गले कर फंदा गले में डालकर भिक्षापात्र लेकर भीख मांगनी पड़ेगी। शुद्धि तक न घर में घुस सकते हैं न मनुष्य की बोली बोल सकते हैं।'^६

लेखक ने फिजूल क्रियाकलाप, कर्मकांडों पर अपनी पैनी दृष्टि से प्रहार किया है।

शकुन अंधविश्वास और किसानों की भाग्यवादी सोच पर हँसता हुआ कहता है कि -'पत्तलो में नहीं खा रहे ? या की जमीन पर सो रहे? लेकिन कोई भी तपस्या आज तक फलवती हुई क्या?'^७

अशिक्षित, आदिवासी, गरीब और गवारों पर अंधविश्वास हमेशा से हावी रहता है। सरकार के अविवेकपूर्ण विकास मॉडल के कारण देश के किसानों को तबाह किया है। यह उपन्यास मानो जीवंत उदाहरण है। यह

उपन्यास किसान और आदिवासी जीवन पर केंद्रित दिखाई देता है। आज के समय में हमारा देश सबका पेट भरने की बात करता है किंतु आजतक किसानों की आत्महत्याएं रोक पाने में असमर्थ है।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में आदिवासी, देहाती और किसानों का जीवन का यथार्थ अंकन किया है।

निष्कर्ष :

फांस उपन्यास में आदिवासीयों और किसानों की त्रासदी का सच्चा चित्र दर्शाया है। आज के समय में आदिवासीयों और किसानों के विकास की नितान्त आवश्यकता है। कई सालों से दबे कुचले लोगों को उनके अधिकार मिलने चाहिए। आदिवासी क्षेत्रों में विकास एवं सुधार हेतु बहुत कम योजनाएं आती हैं जिसके दस प्रतिशत भी काम नहीं होता। परिणामतः आर्थिक स्तर गिरता जा रहा। सरकारी विकास योजनाओं का लाभ उन्हें मिल नहीं पाता। परिणाम स्वरूप किसान, आदिवासी निर्धनता, बेकारी, अंधविश्वास, कुप्रथा, कुरीतियां आदी समस्याओं से जूझ रहा है। उनकी जीवन शैली को सुधारने के लिए सरकार द्वारा नई लाभदायी योजनाओं का निर्माण कर उसे निस्वार्थ भाव से शुरू करना जीवनस्तर उँचा करने के लिए भारत सरकार द्वारा सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से मदद जरूरी है तब जाकर मूल आदिवासी एवं गांव के लोगों का विकास होगा। आदिवासी अंचल के खनन, दोहन और उसके प्रतिरोध में उठती आदिवासी चेतना को प्रस्तुत किया है। आदिवासी अंचल के खजाने लुट सेठ साहुकार्य पूँजीपति एवं सरकार करती है। आदिवासी क्षेत्रों में उत्खनन, जमीन के सौदे आदि के कारण विषवृक्ष का अंकुर फुट रहा है। जो आज पूरे देश के आदिवासीयों के अस्तित्व के लिए विकराल दानव बन चुका है। विकास के नाम पर दलालों ने किसानों आदिवासीयों को खोकला कर दिया है। संजीव जीने मोहन बाघमारे और सुनिल काका के माध्यम से आदिवासीयों और किसानों के शोषण की समस्याओं को उजागर किया है।

संदर्भ सूचि :

१. फांस ¹ संजीव ' वाणी प्रकाशन दिल्ली २०१५ पृष्ठ ०३
२. फांस ¹ संजीव ' वाणी प्रकाशन दिल्ली २०१५ पृष्ठ २६
३. फांस ¹ संजीव ' वाणी प्रकाशन दिल्ली २०१५ पृष्ठ २७
४. फांस ¹ संजीव ' वाणी प्रकाशन दिल्ली २०१५ पृष्ठ २७
५. फांस ¹ संजीव ' वाणी प्रकाशन दिल्ली २०१५ पृष्ठ ५७
६. फांस ¹ संजीव ' वाणी प्रकाशन दिल्ली २०१५ पृष्ठ ५७
७. फांस ¹ संजीव ' वाणी प्रकाशन दिल्ली २०१५ पृष्ठ २५
८. अपनी माटी त्रैमासिक ई पत्रिका २०१७

हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श

श्री. सूर्यकांत विश्वनाथ आमलपुरे

सहाय्यक प्राध्यापक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष

डॉ.श्री.नानासाहेब धर्माधिकारी महाविद्यालय

गोवे कोलाड ता.रोहा जिला.रायगड

महाराष्ट्र पिन.४०२३०४

मुंबई विश्वविद्यालय संलग्न

आदिवासी अत्यंत पिछड़े हुए, दलित शोषित, नगर से दूर, जंगल, समुद्रतट, द्वीप, मरुस्थल आदि में अर्धनग्न अविकसित अज्ञानी अवस्था में जीवन यापन करने वाले समुदाय होता है। उनको आदिवासी वनवासी गिरीजन जनजाती वन्यजाती आदिमजाति आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। इस समुदाय की अपनी एक संस्कृति है जो भारत की सांस्कृतिक पहचान का रहस्य है। भारत में कुल ५३३ अनुसूचित जनजातियाँ हैं। भारत की जनसंख्या में लगभग १० प्रतिशत आबादी आदिवासीयों की है। इनकी अपनी एक अलग पहचान है जो उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं की विशेषताओं पर आधारित है। प्रकृति का साथी बनकर जीना उनकी शैली और स्वभाव रहा है। वे प्रकृतिसे संवाद करते हैं उससे प्रकोप को सहते हैं परंतु कभी उसे कब्जे में लाने की कोशिश नहीं करते हैं। प्रकृति ही उनके देवता है, बिना किसी कर्मकांड के माध्यमसे ये ईश्वर से सीधे जुड़ जाते हैं।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में भारत में भी आधुनिक विकास की प्रक्रिया बड़ी तेजी से शुरू हो रही है। आदिवासी भी इसी कारण अपने जीवन की लय मूल्यों और परंपराओं के साथ भारतीय समाज का अविभाज्य हिस्सा बने हुए हैं। परंतु बड़े खेद और दुःख से कहना पड़ रहा है कि आज के आधुनिक भारत में आदिवासियों का स्थान कहीं पर भी नहीं है। प्राथमिक शिक्षा से उच्चशिक्षा तक आँकड़े अहुत कम हैं। विकास की आंधी दौड़ में भी वे दुनियाभर से सबसे पीछे हैं। मूल आदिवासी तो आज भी जंगलों में अपने पेट की आग बुझाने के लिए पहाड़ों जंगलों में दर-दर की ठोकरें खा रहा है। आदिवासी विमर्श में आदिवासियों के संदर्भ में विचार निम्न लिखित आवश्यक हैं-

१. आदिवासी की समस्या को पहचान कर सुधार लाना है।

२. सरकार एवं गैर सरकारी संगठनों द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में जो काम हो रहा है दनसे आया परिवर्तन अपेक्षित है।

३. आदिवासी की जीवन पद्धत उनकी समूहनिती विवाद, उत्सव, त्यौहार, कला, लोकसाहित्य आदि का विचार करना जरूरी है।

४. आदिवासी तथा आम जीवन में साझा संस्कृति लाना होगा।

५. आदिवासी के सिर्फ समस्याओं का चित्रण न कर उनके समस्या का समाधान करना चाहिए।

आदिवासी विमर्श की समर्थक **रमनिका गुप्ता** का कहना है- “इस चेतन के साथ ही लोग साहित्य की समृद्ध परंपरा को स्रोत बनाते हुए आदिवासीयों ने समकालीन साहित्य की शुरूवात की पॉच हजार वर्षों का विषद इतिहास है उनके पास लोकगीतों, लोककथाओं, पर्वों, त्योहारों के गीतों और अनुष्ठानों की महान परंपरा है, जिस में उनकी ही नहीं बल्कि पृथ्वी का इतिहास भी छिपा है। वे अब खोज रहे हैं अपना इतिहास”-१

१. जंगल जहाँ शुरू होता है में आदिवासी विमर्श

समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर संजीव कृत जंगल जहाँ शुरू होता है यह उपन्यास २००० में लिखा गया है। संजीव स्वयं विभिन्न पीढ़ियों से गुजरे थे इस लिए उनके साहित्य में आदिवासीयों के दुःख दर्द और समस्याओं को अपने उपन्यास साहित्य में स्थान देना और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना उनका मुख्य उद्देश्य रहा है।

संजीव ने अपने उपन्यास में वर्जित क्षेत्र को चुना है जो मिनी चंबल के नाम से जाना जानेवाला पश्चिमी पंचारण है जहाँ अपराध पलता है। यह थारू आदिवासी जनजाति पर केंद्रित उपन्यास है। थारू का संबंध थार से है, पर्यावरण के बिगड़ने से थार का रेगिस्तान फैलता गया होगा। गढवाल से लेकर असम के खासी जनजातियों तक इसी थारू जाति का फैलाव है। उनके गुरु ओझा है, उनके देवता और मंदिर है रह सो गांरो और सोमेश्वर आदि इस उपन्यास की प्रमुख समस्या है डाकू उत्तरी भाग में पड़ोसी देश नेपाल जंगल पहाड़ मीलों फैले गन्ने के खेत नारायणी नदी के तिलस्मी कछार हमारी पुलिस एक जगह इनका पीछा करती है तो ये वे सरककर दूसरी जगह चले जाते हैं। उन डाकूओं को इलाकेका चप्पा चप्पा पता है मगर पुलिस को कुछ पता नहीं है। अच्छे अफसर ऐसे इलाके में अपनी पोस्टिंग नहीं करना चाहते। क्यों कि बाघ, भालु, जंगली भैसे और अजगरों से जंगल भरा है। इसके कारण थारू आदिवासी बिसराम की दुर्दशा इन पंक्तियों में दिखाई देती है- “जंगलों में बेंत हैं हाथ में हुनर है झूड़ी खोंची तो बना ही सकता है वह लेकिन उ कौन देगा ? बेंत का ठेकेदार एक जल्लद..... कहों से ले आए धूस-पति के लिए ”-२

इससे स्पष्ट है कि थारू अवासी बिसराम अर्थिक अभाव में कुछ नहीं कर सकता इस कारण वह दयनीय जिंदगी जो रहा है। पुलिस और डाकूओं द्वारा अत्याचार से पीड़ित थारू जाति का जीवन मौत के भय में बितता है। वे गाँव छोड़कर भाग जाते हैं। मलारी पुलिस के डर से गाँव छोड़कर भटकती फिरती है। जब वह काली से मिलती है। तब पुलिस के खौफ से कुई थारूओं की हालत बयान करती है- “समसें गाँव उजड़ गया। हम सब जान लेके भागे फिर रहे हैं। रोज-रोज का अत्याचार जुलुम।”-३

इस उपन्यास में कुमार ही नहीं पुलिस के और भी अधिकारी ऐसे हैं जो प्रमोशन की लालच में ऑपरेशन ब्लॉक पाइथन से अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं। झूठे एनकाउंटर किए जाते हैं। गाँव के गाँव उजाड़ दिए जाते हैं। पुलिस का अत्याचार बढ़ गया है डाकूओं के नाम पर किसी भी गरीब की बली चढ़ाने में नहीं हिचकती पुलिस इस प्रकार इस उपन्यास में कुमार के माध्यम से संजीव ने काली की व्याथा को उदघटित करना चाहता है। उद्देश्य तो यह है कि डाकू समस्या को मिटाना है। सभी ओर से शोषण के जाल में फँसे आवाग्रस्तता प्रकट की है।

२. ग्लोबल गाँव के देवता में आदिवासी विमर्श

समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य के सरानण हस्ताक्षर रणेंद्रजी कृत ग्लोबल गाँव के देवता इस उपन्यास का प्रकाशन २००६ में हुआ। यह उपन्यास मुख्य रूप से असूर जाति की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। उपन्यास का आरंभ बरवे जिला कोकट प्रदेश कोयल बीद्या का भौरापाट में पीटीजी गर्ल्स रेसिडेंसियल स्कूल अर्थात् प्रिमिटव ड्राइव आदिम जनजाति परिवार की लछकियों के लिए अवासिच विद्यालय में विज्ञान अध्यापन के रूप में कथा का नायक है। लेखक बड़ी होशियारी से कथा का विकास ऐसा करते हैं कि पाठक उस में डूब जाता है। रूमझून ने असुरों की जानकारी देते हुए कहा हम असूर लोग मोटा-मोटी तीन भाग में बँट रहे हैं। बीर असूर अगरिया असूर और बिरनिया असूर बीर बहादूर के सेंस में नहीं आया बल्कि जंगल के अर्थ में आया हैं लेकिन प्रचीन असरिया बेबीलोन सभ्यता में असूर का अर्थ बलवान पुरुष हाना ही होता है। अपने यहाँ सायनाचार्य असुरों के बलवान प्रज्ञावान रात्रुओं का नाश करनेवाला और प्राणदाता पुकारते हैं।.... अगरिया में साम्य भी है। अंगीरा ऋषिभा अपने को आग से उत्पन्न बताता है जिन्होंने ने सबसे पहले आग की खोज की थी।..... ग्रीक कथाओं में भी प्रमथू स्वर्ग से आग चुराकर लाता है तो उसे सजा देते हैं। सिंगबोया- सूर्य देवता द्वारा असुरों को सजा देने की कथा प्रचलित है।”- ४

आदिवासीयों के जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई है विस्थापन की यह विस्थापन अलग-अलग कारणोंसे दिखाई देता है। पाभरवट के स्कूल के लिए असुरों का विस्थापन और अभयारण्य का निर्माण करने हेतु विस्थापन आदि अभयारण्य की घेराबंदी करने का काम वेंदाग कंपनी को सौंपा गया है। गाँववालों ने संघर्ष समिति बनाई। संघर्ष समिति ने गाँवों में पुलिस प्रशासन का आना जाना बंद कर दिया रूम झुम ने प्रधानमंत्री के नाम जो चिट्ठी लिखी है। वह आदिवासियों की जिंदगी का लोखालोखा था, ग्लोबल गाँव के देवता आकाश मार्ग से विचरण करनेवाले वे लोग हैं जो बहुराष्ट्रीय कंपनिया को चलते हैं। कंपनियों की एक नीति है।- अधिक से अधिक मुनाफा कमाना लाभ के छोटे से

हिस्से को भी कभी गोंववालोंपर खर्च नहीं किया न पीने के पानी की व्यावस्था न हॉस्पिटल न सेरेबल मलेरिया से होनेवाली मृत्यु की गिनती भी नहीं। जब गोंव के लोग इकठ्ठे होकर अपनी मोंगों को रखते हैं तो थोड़े देर लीपा- पोती को जाती फिर पुराने ढर्रे पर काम चलने लगता है। अवैध खनन भी करते हैं, संघर्ष समिति ने बहुत बार इसका विरोध किया था इस प्रकार इस उपन्यास की साम्राज्यवादी ताकतों के सामने जो भी आता है उसको रौंदने की कोशिश की गई है। शिक्षा औरते धर्म कंपनी जमीन और मजदूर इन पर हमलबोलकर आदिवासियों का नामोनिशान मिटा देना यहीं ग्लोबल बॉव के देवताओं का लक्ष्य है। यही प्रमुख समस्या है भ्रष्ट अधिकारी द्वारा अदिवासी का शोषण।

३. आल्मा कबूतरी में आदिवासी विमर्श

समकालिन हिंदी की महिला साहित्य कारोंने मैत्रेयी पुष्पाजी का नाम सबसे आगे आते हैं। २१ वी सदी का यह उपन्यास आल्मा कबूतरी आदिवासी जनजाती की समस्या को चित्रण करता है। लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास में आदिवासी नारी की हैसियत का ज्वलंत दहकता हुआ खड़ा सवाल तथाकथित सुधरी हुई जाति से उठाया है। चोरी चकारी करना इन लोगों का पेट पालने का एकमात्र साधन है। स्वयं लेखिका कहती है- “ हमारे लिए वे ऐसे छापामार गुरिल्ले हैं जो हमारी असावधानियों की दरारों से झपट्टा मारकर वापस अपनी दुनिया में जा छिपते हैं। कबूतरा पुरुष या तो जंबल में रहता है या जेल में स्त्रियों शराब की भट्टियों पर या हमारे बिस्तरों पर।”-५

प्रस्तुत उपन्यास में कदमबाई का चरित्र का उद्देश्य केवल कबूतरा जाति की स्थिति एवं परिवेश को चित्रित करना रहा है। पुलिस की और से उन पर किए जा रहे अत्याचार उनका शोषण समाज का धिक्कार उनकी घृणा आदि के प्रति कलम उठाया है। कदमबाई कज्जा लोगों का हमेशा विरोध करती है। आगे चलकर वह आल्मा के रूप में प्रवेश कर आदिवासी नारी जीवन की यंत्रणाओं शोषकों के सामने असंतोष खोल उठाने की कोशिश करती है। पुलिस के अमानवीय अत्याचार सहने वाले राम सिंह अपनी नन्ही बेटी आल्मा को प्रतिशोध लेने के लिए तैयार करता है। आल्मा के जन्म के वक्त पिता राम सिंह करते हैं- “अंकुआ फूटने से पहले बीज को मसल दिया जाए किस्सा खत्म। राम सिंह बदवास सा हँसा भी आजादी सबका जन्मसिद्ध अधिकार है हा हा। अपने लिए भी समझ बैठा था। आज जिंदगी का डर छिपा नहीं छीप रहा।”-६

निष्कर्ष रूप से इस उपन्यास में आल्मा का विधायक के रूप में प्रत्यासी बनना उसके सपनों का ही नतीजा है। वह कबूतरा समाज समय के साथ बदल गया है, कुल्हाड़ी एवं डंडो की जगह पिस्तौल एवं बंदुकों ने ली है। कहना आवश्यक नहीं कि आल्मा कबूतरी उपन्यास में आधुनिक आदिवासी विमर्श पहल की गई है।

४. सॉप और सीढी में आदिवासी विमर्श

आधुनिक हिंदी साहित्य के संवेदनशील कथाकार के रूप में शानी का नाम महत्वपूर्ण है। शानी लिखित उपन्यास सॉप और सीढी में मध्यप्रदेश के बस्तर जिले के एक सीमावर्ती गाँव कस्तूरी के आदिवासी जीवन का चित्रांकन किया है। शानी का पूरा नाम गुलशेर खॉ शानी हैं। उनके संबंध में डॉ. अनिल सिंह का कथन है-“ इन्होंने सामाजिक समस्याओं को अपनी विषयवस्तु तो बनाया है मगर बीच-बीच में राजनीतिक समस्याओं को छोट देना भी भूले नहीं है। समाज एवं राजनीति का परस्पर घनिष्ठ संबंध है।”-७

प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य पात्र है धान मों जिसका नाम चम्पा था लेकिन धान बेचने के कारण वह धान मों के नाम से चर्चित होगई। हायवे पर चाय की दूकान है। इस के कारण शहरी वातावरण की बुराईयों धीरे धीरे गाँव में अपनी जड़े जमा लेती है इस के कारण गाँव के परिवर्तन में बदलाव आता है वह बदलाव ठीक नहीं मानती वह कहती है- “अब यह गाँव रहने लायक नहीं रहा। ऐसे ओछे लोग वहाँ बसते हैं और ऐसी छोटी छोटी बातें होती रहती हैं। कि किसी भी भले आदमी का गुजारा वहाँ मुश्किल है।”-८

इस उपन्यास में अनैतिक संबंधों का चित्रण भी है। आर्थिक अभाव के कारण आदिवासी मजदूरों में मजदूरों को लेकर संघर्ष उत्पन्न होता है। सरकारी योजनाओं से आदिवासियों के जीवन में परिवर्तन अवश्य आता है लेकिन उनके जीवन मूल्यों के जीवन में परिवर्तन इवश्य आता है। विधवा स्त्री की दूरदशा का भी चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।

दलसाय फूलोआता के घर में घूस जाता है। तब फूलोआता अपने विधवा होने का शोक व्यक्त करते हुए रोने लगती है हल्बा आदिवासी समाज के संबंध में पी.आर. नायडूजी का कहते हैं- “बस्तरके हल्बाओं के संबंध में एक उल्लेखनिय बात यह है कि ये किसी एक ही सुसंबद्ध भू भाग में बसे हुए नहीं है वरणावे जिले के अनेक भागों में यत्र-तत्र बिखरे हुए है। इन भागों की दूरी कहीं कहीं सैकड़ों मिल है, इसका एक कारण यह है कि एक सैनिक जाति होने के कारण हल्बा लोगों को अपने स्वामियों के साथ यहाँ जाना पडा, जहाँ-जहाँ उनके स्वामियों ने अपने गढ़ कोट अथवा जमींदारी निभाई वहाँ बस गए।”-६

इस प्रकार हम कह सकते है कि सॉप और सीढी उपन्यास में औद्योगिक विकास से उत्पन्न आदिवासी की समस्याएँ जिस में स्त्री,पुरुषों की समस्याएँ भी प्रस्तुत है।

५. जंगल के फूल में आदिवासी विमर्श

प्रस्तुत उपन्यास के लेखक राजेंद्र अवस्थीजीने बस्तर के गोंड जनजाती के आदिवासी के जीवन का सूक्ष्मता से निरीक्षण करने का प्रयास किया है। बस्तर के घोटूल-जीवन की संस्कृति, रीति-रिवाज और उनके जीवन का समग्र चित्रण किया है। आदिवासी का मानना है कि जीवन की हर समस्या का हल देवता की उपासना उनके मन में देवताओं के कोप का भय है,इस लिए प्रार्थना करते हैसारा गाँव सुखी रहे याकोई गाँव में बिमारी न आए। जैसे- “गोंड सिरहा ने देवता का नाम लेकर नारियल फोडा उस पर लांदा(शराब) चढाई मंत्र द्वारा वह सूअर में चेतना जगाने लगा सूअर मंत्र के प्रभाव से झूम उठा चावल के दानों को समेटने के लिए जैसे ही उसने मुँह खोला सुलकसाए ने उसकी पूँछ काटली। पूँछ के कट ते ही नारायण देव की आत्मा सूअर पर उतर आई।”-१०

भूत-प्रेत इस का सबसे बड़ा कारण है अज्ञान इस जाति में शिक्षा के प्रति उदासीनता अधिक पाई जाती है। घोटूल संस्कृति का भी वर्णन किया है। घोटूल कच्ची मिटटी की फूस की झोपडी होती है। बीच में खासा खुला मैदान चारों ओर परछी की दीवारों पर कई चित्र होते है। घोटूल के सारे सदस्य अपनी मर्जी से लगन के साथ रहते है। बनाये गये चित्र उनके जिंदगी का इतिहास दर्शाता है। लडकियों बालों में पडिया (कंधी) खोंसती है।स्त्री -पुरुष समानता दिखाईदेती है स्त्रीको भी पुरुषों के समान अधिकार दिया गया है। इस प्रकार उपन्यास में आदिवासी के स्त्री पुरुषों की दशा का चित्रण किया है।

निष्कर्ष:-

उपर्युक्त विवेचन के अनुरूप हम निष्कर्ष रूप से कहते है कि आदिवासी विमर्श के अंतर्गत विविध उपन्यासों में चित्रण आलग-आलग समस्याओं का निराकरण कर आम समाज की तरह उनका विकास करना है और सांझा संस्कृति लाना यही विमर्श का अर्थ है। वर्तमान परिप्रेक्ष में आदिवासी जीवन की यह भयावहता को दूर करना हमारा कर्तव्य है। आदिवासीयों के उपेक्षित जीवन को अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई है इस सच्चाई को स्वीकार करना होगा।

यह कहना सही होगा कि हिंदी साहित्य के माध्यम से हो रही आदिवासी विमर्श की पहल ने निश्चित ही व्यावस्था एवं समाज को विभिन्न पहलुओं पर सोचने के लिए बाध्य किया है। हिंदी लेखकों ने अपने साहित्यिक दायित्व का परिचय आवश्य दिया है। इस बात को टाला नहीं जा सकता अंत में कहना चाहता हूँ कि आदिवासीयों में शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार तथा राजनितिक साजिशों एवं कूटनीतियों को तिलाजलि देने पर ही उनका भविष्य उज्ज्वल रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. आदिवासी साहित्य यात्रा- रामणिका गुप्ता संपादकीय पृ.०७
२. जंगल जहाँ शुरू होता है- संजीव पृ.२३
३. वही- पृ.२०१
४. ग्लोबल गाँव के देवता- रणेंद्र पृ.१८
५. आत्मा कबूतरी- मैत्रेयी पुष्पा पृ.४०

६. वही- पृ.७८
७. कथाकार शानी- अनिल सिंह पृ.२६
८. सोंप और सीढी- शानी पृ.१३६
९. भारत के आदिवासी- पी.आर.नायडू पृ.१०६
१०. जंगल के फूल- राजेंद्र अवस्थी पृ.२८



भूमंडलीकरण के आयाम एवं हिंदी कविता

प्रा. अजयकुमार कृष्णा कांबळे

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, कोवाड,
तहसील-चंदगड, जि. कोल्हापूर महाराष्ट्र

वैश्वीकरण पूँजीवादी देशों की विश्वविजय का ऐलान है। इसने दुनिया के देशों के अमीर एवं गरीब ऐसे दो विभाग बनाये हैं। वैसे देखा जाए तो 'उदारीकरण' नामक सुंदर शब्द में बाँधा हुआ बाजारवाद ही है। जो तय करता है कि विश्व के गरीब लोगों के अस्तित्व को ही मिटाया जाए उनके आत्मसम्मान एवं विविधता को नष्ट किया जाए। पूँजीवादी प्रवृत्ति के रूपों में से यह सबसे घातक रूप है। वैश्वीकरण के इस दौर में प्रतिस्पर्धा इतनी तीव्र हो गई है कि इस होड़ से बच पाना नामुमकीन है। जिससे लेखकों की मौलिकता पर तीव्र आघात हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप लेखन में भी व्यक्तिवाद, असामाजिक तत्त्व, आदि दिखाई दे रहे हैं।

बाजार की प्रवृत्ति ने आज प्रतिभासंपन्न व्यक्ति की प्रतिभा को भुनाने का प्रयास किया है। अपने ज्ञान एवं प्रतिभा का उपयोग लेखक केवल पैसा पाने के लिए कर रहे हैं। साहित्य की गुणात्मकता देखने के बजाय उसकी मार्केटींग पर अधिक बल इस दौर में दिया जा रहा है। भूमंडलीकरण के दौर में मसाला सामग्री को लेकर रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं। किसानों पर गहरा असर किया है। बहुराष्ट्रीय उद्योगों के छलावे में जमीन को किसानों से छीनने का रवैया आज बढ गया है। जिसके किसान आत्महत्या उतारु हो गए हैं। छोटे छोटे देसी उद्योग, विशाल मॉल्स, बड़ी-बड़ी इमारतें बनती जा रही हैं तथा किसान अपनी ही जमीन से कट रहे हैं।

भूमंडलीकरण के इस दौर में साझा संस्कृति का बड़ा प्रचलन बन गया है। जहाँ एक ओर संपन्न देश हैं तथा दूसरी ओर गरीब देश हैं इसके परिणामस्वरूप संपन्न देशों की संस्कृति गरीब देशों की संस्कृति पर हावी होकर उनकी संस्कृति को समाप्त कर अपनी संस्कृति स्वीकारने के लिए उन्हें विवश कर रही है। भूमंडलीकरण ने विश्व के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, वैचारिक, तथा व्यवहारिक इन सभी पहलुओं को प्रकाशित कर दिया है। भूमंडलीकरण के इस दौर के पश्चात हिंदी कविता में कुछ अलग प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, जो निम्नप्रकार से हैं।

9) पर्यावरण पर गहरा असर :

वैश्वीकरण के पश्चात वनों, जंगलों की कटाई करके लोगों ने अपने सिमेंट के जंगल बढाने शुरू किये। प्राणी-पंछियों की दुनिया को उजाड़कर अपनी दुनिया मनुष्य बसाने लगे जिसके परिणामस्वरूप पेड़ों की कटाई बडीर मात्रा में होने लगी तथा ग्लोबल वार्मिंग का सामना करना पड रहा है। नदी, नालों को मिटाकर मनुष्य अपना आशियाना बनाने लगा है जिससे पर्यावरण पर गंभीर असर होकर वह असंतुलित हो रहा है। चंद्रकांत देवताले नं अपनी कविता 'कैसा पानी कैसी दवा' में कहा है-

“साँस लेने के लिए भी जगह होगी या नहीं

खिडकी से क्या पता

कब दिखने बंद हो जाएँ हरी पत्तियों के गुच्छे।”¹

आगे देवताले जी कहते हैं -

“गाँव में बडा हुआ

गाँव खेत-मैदान का सगा था

पर अब किसतरह रंग बदल रही है दुनिया

मैं कारखाने में फँसी आवाजों के बिस्तर पर

नहीं मरूँगा।”²

स्पष्ट होता है कि पर्यावरण का असंतुलन ऐसे ही बढता रहा तो हरे पत्ते तक मनुष्य देख नहीं पाएगा तथा सिमेंट के जंगलों में उसके प्राण चले जाएंगे। यह सब भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप होता रहा दृष्टव्य है।

२) मानवीय संबंधों में तनाव :

भूमंडलीकरण के चलते पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन प्रभावित हुआ है। परिवार के सदस्य एवं मित्रों का विश्वास टूटने लगा है। शहरों में बसे लोगों की संकुचित मानसिकता के फलस्वरूप मानवीय संबंधों में तनाव दिखाई देने लगता है। कवि सुशांत सुप्रिय 'इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं' कविता में कहते हैं-

‘हमें बचाओ, हम त्रस्त हैं-

डरे हुए लोग छटपटा रहे हैं

किंतू दूसरी ओर केवल एक

रिकॉर्डेड आवाज उपलब्ध हैं-

‘इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं।’^३

लीलाधर मंडलोई 'हत्यारे उतर चुके हैं क्षीरसागर में -कविता में कहते हैं-

“मैं रोज सोता था सुकून की नींद। और अब जागता हूँ जैसे नींद में।

भयावह सपनों में डूबी हैं रातें। मैं हत्यारों को देखता हूँ सपनों में।

उनके चेहरे अमूर्त हैं। बस उनका परिचितों सा लगता है।”^४

मानवीय जीवन में चैन सुकून आदि बातें दुर्लभ हो गई हैं हर पल एक प्रकार की बेचैनी, चिंता एवं तणाव का एहसास लेकर, आत्मीयता रहित जीवन जीने के लिए हम अभिशप्त बन चुके हैं। यह भूमंडलीकरण का ही परिणाम दृष्टव्य है।

३) सामाजिक असंगतियों से भरा जीवन :

भूमंडलीकरण की चपेट में आकर धनवान और अधिक धनवान होते रहे हैं तथा गरीब अधिक गरीब होते रहे हैं। शोषण एवं उपेक्षा के नए तंत्र विकसित करके सामान्य जनजीवन को विसंगतियों से भर दिया है। कवि निशांत अपनी कविता 'ग्लोबल वार्मिंग' में कहते हैं-

“जहाँ एक पेड़ होना चाहिए,

वहाँ एक हीरो-होंडा है।

जहाँ एक हिरो-होंडा होना चाहिए,

वहाँ एक 'सूअर का बच्चा' है।

जहाँ एक सूअर को होना चाहिए

वहाँ एक विशाल लंबा और महान आदमी है।”^५

सुधा अरोड़ा अपनी 'शतरंज के मोहरे' कविता में कहती हैं-

“उन सारे महापुरुषों को

अपने ठेंगे पर रखती

एक विजेता की मुस्कान के साथ

सड़क के दोनों किनारों पर

फेंकती चलती है वह औरत यह एहसास करवाए बिना

कि वे फेंके जा रहे हैं।”^६

अर्था मनुष्य प्रकृति एवं प्राणी इनके स्थान सुरक्षित न रहकर उनपर हर बार अतिक्रमण होता दिखाई देता है। तथा महापुरुषों की कोई अहंमति आज भूमंडलीकरण के युग में नहीं है यही स्पष्ट होता है।

रविरंजन कुमार अपने आलेख 'भूमंडलीकरण और कविता' में लिखते हैं, “भूमंडलीकरण जिस मुक्त बाजार प्रणाली की वकालत करता है वह पहले के बाजार से बिल्कुल भिन्न है क्योंकि इसने समाज के अभिजात्य और उच्च मध्य वर्ग को भी लाभ पहुँचाने का काम किया है। जो कि भारत की कुल आबादी का बीस प्रतिशत ही है, बाकी का अस्सी प्रतिशत अब भी अभावग्रस्त और भूखा है। विंडबना यह है कि एक और अमीर और अमीर होता जा रहा है। तो गरीब और अधिक गरीब। यह स्थिति किसी भी देश के लिए बेहद चिंताजनक है।”^७ (रामकालीन भारतीय साहित्य- प्रभाकर (दे. मासिक) साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, अंक १५६,, पृष्ठ २१८, जुलाई अगस्त-२०११ भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप अमीर अधिक अमीर एवं गरीब और गरीब बनता जा रहा है किसी भी देश के लिए ऐसी स्थिति चिंतनीय होती है।

४) विज्ञापन संस्कृति का प्रभाव :

उत्पादक अपने माल की अधिकाधिक बिक्री करने के उद्देश्य से विज्ञापन का प्रयोग करता रहा है। समाचारपत्रों, टेलिविजन पर विज्ञापन प्रदर्शित करने का प्रचलन बढ़ गया है। दस बीस सेकंड के विज्ञापन के लिए पाँच-दस लाख रूपए उत्पादक देता है तथा वस्तु की दरें बढ़ाकर वह रूपया वसूलता है ऐसी विज्ञापन संस्कृति इस दौर का प्रमुख अंग बन गयी है।

लीलाधर जगूडी अपनी कविता 'उसकी खुशी' में कहते हैं -

“फिर भी वह उदास का उदास ही रहा
तो वे भेस बदलकर आए और कहने लगे
तुम्हारी खुशी फलाँ ब्लेड की तेज धार में छिपी है
अगर तुम उसे आज ही खरदी लो।”^८

रामदरश मिश्र अपनी 'विश्वग्राम' कविता में कहते हैं -

“बच्चे ने आकार टी. वी. चालू कर दिया
सामने बाजार का रंगीन मायाजाल फैल गया
तभी दरवाजे पर खटखटाहट हुई
देखा कोई सेल्समैन था
वह किसी कंपनी के उन नए सामानों को
मेरे घर पर लादने की जिद था
जिनकी कोई जरूरत नहीं थी।”^९

भूमंडलीकरण के दौर में उत्पादन ग्राहकों के माथे मारने की हरदम कोशिश की है। ग्राहकों की इच्छा हो अथवा न हो उन्हें वस्तु की आवश्यकता न होने के बावजूद सेल्समैन द्वारा लेने के लिए मजबूर किया जाता है।

५) किसानों की बदतर स्थिति :

नई अर्थव्यवस्था के शिकंजे में फँसने के बाद परंपरागत व्यवसाय अर्थात् खेती करनेवाले किसानों पर बड़ा आर्थिक संकट मँडराया। प्राकृतिक आपदाओं ने किसानों की कमर तोड़ दी। इसके परिणामस्वरूप कर्ज बढ़ने लगा तथा किसानों की आत्महत्याएँ बढ़ने लगी ऐसी त्रासदी किसानों की होने लगी। दिनेशकुमार शुक्ल अपनी कविता 'आगमन' में कहते हैं-

“धन धरती ही नहीं
तुम्हारा मर्म तुम्हारे सपने भी वे छीनेंगे इस बार,
वे तुम सबके रक्त पीने और औसुओं
का बदलेंगे रंग
तुम्हारी दृष्टि तुम्हारा स्वाद
तुम्हारी खाल
तुम्हारी चाल-ढाल का भी बदलेंगे ढंग,
बीजों के अंकुरण और जीवों के गर्भाकान
नियंत्रित होंगे उनके कानूनों से।”^{१०}

चंद्रकांत देवताले अपनी कविता 'कैसा पानी कैसी हवा' में कहते हैं-

“हरी पत्तियों के गुच्छे नहीं होंगे
तो मैं कैसे मरूँगा
मैं घर में पैदा हुआ
घर पेड़ का सगा था।”^{११}

भूमंडलीकरण का सीधा असर भारतीय किसानों पर हुआ है। उनकी दुनिया ही इसमें उलट-पुलट कर दी गयी है। यहाँ तक कि बीजों के अंकुरण में भी बदलाव आया है। तथा किसानों का जीना भी कानून के दायरे में बदल कर दिया गया है। आगे चलकर हराभरा जीवन किसानों को देखने के लिए नहीं मिलेगा।

नतिनी पंडित कहती है, “जंगल, जमीनें एवं खनिज संपत्ति किसी भी देश की संपत्ति मानी जाती है। इन प्राकृतिक साधनों का कुछ बड़ी-डी कंपनियाँ केंद्रीकरण कर रही हैं। इसके विरुद्ध छोटे किसान, नारीयाँ, दलित एवं आदिवासी इन उत्पादक साधनों से वंचित हो रहे हैं।”⁹²

६) मॉल संस्कृति :

विश्व के सभी देश एवं भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बाजार मुक्त हो गया है इसी कारण छोटे-छोटे घरेलू देती व्यवसाय धराशायी हो गए हैं। विकास केवल चमकता हुआ लेकिन खोखला दिखाई देता है। नए बाजार के रूप में क्या नहीं तो सबकुछ मिलता है, वह भी एअरकंडिशनड मॉल में जिससे लोगों की आँखें चमक रही हैं तथा सामान्य लोग भी इसकी चकाचौंध की चपेट में आ गए हैं। जया जादवानी अपनी कविता ‘बाजार’ में कहती है-

कैसे जान जाते हैं वे

हमारी जरूरतें

कहे बिना हमारे

प्रेस करने की टेबल, कपडे धोने को दो हाथ

चमड़ी चमकाने के कारगर नुस्खे

बच्चों के अजीबोगरीब खिलौने

उन्हे खिलाने पिलाने-सुलाने के ताम-झाम

गद्दे-तकिए-पलंग-सोफे।”⁹³

रामदश मिश्र अपनी कविता ‘विश्वग्राम’ में कहते हैं -

“महज व्यापार, महज लेन-देन, खरीद-फरोख्त की आवाजें

लगातार अजनबी होती हुई”⁹⁴

मंगलेश डबराल अपनी कविता ‘आधुनिक सभ्यता’ में कहते हैं-

“यह पैकेजिंग का युग है हर चीज ऐसी दिखती है

जैसे वह चीज खुद भी एक पैकेज हो

और उसके भीतर कोई और चीज रखी हुई हो

आधुनिक सभ्यता का एक सरप्राइज गिफ्ट।”⁹⁵

मॉल संस्कृति के कारण ग्राहकों की माँग को देखकर चमक-दमक के साथ एवं आकर्षक पैकेजिंग के साथ कोई चीज रखे तो उसकी बिक्री जल्द होती है। आधुनिक सभ्यता के कारण पैकिंग एवं चमक के द्वारा ग्राहकों की आँखें चुंधियाने तथा उन्हें आकर्षित करके बरबस अपनी ओर खींचकर खरीदारी करने का नया फंडा आजकल शुरू हो गया है।

७) अकेलेपन से त्रस्त मनुष्य :

भूमंडलीकरण के नए दौर ने मनुष्य-मनुष्य के बीच के फासले बढ़ाये हैं। संगठित होने की शक्ति को ही नष्ट किया है तथा मनुष्य को बड़े बड़े घरों में विवश होकर अकेले रहना पड़ रहा है यह आज के जीवन की सच्चाई है। कवि मंगलेश डबराल अपनी कविता ‘यह नंबर मौजूद नहीं’ में कहते हैं-

“उन पुराने पत्तों पर बहुत कम लोग बचे हुए हैं

जहाँ आहत पाने ही दरवाजे खुल जाते थे

अब घंटी बजाकर कुछ देर सहमें हुए बाहर खड़े रहना पड़ता है

और आखिरकार जब कोई प्रकट होता है

तो मुमकीन है उसका हुलिया बदला हुआ हो

या वह कह दे में वह नहीं हूँ जिससे तुम बात करते थे।”⁹⁶

भूमंडलीकरण से पूर्व भारतीय परिवार में एक दूसरे के प्रति आत्मीयता भरसक मिलती थी। परंतु वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप लोग अपना रूप बदलकर अनजानेपन का परिचय देते हैं। जो माहौल पहले था आज नहीं है एक प्रकार का बेगानापन भरा है ऐसा दिखाई देता है।

कवि रामदश मिश्र आपनी कविता ‘विश्वग्राम’ में कहते हैं-

“यहाँ आदमी का अपनी जड़ों से स्पंदित लगाव नहीं है
यहाँ आदमी-आदमी नहीं महज क्रेता-विक्रेता हैं
और संवेदनाएँ सामानों में बदल रही हैं।”⁹⁹

व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का लगाव, संवेदना महज औपचारिकता बन गई है। किसी को किसी की जरूरत नहीं लगती सब अपनी-अपनी धूनी रमा रहे हैं। बाजारवाद के असर के कारण मनुष्य की संवेदनाओं ने सामान का रूप ले लिया है।

निष्कर्ष :

भूमंडलीकरण के जमाने में भारतीय समाज नई विभिन्निकाओं से गुजर रहा है। भूमंडलीकरण की बीमारी इतनी भयानक है कि मुँह बाएँ चली आ रही है तथा जो भी इसके चपेट में आता है उसे निगलकर डकार ले रही है। इसका परिणाम यह रहा है कि हमारी कला, धर्म, संस्कृति, दर्शन एवं साहित्य में मूल्यहीनता को प्रचलन वद गया है। साहित्य के परंपरागत मूल्य टूट रहे हैं, बिखर रहे हैं। इसकी विडंबना यह है कि अमीर की अमीरी बढ़ रही है तथा गरीब की गरीबी भी बढ़ रही है। कितनी शर्म की बात है कि जीने-जीतेजागते हाड-माँस के मनुष्य को महज एक उपभोक्ता के रूप में देखा जा रहा है। इसकी आड़ में उत्पादक देशों के उपभोक्ता देशों को अपने गिरफ्त में लेने का एक नया साम्राज्यवाद लाने की हरकत की है। विकास के नाम पर मनुष्य की सभ्यता एवं संस्कृति पर ही प्रहार किए जा रहे हैं यह सब भूमंडलीकरण की ही देन है। मनुष्य के लालच एवं लोभ ने उसके ही अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न खड़ा किया है। पर्यावरण के असंतुलन के कारण सिमेंट के जंगलों में मनुष्य को साँस लेना भी मुश्किल हो गया है। मानवीय जीवन विभिन्न तनावों से घिरा हुआ है और यही जीवन जीने के लिए मनुष्य अभिशप्त है। भूमंडलीकरण के कारण प्रकृति, प्राणी तथा मनुष्य भी असुरक्षित हो गया है। ग्राहकों को उपभोक्ता मानकर हर एक वस्तु विज्ञापन के द्वारा उनके सामने परोसी जा रही है। किसानों की त्रासदी का भी कोई पारावार इस युग में नहीं रहा है। मनुष्य-मनुष्य के बीच की आत्मीयता खत्म होकर बेगानापन पनप रहा है। मनुष्य के मन की संवेदना, लगाव नष्ट होकर महज औपचारिकता बची है। संवेदना की आज एक सामान का रूप मानी जा रही है। इसप्रकार भूमंडलीकरण के दौर में सृजित कविताओं में कवितोयों ने भूमंडलीकरण का सीधा असर जिन इकाइयों पर पड़ा है उनपर विवेचन किया है। मानव, पर्यावरण, पशु, पंछी आदि का अंकन इस दौर के कवियों ने किया है। जो भूमंडलीकरण की गर्मी में झुलसे हैं।

संदर्भग्रंथ सूची :

- चंद्रकांत देवताले - आगरा हर चीज में बनाई गई थी
- वही,
- सुशांत सुप्रिय- इस रूट की सभी लाईनें व्यस्त हैं
- लीलाधर मंडलोई-हत्यारे उतर चुके हैं क्षीरसागर में
- निशांत ' जवान होते हुए लडके का कबुलनामा
- सुधा अरोड़ा- शतरंज के मोहरे
- संपा- प्रभाकर श्रोत्रिय -समकालीन भारतीय साहित्य (द्वैमासिक) साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, अंक 956, पृ. 927, जुलाई-अगस्त-2019
- लीलाधर जगूडी-बघराए हुए शब्द
- रामदरश मिश्र - विश्वग्राम
- दिनेशकुमार शुक्ल-आखर अरथ कथा कहो
- चंद्रकांत देवताले - आगरा हर चीज में बताई गई थी।
- नलिनी पंडित-जागतिकीकरण आणि भारत, लोकवाडमय गृह, मुंबई 2 री अवृत्ती, जानेवारी, 2008 पृष्ठ-903.
- जया जादवानी - बाजार
- रामदरश मिश्र-विश्वग्राम
- मंगलेश डबराल-घर का रास्ता
- मंगलेश डबराल - पहाड पर लालटेन
- रामदरश मिश्र-विश्वग्राम.

मजदूर वर्ग की व्यथा, 'गैंगमैन' आत्मकथा

प्रा. राजेंद्र ज्ञानदेव ननावरे
सहाय्यक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
आमदार शशिकांत शिंदे महाविद्यालय, मेढा
महाराष्ट्र।

प्रस्तावना :-

भारत में रेल का निर्माण ब्रिटिशोंने किया । यहा आरंभ करते समय नैसर्गिक आपदाएँ बहुत थी। तत्कालीन ब्रिटिश कर्नल ग्रांट ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि, “ भारत में ऊँचे पहाड़, विशाल नदियाँ, घने जंगल इसे नजर में रखते हुए ऐसा लगता है यहाँ लोह मार्ग बनाना अशक्यप्राय है किंतु यह अशक्य कार्य शक्य हुआ यहाँ के मजदूरों के परिश्रम से।”¹ भारत की रेल विश्व की महत्वपूर्ण रेल में से एक है। एशिया खंड में तो वह अव्वल है। यहाँ रेल मजदूरों ने अथक परिश्रम करते हुए अशक्यप्राय कार्य सफल कर दिया परिणामतः भारत का विकास हुआ।

‘गैंगमैन’ यह सदानंद पुंडगे लिखित और डॉ. अशोक जोधळे अनुवादित दलित आत्मकथा है। जिसका प्रकाशन ‘सारंग प्रकाशन’, वाराणसी से प्रथम संस्करण के रूप में सन् २०१५ में हुआ। यह अनुवादित दलित आत्मकथा १६० पृष्ठों में अभिव्यक्त है। प्रस्तुत आत्मकथा में लेखक ने अपने जीवन की व्यथा को व्यक्त करते हुए रेल मजदूर वर्ग की जीवन को वास्तविक रूप में अभिव्यक्त किया है। मेरे शोध निबंध का मुख्य उद्देश्य मजदूरों की जीवन व्यथा को प्रकाश में लाना है।

लेखक परिचय तथा पारिवारिक जीवन :-

लेखक सदानंद पुंडगे का जन्म महाराष्ट्र के परभणी जिले के सिरली गाँव में एक दलित मजदूर परिवार में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा जिला हिंगोली में हुई। बी.ए. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर महाविद्यालय, औरंगाबाद से, एम. ए, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद और बी.पी.एड. की शिक्षा औरंगाबाद में हुई। हिंदी अध्यापक के रूप में लेखक ने सन १९८५ से २०१३ तक ज्ञानोपासक महाविद्यालय, जितूर, जिला परभणी में कार्य किया। उन्हें विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।

लेखक का परिवार सवर्णों द्वारा दी जानेवाली वर्ग वर्चस्ववादी मानसिकता से संतुष्ट होकर और मजदूरी के रूप में भी शोषण होने के कारण मुक्ति पाने हेतु शहर हिंगोली आता है। गाँव में जमींदारों ने पुरखों पर बहुत अन्याय-अत्याचार किये। लेखक के परिवार पर भी बहुत अन्याय-अत्याचार हुए। इसीकारण लेखक का परिवार शहर में रेल में नौकरी पाने हेतु आए। लेकिन यहाँ तो उससे भी बदतर हालत है। इस बात को स्पष्ट करते हुए लेखक एक प्रसंग को कथित करते है, “ गाँव में रहता था तो गाँव में मरे हुए ढोर- डंगर उठाकर गाँव के बाहर फेंकणे पडते थे और यहाँ रेलवाई में जो काम मिला वह भी औरतों-मर्दों की कटी हुई लाशें उठाने का।”²

लेखक के पिताजी तो बहुत परेशान थे। उन्हें समझ में ही नहीं आता था कि कैसे और कहा अच्छा जिने को मिलेगा। लेखक के पिताजी की दुविधा भरी अवस्था को एक प्रसंग द्वारा स्पष्ट करते है, “ वह ठीक था। या यह अच्छा है। दोनों तरफ एक जैसा ही इधर कुवाँ ! उधर खाई !!”³

गाँवों में व्यथित मजदूरों का जीवन :-

लेखक इस आत्मकथा में मजदूर वर्ग के जीवन की खुली दास्तान को अभिव्यक्त करते है। लेखक के पिताजी बापू, गाँव के जमींदार खंडेराव पाटील के खेत में सालाना खेत मजदूरी करते थे। रूखी-सुखी रोटी और थोड़े से पैसे में चौबीस घंटे और बारह महीने काम गुलामों की तरह करते थे। एक दिन लेखक के पिताजी खेती में काम करते समय उन्हें थोड़ा बुखार आया। इसीलिए वह बबूल के पेड़ के निचे सोते है, तो जमींदार का बेटा नौ दस साल का होगा। उसे लेखक के पिताजी को लेटे देखकर घुस्सा आता है, उसी घुस्से से लेखक के बापू को अनाब-शनाब गालियाँ देता है।

विनय हीन लडके की बात को स्पष्ट करते हुए लेखक उस प्रसंग को व्यक्त करते हैं, “अबे, ओ राम्या...! तेरी माँ कु तेरी, काम कराय क्या नींद माराय बे चल उठता है क्या नहीं?”^४ फिर भी बापू कुछ बिनती करते हुए करुणा से कहते हैं, “ मालिक, मेरेकू जरा सा बुखार है। बदन में भौतीच दरद है.....।”^५ लेकिन जमींदार के बेटे में दया भाव कहीं भी नहीं दिखाई देता। वह आगे घुस्से में लेखक के पिताजी को मारने के लिये दौड़ते हुए बोलता है, “ मादरचोद! ये नखरे मेरेकू मत सिखाना। चल उठता है कि नई।”^६ इसीतरह गाँव में मजदूरों को उम्र से बड़े ही नहीं तो उम्र से छोटे बच्चे भी छोटे-बड़े के लिहाजा न रखते हुए अनाब-शनाब बखते थे। इस विनय हीन दशा को लेखक ने रखा है। यही लेखक ने व्यथित अन्याय-अत्याचार से भरे मजदूरों के हीन जीवन को चित्रित किया।

मजदूरी एक गुलामी :-

गाँव में मजदूरों को गुलाम ही माना जाता है। इसीकारण गाँव के लोग मजदूरों पर गुलामों जैसा बरताव करते हैं। इस से परेशान होकर लेखक के पिताजी शहर में जाते हैं। एक प्रसंग “ क्या रखा है इस गाँव में? ये गाँव ही छोड़ दे तो?..... कब तक गुलामी करते रहेंगे? रेलवे में काम को लग जायेंगे। इन जमींदारों के यहाँ कितना भी नेक से काम करो, खून-पसीना एक करो, फिर भी गालियाँ ही मिलती हैं। कुत्तों-सी दुत्कार-फटकार मिलती है। ये लोग जानवरों के पीठ पर हाथ फेरेंगे, मगर हमें जानवरों से भी बदतर समझते हैं, ये ससाले!!”^७ इसीतरह गाँव के जमींदार मजदूरों पर गुलामों जैसा पशु समझकर पशु जैसा व्यवहार करते थे। लेखक के पिता गाँव के जुल्म अन्याय-अत्याचार से तंग आकर शहर जाना चाहते हैं। लेखक ने मजदूरों को गुलाम समझने वाली सोच से दूर जाने हेतु स्पष्ट किया है।

‘गैंगमैन’ लोगों की जीवन व्यथा :-

लेखक का परिवार काम की तलाश में हिंगोली जाता है। वही रेल में ‘गैंगमैन’ का काम मिलता है। रेल में मजदूरी करने वाले लोगों की टोली को गैंग कहा है। गैंग के आदमी को गैंगमैन कहा है। लेखक के बापू को काम मिला था, लेकिन अस्थायी था। रेज्या गैंग में याने की पति-पत्नी दोनों भी जिसमें काम करते हो, ऐसी गैंग। ऐसी गैंग में लेखक के पिता का नाम था। अस्थायी होने के कारण लेखक के परिवार को वही उन लोगों के साथ रेलवे प्लेटफॉर्म पर रहना पड़ता है। अच्छे-बुरे विचारों वाले लोगों के साथ लेखक का परिवार रहता था। उस वक्त रेज्या गैंग की औरते लेखक की माँ को कहती है, “ अम्मा! प्लेटफॉर्म पर रहना क्या आसान काम होता है? यहाँ पर रोज भीड़ होती है। रोज किस्म-किस्म के लोग आते हैं। उनमें चोर, उचक्के, उठाईगीर, शरीफ-बदमाश, अमीर-गरीब, भिखारी, मदारी, सपेरे सभी रहते हैं। दिन में गाँव भर भीख माँगते हैं। रात में यहाँ आकर सो जाते हैं। अब क्या करना माँ?”^८ ऐसे अनगिनत प्रश्न गैंगमैन परिवारों को पड़ते थे।

प्लेटफॉर्म पर जहाँ लेखक का परिवार रहता था, वही एक पगली औरत पेट से थी। उसने एक अर्भक को जन्म दिया था, लेकिन वह अर्भक मरा हुआ था। उस प्रसंग को लेखक इस तरह अभिव्यक्त करते हैं, “ बालीश भर अर्भक वह अपने हाथों से खींच रही वह उसके सामने मरा पड़ा था। उसके इर्द-गिर्द मक्खियों के झुंड गाँय-गाँय..... करते हुए भिनभिना रहे थे। नाल बाहर निकली हुई थी। वह थोड़ा सा सरककर बैठ गया। यकायक वह कुत्ता लपककर आया और उसने उस बालीश भर अर्भक को अपने जबड़े में कसा और भाग निकला। अर्भक की नाल लटक रही थी। कुत्ते जिस दिशा में उसके बच्चे को उठा कर ले गए उधर हाथ कर-कर के रो रही थी। चिल्ला रही थी।”^९ यह स्पष्ट होता है कि ऐसे दूषित भरे वातावरण में लेखक का जीवन और कई ‘गैंगमैन’ परिवारों का जीवन बीता है।

एक दिन ‘गैंगमैन’ एक नई मशीन का काम ब्रॉडगेज लाईन पर कर रहे थे। मशीन के काम में दंग होने के कारण रेल मजदूरों को ध्यान में नहीं आता है, कि एक्सप्रेस आयी है। उस वक्त गैंग के काम करने वाले सात गैंगमैन एक साथ रेल के नीचे कटते हैं। भीषण हादसा होता है। उस हादसे से लेखक का भी दिल काँप उठता है। बचे हुए लोगों में से आक्रोश की आवाज आ रही थी, “ माँ मर गया रे अरे बाप रे! मर गया रे!”^{१०} गैंगमैन परिवार की औरतों की तथा सभी मजदूरों के आक्रोश के कारण आकाश दुख की दास्तान बयान करता है।

इसी तरह मजदूरों की जिंदगी पशु समान होती है। उन मजदूरों के जानों का कोई मोल नहीं होता है। उनकी जाने बहुत सस्ती होती है। ऐसा अमीर लोगों को लगता है। इसीकारण उनकी ओर तथा उनके परिवारों को अनदेखा किया जाता है। इस भाव हीन बात को लेखक ने 'गैंगमैन' आत्मकथा से अभिव्यक्त किया है।

रेल मजदूरों की रहने की हीन स्थिति :-

रेल मजदूरों की रहने की व्यवस्था भी ठिक नहीं थी। जो स्थायी हैं उन्हें सरकार की ओर से मकान मिले, लेकिन जिन मजदूरों की स्थायी रूप की नौकरी नहीं थी उन्हें रेल प्लेटफॉर्म पर ही रहना पड़ा था। यहाँ भी मजदूरों को घर न होने के कारण कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। आजू-बाजू घने जंगल, विशाल नदियाँ, ऊँचे पहाड़, तेज धूप, कड़ी ठंडी, घमासान बारिश में इन मजदूरों को ऐसी उजाड़ प्लेटफॉर्म पर जिंदगी काटनी पड़ती थी। इस बात को दर्शाते हुए लेखक लिखते हैं, "पिछले साल धूआँधार बारिश में क्या परेशानी हो गयी थी। वह क्या तूफानी बारिश थी। मृग के बेमौसम के बारिश में क्या हाल हो गये थे। घने अँधेरे में बिजलियाँ चम-चमा रही थी। काले-काले बादल गड़... ..गड़ गरज-गरज के बरसे थे। मूसलधार बारिश की मोटी-मोटी बूँदे बरामदे में आने लगी। सारे कपड़े बिस्तर भीग कर तर हो गए थे। तूफानी हवा में बर्तन भाँडे उड़कर दूर जाकर गुम हो गए। सारे गैंगमैन, औरतें, बच्चे, मूसाफिर खाने में दबक गए थे। जहाँ पुलिस वाले पैसेंजर से गाली गलोच करने लगे।"⁹⁹ इसी तरह घर न होने के कारण दूसरों की फटकार को सूनना पड़ता था। परिणामतः ऐसे ही प्लेटफॉर्म पर हीन जिंदगी काटनी पड़ती थी।

पुलिस कर्मचारियों द्वारा मजदूरों की घृणा :-

जब बारिश जादा हो जाती है, तो सभी अस्थायी गैंगमैन की टोलियाँ आश्रय हेतु पड़ोस के मुसाफिर खाने में जाते हैं, तो पुलिस वाले उन्हें मुसाफिर खाने से गालियाँ देते हुए बाहर निकालते हैं, उन हीन विचारों को स्पष्ट करते हुए लेखक लिखते हैं, "अरे यह कहाँ से आ गए जंगली लोग! सारा मुसाफिर खाना गीला कर दिया। चलो निकलो यहाँ से।"⁹²

मजदूर अन्याय-अत्याचार से व्यथित :-

पुलिस कर्मचारी मजदूरों को मुसाफिर खाने से तेज बारिश होते हुए बाहर निकालते हैं। तो उस वक्त उन मजदूर और उनके परिवारों की व्यथा का वर्णन लेखक करते हैं, "रेज्या गैंग की औरतें, बच्चे ठंड में ठिठुर रहे थे। दो औरतें आठ-दस दिन की ही जच्ची थी। नन्हें माँस के गोले ठंडी से हवा में टपेहँ SS टपेहँ SS रो रहे थे। आज बापू की ओर देखकर कहने लगा, इस साल बरस कितना बरसना है तो! हो गया हमको घोसलों का सहारा!"⁹³

जमींदारों के घर मजदूरी :-

लेखक के पिताजी गैंगमैन है। प्लेटफॉर्म पर रहने के कुछ दिन बाद मकान मिलता है। तो रामू को (लेखक के पिता) अपने छोटे भाई-बहन की याद आती है। रामू के भाई गाँव में जमींदारों के यहाँ सालाना काम पर है। जमींदारों से जो कर्जा लिया था उसके बदले छोटे बच्चों को जमींदार के यहाँ गिरवी रखा था। उन्हें छुड़ाने की आस रामू को लगी थी। क्योंकि वह जमींदार उनसे चौबीस घंटे काम करवाता है। उसके बदले उन्हें सिर्फ खाना मिलता है, वो भी रूखा-सुखा। रामू उन्हें छुड़ाकर ले आना चाहता है। तो उस वक्त पत्नी से कहते हैं, " देखो! कल शनिचर का रेस्ट है। मैं कल सुबह की गाड़ी से सिरली जाता हूँ और गिरवी रखें बच्चों को छुड़ाकर ले आता हूँ। सब मिलकर खाएँगे रूखी-सुखी।"⁹⁴ यहाँ लेखक जमींदारों द्वारा मजदूरों का कैसे शोषण किया जाता है, इस बात को स्पष्ट किया है।

लेखक के पिता की बात सनते ही लेखक की माँ भी फौरन हा में हा मिला कर लोक लाजवश वो भी कहती है, " मैं भी यही बात कहने ही वाली थी। दुनिया का बोल अपने पर नहीं आना चाहिए। कल जाकर ले आओ सभी को। बहुत अच्छा होगा।"⁹⁵

निष्कर्ष :-

इसीतरह कई प्रसंगों को लेकर लेखक ने 'गैंगमैन' आत्मकथा में मजदूरों की व्यथा को अभिव्यक्त किया है। भारत में उँचे पहाड़, घने जंगल, विशाल नदियाँ होते हुए भी ब्रिटिशों ने इन रेल मजदूरों 'गैंगमैन' के सहारे भारत में

रेल का निर्माण किया। भारत के इस विकास में 'गैंगमैन' का बहुत बड़ा सहयोग है। लेकिन इन्हीं मजदूरी करने वाले लोगों का भला सोचने वाला कोई नहीं है। मजदूरों का सिर्फ खून चूसा जाता है, शोषण किया जाता है। उनकी जीवन व्यथा को कोई जानने वाला नहीं है। उनकी दशा दूर करने वाला कोई नहीं है। मजदूरों का गाँव में भी शोषण होता है, शहरों में भी शोषण होता है। जमींदार, पुलिस कर्मचारी तथा अमीर वर्ग सिर्फ खुद का काम निपटाने के लिए मजदूरों का इस्तमाल करते हैं। इसीतरह मजदूरी व्यथा को लेखक सदानंद पुंडगे ने अपनी 'गैंगमैन' दलित आत्मकथा में स्पष्ट किया है।

संदर्भ संकेत :-

१. सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, लेखक मनोगत।
- २ सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ १३
- ३ सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ १३
- ४ सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ १५
- ५ सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ १५
- ६ सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ १५
- ७ सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ १५, १६
- ८ सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ २२
- ९ सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ २३
- १० सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ २५
- ११ सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ ३१
- १२ सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ ३१
- १३ सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ ३१
- १४ सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ ३१
- १५ सदानंद पुंडगे, अनुवाद - डॉ. अशोक जोंधळे, गैंगमैन, दलित आत्मकथा, प्रकाशन- सारंग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ ३१

ISSN 2349-638X

www.aiirjournal.com

थर्ड जेंडर - मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

रेणू गुलशन खत्री

एम.ए.डीएड.बीएड.एम.फील.

घर का पता : गंगा जमुना बेकरी

अॅन्ड जनरल स्टोअर्स ८६, सोलापूर बाजार,

महात्मा गांधी, बसस्टैंड, पुणे

आज समय के बदलते रूख के साथ ही सामान्य जन की मानसिकता ने आज कई तरह के विषयों पर उन्मुक्त रूप से विचार करना प्रारंभ किया है। आज समाज का हर भाग अपनी सन्मुक्त वैचारिक प्रधानता का परिचय निष्पक्ष रूप से देता है। थर्ड जेंडर जो एक ऐसा विषय है जिसने समाज के अंतर्गत एक नई जेंडर व्यवस्था का परिचय करा रहा है जो समाज में है तो पर समाज से अनिर्भर है। आज कई देशों में थर्ड जेंडर की यथार्थ स्थिति को सकारात्मक रूप से उन्हें मानवता के पहलुओं के आधार पर देखा जा रहा है। कई देशों ने आज थर्ड जेंडर के प्रति अपनी कानूनी व्यवस्था का मापदंड साधारण जेंडर के समान कर समाज में व्यक्तिगत अस्मिता को मजबूत बनाया है। चाहें वो पुराण हो चाहे वो कोई भी काल आदि भिन्न रीत एवं आधुनिक हर समय में इस समुदाय का उल्लेख भिन्न-भिन्न रूपों में देखने को मिलता है। थर्ड जेंडर समुदाय के अंतर्गत मुख्य रूप से चार वर्ग आते हैं। गे, लेसबियन, बाइसेक्सुअल एवं ट्रांसजेंडर आते हैं। ये सभी समुदाय की अपनी-अपनी परिभाषा अपनी-अपनी महत्ता है। स्त्री-पुरुष से परे इस समाज में जीवित एक और अन्य समाज जो कि सम्माननीय रूप से इस समाज में जीता है उसे हिजड़ा किन्नर, ख्वाजा जैसे विभिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। ये लोग अपनी परंपरागत आचरण के कारण भीड़ में सबसे अलग ही नजर आ जाते हैं। जैसे पहनावा, बातचीत का तरीका, हाव-भाव, मेकअप, ताली बजाना साथ ही स्त्री की भाँति रहना एवं चाल-ढाल आदते के कारण इन्हें बाकी समाज से एक भिन्न पहचान देता है। अपनी पहचान की लड़ाई लड़ रहे। इस समूह को वोट एवं नागरिकता प्रधान वोटर आइ.डी. तक नहीं प्राप्त था। सन् १९९४ में जाकर इन्हें भारतीय समाज में मतदान देने का अधिकार मिला।

थर्ड जेंडर की वर्तमान समय की स्थिति एवं उनसे जुड़े मुद्दे

सुप्रीम कोर्ट द्वारा १५ अप्रैल २०१४ में जो टिप्पणी दी गई जिसमें साफ साफ लिखा था कि किन्नर समाज में अछूत बने हुए हैं। आम तौर पर उन्हें स्कूलों और शिक्षण संस्थानों में उन्हें दाखिला नहीं मिलता उनके लिए बहुत कुछ करना होगा। आज वर्तमान समय में थर्ड जेंडर को अपनी अस्मिता अपनी पहचान अपनी वैध परंपरा की जीवंतता की आवश्यकता है। आज कई मुद्दे हैं जो थर्ड जेंडर के लिए अति आवश्यक हैं।

- १) आज थर्ड जेंडर समाज के हर वर्ग से प्रेम एवं सहयोग की भावना चाहता है।
- २) अपनी परिवार के साथी ही रहकर अपनी यौनिकता को अपनाकर साधारण एवं सम्माननीय जीवनयापन करना चाहता है।
- ३) सभी साधारण जन की भाँति बिना किसी पाबंदी के खुलकर अपनी प्रतिभा का प्रयोग कर सके।
- ४) साधारण जन की भाँति आवास, भोजन, वस्त्र, प्रेम, परिवार सम्मान एवं शिक्षा एवं उत्तम व्यवसाय का होना इनके मुख्य मुद्दे हैं।

मनोविज्ञान के आधार पर

भारतीय दर्शन, इतिहास, धर्म इत्यादि हर जगह यौन की एक अपनी एक नवीन परिकल्पना है। जो की कई-कई रूपों में देखनेको को मिलती है। मनोवैज्ञानिको ने यौन आकर्षण को सकारात्मक रूप दिया है। यौन संबंध को केवल प्रजनन स्रोत एवं केवल स्त्री-पुरुषों तक ही ना मानकर यौनिक विभिन्नता एवं सहचर्य एवं रोमांस का रूप भी

माना है। स्त्री-पुरुष, पुरुष-पुरुष, स्त्री-स्त्री इत्यादि इन सभी संग बनाए जा रहे यौन संबंधों को साधारण माना गया है। यौन संबंध जो कि प्रेम, सहचर्य एवं रोमांस की एक ऐसी प्रक्रिया है जो कि किसी भी तरह के यौन संबंधों के द्वारा किया जा सकता है। चाहे वह स्त्री-पुरुष, पुरुष-पुरुष, स्त्री-स्त्री किसी के भी साथ हो परंतु दोनों की सहमति से हों तो प्राकृतिक है साथ ही शारीरिक एवं मानसिक रूप से वह संतोष जनक है। मनोविज्ञान में समलैंगिकता संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन का महत्वपूर्ण पड़ाव सन् १९७३ को माना जा सकता है। जब अमेरिकन साइकोलोजिकल एसोसिएशन द्वारा समलैंगिकता को मनोरोग की सूची से हटाया गया। इसके साथ ही सभी मानसिक व्यावसायिक संगठनों को यह निर्देशित किया गया कि इस तरह के लोगों को रोगी ना माने।

थर्ड जेंडर मुखरता एवं अस्मिता की तलाश (संघ, नेतृत्व, समुदाय इत्यादि)

विश्वस्तर के आधार पर देखा जाए तो थर्ड जेंडर की यथार्थ स्थिति काफी सुखद एवं सकारात्मक होती जा रही है। इन सभी व्यवहार का प्रभाव भारतीय मानस पर भी देखने को मिलता है। धारा ३७७ के अंतर्गत जो भी कोई स्वेच्छा से किसी पुरुष, महिला एवं पशु के साथ प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कामुक संभाग करता है, उसे आजीवन कारावास या जुर्माना हो सकता है।

१४ अप्रैल २०१४ को सुप्रीम कोर्ट में न्यायाधीश रामकृष्ण जी ने बहुत से मुद्दों को जो कि थर्ड जेंडर की वास्तविकता से छूटा है उस पर विचार किया। ट्रांसजेंडर समुदाय को वरीयता देते हुए निम्नलिखित कानून बनाए है।

- ट्रांसजेंडर के लिए सेक्स कॉलम में अलग थर्ड जेंडर करके कॉलम बनेगा जो कि उनके सेक्सुअल आइडेंटिटी का परिचय देगा।
- इनकी योग्यता के आधार पर रोजगार संबंधी सुविधाएँ दी जाएगी।
- इस समुदाय के लोगों को ठठ में रखा गया है। क्योंकि ये समाज के वो अंग है जो कि बहुत ही पिछड़ा और विछिन्न है।
- हर जगह स्त्री-पुरुष के साथ-साथ इनके लिए भी अन्य शौचालय इत्यादी का निर्माण भी रखा गया है।

आज अस्मिता एवं मुखरता कि इस लड़ाई में ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए आशा के कई चिराग साधारण जनपटल के रूप में हमारे समाज में देखने को मिलेंगे।

सामाजिक स्वरूप और अवधारणा

समाज जो व्यक्ति से बनता है साथ ही व्यक्ति के क्रियाकलापों से ही समाज के उन्नति एवं अवनति का खाका तैयार किया जाता है।

कुछ उद्धरण जिन्होंने ट्रांसजेंडर की मानसिक स्थिति का परिचय दिया है।

- १) मैं हिजड़ा हूँ इसका मुझे गर्व है पर जब लोग मुझपर हिजड़ा कह कर कनखियों कसते है तो मुझे समझ नहीं आता कि मैं हिजड़ा हूँ, मुझे पता है तुम्हें बताने की क्या आवश्यकता है।
- २) कौन है समाज... यह प्रश्न खुद से करें आप है समाज जिसने हमें वंचित रखा हमारे मानवधिकारों से।
- ३) आज हम भीख मोंगते है तो क्या करें हमें कोई और काम ही नहीं दिया गया है। आज हमें भी काम दिया होता तो शायद हम ऐसा नहीं करते।
- ४) लोग सोचते है कि हिजड़ा के पास बहुत पैसा है पर नहीं, बहुत कम ही ऐसा होता है हमारे पास तो हमारी जरूरतों लायक पैसा भी नहीं होता। बस गुरु के अंतर्गत रहकर हमें अपना जीवन जीना पडता है।

थर्ड जेंडर की भाषा का वैज्ञानिकीकरण

वर्तमान समय के आधुनिक परिप्रेक्ष्य को देखें तो आज किन्नर समाज के कई महिषियों की गाथा देखने में आती है। जिसमें किन्नर समाज के अंतर्गत अपनी पहचान बनाने के साथ-साथ उन्होंने साधारण जन से स्पर्धा करके समाज में अपना नया मुकाम हासिल किया है। पहली किन्नरको कोलकता में विश्वविद्यालय की प्रथम किन्नर प्राचार्या बनी डॉ. मानोबी बंद्योपाध्याय जी जिन्होंने समाज के इस अंतरंग व्यवहार से बिना डरे अपने मुकाम को हासिल किया।

दूसरी शबनम मौसी जिन्होंने विधायक बनकर भोपाल में किन्नर समाज के नाम को गौरवान्वित किया। सिमरन शेख जो अपनी शिक्षा को एवं परंपराओं को महत्व देते हुए आज अनेकों संस्थान में बड़े पैमाने पर समाज सेविका का कार्य कर रही है। प्रितिका याशिनी (इंस्पेक्टर) बबली (नैको के अंतर्गत काउन्सलर) जोयिता मॉडल (न्यायाधीश) इत्यादी. सभी किन्नर समुदाय के लोग सामाजिक स्तर की हर परिस्थितियों से लड़ते जूझते हुए आज समाज में अपने मुकाम बनाने में सक्षम हैं।

भाषाई संज्ञान का प्रभाव आज जो भूमंडलीकरण के दौर में वैज्ञानिक दृष्टि के साथ हर तथ्य का निरीक्षण कर रहा है वही निरीक्षण किन्नर समुदाय की इस प्रादेशिक भाषा का बोध सकारात्मक रूप से साधारण जन के सामने प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। आज भारतीय समाज की हर मीमांसाओं पर यह कार्य जिसमें भाषा व्यवहार के नवीन प्रतीक अभिलक्षणों के द्वारा इस भाषाई सहचरण को महत्व देना वैज्ञानिकीकरण एवं आधुनिक भाषाई विन्यास की एक प्रभावशाली उपलब्धि है। यह उपलब्धि साहित्य, समाज, भाषा, अनुवाद एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कार्य है।

संदर्भ ग्रंथ

- १ थर्ड जेंडर : भाषा वैज्ञानिक अध्ययन (राजकुमार)विकास प्रकाशन, कानपूर
- २ किन्नर विमर्श साहित्य के आईने में(संपादक डॉ. इकरार अहमद)वाङ्मय युक्त, अलीगढ़
- ३ थर्ड जेंडर : अतीत और वर्तमान(संपादक डॉ. एम. फीरोज खान)विकास प्रकाशन, कानपूर
- ४ किन्नर साहित्य व्यथा, यातना और संघर्ष(डॉ. देवयानी महिड़ा) रोशनी पब्लिकेशन, कानपूर



२१ वी सदी की कहानियाँ और वैश्वीकरण से उपजी समस्याएँ

डॉ. सौ. शोभा माणिक पवार

सहाय्यक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
श्रीमती सी.बी.शाह महिला महाविद्यालय, सांगली

वैश्वीकरण जहाँ एक ओर अकर्मण्यता, अक्षमता, विलंब तथा भ्रष्टाचार के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप उपजा है, वहीं दूसरी ओर यह कटु सत्य स्थापित करता है कि अब जनता को अपने शासन की बागडोर स्वयं सँभालनी है।

सच पूछे तो वैश्वीकरण के माध्यम से सभी संस्कृतियों को प्राप्त करने की कोशिश की जा रही है, न कि उनमें समरसता लाने का प्रयास हो रहा है। हम जानते हैं कि, प्रायः विश्व के सभी साहित्यों तथा साहित्यकारों ने बाज़ारवाद का विरोध तो किया है पर वैश्वीकरण की वास्तविकता को मजबूरी से ही सही स्वीकार भी करते हैं। आज हैरी पॉटर उपन्यास की लाखों प्रतियाँ सारे संसार में एक दिन में बिक जाती हैं, भारत में चेतन भगत या पूर्व राष्ट्रपति कलाम की कृतियों को भी खरीददारों की कमी नहीं है। जबकि बाइबल, कुरान, गीता, वेद और रामचरितमानस केवल पुस्तक केंद्रों की शोभा बढ़ाते प्रतीत हैं। आदर्श ग्रंथों और साहित्य की निरर्थकता को वर्तमान पाठक पहचान चुका है। उसमें अपने माता-पिता और भाई-बहनों को सिद्धांतों के लिए संघर्ष करते हुए विश्लेषित किया है। उनका अभाव और दुख उसके मन के चित्रपट पर आज भी अंकित है। अतः वह उस रास्ते पर अब और नहीं चलना चाहता है। उसने भूमंडलीकरण का अंश बनकर अपने माता-पिता के विदेश घूमने का सपना अपनी युवावस्था में ही पूरा कर लिया है।

साहित्य व्यक्ति की इन्हीं शाश्वत आकांक्षाओं तथा मानसिक सुख की धरोहर का संवाहक होता है। और आगे भी वर्तमान युग संक्रमण युग है। साहित्य का अपना मूल स्वरूप कायम रखते हुए वैश्वीकरण की चुनौतियों का यथार्थ की धरती पर लेखक को सामना करना पड़ता है। एक तरफ से देखे तो भूमंडलीकरण से साहित्य को लाभ भी पहुँचा है। जो प्राचीन साहित्य यहाँ-वहाँ बिखरा हुआ था, अब वह कंप्यूटर में, सी.डी. या पेन ड्राइव में सुरक्षित रखा जाता है। जनसंचार माध्यम वैश्वीकरण के प्रमुख संवाहक माने जाते हैं क्योंकि उन्हें वैश्वीकरण से अधिकतम लाभ पहुँच रहा है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि वैश्वीकरण वस्तुतः जन-संचार माध्यमों की धुरा पर चल रहा है। बड़े-बड़े विज्ञापन द्वारा इसने उपभोक्ता को अपने केंद्र में बना रखा है।

वैश्वीकरण भ्रष्ट राजनीतिज्ञों तथा उनके आश्रित नौकरशाहों की अक्षमता का परिणाम भी है। चूँकि वैश्वीकरण आज का युगधर्म है। यह एक साधन-मात्र है। इसलिए इस वास्तविकता को हम जितना शीघ्र एवं सहज स्वीकार कर ले उतना ही अच्छा होगा। जो इसका अपने हित में उपयोग करता है उसे यह अपना दास बना लेता है। किंतु साहित्यकार की कलम को आज तक कोई नहीं खरीद सका है। उसके खरीददार के बढ़ने पर उसकी कलम और भी धारदार होती चली जाती है।

२००८ की मंदी के बाद कहीं यह उम्मीद थी कि दुनिया अपने अर्थशास्त्र पर नए सिरे से विचार करेगी। लेकिन तीन बरस बीतते-बीतते हम पा रहे हैं कि इस रूग्ण अर्थतंत्र के सारे प्रेत ज्यों-के-त्यों लौट आए हैं और वृद्ध पूँजीवाद फिर से अपनी तिजोरी में सारी दुनिया की दौलत भरने में जुटा है। भारत के संदर्भ में यह दृश्य कहीं ज़्यादा कारुणिक है क्योंकि यह अर्थतंत्र जितना अमीर बना रहा है, उससे कहीं ज़्यादा गरीब बना रहा है, जितने लोगों को जीवन दे रहा है, उससे कहीं ज़्यादा लोगों को खुदखुशी के लिए मजबूर कर रही है।

यही वह विषमता है जो इस नए आर्थिक साम्राज्यवाद का प्रमाण और परिणाम दोनों है। और बिल्कुल अभी का उदाहरण ले तो आदरणीय मोदी जी का लिया निर्णय चलन बंदी और आनेवाले समय में उपभोक्ता द्वारा कैशलेस व्यवहार यह एक नई भूमंडलीय स्थिति को निर्माण करती है।

हमारे देश में बन रहा विकास का नक्शा लंदन और रॉकडेल से कहीं ज्यादा भयावह है। इस देश के दलित और आदिवासी पहले बड़े बौधों के नाम पर उजाड़े जाते रहे और अब बड़ी पूँजी के नाम पर उन्हें बेदखल किया जा रहा है। भारत के संदर्भ में सोँचे तो यह आर्थिक विडंबना हमारी राजनीतिक और सामाजिक विडंबनाओं के साथ मिलकर कहीं ज्यादा बड़ी होती जाती है। इस अर्थनीति ने सीधे-सीधे दो हिंदुस्तान बना दिए हैं- एक चमकता-दमकता वह इंडिया जहाँ मर्सिडीज़ और फरारी जैसी गाड़ियों के शो रूम खुल रहे हैं और दूसरा वह गरीब पस्तहाल हिंदुस्तान, जो अब भी अँधेरे में डूबा हुआ है। इंडिया अंग्रेजी बोलता है, बाकी सारा हिंदुस्तान इंडिया जैसा होने के लिए अंग्रेजी बोलना चाहता है। इस कोशिश में वह बेखबर अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक ताकत भी खोता चला जा रहा है।

आर्थिक एकीकरण ने जीवन के सभी क्षेत्रों को स्पष्ट रूप से प्रभावित किया है। टेक्नोलॉजी और आर्थिक शक्तियों के अनिरुद्ध अभियान में विश्व के हर कोने में जीवन का पारंपारिक ढाँचा टूटा है और सदियों की जीवनशैली में बदलाव की लहरें उठी हैं।

नए विश्व की आर्थिक गतिविधियों के राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव गहरे और दूरगामी हैं। अधिकांश देशों में वैश्वीकरण का एक असुंदर रूप यह सामने आया है कि एक ही स्थान पर भयावह असमानता वाली जीवन पद्धतियों साथ-साथ उभरी हैं। सातवे आसमान को छूती जीवनशैली के साए में ही नाली का जीवन भी पनप रहा है और यह असमानता दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। प्रसार माध्यमों पर पूँजी का वर्चस्व है और वे विश्व की सांस्कृतिक विविधता के प्रति अकल्पनीय असंवेदनशीलता दिखाते हुए पाश्चात्य देशों, विशेषकर अमरीका के जीवन मूल्यों और जीवन शैली को सब पर थोपने के लिए कृतसंकल्प दिखाई देते हैं। इसका एक सबूत गरीब देशों में सेक्स और हिंसा के प्रति बढ़ती सहनशीलता है, दूसरा बाज़ार की प्रेरणा से उत्सव की तरह प्रचारित नए-नए दिवस हैं जैसे वैंलेंटाइन डे, जो सहज ही जन-मानस को अपनी अद्वितीयता भुलाकर पश्चिमी जीवन शैली के आगे घुटने टेक चुकी हैं जैसे हैप्पी बर्थ डे मनाने का घोर पश्चिमी अंदाज़, जवानी और मस्ती को दिखाने के लिए मद्यपान और मांसाहार के साथ डिस्को, जिम, ब्यूटी पार्लर आदि को युवाओं के द्वारा दिल से अपना लिया जाना। टूटता हुआ संयुक्त परिवार, अकेलापन, अजनबीपन, आत्महत्या, सड़क दुर्घटना आदी स्थितियाँ इसी भूमंडलीय संस्कृति का परिणाम है जो अब एक अजीब सी समस्या का रूप धारण कर रही है। जिसको देखकर साहित्यकारों ने भी अपनी मानसिकता साहित्य के माध्यम से दर्शाने का प्रयत्न किया है। इस लेख में कुछ कहॉनियों के माध्यम से भूमंडलीकरण से उपजी समस्याओं को विश्लेषित किया गया है.....

समाज और संस्कृति पर प्रकाश डालती ये कहॉनियाँ पारिवारिक और आर्थिक समस्याओं को चित्रित करती हैं। सूर्यकांत नागर की 'बाज़ार' लघुकथा में युवा होती बेटियों ने अपनी बूढ़ी होती माँ को देखा तो उन्हें खटकने लगा वे बाज़ार से ढेर सारा सौंदर्य प्रसाधन लेकर आयी और माँ को धोकर पोछकर सजाने लगी। कहानी के अंत में बेटियों को गर्व है कि उनकी माँ अब सुंदर लगने लगी है। पर माँ कहती है कि अब वह माँ कहॉ रही वह तो बाज़ार बन गई है। यह कहानी युवा पीढ़ी की सोच को किस स्तर पर लाकर छोड़ गई जिसके कारण एक नई प्रकार की संस्कृति बनने लगी है यह स्पष्ट करती है। भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप मनुष्य की सोच इतनी तेजी बदल गई है हर व्यक्ति दूसरे को एक बाज़ार के नजरिए से देखता। अपने फायदे के लिए व्यक्ति गाँव, शहर, नदीनाले, पहाड़ सबकुछ बेचकर अपना फायदा निकालना चाहता है लेखक ने तो यह चिंता

भी व्यक्त की है कि कहीं ऐसा वक्त न आ जाए कि ये व्यापारी लोग शहर से गाँव हवा तथा सॉस खरीदनेवाला प्रपोजल तक शायद भविष्य में लेकर जाए।

ज्ञान चतुर्वेदी की कहानी 'वैश्विक गाँव के व्यापारी' का आदमीनुमा व्यापारी या व्यापारीनुमा आदमी भोली शक्ल बनाकर गाँव वालों से उनकी नदी खरीदने आया है। वह अपनी रंगीन योजना उन्हें समझाता है उसके चेहरे पर बाजारनुमा कुटिल मुस्कान है। उसके बाद एक दूसरा व्यापारी उनकी पूरी जमीन ही खरीदने के लिए आता है इस प्रकार रोज एक नया आदमी गाँव में आकर खड़ा हो जाता। नित नए-नए प्रपोजल लेकर कभी धरती का पानी खिंचने, तो कभी पहाड़ काटने आदि। गाँववाले सोचते हैं कि "ये लोग आखिर है कौन? धरती, पानी, पहाड़, प्रकृति नाले नदी, आसमान वसंत सब कुछ खरीदना बेचना चाहते हैं।"

कहना न होगा कि पूरा विश्व आज एक ग्राम बन गया है किंतु क्या इस बदलते परिवेश ने ग्राम संस्कृति को, पूरे एक गाँव को साबूत या महफूज रखा है? यह बाजारी संस्कृति कहीं इसे निगल तो नहीं रही है? अंत में यह कहना सही लगता है तो वह ग्राम रहा न ही ग्रामीण संस्कृति. माँ तक बाजार बन चुकी है, रिश्ते नातों में मात्र दिखावा और खोखलापन प्रतिष्ठित होने लगा है।

भूमंडलीकरण के चलते बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आ जाने से परिवार तक को टिका पाना कितना मुश्किल हो गया है यह महानगरीय जीवन में आए दिन हमें देखने के लिए मिलता है। कई रचनाकारों ने इस पर अपनी लेखनी भी चलाई है। महावीर राजी की कहानी 'एक दिन अचानक' इसी पारिवारिक समस्या को लेकर प्रस्तुत है। इसका नायक अपनी संस्कृति को भूल चुका है, परिवार के लिए समय नहीं निकाल पाता। उसके जीवन में केवल दौड़ है। लेखक लिखते हैं "वैश्वीकरण और बाजार का यह समय दौड़ रहा है। तेज दौड़ में जरा भी चूके कि लोगों की कतार धकेल आगे बढ जाएगी।" परिणामस्वरूप कहानी का नायक योगेश पूरी तरह अपने को झोंक देता है। बाजार के लायक प्रोडक्ट को वह इस कदर सफाई से एक्सपोज करता है कि दिन दुगुनी रात चौगुनी तरक्की करके वह चीफ सेल्स एक्जीक्यूटिव बन गया है। उसका नाश्ता गुहावटी में, लंच सिलीगुडी में, शाम की चाय इम्फाल में। उसका अटूट साथी है - लैपटॉप. जिसपर सेल्स आरगेट के आकड़े हमेशा नाचते रहते हैं। प्यार करने के लिए तो सारी जिंदगी पड़ी है। यहाँ तक कि शादी हुई तो सुहागरात उसने कैसे मनाई यह तक उसे याद नहीं। मिलनसार और सुंदर बीबी से प्यार करने के लिए समय नहीं। बीबी का पहला प्रसव है और योगेश अपनी कंपनी के प्रोजेक्ट में फँसा है। कहानी का अत्यंत सकारात्मक एवं आशावादी है। हम यह जानते हैं कि इस दौर में योगेश जैसे स्थिति आम हो चुकी है। पारिवारिक जीवन को चाहकर भी हम जी नहीं पाते हैं। यह दौड़ हमें थमने नहीं देती है। किंतु लोकगीत की कुछ पंक्ति नहाते समय अचानक उसके कानों पर पड़ता है और वह चौंक उठता है- मुझको लौटा दो बचपन का सावन। दौड़ की सनक में इन सब दृश्यों को वह जीभरकर जी नहीं पाया था। और उम्र के तीस साल में उसमें जो रेडिकल बदलाव आ गया है वह है -शरीर का स्थूलपन, सिर के झड़े हुए बाल। वह एकदम से जाग उठता है पुरे विश्वास के साथ, पत्नी बच्चे के साथ सहवास और जीवन का सुख लेते हुए अंतिम प्रेझेंटेशन पूरे विश्वास के साथ प्रस्तुत कर बाहर आ जाता है-हमेशा के लिए।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार कहना सही होगा कि भूमंडलीकरण के इस युग में लेखक के लिए भी शीघ्र ही वह समस्या आनेवाली है जब लेखक नहीं संगणक साहित्य की रचना करने लगेगा और रोबोट भाषण देने लगेगा तब लेखक और साहित्य की स्थिति क्या होगी इसकी कल्पना की जा सकती है। जिस सुंदरता और कोमलता को बचाने के लिए कहानीकार इतने व्याकुल होते हैं बाजार में आज उनकी किमत क्या है यह हम सभी जानते हैं।

भूमंडलीकरण ने साहित्य की सहीतता को एकांतिक में बदल दिया है। आज इस पूरी सामुहिकता और वैश्विकता के बावजूद मनुष्य एकदम अकेला रह गया है। उसकी आत्मकेंद्रिता बढ़ती जा रही है। अंततः कहना न होगा कि, रचनाकार तथा साहित्य के प्रति यह एक गंभीर चुनौती एवं समस्या बनकर खड़ी है।

संदर्भ ग्रंथ :-

१. संपा. - संजय सहाय, हंस, जून २०१६
२. संपा. - प्रभाकर श्रोत्रिय, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई -अगस्त २०११



भाषा, संस्कृति और समाज : मंगलमुखी समुदाय के विशेष संदर्भ में

आशीष

शोधार्थी, हिंदी विभाग

तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तिरुवारूर

भारत देश विविध धर्म, विविध संस्कृति एवं विभिन्न भाषाओं वाला देश है। जिसके चलते विभिन्न प्रांतों में पहचान स्वरूप अपनी-अपनी भाषा और संस्कृति है लेकिन यहाँ की संस्कृति अलग-अलग होकर भी एक सूत्र में बंधी रहती है। सभी प्रांतों के संस्कृति की धाराएँ अलग-अलग होकर भी एक ही संस्कृति की सृष्टि करती है। अनेकता में एकता की यह पंखरा इस देश की अपनी अलग विशेषता है। यह विशेषता विभिन्न भाषाओं, धर्मों, जातियों तथा मंगलमुखी समुदाय में भी एक समान दिखाई देती है। भाषाई संरचना के आधार पर व्यक्ति समाज में अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है और मानसिक अनुभूतियों के अभिव्यक्ति का माध्यम भी होता है। इसी का एक जिवंत उदाहरण मंगलमुखी समुदाय है।

जैसा की हम सब जानते हैं कि हिंदी भाषा में केवल दो लिंगों का ही उल्लेख किया गया है- 'स्त्री' और 'पुरुष' लेकिन अब भारत सरकार ने इन दोनों के अलावा 'अन्य' श्रेणी को भी जोड़ लिया है। इस 'अन्य' श्रेणी में 'स्त्री' और 'पुरुष' से इतर लोग आते हैं, जो खुद को इन दो लिंगों से अलग होने का दावा करते हैं। आज हम देख सकते हैं कि सरकारी कागजातों एवं शैक्षणिक सुविधाओं में स्त्री और पुरुष के अलावा एक और अन्य श्रेणी में इन मंगलमुखियों को विशेष कर सम्मिलित किया गया है। जिसका उद्देश्य उन्हें समाज के विकास की मुख्यधारा से जोड़ना है। जिसका वे अपने पहचान पत्र से सुविधाओं का लाभ उठाकर आर्थिक रूप से विकास कर सकेंगे।

जिस प्रकार हम दलित, स्त्री, वृद्ध तथा आदिवासियों के वास्तविक जीवन की चर्चा करते हैं, ठीक उसी प्रकार मंगलमुखियों के रहन-सहन, उनका अस्तित्व आज चर्चा का विषय बना हुआ है। जिस प्रकार हम किसी शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्ति को 'दिव्यांग' कहते हैं, ठीक वैसे ही समाज में इन्हें 'किन्नर', 'हिजड़ा', 'छक्का', 'कोती', 'जनखा', 'माडा', 'कोज्जा', 'अर्धनारी', 'मंगलमुखी' और 'ट्रांसजेंडर' आदि भिन्न-भिन्न नाम प्रांतीय भाषाओं के अनुरूप जाना या पहचाना जाता है। लेकिन इन शब्दों का प्रयोग अधिकतर गालियों के रूप में ही किया जाता है। इन्हें उपरोक्त दिये गये नामों (जो एक गाली लगती है) की बजाय 'मंगलमुखी' कहना ही उचित है, क्योंकि कहा जाता है कि वे ईश्वर के करीबी होते हैं और 'अर्धनारीश्वर' इन्हें इसलिए कहा जाता है, क्योंकि उनका आधा शरीर भगवान् शिव का और आधा शरीर माता पार्वती का माना जाता है।

समय के साथ समाज में परिवर्तन होना स्वाभाविक है, मंगलमुखी समुदाय में भी हुआ। रूढ़िपरंपराओं के साथ चली आ रही मान्यताएं और प्रथाएं कुछ मात्रा में आज भी इन लोगों में प्रचलित हैं। पहले यह लोग भगवान शिव की आराधना करते थे, आज भी करते हैं, परंतु वर्तमान में भगवान शिव की भांति ये देवी बहुचर माता की भी पूजा करते हैं। आज महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश में रेणुका देवी, यलम्मा देवी और मुर्गा माता की पूजा करते हैं। बहुचर माता, रेणुका देवी, यलम्मा देवी या मुर्गा माता सब एक ही देवी के रूप हैं। विभिन्न प्रांतों में अलग-अलग परिवेश के कारण इन देवियों के नामों में बदलाव आ गया। बहुचर माता ही इनकी प्रमुख देवी है जो मुर्गावाहन पर बैठकर हाथ में त्रिशूल लिए होती है।

आज साहित्य भी मंगलमुखियों को नये सिरे से उभारने का काम कर रहा है। भारत के विभिन्न भाषाओं में मंगलमुखी समुदाय पर साहित्य लिखा जा रहा है। हिंदी साहित्य में विमर्श के रूप में आज यह आरंभिक अवस्था में है। हिंदी उपन्यासों में नीरजा माधव कृत 'यमदीप', महेंद्र भीष्म कृत 'किन्नर कथा' और 'मैं पायल', प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली', निर्मला बुराडिया कृत 'गुलाम मंडी', चित्रा मुद्गल कृत 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 - नाला सोपारा', भगवंत अनमोल कृत 'जिंदगी 50-50' आदि इक्कीसवीं सदी के चर्चित उपन्यास हैं। मराठी साहित्य में पारू मदन नाईक कृत 'मी का नाही', स्वाती चांदोरकर कृत 'हिजडे'

उपन्यासके साथ-साथ लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की आत्मकथा 'मी हिजड़ा.. मी लक्ष्मी', विजय तेंदुलकर का नाटक 'मित्राची गोष्ट' आदि महत्वपूर्ण रचनाएँ मिलती हैं। ऐसी सभी रचनाओं में मंगलमुखी समुदाय की जैविक संरचना, जीवन-शैली, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवेश का चित्रांकन हुआ है। इन रचनाओं के कथा नायक अपने अधिकारों के लिए समाज और सरकार से विद्रोह करते हुए, अपने हक के लिए लड़ते दिखाई देते हैं। मुख्य रूप से वे अपनी अस्मिता और अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं और समाज की मुख्यधारा में आने हेतु सरकार से शिक्षा नौकरी में आरक्षण और अपने मुलभुत अधिकारों की मांग कर रहे हैं।

इस समुदाय के बोलचाल की भाषा की यदि बात हो तो कुछ मात्रा में हमारी भाषा से अलग प्रतीत होती है। इनकी भाषा से ही पता चल जाता है कि यह 'मंगलमुखी' है। इनकी भाषा में गालियों का प्रयोग अधिक मात्रा में प्रयुक्त किया जाता है, जो सहज भाव और बिना संकोच किए बोल देते हैं। कुछ मात्रा में नए शब्दों का उपयोग भी मिलता है- जैसे लड़के को 'ठेपका' और लड़की को 'ठेपकी', माँ-बाप को 'सुड्डा-सुड्डी', भाई को 'भावला', पत्नी को 'नारन', पैसे को 'ठप्पर', पैसे मांगने वाले मंगलमुखी को 'मंगता', शराब को 'खेटी', घर के लिए 'नाड', वेश्या के लिए 'वाणसी', पुलिस को 'घोड़ी', बाथरूम के लिए 'खांजरा', खून को 'रंगीली' आदि ऐसे बहुत से शब्द हैं जिनका प्रयोग वे अपने दैन्य-दीन जीवन में करते हैं। सुनने में अटपटा-सा लग रहा होगा लेकिन यही उनकी वास्तविक भाषा है और यही उनके भाषा की पहचान है। विभिन्न प्रांतों में परिवेश के साथ-साथ उनकी भाषा, संस्कृति एवं समाज में थोड़ी-बहुत मात्रा में भिन्नता भी दिखाई देती है।

मंगलमुखी समुदायके लोग अधिकतर बस, ट्रेन, सड़क या किसी पार्क में पैसे मांगते दिख जाँएँ लेकिन हमने कभी यह सोचने की कोशिश नहीं की कि आखिर यह लोग इस तरह, पैसे मांगने के लिए क्यों मजबूर हैं? मनुष्य के रूप में जन्म लेने के बावजूद भी यह लोग दयनीय जीवन जीने के लिए मजबूर है, क्योंकि लोग घर में पालतू जानवरों को बड़े ही शौक से पालते हैं। लेकिन उनके घर कोई 'मंगलमुखी' पैदा हो जाता है तो उसे घर से बहिष्कृत कर देते हैं; उन्हें ये जानवरों से भी गया गुजरा लगता है। अपना परिवार छोड़कर सड़कों पर भटकने वाले इन अभागों के लिए तालियाँ पीटने के अलावा कोई चारा नहीं होता। अपनी हथेलियों को जोर-जोर से पीटना उनके दुःख को बयां करता है तो कमर लचक कर ठुमका लगाना उनके दर्द को। दो वक्त की रोटी के लिए ठुमका लगाने वाले, जोर-जोर से हथेली पीटने वाले ये लोग आसमान या पाताल से नहीं, बल्कि हमारे ही समाज का एक हिस्सा है जो उन्हें स्वीकारने में हमारा समाज हिचक रहा है। इनके साथ होने वाले सामाजिक भेदभाव के कारण उनका मनोबल टूटता जाता है। उनके लिए सभ्य कहे जाने वाले इस समाज में न रोजगार की व्यवस्था मुहय्या कराई गई है, न ही उनकी खुद की कोई परिवार जैसी इकाई है। मंगलमुखी समुदाय की इकाई है लेकिन वहाँ भी वरिष्ठों का वर्चस्व होता है। जहाँ एक तरह से बंधन में जकड़कर रखा जाता है तो वही एक ऐसा ठिकाना भी होता है जो घर-परिवार या समाज द्वारा बहिष्कृत कर दिए जाने के बाद खाने-पीने और रहने के लिए सहारा मिल जाता है। इसका चित्रण चित्रा मुद्गल कृत 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' में नायक विनोद उर्फ बिन्नी विरोध करते दिखाई देता है। यह इकाई उसे संघठन के नाम पर नरक लगने लगता है। चित्रा मुद्गल का यह उपन्यास किन्नर जीवन की चेतना को उजागर करने वाला आधार स्तम्भ है। अपने ही घर से निकाल दिए गए विनोद उर्फ बिन्नी अपनी पीड़ा अपने माँ को लिखे पत्रों में उजागर करता है। वह अपना सुख-दुःख दयनीय जीवन की स्थिति अपने माँ को पत्रों के माध्यम से सुनाता है। उपन्यास में समाज द्वारा लताड़े गए मंगलमुखियों की आह और वेदना को अभिव्यक्त किया गया है। विगत की स्मृतियाँ विनोद उर्फ बिन्नी के सिर पर बोझ की तरह सवार होती हैं। लेखिकाने इसे अपने ढंग से व्यक्त करने का प्रयास किया है।

बचपन से ही परिवार से कटे इन लोगों द्वारा समाज का तिरस्कार स्वाभाविक है, क्योंकि समाज के डर से उन्हें परिवार से बेदखल कर दिया जाता है। लेकिन परिवार से उनका भावात्मक (एक तरफा?) जुड़ाव मन की फ्रायडियन अवस्थाओं में बना रहता है, जबकि परिवार की ओर से किसी भी तरह का लगाव दृष्टिगोचर नहीं होता। इनकी जैविक संरचना, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवेश उनकी भाषा, रहन-सहन, परिवेश, संस्कृति, समाज से उनका संबंध आदि सामान्य लोगों से पृथक् है। मुख्य रूप से वे अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए इस सभ्य कहे जाने वाले समाज से अपने हक और अधिकारों के लिए लड़ रहा

है। इन्हें जानने-समझने-परखने के लिए लोगों को अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त होना अत्यावश्यक है। मूलभूत सुविधाओं से वंचित समाज की प्रताड़ना के शिकार होने वाले इन लोगों की स्थिति पर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है। ऐसे पीड़ादायक स्थिति में वह किसे दोष दे? ईश्वर को! जो इस विश्व का सृष्टि कर्ता है या समाज को, जिन्होंने समाज में ऐसे रूढ़िवादी बंधन बनाए हैं। समाज ने संस्कृति के नाम पर इन्हें हमेशा हाशिए पर ही रखने की कोशिश की। उन्हें अपने समाज का हिस्सा बनने नहीं दिया लेकिन जब भी किसी के घर शुभकार्य होता है तो यही समाज उन्हें संस्कृति के नाम पर बुलाकर, उनसे घर में सुख-शांति की गुहार लगाता है।

शास्त्रों में भले ही इन्हें शुभ-शुभगुण के रूप में उल्लेखित किया गया हो, समाज में आज भी उनके प्रति सामान्य मानवीय और संवेदनशील व्यवहार का भी घोर अभाव है। कहा जाता है कि किन्नरों द्वारा दिया गया सिक्का अपने पास संभालकर रखने से धन में वृद्धि होती है, उनके आशीर्वाद से घर में सुख-शांति निवास करती है। लेकिन यह समाज उन्हें हमेशा तुच्छ नजरों और हेय भावनाओं से क्यों देखता है तुच्छ नजरों से देखने वाले इस सभ्य समाज को अपनी सोच बदलनी होगी। तभी इन लोगों के साथ न्याय होगा। तभी तो वे वेश्यावृत्ति और नाच-गाने की दुनिया से बाहर आकर सम्मान से जीवन-यापन कर सकेंगे।

मंगलमुखियों में भी अनेक प्रकार के मंगलमुखी होते हैं। जिनमें मुख्य रूप से स्त्री-पुरुष जैसे द्विलिंगी होते हैं जो बाहर से शरीर पुरुष जैसा दिखता है लेकिन वह भीतर से स्त्री होती है। उसका चाल-चलन, लक्षण भी स्त्री होते हैं, यहां तक की वह स्वयं को स्त्री संबोधित करता है। जो मंगलमुखी शरीर से स्त्री जैसी दिखती है, असल में वह पुरुष मंगलमुखी होता है। जब वह धीरे-धीरे आठ-दस साल उम्र की हो जाती है तो उसे ज्ञात हो जाता है कि वह लड़की नहीं लड़का है, क्योंकि बड़ती उम्र में उसका शरीर साथ नहीं देता। उसका शरीर विकसित नहीं हो पाता। उसका गुप्तांग अविकसित रह जाता है। भावनाएं भी विपरीत हो जाती हैं। स्त्री मंगलमुखी को पुरुषों जैसे कपड़े पहनना अच्छा लगता है तो पुरुष मंगलमुखी को स्त्रियों जैसा श्रृंगार करना। पुरुष होकर भी उसमें स्त्री लक्षण आ जाते हैं। ऐसे स्वभाव के लोगों को यह समाज किन्नर, हिजड़ा या छक्का आदि नामों से जानता है। जो भी इस रूप में या लिंग में जीवन पाता है, उसका जीवन खामोशियों से भरा होता है। सुलझे हुये लोगों से तंग आकर अपना अलग से संसार बसा लेता है। यह संसार उसने स्वयं बनाया या समाज ने बनाने को मजबूर किया? जैसा भी हो इस जिल्लत भरी जिंदगी में वह बे सहारा रह जाता है। उनसे एक बार मिलकर तो देखिए! उनसे बात कर के तो देखिए! वे कोई राक्षस या भूत नहीं हैं, जो तुम्हें खा जाएंगे। उनसे एक बार प्यार से बात तो कर के देखिए! वे भी आप से प्यार से बात करेंगे। वे जिस प्रकार व्यवहार या बर्ताव करते हैं, उसके पीछे भी हम ही लोग जिम्मेदार हैं, क्योंकि वे बचपन से यह सब झेलते आ रहे हैं। इसलिए उनका ऐसा व्यवहार जायज है।

दिनभर में जितना भी पैसा इकठ्ठा कर लाते हैं, रात में गुरुमाई को हिसाब देना पड़ता है, क्योंकि इनका कर्ता-धर्ता सब कुछ गुरुमाई ही होती है। खाने-पीने से लेकर साज-श्रृंगार तक का सारा खर्चा गुरुमाई ही उठाती है। ये मंगलमुखी गुरुमाई की नजरों से सौ-दो सौ बचा लेते हैं और बचाये हुए पैसे शराब पीने में लगा देते हैं। इससे उनके पेट की आग कैसे मिटेगी? रोज बस-ट्रेन-पार्कों में मांगकर पाई-पाई इकठ्ठा करके लाना भी अच्छा नहीं लगता। रोज-रोज मंगती बनकर पैसा इकठ्ठा करने में शर्म महसूस होता है। बधाइयाँ तो हर रोज नहीं मिलती। इसलिए ये देहव्यापार की ओर मुड़ जाते हैं। यह लोग भी शारीरिक सुख चाहते हैं, आखिर वे भी तो मनुष्य ही हैं। देहव्यापार में पैसा भी आराम से मिल जाता है लेकिन अधिक पैसों की चाह में सतर्कता नहीं बरतने की वजह से एच.आई.वी. जैसी बड़ी बीमारी के शिकार हो जाते हैं। यह एक ऐसा रोग है, जिसका अंत केवल और केवल मृत्यु ही है। मराठी उपन्यास 'हिज डे' में हाला, सखा और जुगनू इसका जीवंत उदाहरण है। जीवन से छुटकारा पाते ही बिरादरी के लोग उसके जनाजे को चप्पलों से पिटते हैं और दुआ करते हैं कि ऐसी जिंदगी फिर कभी न मिले दोबारा हिजड़ा बनकर न जिए। मरने के बाद भी एक और समस्या उभरकर आती है वह है दफनाने के दो गज जमीन की। हम सभी को पता है कि सामान्य स्त्री या पुरुष की जब मौत हो जाती है तो उनके लिए श्मशान भूमि में दफनाने के लिए जगह मिल जाती है लेकिन इनके लिए ऐसी कोई जगह नहीं है। अधिकतर मंगलमुखियों को मरने के बाद जगह न होने की वजह से उन्हींके घर में दफना दिया जाता है। इसके पीछे कुछ

मान्यताएँ भी हो सकती है। चाहे उनका गुरु उसे कितनी भी पीड़ा या यातनाएं क्यों न दे। अधिकतर मंगलमुखी अपने गुरु को ही स्वीकार कर उसी समाज में जीवन बिताते हैं। उनका समुदाय ही उनके लिए सुरक्षा का ठिकाना है।

कहा जा सकता है कि वर्तमान साहित्य में किन्नर विमर्श अभी आरंभिक अवस्था में है। समाज इन्हें पूर्णरूप से स्वीकार ने में हिचक रहा है, फिर भी यह मानना ही होगा कि दिन प्रतिदिन विकास के पथ पर चल रहा यह सभ्य समाज अब इन्हें थोड़ा-सा ही सही, जगह दे रहा है। वह दिन भी दूर नहीं है, जब ये मंगलमुखी सामान्य लोगों की भांति आर्थिकरूप से संपन्न होकर अपने मानवाधिकारों के साथ जीवन-यापन कर सकेंगे। इसके लिए जरूरत है, हमें इन लोगों में छिपे कला-गुणों, उनकी पसंद-नापसंद को जानने-समझने की। आगे बढ़ने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए तभी वे इस समाज में बे झिझक होकर जीवन बिताएंगे। अतः उनकी ओर देखने वाले सभी लोगों की दृष्टि बदलनी होगी तभी समाज की दृष्टि में भी बदलाव होगा और उन्हें न्याय मिलेगा।

आधार ग्रंथ

- 1) प्रदीप सौरभ, 'तीसरी ताली', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
- 2) स्वाती चांदोरकर, 'हिज डे', मेहता पब्लिशिंग हाऊस, सदाशिव पेठ, पुणे, 2017
- 3) चित्रा मुद्गल, 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 - नाला सोपारा', सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2017
- 4) सं. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, 'भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श', अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016
- 5) सं. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, 'हिंदी उपन्यासों के आईने में थर्ड जेंडर', अमन प्रकाशन, कानपुर, 2017

